ज्ञानदिवाकर, प्रशान्तमूर्ति, मर्यादाशिष्योत्तम आचार्यश्री भरतसागरजी के
द्वितीय पुण्य तिथि के उपलक्ष्य मे

विमल भक्ति

विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका

अनुवादकर्त्री
आर्यिकाश्री स्याद्वादमती माताजी

प्रकाशक
जिनराज जैन
2/26, दरियागज
नई दिल्ली

आशीर्वाद	:	**आचार्यश्री भरतसागरजी महाराज**
वाचना प्रमुख	.	**श्रमणरत्न मुनिश्री अमितसागरजी**
अनुवादकर्त्री		**आर्यिकाश्री स्याद्वादमती माताजी**
सयोजन		**ब्र० प्रभा पाटनी B Sc L L B**
ग्रन्थ		**विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका**
सस्करण		सशोधित द्वितीय सन् 2008
पुस्तक प्राप्ति स्थान	.	आर्यिका 105 स्याद्वादमती माताजी सघ एव जिनराज जैन, 2/26 दरियागज, नई दिल्ली-110002

समर्पण

परम पूज्य सन्मार्ग दिवाकर

आचार्य विमलसागर जी महाराज के

पट्ट शिष्य

मर्यादा शिष्योत्तम

ज्ञान दिवाकर

प्रशान्तमूर्ति

वाणी भूषण

भुवन भास्कर

समतामूर्ति

गुरुदेव आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज के

कर कमलो मे

समर्पित

आशीर्वाद

आचार्य श्री १०८ भरतसागरजी

जैनदर्शन आत्म-दर्शन का एक अलौकिक दर्शन है। यहाँ श्रावक व मुनिधर्म के अपने-अपने मुख्य कर्तव्य है। स्तुति-स्तवन-वन्दना प्रतिक्रमण आदि साधुधर्म व श्रावक धर्म के मूलगुण है। पूर्वाचार्यो ने करुणापूर्ण दृष्टि मे प्राकृत-सस्कृत भाषा मे प्रतिक्रमण व भक्तियो की रचना की। वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल मे जीवो मे बुद्धि का ह्रास होता जा रहा है। आज प्राकृत-सस्कृत भाषामय प्रतिक्रमण व भक्तियो का अर्थ समझने वाले व्युत्पन्नमति जीव अल्पसख्यक नजर आते है। अर्थ के बिना भाव-भासना नही होती अत सब लोगो को अर्थ का ज्ञान हो इस दृष्टि से पूर्व मे भी अर्थ, भावार्थ आदि की पुस्तके प्रकाशित हुई है। पर तीनो प्रतिक्रमण-दैवसिक, पाक्षिक व श्रावक तथा दस भक्तियो का एक साथ अन्वयार्थ, भावार्थ एक पुस्तक मे उपलब्ध न होने से पाठको को परेशानी अनुभव होती थी। इसकी माग भी सतत आती रही है।

मैने इस कार्य के लिये स्याद्वादमतीजी को आज्ञा की। माताजी ने आज्ञा को शिरोधार्य कर अल्पावधि मे कार्य को पूर्ण कर एक बहुत बडी कमी को पूरा किया। माताजी को मेरा आशीर्वाद है। आपके द्वारा लिखित यह विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका सरस, सुन्दर व सूपयोगी बने यही भावना है।

आवश्यकों के झरोके से...

मुनि अमितसागर

[शिष्य आचार्य श्रीधर्मसागरजी]

पॉच पापो के प्रपच से पूर्णत परिमुक्त आत्मा ही परमात्मा कहलाते है। क्योकि पॉच पाप ही चित्त को अपवित्र कर देते है। जिससे जीव अपराधी कहलाता है और पूज्यता से दूर हो जाता है। अत अपराध शोधन की प्रक्रिया का नाम ही प्रतिक्रमण है। जो जीव पॉच पापो को त्यागकर मोक्षमार्ग की साधना मे आरूढ होते है उनके कथचित प्रमादवश परिणाम विशुद्धि गिर जाती है। जिससे जीव मोक्षमार्ग की दृष्टि से अपराधी कहलाता है पुन उसी अपराध को मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना आदि भेदो से स्वीकार कर अपने चित्त को पवित्र बना लेता है। अत परिणामो को पवित्र बनाने की प्रक्रिया का नाम ही प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण मात्र प्रमादजन्य दोषो के परिहार के लिये किया गया उपक्रम है। या यो कहे कि मन-वचन-कायादि से दिये गये पॉच पापो के समर्थन वापसी की उद्घोषणा है प्रतिक्रमण। यानि जितने प्रकार से समर्थन दिया उतने प्रकार से पुन असमर्थन करना है प्रतिक्रमण।

प्रायश्चित विधि मे प्रतिक्रमण की महती भूमिका है। अत सयमीजन प्रतिदिन अपने व्रतो मे प्रमाद से लगे दूषणो के परिमार्जन हेतु प्रतिक्रमण करते है। इसका एक कारण यह भी है कि साधुओ के छह आवश्यको मे एक प्रतिक्रमण आवश्यक भी है। अत चाहे साधु से प्रमादजन्य अपराध हुआ हो अथवा नही, लेकिन उसे प्रतिक्रमण करना आवश्यक है। क्योकि ऐसा ही जिनेन्द्र प्रभु का उपदेश है सयमी-साधुओ के लिये प्रत्येक चौबीसी के प्रथम तीर्थकरो के समय मे होने वाले एव अतिम तीर्थकरो के समय मे होने वाले सयमी-साधुओ को प्रतिक्रमण आवश्यक है क्योकि प्रथम तीर्थकरो के समय होने वाले साधु सरल चित्त होने से अपराध कर देते है एव अन्तिम तीर्थकरो के समय मे होने वाले साधु कुटिल चित्त वाले होने से प्रमादजन्य अपराध करते रहते है। अत प्रतिक्रमण आवश्यक है।

प्रतिक्रमण आवश्यक के साथ-साथ स्तुति-वन्दना भी साधु चर्या के अभिन्न अग है। स्तुति-वन्दना मे प्रयुक्त होने वाली भक्तियो का विशेष महत्त्व

है। अत इसी के साथ ही भक्तियो की विवेचना आवश्यक है। क्योकि किन-किन श्रद्धेयो के प्रति कौन-कौन सी भक्ति कहाँ-कहाँ आवश्यक है इसका ज्ञान होना भी आवश्यक है।

अपने श्रद्धेय के प्रति विशुद्ध भावो की अभिव्यक्ति ही भक्ति है। ससार मे श्रद्धेय के रूप-स्वरूप की मान्यताये विभिन्न प्रकार की है। अत हमारे जैनाचार्यो ने यथार्थ श्रद्धेय के रूप स्वरूप को भक्ति के माध्यम से सुस्पष्ट किया है। जैसे सिद्ध-भक्ति मे सिद्धो का स्वरूप मत-मतान्तरो मे किस प्रकार है ? एव वास्तविक स्वरूप क्या होना चाहिये, खण्डन-मण्डन करते हुए, यथार्थ भक्ति का परिचय दिया है। अत कहने का तात्पर्य यह है कि ये वे भक्तियाँ है, जिनमे जैन सिद्धान्त के मूलभूत सिद्धान्तो-मान्यताओ को सुस्पष्ट करते हुए अपने इष्ट का गुणानुवाद किया गया है। जिसम यह भी बतलाया गया है कि हमे किस प्रकार से इष्ट का स्मरण करना चाहिये ? क्योकि भक्ति तो एक निमित्त है, अपने इष्ट के समीप जाने के लिये पूजा-प्रार्थना, वन्दना, स्तुति, स्तोत्र, स्मरणादि सब इसी के अविनाभावी है अत किसी-न-किसी बहाने से अपने इष्ट-प्रभु का गुणानुवाद करते हुये पुकारना भक्ति है।

भक्ति का अर्थ याचना नही, बल्कि निष्काम प्रार्थना है, फिर भी कही-कही भक्त अपने भावा को भक्ति से निमित्त से अपने दु ख निवारण हेतु प्रार्थना भी करता है लेकिन उस प्रार्थना मे दीनता-याचना नही, समर्पण होता है। "**यत्कर्त्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाण**" यानि अपने मिथ्या मन-वचन-काय के बल का विसर्जन करना ही भक्ति है। भक्ति का यथार्थ फल मुक्ति है। इसी उद्देश्य से हमारे जैनाचार्यो ने भक्ति को भी महत्त्व दिया है।

हमारे आचार्यो द्वारा प्रख्यापित-सम्पादित प्रतिक्रमण एव भक्तियो के मूलभूत भावो को समझने के लिये इनकी अन्वयार्थ सहभावार्थ रूप "**विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका**" वात्सल्यरत्नाकर आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज की सुशिष्या प्रशान्तमूर्ति, मर्यादा शिष्योत्तम आचार्य श्री भरतसागर जी की प्रेरणा से आर्यिका स्याद्वादमती माता जी ने की है। जो समस्त अर्थ जिज्ञासुजनो के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। आर्यिका जी को अनन्त आशीर्वाद है कि वे आचार्यश्री की पावन प्रेरणा से ज्ञानवर्द्धन सामग्री का सम्पादन करती रहे।

मकर संक्रान्ति
सम्मेदाचल १४-१-९८
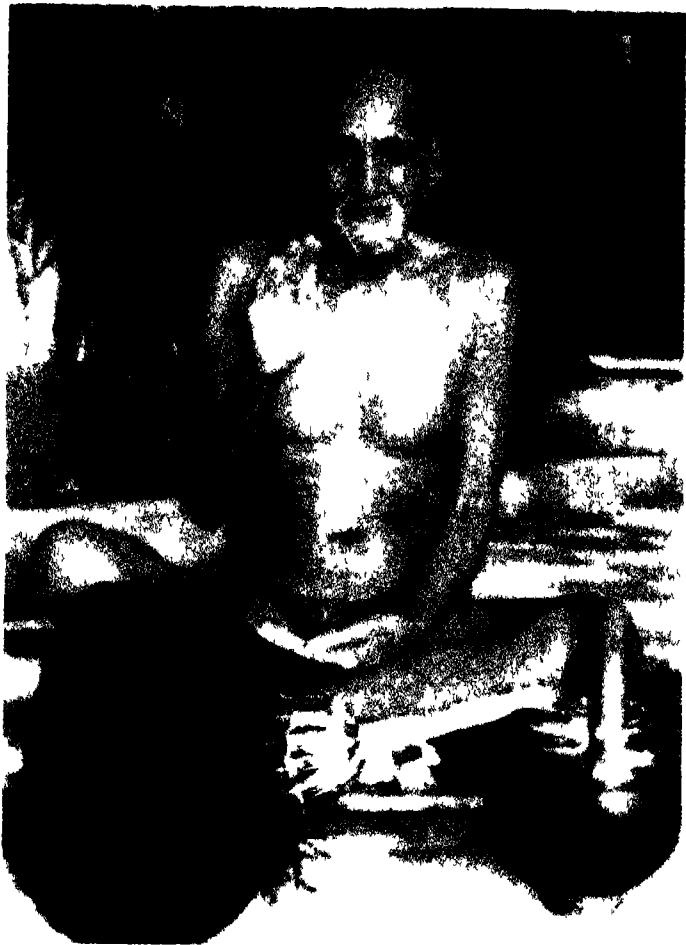
मनोभावना

जैनदर्शन मे आचार्यो ने श्रावक व साधुवृन्द के लिये बार-बार एक ही प्रेरणा दी है कि अपने आत्मसरक्षणार्थ सर्वप्रथम "आदहिद कादव्व" आत्मा का हित करो। आत्म हित के लिये व्यवहार रत्नत्रय की साधना से निश्चय रत्नत्रय को साध्य करो।

सम्यग्दर्शन के साथ सम्यग्ज्ञान के भी आठ अग कहे है। सम्यग्ज्ञान के आठ अगो मे प्राय श्रावक व साधुजीवन मे व्यञ्जनाचार की प्रमुखता देखी जा रही है, अर्थाचार की ओर प्राय लक्ष्य ही नही है। आचार्य कहते है व्यञ्जनाचार यदि अर्थाचार सहित हो तो आस्रव का द्वार बन्द होगा और सवर, निर्जरा का द्वार सहज खुल जायेगा, क्योकि शब्दो की भाव भासना होने पर परिणामो मे विशेष निर्मलता, विशुद्धि आती है। इसी भावना को लेकर गुरु आशीर्वाद से "विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका" तैयार की गई है। इस टीका के कार्य मे मेरा कोई परिश्रम नही एकमात्र गुरुदेव के आशीर्वाद का ही यह फल हैं।

परमपूज्य आचार्य गुरुदेव विमलसागरजी महाराज की महती अनुकम्पा थी, जिन्होने मुझे आर्यिका व्रत की दीक्षा देकर सुयोग्य बनाया और आचार्य गुरुदेव भरतसागरजी महाराज की सद्प्रेरणा व आशीर्वाद सदा बना ही रहता है। आचार्यश्री मुझे सदैव लेखन कार्य की प्रेरणा देते ही रहते है, आपकी ही सम्यक् प्रेरणा व असीम अनुकम्पा, आशीर्वाद से यह "विमल ज्ञान प्रबोधिनी टीका" तीन प्रतिक्रमण व द्वादश भक्तियो का अर्थ अन्वय सहित तैयार हुआ। इस कार्य मे मुनि श्रमणरत्न अमितसागर जी का सहयोग भी मुझे प्राप्त हुआ, मेरा उनके लिये नमोस्तु। इस महत् कार्य मे अल्पज्ञतावश चूक रह जाना स्वाभाविक है, अत विज्ञजन सुधार कर पढे, तथा सूचित कर मार्गदर्शन देवे। अन्त मे आचार्यश्री के चरणो मे सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति पुरस्सर नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु। आचार्य श्री के स्वर्ण-जयन्ती के पावन अवसर पर आचार्यश्री के कर-कमलो मे यह छोटी सी कृति समर्पित है।

आ० स्याद्वादमती

आचार्य श्री विमल सागर जी

तुभ्य नम परम धर्म प्रभावकाय,
तुभ्य नम परम तीर्थ सुवन्दकाय।
'स्याद्वाद' सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय,
तुभ्य नम विमल सिन्धु गुणार्णवाय।।
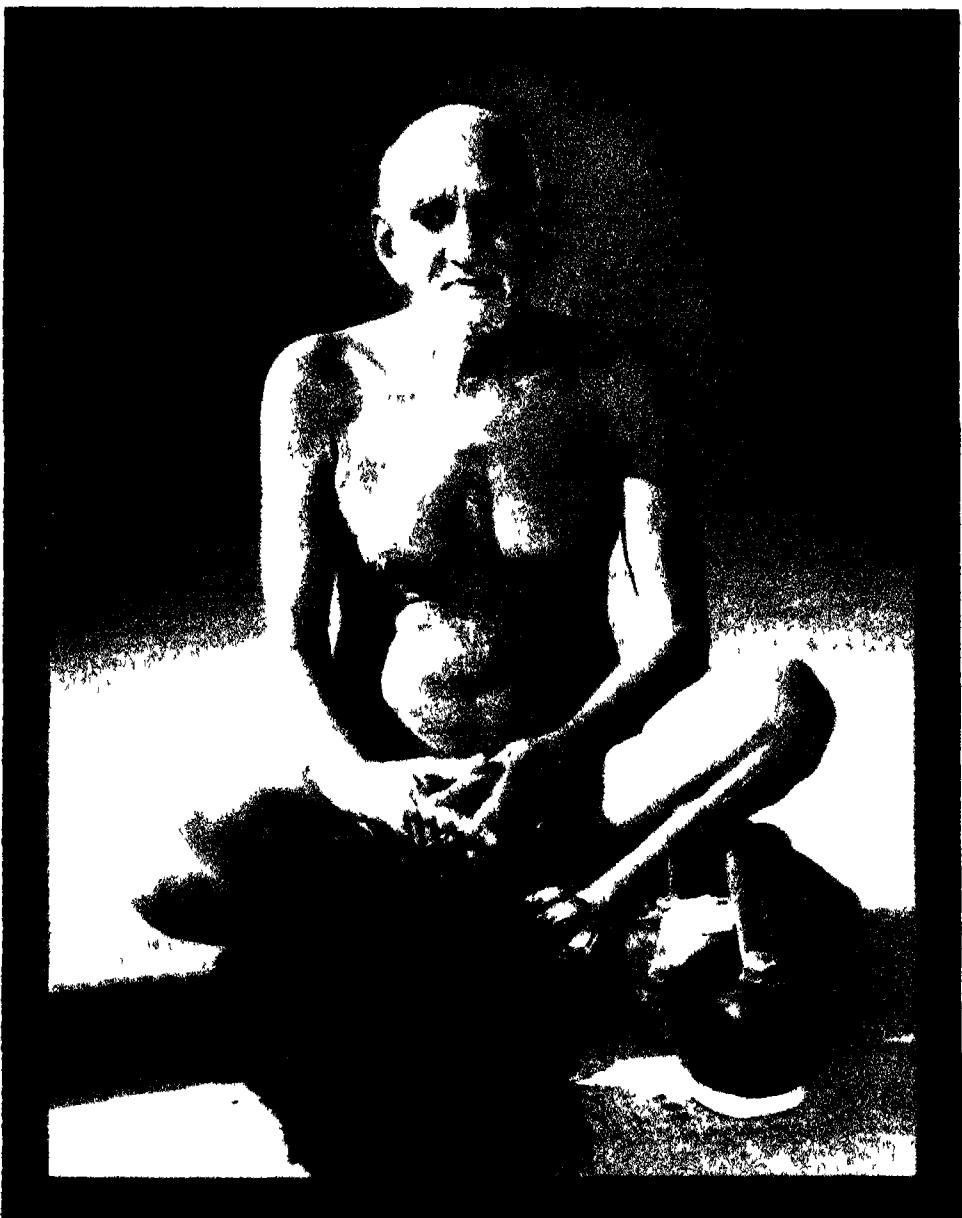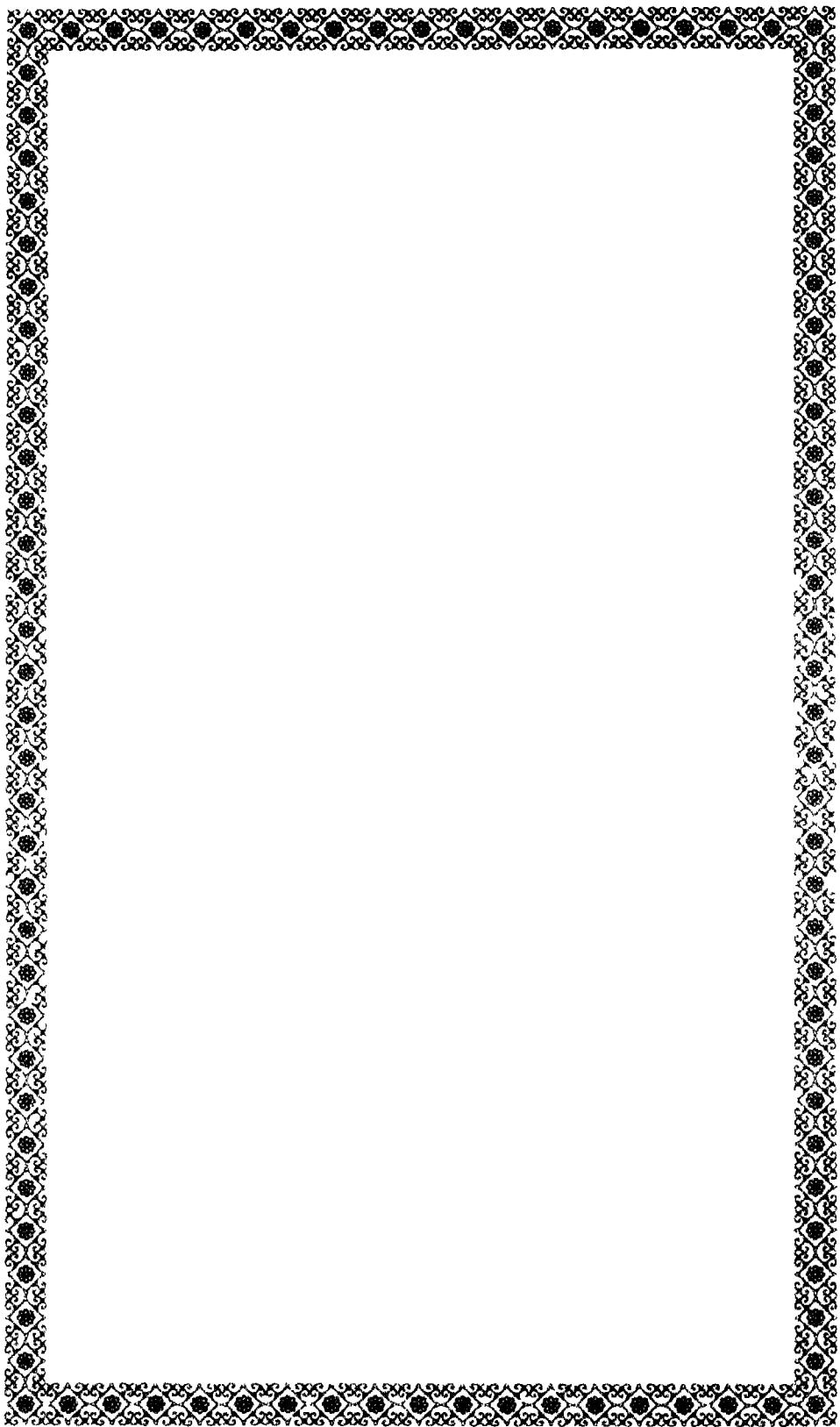
आचार्य श्री भरत सागर जी

आचार्य श्री भरतसिन्धु नमोस्तु तुभ्य,
हे भक्तिप्राप्त गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्य।
हे कीर्तिप्राप्त जगदीश नमोस्तु तुभ्य,
भव्याब्ज सूर्य गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्य॥

विषयानुक्रमणिका

वीतरागाय नम

रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण

प्रतिज्ञा सूत्र

जीवे प्रमाद-जनिता: प्रचुरा: प्रदोषा:,
यस्मात् प्रतिक्रमणत: प्रलयं प्रयान्ति ।
तस्मात्-तदर्थ-ममलं, मुनि-बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्र-भव-कर्म-विशोधनार्थम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(यस्मात्) जिस (प्रतिक्रमणत) प्रतिक्रमण से (जीवे) जीव मे (प्रमाद-जनिता) प्रमाद से उत्पन्न (प्रचुरा) अनेक (प्रदोषा) दोष (प्रलय) क्षय को (प्रयान्ति) प्राप्त होते है। (तस्मात्) इसलिये (तदर्थ) उनके लिये (विचित्र-भव-कर्म विशोधनार्थ) अनेक भवो मे उपार्जित कर्मो का विशोधन अर्थात् क्षय करने के लिये यह (मुनि-बोधनार्थम्) मुनियो को ज्ञान कराने के लिये (अमल) विमल/निर्मल प्रतिक्रमण (वक्ष्ये) कहूँगा।

भावार्थ—जिस प्रतिक्रमण से, जीव के द्वारा प्रमाद से उत्पन्न होने वाले अनेक दोष क्षय को प्राप्त होते है, तथा अनेक भवो मे उपार्जित कर्मो का क्षण-मात्र मे नाश होता है। इसलिये मुनियो को सबोधन के लिये, मै ऐसे मल रहित निर्मल प्रतिक्रमण को कहूँगा। [यह प्रतिक्रमण के रचयिता श्री गौतम स्वामी का प्रतिज्ञा सूत्र है]

"भूतकालीन दोषो का निराकरण करना प्रतिक्रमण है।"

उद्देश्य सूत्र

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना-लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्-निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते जिनेन्द्र ! भवत: श्री-पाद-मूलेऽधुना
निन्दा-पूर्वमहं जहामि सततं वर्वर्तिषु: सत्पथे ।।२।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (त्रैलोक्याधिपते) हे तीन लोक के अधिपति ! मुझ (पापिष्ठेन) पापी (दुरात्मना) दुष्ट (जड़धिया) जड बुद्धि (मायाविना) मायाचारी (लोभिना) लोभी (रागद्वेष-मलीमसेन) राग-द्वेष रूपी मल से मलिन (मनसा) मन से (यत्) जो (दुष्कर्म) अशुभ कर्म (निर्मित) किये है। (सतत) निरन्तर (सत्पथे) सन्मार्ग मे (वर्वर्तिषु) प्रवृत्ति करने की इच्छा करने वाला (अह) मै (अधुना) इस समय (भवत) आपके (श्री-पादमूले) अनन्त चतुष्टयरूप लक्ष्मी से सम्पन्न चरण-कमलो मे (निन्दापूर्व) निन्दापूर्वक (जहामि) छोडता हूँ।

भावार्थ—हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्र देव ! मुझ पापी, दुष्ट, अज्ञानी, मायाचारी, लोभी के द्वारा राग-द्वेष रूपी मल से मलीन मन के द्वारा जिन पाप-कर्मो का उपार्जन किया गया है, उन पाप कर्मो को मै अनत चतुष्टय रूप लक्ष्मी से सम्पन्न आपके चरण-कमलो मे निन्दापूर्वक छोड़ता हूँ। तथा अब इस समय निरन्तर सन्मार्ग मे प्रवृत्ति करने की इच्छा करता हूँ। [जिनेन्द्र की साक्षीपूर्वक पाप-कर्मों का त्याग करता हूँ" इस प्रकार यह सकल्प सूत्र है]

संकल्प सूत्र

खम्मामि सव्व-जीवाणं सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु वैर मज्झं ण केण वि ।।३।।

अन्वयार्थ—(सव्वजीवाण) समस्त जीवो को (खम्मामि) मै क्षमा करता हूँ (सव्वे जीवा) सभी जीव (मे खमतु) मुझे क्षमा करे। (मे) मेरा (सव्वभूदेसु) सभी जीवो मे (मित्ती) मैत्रीभाव है, (केण वि) और किसी के प्रति (मज्झ) मेरा (वैर) वैरभाव (ण) नही है।

भावार्थ—मै ससार के समस्त प्राणियो के प्रति क्षमा भाव धारण करता हूँ। समस्त प्राणी भी मुझ पर क्षमा भाव धारण करे। ससार के सभी जीवो मे मेरा मैत्री भाव है तथा किसी भी जीव के साथ मेरा वैर-विरोध नही है।

राग परित्याग सूत्र

राग-बन्ध-पदोसं च हरिसं दीण-भावयं।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदि-मरदिं च वोस्सरे ।।४।।

अन्वयार्थ–(राग-बध-पदोस) राग-बन्ध-द्वेष [हरिस] हर्ष (च) और (दीणभावय) दीनभाव, (उस्सुगत्त) पञ्चेन्द्रिय विषयो की वासना की उत्सुकता (भय) भय (सोग) शोक, (रदिं) रति (च) और (अरदिं) अरति को मैं (वोस्सरे) छोडता हूँ ।

भावार्थ–हे जिनेन्द्र । मै आपकी साक्षीपूर्वक राग-द्वेष-बन्ध, हर्ष, दैन्य प्रवृत्ति/भावना, पञ्चेन्द्रिय विषयो की वासना का आकर्षण, लोलुपता, आसक्ति, भय, शोक, रति और अरति का त्याग करता हूँ ।

पश्चात्ताप सूत्र

हा ! दुट्ठ-कय हा ! दुट्ठ-चिंतिय भासिय च हा !
दुट्ठं अंतो-अंतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेदंतो ।।५।।

अन्वयार्थ–(हा दुट्ठकय) हा । मैने जो दुष्ट कार्य किया है, (हा दुट्ठचिंतिय) हा । मैने जो दुष्ट चिन्तन किया है, (च) और (हा दुट्ठ भासिय) हा । मैंने जो दुष्ट वचन कहे हैं । (वेदतो) उन सबका वेदन करता हुआ (अतो अतो) मै अन्दर ही अन्दर (पच्छत्तावेण) पश्चात्ताप से (डज्झमि) जल रहा हूँ ।

भावार्थ–

१ हा । यदि मैने काय से कोई दुष्ट कार्य किया हो ।

२ हा । यदि मैने मन से कोई दुष्ट चिन्तन किया हो और

३. हा । यदि मैने कोई दुष्ट वचन बोला हो तो मैं उन मन-वचन-काय की दुष्ट क्रियाओ को दुष्कृत-अशुभ समझता हुआ, पश्चात्ताप से भीतर ही भीतर पीड़ित हुआ जल रहा हूँ अर्थात् अपने दुष्कृत्यो से मेरा अन्त·करण जल रहा है अत हे जिनेन्द्र । आपकी साक्षीपूर्वक इनका त्याग करता हूँ ।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदावराह-सोहणयं ।
णिंदण-गरहण-जुत्तोमण-वच[१]-कायेण पडिक्कमणं ।।६।।

अन्वयार्थ–(दव्वे) द्रव्य मे (खेत्ते) क्षेत्र मे (काले) काल मे (य) और (भावे) भाव मे (कदावराह सोहणय) किये अपराधो की शोधना करने के लिये (णिंदण-गरहण-जुत्तो) निंदा और गर्हा से युक्त होता हुआ (मण-वच-कायेण) मन-वचन-काय से (पडिक्कमणं) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ ।

---

१ वय पाठ भी है ।

भावार्थ–

द्रव्य— आहार, शरीर आदि ।

क्षेत्र— वसतिका, मार्ग, जिनालय आदि ।

काल— पूर्वाण्ह, मध्यान्ह और अपराण्ह आदि ।

भाव— सकल्प-विकल्प आदि ।

मै, द्रव्य-शरीर आदि, क्षेत्र-वसतिका, मार्ग आदि, काल-भूत-भावी, वर्तमान अथवा पूर्वाह्न और अपरान्ह मे किये गये अपने अपराधो की शुद्धि के लिए मन-वचन-काय से प्रतिक्रमण करता हूँ ।

ए-इंदिया, बे-इंदिया, ते-इदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढवि-काइया-आउ-काइया, तेउ-काइया, वाउ-काइया, वणप्फदि-काइया, तस-काइया, एदेसि उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ–(ए-इदिया) एकेन्द्रिय (बे-इदिया) दो इन्द्रिय (ते इदिया) तीन इद्रिय (चतुरिंदिया[१]) चार इन्द्रिय (पचिंदिया) पञ्चेन्द्रिय (पुढवि काइया) पृथ्वीकायिक (आउ-काइया) जलकायिक (तेउ-काइया) अग्निकायिक (वाउ-काइया) वायुकायिक (वणप्फदि-काइया) वनस्पति-कायिक (तस-काइया) त्रस कायिक (एदेसि) इन जीवो का (उद्दावण) मारण (परिदावण) सतापन (विराहण) विराधन (उवघादो) उपघात अर्थात् एकदेश घात (कदो) किया हो (वा) अथवा (कारिदा) दूसरो से कराया हो (वा) अथवा (कीरतो वा समणुमण्णिदो) करने वालो की अनुमति की हो (तस्स) उससे होने वाले (मे दुक्कड) मेरे दुष्कृत्य/पाप (मिच्छा) मिथ्या होवे ।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव ! मैने एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीव को मारना, पीड़ा देना, एकदेश प्राणो का घात करना, विराधना करना आदि पाप-कार्यो को स्वय किया हो, दूसरो से कराया हो अथवा करने वालो की अनुमोदना की हो तो मेरे पाप मिथ्या होवे ।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च ।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं ।।
छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

अन्वयार्थ— (वद-समि-दिंदियरोध) पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पचेन्द्रिय निरोध (लोचो) लोच करना (आवासय) षट् आवश्यक (अचेलं)

१ चउरिंदिया भी पाठ है ।

वस्त्र मात्र का त्याग अर्थात् नग्नता (अण्हाण) स्नान का त्याग (खिदि-सयण) भूमि शयन (अदतवण) दत धवन नही करना (ठिदि-भोयण) भूमि पर खडे होकर भोजन करना (च) और (एयभत्त) दिन मे एक बार भोजन करना (खलु) निश्चय से (एदे) ये (समणाण) मुनियो के (मूलगुणा) अट्ठाईस मूलगुण (जिणवरेहि) जिनेन्द्र देव ने (पण्णत्ता) कहे है। (एत्थ) इन मूलगुणो मे (पमाद कदादो) प्रमाद जनित (अइचारादो) अतिचारो से (अह) मै (णियत्त) निवृत्त होता हूँ।

भावार्थ—जो महान व्रत है उन्हे महाव्रत कहते है। अथवा महापुरुषो के द्वारा जिनका आचरण किया जाता है वे महाव्रत है। अथवा स्वत ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाले होने से ये महान व्रत महाव्रत कहलाते है। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पॉच महाव्रत है।

पञ्चाना पापाना हिसादीना मनो वच कायै ।
कृतकारितानु-मोदैस्त्यागस्तु महाव्रत महताम् ।।७२।। र श्रा ।।

साहति ज महल्ला आयरिय ज महल्लपुव्वेहि ।
ज च महल्लाणि तदो महल्लया इत्तहे ताइ ।।३०।। चा पा ।।

महापुरुष जिनका साधन करते हैं, पूर्ववर्ती महापुरुषो ने इनका आचरण किया है और ये स्वय ही महान है अत इन्हे महाव्रत कहते है।

काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, कुल, आयु और योनि इनमे जीवो को जानकर इनमे प्रमत्तयोग से होने वाली हिसा का परिहार करना **अहिंसा महाव्रत** है।

रागादि से असत्य बोलने का त्याग करना और पर को ताप करने वाले सत्य वचनो का भी त्याग करना तथा सूत्र और अर्थ के कहने मे भी अयथार्थ वचनो का त्याग करना **सत्य महाव्रत** है।

ग्राम, नगर आदि मे गिरी हुई, भूली हुई इत्यादि जो भी छोटी-बड़ी वस्तु है और जो पर के द्वारा सगृहीत है ऐसे परद्रव्य को ग्रहण नही करना सो **अचौर्य महाव्रत** है।

वृद्ध-बाला-युवती अथवा देव-मनुष्य-तिर्यंच तीन प्रकार की स्त्रियो वा उनके प्रतिरूप (चित्र) को माता, पुत्री और बहन के समान समझ उन स्त्रियो से विरक्त होना **ब्रह्मचर्य महाव्रत** कहलाता है।

चेतन, अचेतन और मिश्र ऐसे तीन प्रकार के परिग्रह हैं। अथवा १४ प्रकार [मिथ्यात्व, क्रोधादि ४ व ९ नोकषाय] अन्तरग परिग्रह और १० प्रकार [क्षेत्र, वास्तु आदि] का बाह्य परिग्रह, इन समस्त परिग्रहो से विरक्त होना **अपरिग्रह महाव्रत** है।

समिति—सम्यक् प्रवृत्ति को समिति कहते हैं। समिति पाँच हैं—१ ईर्या २ भाषा ३ एषणा ४ आदाननिक्षेपण और ५ प्रतिष्ठापना या उत्सर्ग समिति।

ईर्या समिति—प्रयोजन के निमित्त चार हाथ आगे जमीन देखने वाले साधु के द्वारा दिवस मे प्रासुकमार्ग से जीवो का परिहार करते हुए जो गमन है वह ईर्या समिति है।

भाषा समिति—चुगली, हँसी, असभ्य, अश्लील, कठोरता, परनिन्दा, आत्मप्रशसा और विकथा आदि को छोडकर अपने और पर के लिये हितरूप वचन बोलना भाषा समिति है।

एषणा समिति—छयालीस दोषो से रहित शुद्ध, कारण से सहित, नवकोटि से विशुद्ध और शीत, उष्ण आदि मे समान भाव से भोजन करना एषणा समिति है।

आदाननिक्षेपण समिति—ज्ञान का उपकरण, सयम का उपकरण, शौच का उपकरण अथवा अन्य भी उपकरण को प्रयत्न पूर्वक ग्रहण करना और रखना आदाननिक्षेपण समिति है।

प्रतिष्ठापना समिति—एकान्त स्थान मे जीव जन्तु रहित, दूरस्थित, मर्यादित, विस्तीर्ण और विरोध रहित स्थान मे मल-मूत्रादि का त्याग करना प्रतिष्ठापना समिति है।

एषणा समिति के ४६ दोष—१६ उद्गम दोष, १६ उत्पादन दोष, १० एषणा के दोष, १ सयोजना दोष, १ अप्रमाण दोष, १ अगार दोष और १ अध कर्म दोष = ४६ दोषर हित आहार शुद्धि।

१६ उद्गम दोष—१ औद्देशिक-जो आहार नागादि देव या पाखण्डी साधु वा दीन हीनो के उद्देश्य से तैयार किया जाता है या दिगम्बर मुनियो को उद्देश्य करके बनाया गया आहार हो वह औद्देशिक कहलाता है।

२. **अध्यधि**—आहार को आते हुए सयमियो को देखकर पकते हुए चावलो मे और चावलादि मिला देना अध्यधि दोष है।

३. **पूति दोष**—जिस पात्र से मिथ्यादृष्टि साधुओ को आहार दिया गया है उसी पात्र मे रखा हुआ अन्न दिगम्बर साधुओ को दिया जावे तो पूति दोष लगता है।

४. **मिश्र दोष**— प्रासुक और अप्रासुक को मिलाकर आहार देना मिश्र दोष है।

५. **स्थापित दोष**—पाक भाजन से अन्न को निकाल कर स्वगृह मे अथवा किसी अन्य गृह मे स्थापित करके देना या एक भाजन से निकाल कर दूसरे भाजन मे स्थापित करना, उस भाजन से फिर तीसरे मे रखना स्थापित दोष कहलाता है।

६. **बलि दोष**—यक्षादि की पूजा के निमित्त बनाया हुआ आहार सयत को देना बलि दोष है।

७. **प्राभृत दोष**—इस माह, पक्ष, ऋतु अथवा तिथि आदि को मुनियो को आहार दूँगा, इस प्रकार के नियम से आहार देना प्राभृत दोष है।

८. **प्राविष्कृत दोष**—हे भगवान् ! यह मेरा घर है इस प्रकार गृहस्थ के द्वारा घर बतलाकर आहार दिया जाना प्राविष्कृत दोष है।

९. **प्रामृष्य दोष**—यतियो के दान के लिये ब्याज देकर वस्तु लाना, कर्ज लेना प्रामृष्य दोष है।

१०. **क्रीत दोष**—विद्या से खरीद कर अथवा द्रव्य, वस्त्र, भाजन आदि के विनिमय से अन्नादि खरीदकर लाना और साधु को आहार मे देना क्रीत दोष है।

११. **परावर्त दोष**— अपने घर के घी, चावल आदि देकर बदले मे दूसरे चावल आदि लाकर आहार देना परावर्त दोष है।

१२. **अभिहित दोष**—एक ग्राम से दूसरे ग्राम मे अथवा एक मोहल्ल से दूसरे मोहल्ले मे ले जाकर साधु को आहार देना अभिहित दोष है।

[सरल पक्तिबद्ध सात घरो से लाया हुआ आहार साधुओ को देने योग्य है, सात घरो के परे स्थित घरो से लाया हुआ आहार साधुओ को देने योग्य नही है]

१३. उद्घाटित दोष—आहार के लिये साधु के आ जाने के अनन्तर मुद्रा, शील, मुहर आदि का भेदकर वा किसी पत्थर आदि से आच्छादित वस्तु-को खोलकर देना उद्घाटित दोष है।

१४. मालिकारोहण दोष—ऊपर भाग मे रखी हुई खान-पान आदि की वस्तु को सीढी लगाकर उतारना और साधुओ को देखना मालिकारोहण दोष है।

१५. आच्छेद्य दोष—राजा आदि के भय से जो आहार दिया जाता है वह आच्छेद्य दोष है।

१६. अनिसृष्ट दोष—ईश और अनीश के अनभिमत से अथवा स्वामी और अस्वामी के असहमति या बिना इच्छा के, अनभिमत से आहार देना अनिसृष्ट दोष है। ये सोलह उद्गम दोष श्रावको के आश्रित हैं। अत श्रावको को इन सोलह बातो का ध्यान रखना चाहिये। यदि श्रावक यह कहता है कि यह रसोई सोला की बनाई है, यानि सोलह दोषो को दूरकर बनाई है, यह उसका तात्पर्य है।

१६ उत्पादन दोष

१. धातृ दोष—बालको के लालन-पालन की शिक्षा देकर आहार ग्रहण करना धातृ दोष है।

२. दूत दोष—दूरस्थ बन्धुओ के समाचार लाना-ले जाना दूत दोष है।

३. भिषग्वृत्ति दोष—आहार के लिये गजचिकित्सा, बालचिकित्सा, विषचिकित्सा आदि बतलाना भिषग्वृत्ति दोष है।

४. निमित्त दोष—स्वर, अन्तरिक्ष, भौम, अग, व्यजन, छिन्न, लक्षण और स्वप्न आदि बताकर भिक्षार्जन करना निमित्त दोष है।

५. इच्छाविभाषण दोष—किसी श्रावक के यह पूछने पर कि हे

मुनिवर ! दीन हीन प्राणियो को दान देने से पुण्य होता है या नही–उस श्रावक की इच्छानुसार उत्तर देना इच्छाविभाषण दोष है।

६. पूर्वस्तवन दोष—हे सेठ ! तू ससार मे प्रसिद्ध दाता है। तेरे पूर्वज भी महादानी थे इस प्रकार प्रशसारूप वचनो द्वारा गृहस्थ को आनन्दित करके आहार करना पूर्वस्तवन दोष है।

७. पश्चात् स्तवन दोष—आहार के बाद दातार की प्रशसा करना–हे श्रीमन्त ! तू बड़ा दातार है। तेरे जैसा आहार कोई न बनाता है और न देता है, पश्चात् स्तवन दोष है।

८. क्रोध दोष—क्रुद्ध होकर आहार लेना क्रोध दोष है।

९. मान दोष—मान कषाय सहित आहार लेना मान दोष है।

१०. माया दोष—मायाचार से आहार लेना माया दोष है।

११. लोभ दोष—लोभ कषाय सहित आहार लेना लोभ दोष है।

१२. वश्यकर्म दोष—वशीकरण मत्र के द्वारा आहार प्राप्त करना वश्यकर्म दोष है।

१३. स्वगुणस्तवन दोष—अपने कुल, जाति, तप आदि का गुणगान करके आहार लेना स्वगुणस्तवन दोष है।

१४. मन्त्रोपजीवन दोष—अग शृगारकारी पुरुषो को पठित सिद्ध आदि मन्त्रो का उपदेश देना मन्त्रोपजीवन दोष है।

१५. चूर्णोपजीवन दोष—चूर्णादिक का उपदेश देकर अन्नोपार्जन करना चूर्णोपजीवन दोष है।

१६. विद्योपजीवन दोष—आहार के लिये गृहस्थो को सिद्ध-विद्या-साधित विद्या प्रदान करना विद्योपजीवन दोष है। ये १६ उत्पादन दोष हैं। ये १६ उत्पादन दोष पात्र (साधु) के आश्रित है।

१० एषणा दोष

१. शंकित दोष—यह वस्तु सेव्य है या असेव्य है, शका करते हुए आहार लेना शंकित दोष है।

२. **प्रक्षित दोष**—घृत आदि से चीकने पात्र से या हाथ से आहार लेना प्रक्षित दोष है।

३. **निक्षिप्त दोष**—सचित्त कमल-पत्र आदि पर रखा हुआ आहार लेना निक्षिप्त दोष है।

४. **पिहित दोष**—सचित्त कमलपत्र आदि से ढके हुए अन्न को ग्रहण करना पिहित दोष है।

५. **उज्झित दोष**—दाता के द्वारा दिये गये आहार के बहुभाग को नीचे गिराकर स्वल्प ग्रहण करना उज्झित दोष है।

६. **व्यवहार दोष**—आहार देने के पात्रादि को अच्छी तरह से देखे बिना आहार देना व्यवहार दोष है।

७. **दातृ दोष**—बिना वस्त्र पहने अथवा एक कपडा पहनकर आहार देना, नपुसक, जिसके भूत लगा है, जो अन्धा है, पतित या जाति बहिष्कृत है, मृतक का दाह सस्कार करके आया है, तीव्र रोग से आक्रान्त है, जिसके फोड़ा-फुसी है, जो कुलिगी है, नीचे स्थान मे खड़ा है या साधु से ऊँचे स्थान पर खडा हो, जो स्त्री पॉच महीनो से अधिक गर्भवती है, वेश्या है, दासी है, लम्बा घूँघट निकाले हुए है, अपवित्र है, मुख मे कुछ खा रही है-इस प्रकार के दाता का आहार लेना दातृ दोष है।

८. **मिश्र दोष**—सचित्तादि से अथवा षट्काय के जीवो से मिश्रित आहार लेना मिश्र दोष है।

९. **अपक्व दोष**—जिस पानी आदि के रूप, रस गन्धादि का अग्नि आदि के द्वारा परिवर्तन नही हुआ हो उसे आहार मे लेना अपक्व दोष है।

१०. **लिप्त दोष**—आटे आदि से लिप्त, चम्मच आदि से अथवा सचित्त जल से लिप्त पात्र या हस्त आदि से दिये हुए आहार को लेना लिप्त दोष है।

४ अंगार दोष

१. **सयोजन दोष**—स्वाद के लिये शीत वस्तु मे उष्ण वस्तु अथवा उष्ण वस्तु मे शीत वस्तु मिलाकर आहार करना सयोजन दोष है। [इस प्रकार के आहार से अनेक रोग भी उत्पन्न होते है तथा असयम की भी वृद्धि होती है]

२. प्रमाणातिरेक दोष—प्रमाण से अधिक भोजन करना प्रमाणातिरेक कहलाता है। मुनियो के आहार की विधि इस प्रकार बताई गई है—कुक्षि के दो भाग को अन्न से भरे, एक भाग पेय पदार्थों से पूरित करे तथा एक भाग वायु के सचार के लिये खाली रक्खे। आहार के प्रति अत्यधिक लालसा होने पर इस विधि का उल्लंघन किया जाता है तो प्रमाणातिरेक नामक दोष लगता है।

विशेष—शीत ऋतु मे २ भाग अन्न व एक भाग पानी तथा उष्ण ऋतु मे एक भाग अन्न व दो भाग पानी से उदर की पूर्ति करे।

प्रामाणातिरेक आहार से ध्यान भग होता है, अध्ययन का विनाश तथा निद्रा व आलस्य की उत्पत्ति होती है।

३. अगार दोष—इष्ट अन्न पानादि की प्राप्ति होने पर राग के वशीभूत होकर अधिक सेवन करना अगार दोष है।

४. धूम दोष—अनिष्ट अन्न पान आदि की प्राप्ति होने पर द्वेष करना धूम दोष है।

३२ अन्तराय

१ काक, २ अमेध्य, ३ छर्दी, ४ रोधन, ५ रुधिर, ६ अश्रुपात, ७ जान्वध स्पर्श, ८ जानू परिव्यतिक्रम, ९ नाभ्यध निर्गमन, १० प्रत्याख्यात सेवन, ११ जीववध, १२ काकादि पिण्डहरण, १३ पिण्ड पतन, १४ जन्तुवध, १५ मास दर्शन, १६ उपसर्ग, १७ पादान्तर पञ्चेन्द्रिय जीवगमन १८ भाजन सम्पात, १९ उच्चार, २० प्रस्रवण, २१ अभोज्य गृह प्रवेश, २२ पतन, २३ उपवेशन, २४ दष्ट्र, २५ भूमिस्पर्श २६ निष्ठीवन, २७ कृमि निर्गमन, २८ अदत्त ग्रहण, २९ शस्त्रप्रहार, ३० ग्राम दाह, ३१ पादेन-पैरो से ग्रहण, ३२ हस्तेन-हाथ से ग्रहण।

१४ मल दोष

१ रोम (बाल), २ जीव रहित शरीर, ३ हड्डी, ४ कुण्ड (अर्थात् चावल आदि के भीतर के सूक्ष्म अवयव, ५ कण, अर्थात् गेहूँ, जौ आदि के बाहरी अवयव, ६ नख, ७ पीव, ८ रुधिर, ९ चर्म, १० मास, ११ बीज, १२ फल १३ कन्द और १४ मूल। ये १४ अशुभ मल कहलाते हैं।

इनमे कुछ तो बहुत बड़े मल है—चमड़ा, हड्डी, रुधिर, मास, नख और पीव ये महामल कहलाते है आहार मे इनके आने पर आहार का भी त्याग करे व प्रायश्चित्त भी लेवे।

दो, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवो का शरीर और बाल आहार मे निकलने पर आहार त्यागना चाहिये। तथा कण, कुण्ड, फल, बीज, कद, मूल, दल ये अल्प मल कहलाते है, इनके आहार मे आने पर भोजन मे से इन्हे निकाल सकते है यदि निकालना अशक्य हो तो आहार का त्याग कर देना चाहिये।

इस प्रकार ४६ दोष रहित, ३२ अन्तराय और १४ मल दोष टालकर उत्तम श्रावक के घर आहार लेना एषणा समिति है।

मुनिराज छह कारणों से आहार ग्रहण करते है—

(१) क्षुधा वेदना को शान्त करने के लिये (२) मुनियो की वैयावृत्ति करने के लिये (३) छह आवश्यको को निर्दोष पालने के लिये (४) सयम की रक्षा के लिये (५) प्राणो की रक्षा के लिये (६) और उत्तम क्षमादि दस धर्मो का पालन करने के लिये।

पञ्चेन्द्रिय निरोध

१. स्पर्शन-इन्द्रिय निरोध—जीव और अजीव से उत्पन्न हुए कठोर व कोमल आदि आठ भेदो से युक्त सुख और दुख रूप स्पर्श मे मोह रागादि नही करना स्पर्शन इन्द्रिय निरोध है।

२. रसना इन्द्रिय निरोध—अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य के भेद रूप पच रसयुक्त, प्रासुक, निर्दोष, पर के द्वारा दिये गये रुचिकर अथवा अरुचिकर आहार मे लम्पटता नही होना रसना इन्द्रिय निरोध है।

३. घ्राण इन्द्रिय निरोध—जीव और अजीव स्वरूप सुख और दु ख रूप प्राकृतिक तथा पर-निमित्तक सुगध-दुर्गन्ध मे राग-द्वेष नही करना घ्राण इन्द्रिय निरोध है।

४. चक्षुइन्द्रिय निरोध—सचेतन और अचेतन पदार्थो के क्रिया, आकार और वर्ण के भेदो मे मुनि के जो राग-द्वेष आदि सग का त्याग है वह चक्षु इन्द्रिय निरोध है।

५. श्रोत्र इन्द्रिय निरोध—षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद सप्त स्वर जो जीव या अजीव से उत्पन्न हो उनमे राग का उत्पन्न नही होना श्रोत्र इन्द्रिय निरोध है।

षट् आवश्यक

सामायिक, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग= ६ आवश्यक

१. सामायिक—जीवन-मरण मे, लाभ-अलाभ मे, सयोग-वियोग मे, मित्र-शत्रु मे तथा सुख-दु ख इत्यादि मे समभाव होना सामायिक है।

२. स्तुति—ऋषभ आदि चतुर्विंशति तीर्थकरो के नाम का कथन, उनके गुणो का कीर्तन, पूजा तथा उन्हे मन-वचन-काय पूर्वक नमस्कार करना स्तव नामक आवश्यक है।

३. वन्दना—अर्हत आदि पच परमेष्ठी का या चतुर्विंशति तीर्थकरो का अलग-अलग वन्दन, गुणकीर्तन व मन-वचन काय से प्रणाम करना वन्दना है।

४. प्रतिक्रमण—निन्दा और गर्हापूर्वक मन-वचन-काय के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के विषय मे किये गये अपराधो का शोधन करना प्रतिक्रमण है।

५. प्रत्याख्यान—भविष्य मे आने वाले पापास्रव के कारणभूत अयोग्य नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का मन-वचन-काय से त्याग करना प्रत्याख्यान है।

६. व्युत्सर्ग—दैवसिक, रात्रिक आदि नियम क्रियाओ मे आगम कथित प्रमाण के द्वारा आगम मे कथित काल मे जिनेन्द्र देव के गुणो के चिन्तवन से सहित होते हुए शरीर से ममत्व का त्याग करना कायोत्सर्ग है।

सप्त शेष गुण

१. लोच—प्रतिक्रमण सहित दो, तीन, चार मास मे उत्तम, मध्यम, जघन्यरूप सिर व दाढ़ी, मूछ के केशो का लोच उपवास पूर्वक ही करना चाहिये।

२. **अचेलकत्व**—वस्त्र, चर्म, वल्कल से अथवा पत्ते आदि से नग्न शरीर को नही ढकना, निर्ग्रन्थ और निर्भूषण शरीर का धारण करना अचेलकत्व है।

३. **अस्नान**—स्नान आदि के त्याग कर देने से जल्ल मल्ल और पसीने से सर्वाग लिप्त हो जाना मुनि के प्राणी सयम और इन्द्रिय सयम पालन करने रूप, घोर गुणस्वरूप अस्नान है।

४. **भूमिशयन**—किचित् मात्र से सस्तर से रहित एकान्त स्थान रूप प्रासुक भूमि प्रदेश मे दण्डाकार या धनुषाकार शयन करना अथवा एक पखवाड़े से सोना क्षितिशयन है।

५. **अदन्तधावन**—अगुली, नख, दातोन और तृण विशेष के द्वारा, पत्थर या छाल आदि के द्वारा दाँत के मल का शोधन नही करना यह सयम की रक्षा रूप अदन्तधावन है।

६. **स्थितिभोजन**—दीवाल, खभा आदि का सहारा न लेकर पैरो मे आगे-पीछे चार अगुल प्रमाण का अन्तर रखकर जीव-जन्तु रहित भूमि पर खड़े होकर दोनो हाथो की अजली बनाकर, तीन स्थानो की भूमि—अपने पैर रखने का स्थान, उच्छिष्ट गिरने का स्थान और परोसने वाले स्थान को देखकर भोजन करना स्थितिभोजन है।

७. **एकभक्त**—उदय और अस्त के काल मे से तीन-तीन घड़ी से रहित मध्यकाल मे से एक, दो अथवा तीन मुहूर्त काल मे एक बार भोजन करना यह एकभक्त मूलगुण है।

इस प्रकार पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक और सात शेष गुण इस प्रकार ५+५+५+६+७=२८ मूलगुण साधु परमेष्ठी के होते हैं।

"छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं" ।

अन्वयार्थ—(मज्झ) मेरे (छेदोवट्ठावण) छेदोपस्थापना अर्थात् प्रमाद से लगे दोषो का निराकरण होकर पुन· व्रतो की स्थापना (होदु) होवे।

पंचमहाव्रत-पंचसमिति-पंचेन्द्रिय-रोध-षडावश्यकक्रिया-लोचादयो अष्टाविंशति-मूलगुणाः, उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्-त्यागाकिंचन्य-ब्रह्मचर्याणि, दश-लाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतु-रशीति-लक्षगुणाः, त्रयोदश-विधं चारित्रं, द्वादशविधं तपश्चेति सकलं सम्पूर्णं अर्हत्-सिद्धा-चार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिकं, सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढ़-व्रतं सुव्रतं समारूढं ते मे भवतु।

अन्वयार्थ—(पचमहाव्रत-पचसमिति-पचेन्द्रिय-रोध षडावश्यकक्रिया लोचादयो) अहिसा आदि पाँच महाव्रत, ईर्याभाषा आदि पाँच समिति, पाँचो इन्द्रियो का निरोध, समता आदि छह आवश्यक क्रिया और लोच आदि (अष्टाविशति-मूलगुणा) मुनियो के अट्ठाईस मूलगुण हैं। (उत्तम-क्षमा मार्दवार्जव-शौच-सत्य-सयम-तपस्त्यागा-किचन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्म) १ उत्तम क्षमा, २ उत्तम मार्दव, ३ उत्तम आर्जव, ४ उत्तम शौच, ५ उत्तम सत्य, ६ उत्तम सयम, ७ उत्तम तप, ८ उत्तम त्याग ९ उत्तम आकिचन्य और १० उत्तम ब्रह्मचर्य रूप दसलक्षण धर्म (अष्टादश-शील-सहस्राणि) अठारह हजार शील (चतुरशीति लक्षगुणा) चौरासी लाख गुण (त्रयोदशविध चारित्र) पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति १३ प्रकार का चारित्र (च) और (द्वादशविध तप) बारह प्रकार का तप (इति) इस प्रकार (सकलं) सम्पूर्ण उत्तम व्रत (अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायसर्वसाधुसाक्षिक) अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु–इन पञ्चपरमेष्ठी की साक्षी से (सम्यक्त्वपूर्वक) सम्यक्त्वपूर्वक (मे) हमारे लिये (ते) तुम्हारे लिये (दृढव्रतं) दृढव्रत (सुव्रत) सुव्रत (समारूढ भवतु) समारूढ़ होवे।

भावार्थ—पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, छह आवश्यक तथा लोच, अचेलकत्व, अदन्तधावन, भूमि शयन, खड़े होकर भोजन करना, दिन मे एक बार भोजन करना ये साधु के २८ मूलगुण हैं। उत्तमक्षमादि दसधर्म, अठारह हजार शील के भेद, ८४ लाख उत्तरगुण, तेरह प्रकार का चारित्र और बारह प्रकार का तप ये सब उत्तम व्रत अरहन्त, सिद्ध, आचार्य उपाध्याय और सर्वसाधु—इन पाँचो परमेष्ठियो की साक्षी से सम्यक्त्वपूर्वक हमारे और तुम्हारे लिये ये व्रत दृढ़ होवे।

दस धर्म—उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य ।

अठारह हजार शील—३ योग= मन, वचन, काय, ३ करण= मन, वचन, काय ४ सज्ञा, [आहार, भय, मैथुन और परिग्रह] ५ इन्द्रिय- स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ।

१० प्रकार के जीव—पृथ्वीकायिक, जलकायिक अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और असज्ञी पचेन्द्रिय तथा सज्ञी पचेन्द्रिय ।

१० धर्म = उत्तम क्षमादि

३x३x४x५x१०x१०=१८००० शील के भेद ।

अशुभ मन, वचन, काय का निराकरण शुभ मन, वचन, काय से किया जाता है अत तीन को तीन से गुणा करने पर नव भेद होते है । इन नौ को चार सज्ञाओ से गुणा करने पर ९x४=३६ भेद होते है । इनको पचेन्द्रिय से गुणा करने पर ३६x५=१८० होते है । १८० को १० जीवो से गुणा करने पर १८०x१०=१८०० तथा १८००x१० धर्म से गुणा करने पर १८००x१० = १८००० शील के भेद होते है ।

अथवा

स्त्री ४ प्रकार की, ३ योग, ३ कृत, कारित, अनुमोदना, ५ इन्द्रिय, शृगार रस के १० भेद १ स्त्री-ससर्ग २ पुष्ट रस सेवन ३ गधमाला धारण ४ सुन्दर शयनासन ५ भूषण ६ गीत ७ धन सप्रयोग ८ कुशील सेवा ९ राज सेवा १० रात्रि सचरण १ शरीर शृगार, २ शृगार रस कथा, ३ हास्य क्रीड़ा, ४ स्त्री सगति की इच्छा, ५ स्त्री अवलोकन, ६ स्त्री के शरीर का शृगार, ७ स्नेहयुक्त वस्तु देना, ८ पूर्व भोगो का स्मरण, ९ विषय सेवन का सकल्प, १० विषय सेवन की अभिलाषा और काय चेष्टा के १० भेद इस प्रकार ४x३x३x५x१०x१०=१८००० शील के भेद ।

अथवा

विषयाभिलाषा आदि १० मैथुन कर्म [विषयाभिलाषा, वस्तिमोक्ष, प्रणीतरससेवन, ससक्त द्रव्य सेवन, शरीरागोपागावलोकन, प्रेमिका-सत्कार-पुरस्कार, शरीर सस्कार, अतीत भोगस्मरण, अनागत आकाक्षा और इष्ट विषय सेवन] चिन्ता आदि १० अवस्थाएँ [चिन्ता, दर्शनाभिलाषा, दीर्घ निश्वास, ज्वर, दाह, भोजन मे अरुचि, मूर्च्छा, उन्माद, जीवन-सन्देह, मरण] ५ इन्द्रियाँ, ३ योग, ३ कृत-कारित-अनुमोदना २ जागृत, स्वप्न

अवस्थाएँ, चेतन व अचेतन २ प्रकार की स्त्री—इन सबका परस्पर गुणा करने से शील के १८००० भेद निकल आते है।

[१०×१०×५×३×३×२×२=१८००० शील के भेद]

१३ प्रकार का चारित्र- पॉच महाव्रत, पॉच समिति और मन गुप्ति, वचन गुप्ति तथा काय गुप्ति=५+५+३=१३।

८४ लाख उत्तरगुण— हिसादि के भेद २१, अतिक्रमादि ४, काय १०, धर्म १०, शील की विराधना के भेद १०, आलोचना के भेद १०, शुद्धि के भेद १० = २१×४×१०×१०×१०×१०×१०=८४००००० ।

हिंसादि के २१ भेद—१ प्राणीवध, २ मृषावाद, ३ अदत्तादान, ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध, ७ मान, ८ माया, ९ लोभ, १० भय, ११ अरति, १२ जुगुप्सा, १३ रति, १४ मन दुष्टत्व, १५ वचन दुष्टत्व, १६ काय दुष्टत्व, १७ मिथ्यात्व, १८ प्रमाद, १९ पैशुन्य, २० अज्ञान और २१ इन्द्रिय अनिग्रहत्व।

२. अतिक्रमादि ४—१. अतिक्रम- मन की शुद्धि की हानि। **व्यतिक्रम**-शीलव्रतो का उल्लघन। **अतिचार**-विषयो मे एक बार प्रवृत्त होना और **अनाचार**—विषयो मे अति आसक्ति। कहा भी है—

अतिक्रमो मानस-शुद्धि-हानि, र्व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाषः ।
तथातिचारः करणालसत्व, भगो ह्यनाचार इह व्रतानाम् ।।

३. काय के दस भेद—१ पृथ्वीकायिक २ जलकायिक ३ अग्निकायिक ४ वायुकायिक ५ प्रत्येक वनस्पति ६ साधारण वनस्पति ७ द्वीन्द्रिय ८ त्रीन्द्रिय ९ चतुरिन्द्रिय और १० पचेन्द्रिय।

४. शील की दस विराधना—१ स्त्री ससर्ग २ प्रणीत रस सेवन (सरसाहार) ३ शरीर सस्कार ४ कोमलशयनासन ५ सुगन्ध सस्कार ६ गीत वादित्र श्रवण ७ अर्थ ग्रहण ८ कुशील ससर्ग ९ राजसेवा और १० रात्रिसचरण।

५. आलोचना के १० दोष—१ आकम्पित दोष २ अनुमानित दोष ३ दृष्ट दोष ४. बादर दोष ५ सूक्ष्म दोष ६ छिन्न दोष ७ शब्दाकुलितदोष ८ बहुजन दोष ९ अव्यक्त दोष और १० तत्सेवी दोष।

६. शुद्धि के १० भेद—१ आलोचना २ प्रतिक्रमण ३ तदुभय ४ विवेक ५ व्युत्सर्ग ६ तप ७ छेद ८ परिहार ९ उपस्थापना और १० श्रद्धान।

७. सयम के १० भेद—५ प्रकार का प्राणी [एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यन्त जीवो की रक्षा करना] तथा पाँचो इन्द्रियो को वश मे करना ५ प्रकार का इन्द्रिय, इस प्रकार इन्द्रिय सयम के ५ भेद और प्राणी सयम के ५ भेद इस प्रकार कुल सयम के १० भेद।

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियाया, कृत—दोष निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल कर्म क्षयार्थं भाव पूजा—वदना—स्तव समेतं आलोचना सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ) इसके बाद (अह) मै (सर्व अतिचार विशुद्ध्यर्थं) समस्त अतिचारो की शुद्धि करने के लिये [रात्रिक-दैवसिक प्रतिक्रमण क्रियाया] रात्रि-दिन मे होने वाली प्रतिक्रमण की क्रिया मे (कृत-दोष-निराकरणार्थं) किये दोषो के निराकरण के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्ववर्ती आचार्यो के अनुसार से (सकल-कर्म-क्षयार्थं) सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने के लिये (भाव पूजा वन्दना स्तव समेत) भाव पूजा, वन्दना और स्तवन सहित (आलोचना सिद्धभक्ति-कायोत्सर्गं) आलोचना सहित सिद्धभक्ति पूर्वक (कायोत्सर्ग) कायोत्सर्ग को (करोमि) करता हूँ।

विशेष—प्रात काल रात्रिक सम्बन्धी प्रतिक्रमण के लिये रात्रिक शब्द का प्रयोग करना चाहिये और अपराह्न मे दिवस सम्बन्धी प्रतिक्रमण के लिये दैवसिक शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

(इति प्रतिज्ञाप्य) इस प्रकार प्रतिज्ञा करके, यहाँ नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके (णमो अरहताणमित्यादि सामायिकदडक पठित्वा) णमो अरहताण आदि सामायिक दडक पढ़कर (कायोत्सर्गं कुर्यात्) कायोत्सर्ग करे।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

अन्वयार्थ—(अरहताण णमो) घातिया कर्मो से रहित, वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी अरहत परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ (णमो सिद्धाण) अष्टकर्मो से रहित सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ (आइरियाण) पचाचार पालक आचार्य परमेष्ठी को (णमो) नमस्कार करता हूँ (उवज्झायाण णमो) उपाध्याय परमेष्ठी जो ११ अग १४ पूर्व के पाठी है को नमस्कार करता हूँ (लोए सव्वसाहूण) अट्ठाईस मूलगुणो से मडित लोकवर्ती सम्पूर्ण साधुओ को (णमो) नमस्कार करता हूँ।

चत्तारि मंगलं–अरहता मंगलं, सिद्धा मगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा केवलि–पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि–अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अन्वयार्थ—(चत्तारि मगल) चार मगल हैं (अरहता मगल) अरहत मगल हैं (सिद्धा मगल) सिद्ध मगल है, (साहू मगल) साधु मगल है (केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल) केवली प्रणीत धर्म मगल है अर्थात् अरहत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म मगल रूप है, पापो का नाश करने वाले वे सुख को देने वाले हैं। (चत्तारि लोगुत्तमा) चार लोक मे उत्तम है–(अरहता लोगुत्तमा) अरहत लोक मे उत्तम हैं (सिद्धा लोगुत्तमा) सिद्ध लोक मे उत्तम है, (साहू लोगुत्तमा) साधु लोक मे उत्तम है (केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो) केवली प्रणीत धर्म लोक मे उत्तम है। (चत्तारि सरण पव्वज्जामि) मै चार की शरण को प्राप्त करता हूँ (अरहते सरण पव्वज्जामि) मै अरहतो की शरण को प्राप्त करता हूँ (सिद्धे सरण पव्वज्जामि) सिद्धो की शरण को प्राप्त करता हूँ (साहू सरण पव्वज्जामि) साधुओ की शरण को प्राप्त करता हूँ (केवलि-पण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि) केवलीप्रणीत धर्म की शरण को प्राप्त करता हूँ।

अड्डाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहंताणं, भयवंताणं, आदियराणं, तित्थयराणं, जिणाणं, जिणोत्तमाणं, केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अंतयडाणं, पारगयाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसगाणं, धम्म-णायगाणं, धम्म-वर-चाउरंग-चक्कवट्टीणं, देवाहि-देवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं, सदा करेमि, किरियम्मं।

अन्वयार्थ—[अड्ढाइज्जदीव दो समुद्देसु] जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड और अर्द्धपुष्कर द्वीप—इन ढाई द्वीपो तथा लवण और कालोदधि इन दो समुद्रो मे (पण्णारस कम्मभूमिसु) पॉच भरत, पॉच ऐरावत और पॉच विदेह—इन १५ कर्मभूमियो मे होने वाले (जाव) जितने (अरहताण) अरहत (भयवताण) भगवन्त (आदियराण) आदितीर्थ प्रवर्तक (तित्थयराण) तीर्थकर (जिणाण) कर्मशत्रुओ को जीतने वाले जिनो को (जिणोत्तमाण) जिनो मे श्रेष्ठ तीर्थकरो को (केवलियाण) केवलज्ञान सम्पन्न ऐसे केवलियो को (सिद्धाण) सिद्धो को (बुद्धाण) त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य-गुण-पर्यायो के ज्ञाता जिनसिद्धो को (परिणिव्वुदाण) मुक्ति को प्राप्त करने वाले सिद्धो को (अन्तयडाण) अन्तकृतकेवलियो को (पारयडाण) ससार सागर को पार करने वालो को (धम्माइरियाण) धर्माचार्य को (धम्मदेसयाण) धर्मोपदेश देने वाले उपाध्यायो को (धम्मणायगाण) धर्मानुष्ठान करने वाले धर्मनायक साधु (धम्मवर चाउरग चक्कवट्टीणं) उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरग सेना (चार आराधना) के अधिपति (देवाहिदेवाण) देवाधिदेव अर्थात् चतुर्निकाय देवो के द्वारा वन्दनीय होने से जो देवो के भी देव हैं (णाणाण) ज्ञान (दसणाण) दर्शन (चरित्ताण) चारित्र का (सदा किरियम्म करोमि) हमेशा कृतिकर्म करता हूँ ।

विशेष—अन्तकृत केवली—सम्पूर्ण कर्म जनित ससार का अन्त करने वाले अन्तकृत कहलाते है । अथवा प्रत्येक तीर्थंकर के काल मे घोर उपसर्ग को सहन कर अन्तर्मुहूर्त मे घातिया कर्मो का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर, अघातिया कर्मो का क्षय कर मुक्त होने वाले केवली अन्तकृत केवली कहलाते है । ये प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे १०-१० होते हैं । अर्थात् अन्तकृत केवली उपसर्ग के तत्काल बाद कर्मक्षय कर मोक्ष जाते हैं किंतु उपसर्ग केवली की गधकुटी होती है उनके तत्काल मोक्षगमन का नियम नही है ।

करेमि भंते ! सामायियं सव्व-सावज्ज जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं (जावन्नियमं) तिविहेण मणसा, वचसा , काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करंत पि समणुमणामि । तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवान् ! (सामायिय) मै सामायिक (करेमि) करता हूँ (सव्वसावज्जजोग) समस्त सावद्ययोग का (पच्चक्खामि) त्याग करता हूँ (जावज्जीव) जीवनपर्यत (तिविहेण) तीनो प्रकार से (मणसा-वचसा-काएण) मन-वचन-काय से सावद्ययोग (ण) न स्वय (करेमि) करता हूँ (ण कारेमि) न दूसरो से कराता हूँ (पि) और (ण कीरत) न करने वालो की (समणुमणामि) अनुमोदना करता हूँ। (भते) हे भगवान् (तस्स) उन अरहत देव कथित क्रिया कर्म सम्बन्धी (अइयार) अतिचारो का (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूँ। (अप्पाण णिंदामि) आत्मसाक्षी पूर्वक निदा करता हूँ (गरहामि) गुरुसाक्षी पूर्वक गर्हा करता हूँ (जाव) जितने काल (अरहताण) अरहतो की (भयवताण) भगवन्तो की (पज्जुवास) पर्युपासना (करेमि) करता हूँ (तावकाल) उतने काल पर्यन्त (पावकम्म) पापकर्मो को (दुच्चरिय) कुचेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोड़ता हूँ।

[*विशेष—इस प्रकार दण्डक पढकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके २७ श्वासोच्छ्वास पूर्वक कायोत्सर्ग करे। पश्चात् नमस्कार कर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढे।*]

थोस्सामि ह जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे।
णर-पवर-लोए महिए विहुय-रय-मले महप्पण्णे ।।१।।

अन्वयार्थ—(णर-पवर) मनुष्यो मे श्रेष्ठ (लोए-महिए) लोक मे पूज्य (विहुयरय मले) क्षय किया है कर्म मल को (महप्पणे) महान् आत्माओ मे (जिणवरे) जिनवरो मे (तित्थयरे) तीर्थकरो मे (अणत केवली जिणे) अनत केवली जिनेन्द्रो मे (ह थोस्सामि) मै स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—मैं ससार के सर्व मनुष्यो मे श्रेष्ठ/उत्तम, त्रिलोकपूज्य, ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्मरूपी रज के मल को क्षय करने वाली महान् आत्माओ, जिनवरो, तीर्थकरो, अनत केवली भगवतो की स्तुति करता हूँ।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चौबीसं चेव केवलिणो ।।२।।

अन्वयार्थ—(लोयस्सुज्जोययरे) लोक मे उद्योत को करने वाले (धम्म तित्थकरे) धर्म तीर्थ के कर्ता (जिणे) जिनेन्द्र देव मे (वदे) वन्दना करता हूँ। (चौवीस अरहते) अरहत पदविभूषित चौबीसभगवतो (चेव) और इसी प्रकार (केवलिणो) केवली भगवतो का (कित्तिस्से) कीर्तन करूँगा।

भावार्थ—अपनी केवलज्ञानरूप ज्योति से तीन लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ के कर्ता चौबीसो तीर्थंकर, जो अरहत पद से सुशोभित है उनका तथा सर्व केवली भगवतो का मै कीर्तन/गुणगान करूँगा।

उसह मजियं च वन्दे संभव-मभिणंदणं च सुमइ च।
पउमप्पहं सुपासं जिण च चदप्पहं वन्दे ।।३।।

अन्वयार्थ—(उसह) वृषभनाथ तीर्थकर को (अजिय) अजितनाथ तीर्थकर को (वदे) मै नमस्कार करता हूँ। (च) और (सभव) सभवनाथ (अभिणदण) अभिनन्दननाथ (च) और (सुमइ) सुमतिनाथ (च) और (पउमप्पह) पद्मप्रभ (सुपास) सुपार्श्व (जिण) जिनेन्द्र (च) और (चदप्पह) चन्द्रप्रभ तीर्थकर को (वदे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मैं वृषभनाथ, अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ तीर्थकरो की वन्दना करता हूँ।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमल-मणंत भयव धम्मं संतिं च वदामि ।।४।।

अन्वयार्थ—(सुविहि) सुविधि (च) अथवा (पुप्फयत) पुष्पदन्त (सीयल) शीतल (सेय) श्रेयास (च) और (वासुपुज्ज) वासुपूज्य (विमल) विमलनाथ (अणत) अनन्त (भयव) भगवान् को (च) और (धम्म) धर्मनाथ (सति) शातिनाथ भगवान् को (वदामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मैं पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपूज्यनाथ, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ तीर्थंकरो को नमस्कार करता हूँ।

कुंथुं च जिण वरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वदामिरिट्ठ-णेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।

अन्वयार्थ—(च) और (जिणवरिंद) जिनवरो मे श्रेष्ठ (कुथु) कुन्थुनाथ (अर) अरनाथ (च) और (मल्लि) मल्लिनाथ (च) और (सुव्वय) मुनिसुव्रत (च) और (णमि) नमिनाथ (रिट्ठणेमि) रिष्टनेमि (तह) तथा (पास) पारसनाथ (च) और (वड्ढमाण) वर्धमान तीर्थकर को (वदामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मैं जिनवरो मे श्रेष्ठ कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पारसनाथ और महावीर स्वामी तीर्थकर को नमस्कार करता हूँ।

एवं मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला पहीण-जर-मरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।

अन्वयार्थ—(एव) इस प्रकार (मए) मेरे द्वारा (अभित्थुआ) स्तुति किये गये (विहुय-रय-मला) कर्मरूपी रजोमल से रहित (पहीण-जर-मरणा) नष्ट कर दिया है जरा और मरण को जिन्होने ऐसे (चउवीस) चौबीसो (पि) ही (जिणवरा) जिनवर (तित्थयरा) तीर्थंकर (मे) मुझ पर (पसीयतु) प्रसन्न होवे।

भावार्थ—घातिया कर्म रूपी रजोमल से रहित, जरा और मरण के नाशक, मेरे द्वारा स्तुति किये गये, ऐसे चौबीसो तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान् मुझ स्तुति करने वाले पर प्रसन्न होवे।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्ग-णाण-लाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं ।।७।।

अन्वयार्थ—इस प्रकार से (कित्तिय) कीर्तन किये गये (वन्दिय) वन्दना किये गये (महिया) पूजे गये (एदे) ये (लोगोत्तमा) लोक मे उत्तम (जिणा) जिनेन्द्रदेव (सिद्धा) सिद्ध-भगवान् (मे) मेरे लिये (आरोग्ग-णाण-लाहं) ज्ञानावरण कर्म के क्षय से उत्पन्न निर्मल केवलज्ञान का लाभ (बोहिं) बोधि, रत्नत्रय (च) और (समाहिं) समाधि (दिंतु) प्रदान करे।

भावार्थ—मैं, लोक मे वचन से कीर्तन किये गये, मन से वन्दना किये गये तथा काय से पूजा किये गये उत्तम अरहत-सिद्ध भगवन्तो

की मन से वन्दना करता हूँ, वचन से कीर्तन करता हूँ तथा काय से पूजा करता हूँ, वे मेरे लिए निर्मल केवलज्ञान, बोधि व समाधि को प्रदान करें। बोधि अर्थात् रत्नत्रय और समाधि अर्थात् जीव के अन्त तक रत्नत्रय पालने की शक्ति प्रदान करे।

चंदेहिं णिम्मल-यरा, आइच्चेहिं अहिय-पया-संता ।
सायर-मिव गंभीरा सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ।।८।।

अन्वयार्थ—(चदेहिं) चन्द्रमा से भी (णिम्मल-यरा) निर्मलतर (आइच्चेहिं) सूर्य से भी (अहिय-पया-सता) अधिक प्रभासम्पन्न (सायर) सागर के (इव) समान (गभीरा) गभीर (सिद्धा) सिद्ध भगवान् (मम) मुझे (सिद्धिं) को (दिसतु) प्रदान करे।

भावार्थ—जो सिद्ध भगवान् चन्द्रमा से भी निर्मल हैं, सूर्य से भी अधिक प्रभा से युक्त है तथा सागर के समान गभीर हैं, वे मुझे भी सिद्धि को प्रदान करे।

[*यहाँ तीन आवर्त और एक शिरोनति करके निम्नलिखित मुख्य मगल पढ़े*]

(मुख्य मंगल)

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्-विषे ।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते ।।१।।

अन्वयार्थ—(श्रीमते) जो श्रीमान् है, (नमित-विद्विषे) नमस्कार कराया है सगम नामक [देव पर्याययुक्त] शत्रु को जिन्होने ऐसे (वर्धमानाय) वर्धमान जिनेन्द्र के लिये (नम) नमस्कार हो (यज्ज्ञानान्तर्गतं) जिनके ज्ञान के अन्तर्गत (भूत्वा) होकर (त्रैलोक्य) तीन लोक (गोष्पदायते) गाय के खुर के समान आचरण करता है।

भावार्थ—अन्तरग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी और बहिरंग समव सरण विभूति से सहित होने से जो श्रीमान् हैं, ऐसे वर्धमान स्वामी के चरणो मे उपसर्ग करने वाला सगम नामक देव भी नमस्कृत हुआ, जिन महावीर भगवान् के ज्ञान मे तीन लोक गाय के खुर के समान झलकता है, उन भगवान् के लिये मेरा नमस्कार हो।

सिद्ध-भक्ति

सम्मत्त णाण दंसण वीरियसुहुमं तहेव अवग्गहणं ।
अगुरुलघुमव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।
तव-सिद्धे णय-सिद्धे संजम सिद्धे चरित्त-सिद्धे य ।
णाणम्मि दंसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमस्सामि ।।२।।

अन्वयार्थ—(तवसिद्धे) तप सिद्ध (णय सिद्धे) नय सिद्ध (संजमसिद्धे) सयम सिद्ध (णाणम्मि) ज्ञान से (य) और (दंसणम्मि) दर्शन से होने वाले (सिद्धे) सब सिद्धो को (सिरसा) मस्तक झुकाकर (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—यद्यपि सभी सिद्ध यथाख्यातचरित्र व केवलज्ञान पूर्वक ही मुक्ति को प्राप्त होते हैं अत सभी सिद्धो मे गुण अपेक्षा कोई भेद नही है, तथापि भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा ही ये तपसिद्ध, नयसिद्ध, सयमसिद्ध आदि भेद हैं अर्थात् यथाख्यातचारित्र के पहले किस-किस चारित्र को प्राप्त किया, तथा केवलज्ञान के पूर्व किस-किस ज्ञान को प्राप्त किया उस अपेक्षा सिद्ध भगवन्तो मे भेद पाया जाता है ।

"अञ्चलिका"

इच्छामि भंते ! सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्प-मुक्काणं, अट्ठगुण-संपण्णाणं उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाणं, संजम-सिद्धाणं चरित्त-सिद्धाणं अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं,सव्व सिद्धाणं सया णिच्चकालं अंचेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिन-गुण सपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! मैंने (सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ) सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया है (तस्सालोचेउ) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण) सम्यक्ज्ञान (सम्म दंसण) सम्यक्दर्शन (सम्मचरित्तजुत्ताण) सम्यग्चारित्र से युक्त (अट्ठविह-कम्म-मुक्काण) ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों से मुक्त (अट्ठगुणसंपण्णाण) सम्यक्त्व आदि आठ गुणो से युक्त/सम्पन्न (उड्ढलोयमत्थयम्मि) ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर (पयट्ठियाण) विराजमान (तवसिद्धाण) तप से सिद्ध (णयसिद्धाण) नय से सिद्ध (सजमसिद्धाण) सयम से सिद्ध

(चरित्तसिद्धाण) चारित्र से सिद्ध (अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाण) भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो कालो मे होने वाले सिद्धो को (सव्वसिद्धाण) समस्त सिद्धो की मैं (सया) सदा (णिच्चकाल) हमेशा/नित्यकाल/सर्वदा (अचेमि) अर्चना करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (मज्झ) मेरे (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का नाश हो (बोहिलाहो) बोधि का लाभ हो (सुगइगमण) सुगति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिनगुणसपत्ति) जिन भगवान् के गुणो की सम्पत्ति (मज्झ) मुझे (होउ) प्राप्त होवे।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैने सिद्धभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उस कायोत्सर्ग मे जितने दोष लगे हो उनकी इच्छापूर्वक आलोचना करता हूँ। रत्नत्रय से युक्त, अष्टकर्मो से मुक्त, अष्टगुणो से मडित लोक के मस्तक पर सिद्ध त्रिकाल सम्बन्धी तपसिद्ध, नयसिद्ध, सयमसिद्ध व चारित्रसिद्ध, सब सिद्धो की मै सर्वदा अर्चा, पूजा, वन्दना करता हूँ। मेरे दुखो का, कर्मो का क्षय हो, बोधि लाभ हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो और जिनगुण रूप सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरस-विहो, परिविहा-विदो, पंच-महव्वदाणि, पच-समिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे, पाणा-दिवादादो वेरमण से पुढवि-काइया-जीवा-असखेज्जा-संखेज्जा, आउ-काइया-जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउ-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउ-काइया-जीवा-असखेज्जा-सखेज्जा, वणप्फदि-काइया-जीवा-अणंताणता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा-भिण्णा एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (पच महव्वदाणि) अहिंसा आदि पॉच महाव्रत (पच-समिदीओ) ईर्या आदि पॉच समिति (च) और (तिगुत्तीओ) मन गुप्ति आदि तीन गुप्तियो रूप (तेरसविहो) तेरह

प्रकार का (चरित्तायारो) चारित्राचार (परिहाविदो) का खडन किया हो तो (इच्छामि) मैं उस दोष की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

(तत्थ) उस तेरह प्रकार चारित्राचार मे (पाणादिवादादोवेरमण) जीवो के प्राणो के व्यतिपात से विरक्ति रूप (पढमे महव्वदे) प्रथम अहिसा महाव्रत है (से) उस व्रत मे (पुढविकाइया जीवा) पृथ्वीकायिक जीव (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (आउकाइया जीवा) जलकायिक जीव (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (तेउकाइयाजीवा) तैजस/अग्नि कायिक जीव (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (वाउकाइया जीवा) वायुकायिक जीव (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (वणप्फदिकाइया जीवा) वनस्पतिकायिक जीव (अणताणता) अनन्तानन्त (हरिआ) हरित सचित्त (बीआ) बीज (अकुरा) अकुर (एदेसि) इनका (छिण्णा) छेदन (भिण्णा) भेदन (उद्दावण) उत्तापन (परिदावण) परितापन (विराहण) विराधना (उवघादो) उपघात (कदो) मैने किया हो (वा) अथवा (कीरतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) उस सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) सभी पाप (मिच्छा) मिथ्या होवे ।

भावार्थ—हे भगवन् ! अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप पॉच व्रत, ईर्या, भाषा एषणा, आदान-निक्षेपण, व्युत्सर्ग पॉच समिति और मन, वचन, काय, गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का जो चारित्र है उसकी मेरे द्वारा अवहेलना, उसका खडन किया गया हो तो मैं दोषो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

हे प्रभो ! अहिसा महाव्रत की आराधना मे एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकादि जीवो की विराधना की हो, कराई हो, या करने वाले की मेरे द्वारा अनुमोदना हुई हो तो मेरा पाप मिथ्या हो।

बे—इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, कुक्खि—किमि संख—खुल्लय, वराडय, अक्ख—रिट्ठय—गण्डवाल—संबुक्क सिप्पि, पुलवि—काइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(बे-इंदिया जीवा) दो इन्द्रिय जीव (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (कुक्खि) कुक्षि (किमि) कृमि/लट (संख) शंख (खुल्लुय) क्षुल्लक बाला (बराउय) वराटक या कौड़ी (अक्ख) अक्ष (रिट्ठबाल) बाल जाति का विशेष जन्तु (सबुक्क) छोटा शख (सिप्पि) सीप (पुलविकाइया) पुलविक अर्थात् पानी के जोक (एदेसि) इनको (उद्दावण) उत्तापन (वरिदावणं) परितापन (विराहण) विराधन (उवघादो) उपघातन (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सबंधी (मे) मेरे (दुक्कड़) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो।

भावार्थ—दो इन्द्रिय कुक्षि, कृमि, शख आदि जीवो की मैंने विराधना की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो तो तत्सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

ते इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, कुन्थुदेहिय-विच्छिय—गोभिंद—गोजुव—मक्कुण—पिपीलियाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु—मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(कुथु) कुन्थु अर्थात् सूक्ष्म अवगाहना धारक कुन्थु जीव (देहिय) देहिक (विच्छिय) बिच्छू (गोभिद) गोभिद (गोजुव) गो जूँ अर्थात् भैंस आदि के स्तनादि पर लगी रहने वाला "जूँ" (मक्कुण) खटमल (पिपीलियाइया) चीटी आदि (असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (तेइदिया) तीन इन्द्रिय (जीवा) जीव (एदेसिं) उनका (उद्दावण) उत्तापन (परिदावण) परितापन (विराहण) विराधना (उवघादो) उपघात (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) दूसरो से करवाया हो (वा) अथवा (कीरतो समणुमण्णिदो) करने वाले की अनुमोदना की हो (तस्स) तो तत्सबधी (दुक्कड) दुष्कृत (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या होवे।

भावार्थ—हे भगवन्। मैंने असख्यातासंख्यात तीन इन्द्रिय जीव कुन्थु, खटमल, मक्कड, जूँ आदि का उत्तापन, परितापण, विराधन आदि किया हो, कराया हो, करते हुए की अनुमोदना की हो तो मेरे खोटे कार्य मिथ्या हो।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, दंसमसय-मक्खि--पयंग-कीड--भमर--महुयर, गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(असखेज्जासखेज्जा) असख्यातासख्यात (दसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भ्रमर-महुयर-गोमच्छियाइया) डांस-मच्छर-मक्खी-पतगा-कीड़ा-भौंरा-मधुमक्खी गोमक्षिका आदि (चउरिंदिया जीवा) चतुरिन्द्रिय जीव (एदेसि) इनका (उद्दावणं) उत्तापण (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघात (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो समणुमण्णिदो) करते हुए अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सम्बन्धी (दुक्कडं) दुष्कृत/खोटे कार्य (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या होवे ।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैंने डास-मच्छर-मक्खी-आदि चतुरिन्द्रिय जीवो की विराधना, उत्तापन, परिदावण किया हो, कराया हो या अनुमोदना की हो तो मेरे दुष्कार्य मिथ्या हो ।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदिजोणि--पमुह--सद--सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(असखेज्जासखेज्जा) असंख्यातासंख्यात (पंचिंदिया जीवा) पंचेन्द्रिय जीव (अंडाइया) अण्डज (पोदाइया) पोतज (जराइया) जरायुज (रसाइया) रस से उत्पन्न होने वाले (संसेदिमा) संस्वेदिम (समुच्छिमा) समूर्च्छन (उब्भेदिया) उद्भेदिय (उववादिमा) उपपाद जन्म से उत्पन्न देव-नारकी (अवि) और भी (चउरासीदिजोणि पमुहसदसहस्सेसु) चौरासी लाख योनियो मे प्रमुख पञ्चेन्द्रिय जीव (एदेसिं) इनका (उद्दावणं) उत्तापन (परिदावणं) परितापन (विराहणं) विराधन (उवघादो) उपघात (कदो) मैंने किया हो (वा) अथवा

(कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरंतो वा समणु-मण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कडं) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो ।

भावार्थ—हे भगवन्! असख्यातासख्यात पञ्चेन्द्रिय जीव अडज, पोतज, जरायुज, उद्भेदिय आदि का उत्तापन, विराधन मैने स्वय किया हो, कराया हो या अनुमोदना की हो तो मेरा पापकार्य मिथ्या होवे।

अंडज–अण्डो से उत्पन्न होने वाले कबूतर आदि।

पोतज–पैदा होते ही चलने-फिरने व भागने लगते है उत्पन्न होते समय जिन जीवो के शरीर के ऊपर किसी प्रकार का आवरण नही होता उन्हे पोतज कहते हैं यथा—सिह, हिरण आदि।

जरायुज–जर सहित पैदा होने वाले गाय, भैस, मनुष्य आदि। जाली के समान मास और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटा जो जीव जन्म लेता है वह जरायुज है।

संस्वेदिम–पसीना से उत्पन्न होने वाले जूँ आदि।

उद्‌भेदिय–भूमि को भेदकर उत्पन्न होने वाले।

८४ लाख योनि–पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक ७-७ लाख, नित्य निगोद, इतर निगोद ७-७ लाख, वनस्पतिकाय १० लाख, दो-तीन-चार इन्द्रिय २-२ लाख, पञ्चेन्द्रिय पशु ४ लाख, देव-नारकी ४-४ लाख और मनुष्य १४ लाख। इस प्रकार कुल ८४ लाख योनि हैं।

उत्तापनं–त्रस व स्थावर जीवो का प्राणो का वियोग रूप मारण उत्तापन कहलाता है।

परितापनं–त्रस-स्थावर जीवो को सताप पहुँचाना परितापन है।

विराहणं–त्रस-स्थावर जीवो को पीड़ा पहुँचाना, दुखी करना विराधन है।

उपघात–त्रस स्थावर जीवो को एकदेश अथवा पूर्ण रूप से प्राणों से रहित करना उपघात है। सामान्य से ये चारो शब्द प्राय· एकार्थवाचक हैं।

प्रतिक्रमण पीठिका—दण्डक

गद्य

इच्छामि भंते ! राइयम्मि (देवसियम्मि) आलोचेउ, पंच-महव्वदाणि तत्थ पढम महव्वद पाणादिवादादो वेरमण, विदिय महव्वद मुसावादादो वेरमण तिदियं महव्वद अदिण्णा दाणादो वेरमण, चउत्थ महव्वद मेहुणादो वेरमणं, पचम महव्वदं परिग्गहादो वेरमणं, छट्ठ अणुव्वदं राइभोयणादो वेरमणं। इरिया-समिदीए, भासा-समिदीए, एसणा-समिदीए, आदाण-निक्खेवण-समिदीए, उच्चारपस्स-वण खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणिया समिदीए। मणगुत्तीए, वचि-गुत्तीए, काय-गुत्तीए। णाणेसु, दसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाय-परीसहेसु, पणवीसाय-भावणासु, पणवीसाय-किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदिगुणसय-सहस्सेसु, बारसण्हं संजमाणं, बारसण्हं तवाणं, बारसण्हं अंगाण, चोद्दसण्हं पुव्वाणं, दसण्हं मुडाणं, दसण्हं समण-धम्माणं, दसण्हं धम्मज्झाणाणं, णव्वहं बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्हं णो-कसायाणं, सोलसण्हं-कसायाणं, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, सत्तण्ह भयाणं, सत्तविह संसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इंदियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताण, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाणं, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाण, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसिं अच्चासादणाए, तिण्हं दण्डाणं, तिण्हं लेस्साणं, तिण्हं गारवाणं, तिण्हं अप्पसत्थ-संकिलेस-परिणामाणं, दोण्हं अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणं, मिच्छा-णाण, मिच्छा-दंसण, मिच्छा-चरित्ताणं, मिच्छत्त-पाउग्गं, असंयम-पाउग्गं, कसाय-पाउग्गं, जोग-पाउग्गं, अपाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्गगरहणदाए, इत्थ मे जो कोई राइयो (देविसिओ) आदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो। तस्स भंते ! पडिक्कमामि मए पडिक्कंतं तस्स से सम्मत्त-मरणं, पंडिय-मरणं, वीरिय-मरणं, दुक्खक्खो, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं जिन-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

अन्वयार्थ—(इच्छामि भंते राइयम्मि/देवसियम्मि आलोचेउं) हे भगवन्! मैं रात्रि मे या दिन मे व्रतो मे लगने वाले दोषो की आलोचना शुद्धि पूर्वक करने की इच्छा करता हूँ। (पच महव्वदाणि) पाँच महाव्रत हैं (तत्थ) उनमे (पढमं महव्वदं) पहला महाव्रत (पाणादिवादादो वेरमण) प्राणो के व्यपरोपण से रहित है (विदिय महव्वदं) दूसरा महाव्रत (मुसावादादो वेरमणं) असत्य भाषण/मृषावाद से रहित है (तिदिय महव्वद) तीसरा महाव्रत (अदिण्णा दाणादो वेरमण) बिना दी वस्तु के ग्रहण से रहित है (चउत्थ महव्वदं) चौथा महाव्रत (मेहुणादो वेरमणं) मैथुन सेवन से रहित है (पंचमं महव्वदं) पाचवाँ महाव्रत (परिग्गहादो वेरमणं) परिग्रह से रहित है (छट्ठं अणुव्वदं) षष्ठम/छठा अणुव्रत (राइभोयणादो वेरमणं) रात्रिभोजन से रहित है।

समिदीए–समितियाँ (इरिया समिदीए) ईर्या समिति, (भासा समिदीए) भाषा समिति, (एसणा-समिदीए) एषणासमिति, (आदाण निक्खेवण समिदीए) आदाननिक्षेपण समिति, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणियासमिदीए) टट्टी, पेशाब, खँखार, नासिका मल, गोमय आदि पित्तादि विकार को क्षेपण करना प्रतिष्ठापना समिति है। इसी का दूसरा नाम उत्सर्ग समिति हैं।

(मणगुत्तीए) मनोगुप्ति (वचिगुत्तीए) वचनगुप्ति (कायगुत्तीए) कायगुप्ति। (णाणेसु) ज्ञानो मे (दसणेसु) दर्शन मे (चरित्तेसु) चारित्रों में (बावीसाय परीसहेसु) बावीस प्रकार के परीषहो मे (पणवीय भावणासु) २५ प्रकार की भावनाओ मे (पणवीसाय किरियासु) २५ प्रकार की क्रियाओ मे (अट्ठारससीलसहस्सेसु) अठारह हजार शीलो मे, (चउरासीदिगुण सय-सहस्सेसु) चौरासी लाख गुणो मे (बारसण्हं संजमाण) बारह प्रकार के संयमो को (बारससंण्हं तवाण) बारह प्रकार तपो को (बारसण्ह अंगाण) बारह प्रकार अंगो को (चोंदसण्हं पुव्वाण) चौदह पूर्वों को (दसण्हं मुडाणं) दस प्रकार के मुंडो को (दसण्ह समण धम्ममाणं) दस प्रकार के श्रमण धर्मों को (दसण्हं धम्मज्झाणाण) दस प्रकार के धर्म्यध्यान को (णव्वइं बंभचेर-गुत्तीणं) नौ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति में।

(णवण्ह णो-कसायाण) नव प्रकार नौ कषायो को (सोलसण्ह कसायाण) सोलह प्रकार की १६ कषायो को (अट्ठह कम्माण) आठ प्रकार के कर्मों को (अट्ठण्ह पवयण माउयाण) आठ प्रकार प्रवचन मातृकाओ को (अट्ठण्हं सुद्धीण) आठ प्रकार की शुद्धियो को (सत्तण्ह भयाण) सात प्रकार के भयो को (सत्तविह संसाराण) सात प्रकार के ससार को (छण्ह जीवणिकायाण) छह प्रकार के जीवो के समूह को (छण्ह आवासयाण) छह प्रकार के आवश्यको को (पचण्ह इदियाण) पाँच प्रकार की इन्द्रियो को (पचण्हं महव्वयाण) पाँच प्रकार के महाव्रतो को (पचण्ह समिदीर्णं) पाँच प्रकार समितियो को (पंचण्हं चरित्ताण) पाँच प्रकार के चारित्र को (चउण्ह सण्णाण) चार प्रकार की संज्ञाओ को (चउण्ह पच्चयाण) चार प्रकार के प्रत्ययो को (चउण्ह उवसग्गाण) चार प्रकार के उपसर्गों को (मूलगुणाणं) मूलगुणो को (उत्तर गुणाण) उत्तर- गुणो को (दिट्ठियाए) दृष्टिक्रिया से (पुट्ठियाए) पुष्टीक्रिया से (पदोसियाए) प्रादोषिकी क्रिया से (परदावणियाए) परतापनि क्रिया से (से कोहेण वा) क्रोध से अथवा (माणेण वा) मान से अथवा (मायाए वा) माया से अथवा (लोहेण वा) लोभ से अथवा (रागेण वा) राग से अथवा (दोसेण वा) द्वेष से अथवा (मोहेण वा) मोह से अथवा (हस्सेण वा) हास्य से अथवा (भएण वा) भय से अथवा (पदोसेण वा) प्रदोष अपराध से अथवा (पमादेण वा) प्रमाद से अथवा (पिम्मेण वा) प्रेम से अथवा (पिवासेण वा) प्यास से अथवा (लज्जेण वा) लज्जा से अथवा (गारवेण वा) गारव से अथवा (एदेसिं अच्चासणदाय) इनमे अत्यासना को (तिण्ह दंडाणं) तीन प्रकार के दंडो को (तिण्ह लेस्साण) तीन प्रकार लेश्याओ को (तिण्ह गारवाण) तीन प्रकार के गारवो को (तिण्ह अप्पसत्थ-संकिलेस परिणामाण) तीन प्रकार के अप्रशस्त सक्लेश परिणामो को (दोण्हं अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाण) दो प्रकार के आर्त्त-रौद्र सक्लेश परिणामों को (मिच्छाणाण) मिथ्या-ज्ञान (मिच्छा-दसण) मिथ्या दर्शन (मिच्छा चरित्ताणं) मिथ्या चारित्र को (मिच्छत्त-पाउग्ग) मिथ्यात्व प्रयोग (असजम पाउग्गं) असंयम प्रयोग (कसाय-पाउग्ग) कषाय प्रयोग (जोग पाउग्गं) योग प्रयोग (अपाउग्ग-सेवणदाए) अप्रयोजनीय सेवन से (पाउग्ग-गरहणदाए) प्रयोजनीय मे गर्हा से (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा

(राइओ) रात्रि मे (देवसिओ) दिन मे (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभोग) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग किया गया हो (भते) हे भगवन् ! (तस्स) उन सब दोषो का (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ (मए पडिक्कत तस्स) मैने उन दोषो का प्रतिक्रमण किया है (मे सम्मत्त मरण) मेरा सम्यक्त्व मरण (पडिय मरण) पडितमरण (वीरिय मरण) वीरमरण (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय (बोहिलाहो) बोधि का लाभ (सुगइगमण) सुगति गमन (समाहि-मरण) समाधिमरण, (जिन-गुण सपत्ति होउ मज्झ) जिनेन्द्र गुणो की सपत्ति मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! रात्रि मे या दिन मे अपने व्रतो मे जो भी दोष लगे हो, उन दोषो की आलोचनापूर्वक शुद्धि करने की इच्छा करता हूँ। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, महाव्रत तथा षष्ठम अणुव्रत हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और रात्रिभोजन से रहित हैं । ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन अथवा व्युत्सर्ग ये पॉच-पॉच व्रतो की रक्षिका समितियॉ है । तीन योगो की रक्षिका मन-वचन-काय तीन गुप्तियॉ हैं इस प्रकार १३ प्रकार के चारित्र मे लगे दोषो की मैं आलोचना करता हूँ । और मति-श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान रूप पॉच प्रकार के ज्ञानो मे । चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन व केवलदर्शन इन चार प्रकार के दर्शनो मे पाँच महाव्रत तथा छठा अणुव्रत ये मेरे व्रत हैं । ये व्रत सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात रूप ५ प्रकार चारित्रो मे । क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन इन बाईस परीषहो मे ।

२५ भावनाओ मे। अहिसा-सत्य-अस्तेय-ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पॉच महाव्रतो की २५ भावनाएँ हैं—अहिंसाव्रत की ५ भावनाएँ-वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकित-पान भोजन। सत्यव्रत की की ५ भावनाएँ-क्रोध प्रत्याख्यान, लोभ प्रत्याख्यान, भय प्रत्याख्यान, हास्य प्रत्याख्यान और अनुवीचिभाषण। अचौर्यव्रत की ५ भावनाएँ-शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण,

भैक्ष्यशुद्धि और सधर्मा विसवाद। ब्रह्मचर्यव्रत की ५ भावनाएँ—१ स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग २ तन्मनोहरागनिरीक्षणत्याग ३ पूर्वरतानुस्मरण त्याग ४ वृष्येष्टरस त्याग और ५ स्वशरीरसस्कार त्याग। परिग्रहत्याग व्रत की ५ भावनाएँ-१ स्पर्शन २ रसना ३ घ्राण ४ चक्षु और ५ कर्ण। इन पञ्चेन्द्रियो को इष्ट लगने वाले विषयो से राग नही करना तथा अनिष्ट लगने वाले विषयो से द्वेष नही करना।

पच्चीस क्रियाओ मे—१ सम्यक्त्व क्रिया २ मिथ्यात्व क्रिया ३ शरीरादि के द्वारा गमनागमन से प्रवृत्त होना रूप प्रयोग किया ४ समादान क्रिया ५ ईर्यापथ क्रिया ६ प्रादोषिकी क्रिया ७ कायिकी क्रिया ८ अधिकरण क्रिया ९ पारितापिकी क्रिया १० प्राणातिपातिकी क्रिया ११ दर्शन क्रिया १२ स्पर्शन क्रिया १३ प्रात्ययिकी क्रिया १४ समन्तानुपात क्रिया १५ अनाभोग क्रिया १६ स्वहस्त क्रिया १७ निसर्ग क्रिया १८ विदारण क्रिया १९ आज्ञाव्यापादन क्रिया २० अनाकाक्षा क्रिया २१ प्रारभ क्रिया २२ पारिग्रहिकी क्रिया २३ माया क्रिया २४ मिथ्यादर्शन क्रिया २५ अप्रत्याख्यान क्रिया रूप पच्चीस क्रियाओ मे ।

१८ हजार शीलो मे।
चौरासी लाख उत्तरगुणो मे।

बारह प्रकार के सयम-पॉच इन्द्रिय और मन को वश करना तथा छह काय के जीवो की विराधना नही करना बारह प्रकार का सयमो मे।

अनशन, अवमौदर्य, व्रतपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैय्यावृत, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान रूप बारह प्रकार के तपो मे—१ आचाराग २ सूत्रकृताग ३ स्थानाङ्ग ४ समवायाङ्ग ५ व्याख्याप्रज्ञप्ति अग ६ ज्ञातृकथाङ्ग ७ उपासकाध्ययनाग ८ अन्त कृतदशाग ९ अनुत्तरौपपादिकदशाग १० प्रश्न व्याकरणाग ११ विपाक सूत्रांग और १२ दृष्टिवाद अग रूप बारह अगो मे।

१ उत्पादपूर्व २ आग्रायणी पूर्व ३ वीर्यानुवाद पूर्व ४ अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व ५ ज्ञानप्रवाद पूर्व ६. सत्य प्रवाद पूर्व ७ आत्मप्रवाद पूर्व ८ कर्मप्रवाद पूर्व ९ प्रत्याख्यान पूर्व १० विद्यानुवाद पूर्व ११

कल्याणवाद पूर्व १२. प्राणवाय पूर्व १३ क्रियाविशाल पूर्व और १४ लोकबिन्दुसार पूर्व रूप चौदह प्रकार के पूर्वों मे।

पञ्चेन्द्रिय निरोध—५ · हाथ-पॉव का निरोध, मन निरोध, वचन निरोध और शिर मुण्डन इस प्रकार १० प्रकार के मुण्डन मे।

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य और ब्रह्मचर्य रूप दस प्रकार के श्रमण धर्म मे।

१ अपाय विचय २ उपाय विचय ३. विपाक विचय ४ विराग विचय ५ लोक विचय ६ भवविचय ७ जीव विचय ८ आज्ञा विचय ९ सस्थान विचय और १० संसार विचय रूप दस प्रकार के धर्म्यध्यान मे।

तिर्यंच-मनुष्य और देव—इन तीन प्रकार की स्त्री का मन-वचन-काय से कृत, कारित, अनुमोदना से सेवन नही करना ९ प्रकार का ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार नव प्रकार के ब्रह्मचर्य का पूर्ण पालन करना रूप ९ प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्ति मे।

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुसक वेद इस प्रकार नौ प्रकार की नो कषायो मे।

अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ये १६ कषायो में।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय आठ कर्मो मे।

पॉच समिति और तीन गुप्ति रूप आठ प्रकार की प्रवचन मातृका मे – मन शुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, भिक्षाशुद्धि, ईर्यापथशुद्धि, उत्सर्ग शुद्धि, शयनाशनशुद्धि और विनयशुद्धि इस प्रकार आठ प्रकार की शुद्धि मे।

–इहलोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अरक्षाभय और आकस्मिकभय इस प्रकार सात भयों में।

–एकेन्द्रिय सूक्ष्म, एकेन्द्रिय बादर, दीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय असैनी और पञ्चेन्द्रिय सैनी सप्तविध संसार में। सप्तविध संसार बढ़ाने वाला कार्य नही करना चाहिये और यदि करे तो आलोचना करनी चाहिये।

–पाँच स्थावर और एक त्रस रूप छहकाय के जीवो मे। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ५ इन्द्रियो मे।

–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये ५ महाव्रतो मे।

–सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात रूप पाँच प्रकार चारित्र मे।

–आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार प्रकार संज्ञा मे।

–मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग चार प्रकार के आस्रव मे।

चार प्रकार के उपसर्ग—देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्ग मे।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पञ्चेन्द्रिय निरोध, षट् आवश्यक और सप्तशेष गुण=२८ मूल गुणो में ८४ लाख उत्तर गुणो मे।

स्त्री पुरुषों के अंगोपाग को देखने की अभिलाषा रूप दृष्टि क्रिया मे। स्त्री पुरुषो के अंग–उपांगो को अनुरागपूर्वक स्पर्श करने की इच्छा रूप पुष्टि क्रिया में। क्रोधादि कषायों से उत्पन्न दुष्ट मन-वचन-काय सबंधी प्रादोषिकी क्रिया में। दुष्ट मन-वचन-काय से दूसरो को पीड़ा पहुँचाने रूप पारतापिकी क्रिया मे। क्रोध से या मान से या माया से या लोभ से या राग से या द्वेष या मोह से या हास्य से या भय से या अपराध से या प्रेम से या पिपासा से या लज्जा से या गारव/गौरव से इन व्रतो की जो भी विराधना/अवहेलना/अत्यासादना/आसादना हुई हो [मैं सब पापो की आलोचना करता हूँ]

पुण्य पाप से जीवों को लिप्त करने वाली कृष्ण, नील, कापोत लेश्या रूप प्रवृत्ति और पीत, पद्म शुक्ल लेश्या रूप अप्रवृत्ति।

तीन गारव—रस गारव, ऋद्धि गारव और सात गारव मे।

आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान रूप दो प्रकार के सक्लेश परिणाम मे। तीन प्रकार के अप्रशस्त अर्थात् पाप उपार्जन के कारणभूत सक्लेश परिणाम— माया, मिथ्या और निदान मे।

मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र मिथ्यात्व के प्रयोग से अर्थात् मिथ्यात्व के वश से अतत्त्व मे रुचि होना, असयम का प्रयोग, कषाय का प्रयोग, मन, वचन काय–तीन योग का प्रयोग, अप्रयोग्य का सेवन करना अर्थात् त्याग करने योग्य का सेवन करना, फल–फूल आदि बिना प्रयोजन तोडना, हँसी-ठट्ठा करना, गीत नृत्यादि करना आदि अप्रयोजनीय कार्य किया हो।

प्रयोजनीय ग्रहण करने योग्य सम्यक्त्व-ज्ञान-सयम-तप की वृद्धि करने वाले सयतो की आयतनो की निदा की हो तो [मै उस पाप की आलोचना करता हूँ]

इस प्रकार मेरे द्वारा रात्रि–दैवसिक क्रियाओ मे जो भी कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग, अनाभोग किया गया हो, हे भगवन्! उन सब दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। मैने उन सब दोषो का प्रतिक्रमण किया है, उन दोषो को दूर कर अपनी आत्मा को शुद्ध किया है। हे प्रभो! मैं अपने व्रतो का अन्तिम फल यही चाहता हूँ कि मेरा सम्यक्त्व सहित मरण हो, धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान सहित समाधिमरण हो, पडित मरण हो, वीर मरण हो। मेरे सब शारीरिक–मानसिक दुखो का नाश हो। द्रव्यकर्म, नोकर्म व भावकर्मो का क्षय हो। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रत्नत्रय की प्राप्ति हो। मोक्ष गति, श्रेष्ठ गति मे गमन हो। अनन्त दर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त सुख और अनन्तवीर्य रूप जिनेन्द्र देव के गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

वद–समि–दिंदिय रोधो, लोचावासय–मचेल–मण्हाणं।
खिदि–सयण–मदंतवणं, ठिदि–भोयण–मेय–भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद–कदादो, अइचारादो णियत्तोहं ।।२।।

छेदोवट्ठावण होउ मज्झ (इति प्रतिक्रमण पीठिका दण्डक)

अथ सर्वातिचार–विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल- कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री प्रतिक्रमण-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (रात्रिक/दैवसिक) रात्रिक/दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियाया) प्रतिक्रमण क्रिया मे (कृत-दोष-निराकरणार्थं) किये गये दोषो के निराकरण करने के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्व आचार्यों के कहे गये क्रम से (सर्व) सब (अतिचार) अतिचार की (विशुद्ध्यर्थं) विशुद्धि के लिए (भावपूजा वन्दना स्तव समेत) भावपूजा, वन्दना स्तव सहित (श्री प्रतिक्रमण भक्ति) श्री प्रतिक्रमण भक्ति (कायोत्सर्गं) कायोत्सर्ग को (अहम्) मैं (करोमि) करता हूँ ।

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

णमो अरहताण इस प्रकार दण्डक को पढकर कायोत्सर्ग करे । पश्चात् थोस्सामि स्तव पढे ।

"निषिद्दिकादण्डका-"

णमो जिणाण ! णमो जिणाण ! णमो जिणाणं ! णमो णिस्सिहीए ! णमो णिस्सिहीए ! णमो णिस्सिहीए ! णमोत्थु दे ! णमोत्थु दे ! णमोत्थु दे ! अरहंत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सम–मण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! सम– भाव ! सल्लघट्टाणं सल्लघत्ताणं ! णिब्भय ! णीराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्संग, णिस्सल्ल ! माण–माय–मोस–मूरण ! तवप्पहाणं ! गुण–रयण–सील–सायर ! अणंत ! अप्पमेय ! महदि–महावीर–वड्ढमाण ! बुद्धि–रिसिणो ! चेदि ! णमोत्थु ए ! णमोत्थु ए ! णमोत्थु ए !

अन्वयार्थ—(णमो जिणाण)[३] जिनेन्द्र देव को तीन बार नमस्कार हो (णमो णिस्सिहिए)[३] १७ प्रकार के निषिद्दिका स्थानो को नमस्कार हो (णमोत्थु दे–णमोत्थु दे–णमोत्थु दे) नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो । (अरहत) चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहत ! (सिद्ध) नि शेष कर्म–क्षय कारण सिद्ध ! (बुद्ध) हेयोपादेय विवेकसम्पन्न बुद्ध ! (णीरय)

ज्ञानावरण, दर्शनावरण रूप कर्म रज से रहित होने से नीरज। (णिम्मल) निर्मल–द्रव्य व भावकर्म रहित निर्मल। (सममण) अर्घावतारण असिप्रहारण मे सदा समताधारक ऐसे सममण। (सुभमण) आर्त्त-रौद्रध्यान रहित शुभमन। (सुसमत्थ) कायक्लेश-उपसर्ग व परीषहो के सहन करने मे समर्थ होने से सुसमत्थ। (समजोग) परम उपशम योग वाले होने से समजोग। (समभाव) ससारवर्द्धक राग–द्वेष परिणामो से रहित होने से समभाव। इस प्रकार जो अरहतादि है उन सबको नमस्कार हो। नमस्कार हो। नमस्कार हो।

इस प्रकार यहाँ तक सामान्य अर्हतादिको की स्तुति कर पुन विशेष रूप से अतिम तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए लिखते है—(सल्लघट्टाण) हे ससारवर्द्धक शारीरिक, मानसिक दुख पहुँचाने वाली, बाण के समान चुभने वाली माया-मिथ्यात्व-निदान शल्य के नाशक [सल्लघत्ताण] हे ससारी जीवो की शल्य के विनाशक (णिब्भय) निर्भय (णीराय) राग रहित (णिद्दोस) निर्दोष—१८ दोषो से रहित (णिम्मोह) निर्मोह (णिम्मम) निर्ममत्व (णिस्सग) निष्परिग्रह (णिस्सल्ल) माया, मिथ्यात्व निदान शल्य रहित। नि शल्य (माण-माया-मोस-मूरण) मान, मायाचार और झूठ का मर्दन करने वाले (तवप्पहावण) हे तप प्रभावक। (गुणरयण) हे ८४ लाख गुण के स्वामी गुणरत्न। (सील सायर) हे १८ हजार शीलो के समुद्र सीलसायर (अणत) हे अन्त रहित होने से अनन्त या अनन्त चतुष्टय धारक हे अनन्त। (अप्पमेय) इन्द्रिय ज्ञान से जानने योग्य न होने से हे अप्रमेय (महदि महावीर) हे पूज्यनीय महावीर। (वड्डमाण) हे वर्द्धमान (बुद्धिरिसिणो) हे बुद्धर्षिन्। आपको (णमोत्थु ए णमोत्थु ए णमोत्थु ए) आपको तीन बार नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

भावार्थ—१७ प्रकार के निषिद्ध का स्थान—१ कृत्रिम-अकृत्रिम अरहत सिद्ध प्रतिबिम्ब २ कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालय ३ बुद्धि और ऋद्धि सम्पन्न मुनि ४ उन मुनियो के द्वारा आश्रित क्षेत्र ५ अवधि मन पर्यय केवलज्ञानी ६ ज्ञानोत्पत्ति के प्रदेश ७ उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ८ सिद्धजीव ९ निर्वाण क्षेत्र १० उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र ११ सम्यक्त्व गुण युक्त तपस्वी १२ उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र १३ उनके द्वारा छोड़े हुए आश्रित क्षेत्र

१४ योगस्थित तपस्वी १५ उनके द्वारा आश्रित क्षेत्र १६ उनके द्वारा छोड़े हुए शरीर आश्रित क्षेत्र १७ तीन प्रकार के पंडित मरण मे स्थित मुनिगण। कहा भी है— **जिणबिम्बसिद्धणिलया किदगा किदगा य रिद्धिजुदसाहू।**
णाणजुदामुणिपवरा णाणुप्पत्तीव णाणिजुदखेत्तं ।।

१८ दोष—जन्म, जरा, तृषा, क्षुधा, विस्मय, आर्त, खेद, रोग, शोक, मद, मोह, भय, निद्रा, चिन्ता, स्वेद, राग, द्वेष और मरण।

मम मंगलं-अरहंता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जवणाणिणो, चउदसपुव्व-गामिणो, सुद-समिदि-समिद्धा य, तवो य, बारह-विहो तवस्सी, गुणा य, गुणवंतो य, महरिसी, तित्थं, तित्थंकरा य, पवयणं, पवयणी य, णाणं, णाणी य, दंसणं, दंसणी य, संजमो, संजदा य, विणओ, विणदा य, बंभचेरवासो, बंभचारी य, गुत्तीओ चेव, गुत्ति-मंतो य, मुत्तीओ चेव, मुत्तिमंतो य, समिदीओ चेव, समिदि-मतो य, सुसमय-परसमय-विदु, खंति, खंतिवंतो य, खवगाय, खीण-मोहाय, खीणवंतो य, बोहिय-बुद्धा य, बुद्धिमंतो य, चेइय-रुक्खा-य चेइयाणि।

अन्वयार्थ—(अरहता) अरहत (य) और (सिद्धा) सिद्ध (य) और (बुद्धा) हेय उपादेय ज्ञान से युक्त बुद्ध (य) और (जिणा) जिन (य) और (केवलिणो) केवलज्ञानी (ओहिणाणिणो) अवधिज्ञानी (मणपज्जवणाणिणो) मन पर्ययज्ञानी (चउदसपुव्व-गामिणो) चौदह पूर्व के ज्ञाता (य) और (सुदसमिदि समिद्धा) श्रुत के समूह से युक्त (तवो वारह विहो) बारह प्रकार का तप (य) और (तवस्सी) बारह प्रकार के तप को धारण करने वाले तपस्वी (गुणा) ८४ लाख गुण (य) और (गुणवतो) चौरासी लाख गुणो को धारण करने वाले (महरिसी) ऋद्धिधारी मुनि (तित्थ) तीर्थ (य) और (तित्थकरा) तीर्थकर (पवयण) प्रवचन (य) और (पवयणी) प्रवचन देने वाले (णाण) ज्ञान (य) और (णाणी) पॉच प्रकार के ज्ञान को धारण करने वाले ज्ञानी (दसण) औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक दर्शन (य) और (दसणी) तीन दर्शन के धारक सम्यग्दृष्टि जीव (सजमो) बारह प्रकार का सयम (य) और (सजदा) सयम को धारण करने वाले (विणओ) चार प्रकार का विनय (य) और (विणदा) चार प्रकार विनय के धारक

(बभचेर वासो) ब्रह्मचर्य आश्रम (य) और (बभचारी) ब्रह्मचारी (गुत्तीओ चेव) तीन प्रकार की गुप्ति (य) और (गुत्तिमतो) तीन प्रकार की गुप्ति को धारण करने वाले (मुत्तीओ चेव) तथा बहिरग अन्तरग परिग्रह का त्याग (य) और (मुत्तिमतो) बहिरग अन्तरग परिग्रह का त्याग करने वाले (समिदीओ चेव) तथा समिति (य) और (समिदिमतो) समिति को धारण करने वाले, (सुसमय-परसमय-विदु) स्वसमय परसमय के ज्ञाता (खति) क्षमा (य) और (खतिवतो) क्षमागुणधारक मुनि (य) और (खवगाय) क्षपकश्रेणी पर चढने वाले (य) और (खीणमोहा) दर्शनमोह और चारित्रमोह को क्षीण करने वाले (य) और (खीणवतो) क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती (य) तथा (बोहियबुद्धा) दूसरो के उपदेश से ससार शरीर भोगो से विरक्त होने वाले बोधितबुद्ध (य) और (बुद्धिमतो) कोष्ठबुद्धि आदि बुद्धि को धारण करने वाले (य) और (चेइय-रुक्खा) चैत्यवृक्ष (च) तथा (चेइयाणि) कृत्रिम–अकृत्रिम आदि चैत्यालय ये सब (मम) मेरे लिये (मगल) मगलदायक हो।

उड्ढ-मह-तिरिय-लोए, सिद्धायदणाणी-णमस्सामि, सिद्ध-णिसीहियाओ, अट्ठावय-पव्वये, सम्मेदे, उज्जते, चपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओ वि-णिसीहियाओ, जीव-लोयम्मि, इसिपब्भार-तल-गयाणं, सिद्धाण, बुद्धाण, कम्म-चक्क-मुक्काणं, णीरयाण, णिम्मलाण, गुरु-आइरिय-उवज्झायाण, पव्व-तित्थेर-कुलयराणं, चउवण्णो य, समण-संघो य, दससु भरहेरावएसु, पंचसु महाविदेहेसु, जे लोए सति-साहवो-सजदा, तवसी एदे, मम मंगल, पवित्त, एदेह मगल करेमि, भावदो विसुद्धो सिरसा अहि-वंदिऊण सिद्धे काऊण अजलि मत्थयम्मि, तिविहं तियरण सुद्धो।

अन्वयार्थ—[उड्ढ–मह–तिरिय–लोए] ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक (सिद्धायदणाणि) सिद्धायतनो, सिद्ध प्रतिमा स्थित स्थानो को (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (सिद्ध-णिसीहियाओ) सिद्धो की निषिद्धिका अर्थात् निर्वाण स्थलो (अट्ठावय-पव्वए) अष्टापद कैलाश पर्वत पर (सम्मेदे) सम्मेद-शिखर (उज्जते) उर्ज्जयन्त/गिरनार पर्वत पर (चपाए) चम्पापुरी (पावाए) पावापुरी (मज्झिमाए) मध्यमा नगरी

(हत्थिवालिय-सहाए) हस्तिपालक राजा की सभा मे यह एक ऐतिहासिक राजा हुआ है जिसने अपने राज्य मे बड़ी-भारी सभा करके जैन धर्म के उत्थान के लिये बहुत अच्छा कार्य किया था। (जाओ अण्णाओ काओ वि) और भी जो कोई (णिसीहियाओ) निषिद्धिका स्थान है (जीवलोयम्मि) अढाई द्वीप और दो समुद्रो मे (इसिपब्भार-तल गयाण) ईषत्प्राग्भार मोक्ष शिला पर स्थित (सिद्धाण) सिद्धो को (बुद्धाण) बुद्धो को (कम्मचक्क-मुक्काण) ज्ञानावरणादि कर्मो से रहित (णीरयाण) पाप रहित (णिम्मलाण) भावकर्म से रहित निर्मल (गुरु-आइरिय-उवज्झायाण) गुरु, आचार्य, उपाध्याय (पव्वत्तित्थेरकुलयराण) प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर (य) और (चउवण्णो समणसघो) चार प्रकार के ऋषि, मुनि, यति अनगार आदि चतुर्विध सघ (दससु भरहेरावएसु) भरत एरावत दस क्षेत्रो मे (पचसुमहाविदेहेसु) पॉच विदेह क्षेत्रो मे (लोए) और मनुष्य लोक मे (जे साहवो) जो साधु (सजदा) सयमी (तवसी) तपस्वी है (एदे) ये सब (मम) मेरा (पवित्त मगल) पवित्र मगल करे। (एदे) इनको (अह) मै (विशुद्धो भावदो) विशुद्ध भाव से (सिरसा) मस्तक झुकाकर (सिद्धे) सिद्धो को (अहिवदिऊण) नमस्कार करके (मत्थयम्मि अजलि) मस्तक पर अजली (काऊण) रखकर (तिविह) त्रिविध (तियरणसुद्धो) मन–वचन–काय की शुद्धि से (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (मगल करेमि) मै मगल कामना करता हूँ।

मन-वचन-काय द्वारा दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! राइयस्स (देवसियस्स) अइचारस्स, अणाचारस्स, मण-दुच्चरियस्स, वचि-दुच्चरियस्स, काय दुच्चरियस्स, णाणाइचारस्स, दंसणाइचारस्स, तवाइचारस्स, वीरियाइचारस्स, चारित्ताइचारस्स, पचण्ह-महव्वयाण, पंचण्हं-समिदीणं, तिण्हं-गुत्तीणं, छण्हं-आवासयाणं, छण्हं-जीवणिकायाण, विराहणाए, पील-कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (राइयस्स/देवसियस्स) रात्रिक-दैवसिक (अइचारस्स) अतिचार का (अणाचारस्स) अनाचार का (मणदुच्चरियस्स) मानसिक दुष्ट चेष्टाओ का (वचिदुच्चरियस्स) वाचनिक

दुष्ट चेष्टाओ का (काय दुच्चरियस्स) शारीरिक दुश्चेष्टाओ का (णाणाइचारस्स) ज्ञानाचार के अतिचार का (दसणाइचारस्स) दर्शनाचार के अतिचार का (तवाइचारस्स) तपाचार के अतिचार का (वीरिया-इचारस्स) वीर्याचार के अतिचार का (चारित्ताइचारस्स) चारित्राचार के अतिचार का निराकरण करता हूँ, ज्ञानादिक को निर्मल करता हूँ (पचण्ह महव्वयाण) पॉच महाव्रतो का (पचण्ह समिदीण) पॉच समिति का (तिण्ह गुत्तीण) तीन गुत्तियो का (छण्ह आवासयाण) छह आवश्यको का (छण्ह जीवणिकायाण) छह काय के जीवो की (विराहणाए) विराधना मे (पील) पीड़ा अर्थात् आगमविरुद्ध प्रवृत्ति करके व्रतो की खडना (कदो वा कारिदो वा) मैने स्वय की हो, करवाई हो (कीरतो वा समणुमण्णिदो) या करने वालो की अनुमोदना की हो (तस्स मे) तत्सबधी मेरे (दुक्कड़) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो। इसलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मै मानसिक, वाचनिक, कायिक अतिचार, अनाचार का प्रतिक्रमण करता हूँ। पचाचार मे लगे अतिचार का निराकरण करता हूँ और पॉच महाव्रत, पॉच समिति, तीन गुप्ति आदि व्रतो की खडना मैने की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो तो तत्सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

ईर्यापथ गमना-गमन दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! अइगमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चकमणे, उवत्तणे, आउट्टणे, पसारणे, आमासे, परिमासे, कुइदे, कक्कराइदे, चलिदे, णिसण्णे, सयणे, उव्वट्टणे, परियट्टणे, एइंदियाणं, बेइंदियाणं, तेइंदियाणं, चउरिंदियाणं, पंचिंदियाण, जीवाणं, संघट्टणाए, संघादणाए, उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, एत्थ मे जो कोई राइयो (देवसियो) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन्! (अइगमणे) अति वेग से गमन मे (णिग्गमणे) निर्गमन मे-गमन क्रिया के प्रारभ मे (ठाणे) स्थान मे—स्थिति क्रिया मे (गमणे) गमन मे (चकमणे) व्यर्थ परिभ्रमण करने मे (उवत्तणे) उद्वर्तन मे (आउट्टणे) हाथ और पैरो को सकुचित

करने मे (पसारणे) हाथ-पैर पसारने मे (आमासे) आमर्श मे-नियत शरीर के प्रदेशो को छूने मे (परिमासे) परिमर्श मे—सर्वशरीर के स्पर्श करने मे (कुइदे) कुत्सित मे-स्वप्न मे बड़बड़ करने मे (कक्कराइदे) दाँतो को कटकटाने मे या अत्यन्त कर्कश शब्द करने मे या निद्रा मे दाँत कटकटाने मे (चलिदे) चलने मे—गमन के समय शरीर की हलन-चलन करने मे (णिसण्णे) बैठने मे (सयणे) शयन मे—सोने मे (उव्वट्टणे) उद्भवन मे—सोकर जागने मे (परियट्टणे) पसवाड़ा फेरने मे [आदि क्रियाओ मे] (एइदियाण) एकेन्द्रिय (बेइदियाण) दो इन्द्रिय (तेइदियाण) तीन्द्रिय (चउरिंदियाण) चतुरिन्द्रिय (पचिदियाण) पचेन्द्रिय (जीवाण) जीवो का (सघट्टणाए) मैने परस्पर सघर्षण करके मर्दन किया हो (सघादणाए) इकट्ठे किये हो (उद्दवणाए) सताप उपजाया हो (परिदावणाए) परितापन किया हो (विराहणाए) विराधना की हो (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरी (राइओ-देवसिओ) रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो भी कोई (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ हो (तस्स मे दुक्कड), तत्सबधी मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो अर्थात् तज्जनित मेरे पाप मिथ्या होवे। इसलिए (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

ईर्यापथ (गमनागमन संबंधी दोषों की) दूसरी आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! इरियावहियाए, विराहणाए, उड्ढमुहं चरंतेण वा, अहोमुहं चरंतेण वा, तिरियमुहं चरंतेण वा, दिसिमुहं चरंतेण वा विदिसिमुहं चरंतेण वा, पाणचंकमणदाए, वीयचंकमणदाए, हरिय चंकमणदाए, उत्तिंग-पणय-दय-मट्टिय-मक्कडय-तन्तु-संत्ताणु-चंकमणदाए, पुढवि-काइय-संघट्टणाए, आउ-काइय-संघट्टणाए, तेऊ-काइय-संघट्टणाए, वाउ काइय-संघट्टणाए, वणप्फदि-काइय-संघट्टणाए, तसकाइय-संघट्टणाए उद्दावणाए, परिदावणाए, विराहणाए, इत्थ मे जो कोई इरियावहियाए, अइचारो, अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन्! (इरियावहियाए) ईर्या समिति की (विराहणाए) विराधना मे (उड्ढमुह चरतेण) ऊँचा मुँह करके चलने मे (वा) अथवा (अहोमुह चरतेण) नीचा मुँह करके चलने मे (वा)

अथवा (तिरियमुहं चरंतेण) तिरछा मुँह करके चलने मे (वा) अथवा (दिसिमुह चरतेण) चारो दिशाओ मे मुँह करके चलने मे (वा) अथवा (विदिसिमुह चरतेण) विदिशाओ मे मुँह करके चलने मे (वा) अथवा (पाणचकमणदाए) दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि जीवो पर चलने से (वीयचकमणदाए) गेहूँ, चना आदि बीजो पर चलने से (हरियचकमणदाए) हरित वनस्पतिकायिक जीवो पर चलने से (उत्तिग) पूँछ के अग्रभाग जमीन से स्पर्श करके चलने वाले लट इल्ली उद्देइ आदि जीव (पणय) सेवाल, काई आदि (दय) जल के विकार बर्फ, ओला आदि अथवा अप्रासुक जल (मट्टिय) बहु पादा खजूर सदृशी अथवा खान की मिट्टी आदि (मक्कडय) कोलिक जाति जीव (ततु) ततु बनाने वाले जीव (सताण) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक इन सब जीवो पर (चकमणदाए) चलने मे (पुढविकाइयसघट्टणाए) पृथ्वीकायिक जीवो का सघट्टन करने मे (आउकाइयसघट्टणाए) जलकायिक जीवो के सघट्टन करने मे (तेउकाइय सघट्टणाए) तेजकायिक जीवो का सघट्टन करने मे (वाउकाइय सघट्टणाए) वायुकायिक जीवो का सघट्टन करने मे (वणफ्फदिकाइया सघट्टणाए) वनस्पतिकायिक जीवो का सघट्टन करने मे (तसकाइयसघट्टणाए) त्रस कायिक जीवो का सघट्टन करने मे (उद्दावणाए) प्राणो का उत्तापन करने मे (परिदावणाए) परितापन (विराहणाए) विराधन करने मे (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (इरियावहियाए) ईर्या समिति मे (जो कोई) जो कोई भी (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ हो (तस्स मे दुक्कड) तत्सबधी मेरे दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो अर्थात् ईर्यासमिति मे लगे मेरे सभी पाप मिथ्या हो, इसलिए (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यक् मुख, दिशा-विदिशाओ मे मुख कर गमन करने से ईर्या समिति मे जो दोष लगे हो वे मेरे दोष मिथ्या हो।

मल-मूत्रादि क्षेपण संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाण-वियडि-पइट्ठावणियाए, पइट्ठावंतेण जो कोई पाणा वा, भूदा वा, जीवा वा, सत्ता वा, संघट्टिदा वा, संघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (उच्चार) टट्टी (पस्सवण) पेशाब (खेल) खँखार (सिहाण) नासिका मल (वियडिय) विकृति अर्थात् पसीना आदि (पइट्ठावणियाए) क्षेपण करने मे (जो कोई) जो भी कोई (पाणा वा भूदा वा जीवा वा सत्ता वा) विकलेन्द्रिय या वनस्पतिकायिक जीव या पञ्चेन्द्रिय जीव या पृथ्वी, जल, अग्नि व वायुकायिक जीवो का (सघट्टिदा) सघट्टन किया हो (वा) या (सघादिदा) सघातन किया हो (वा) अथवा (उद्दाविदा) उत्तापन किया हो (वा) अथवा (परिदाविदा) परितापन किया हो (एत्थ) इनमे (मे) मेरे द्वारा (देवसिओ–राइओ) दैवसिक–रात्रिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो भी कोई (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुए हो (तस्स) तत्सबधी (मे दुक्कड) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या होवे, निष्फल होवे इसलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—उच्चार-प्रस्रवण आदि क्रियाओ मे पाण-भूत-जीव और सत्व को मेरे द्वारा पीड़ा पहुँची हो तो मेरे दुष्कृत मिथ्या हो।

एषणा [भोजन] दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भते ! अणेस-णाए, पाण-भोयणाए, पणय-भोयणाए, बीय भोयणाए, हरिय-भोयणाए, आहा-कम्मेण वा, पच्छा-कम्मेण वा, पुरा-कम्मेण वा, उद्दिट्ठयडेण वा, णिद्दिट्ठयडेण वा, दय-संसिट्ठयडेण वा, रस-संसिट्ठयडेण वा, परिसादणियाए, पइट्ठावणियाए, उद्देसियाए, णिद्देसियाए, कीदयडे, मिस्से, जादे, ठविदे, रइदे, अणसिट्ठे, बलिपाहुडदे, पाहुडदे, घट्टिदे, मुच्छिदे, अइमत्त-भोयणाए इत्थ मे जो कोई गोयरिस्स अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (अणेसणाए) भोजन के अयोग्य (पाणभोयणाए) पान के भोजन से (पणयभोयणाए) पणय भोजन से (बीयभोयणाए) बीज भोजन करने से (हरियभोयणाए) हरित भोजन करने से (आहाकम्मेण वा) अध कर्म से या (पच्छाकम्मेण वा) पश्चात्कर्म से या (पुराकम्मेण वा) पूर्वकर्म से या (उद्दिट्ठयडेण वा) उद्दिष्ट कृत से या (णिद्दिट्ठयडेण वा) निर्दिष्टकृत या (दयससिट्ठयडेण वा) दया से

दिये गये दान से, (रससंसिट्ठयडेण वा) रज अर्थात् धूल लगे/मिट्टी लगे बर्तनो से आहर से (परिसादणियाए) पाणिपात्र मे आहार को बार-बार डालकर भोजन करने से (पइट्ठावणियाए) प्रतिष्ठापनिका भोजन से (उद्देसियाए) उद्देश्य कर दिये गये भोजन से (णिद्देसियाए) निर्देश कर दिये गये आहार से (कीदयडे) क्रीत अर्थात् खरीद कर लाये भोजन से (मिस्से जादे) मिश्र भोजन से (ठविदे) स्थापित मे (रइदे) पौष्टिक भोजन मे (अणिसिट्ठे) अनिसृष्ट मे (बलिपाहुडदे) यक्षनागादिक के लिये लाये गये भोजन से (पाहुडदे) प्राभृत दोष से दूषित भोजन से (घट्टिदे) सर्वाभिघट और देशाभिघट दोष युक्त भोजन से (मुच्छिदे) मूर्च्छित दशा मे भोजन करने से (अइमत्तभोयणाहारे) अधिक मात्रा मे भोजन करने से (इत्थ) इस प्रकार (मे) मुझसे (जो कोई) जो भी कोई (गोयरस्स) आहार सबधी (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुआ (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। मै दोषो के निराकरणार्थ (पडिक्कमामि) प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! गोचरी वृत्ति मे हिसा युक्त सावद्य ४६ दोषो युक्त आहार ग्रहण करने से जो दोष हुआ है स्निग्ध, रूक्ष आदि पान के भोजन से, फूलनयुक्त काजिक, मथितादि भोजन करने से अथवा पौष्टिक आहार से, अग्नि मे नही पके हुए गेहूँ, चना आदि भोजन करने से, नही पके हुए पत्र, पुष्प, मूल आदि का भोजन करने से अध कर्म अर्थात् षट्जीवनिकाय के जीवो की विराधना से उत्पन्न भोजन से, आहार आदि दान ग्रहण कर दाता की प्रशसा करने रूप दूषित भोजन से, आहार ग्रहण से पूर्व दाता के दान की, कुल परम्परा मे दान की महत्ता बताते हुए दूषित भोजन से मुनि, पाखडी, देवता आदि को उद्देश्य कर बनाये गये दूषित भोजन के ग्रहण से, आपके लिये यह भोजन बनाया गया है ऐसा निर्देश करने पर भी दूषित भोजन के ग्रहण से अनुकपा पूर्वक दिये गये दान से, दातार द्वारा जल से गीले बर्तन, गीले हाथ से दिये गये भोजन को ग्रहण करने से, धूल या मिट्टी से युक्त बर्तन द्वारा दिये गये आहार के ग्रहण से, करपात्र मे आये आहार को बार-बार नीचे डालकर भोजन करने से, प्रतिष्ठापन अर्थात् भोजन के पात्रो को एक स्थान से अन्य स्थान मे ले

जाया गया भोजन करने से, श्रमणो के उद्देशकर, निर्ग्रंथो के उद्देशकर जो अन्न बनाया है, उस भोजन को करने से, आहार देने मे स्वय समर्थ होकर भी दूसरो से आहार दिलाना, खरीदकर लाये भोजन के करने मे, अन्न प्रासुक होने पर भी पाखडियो के साथ, गृहस्थो के साथ पाखडियो के साथ मुनियो को जो देने का सकल्प किया जाता है ऐसा भोजन करने से, जिस पात्र मे आहार पकाया था, उसमे से वह आहार निकालकर अन्य पात्र मे स्थापित करके स्वगृह मे अथवा परगृह मे ले जाकर स्थापित किये भोजन को करने से, रसना इन्द्रिय की पुष्टि करने वाले विविध रसो से बने पौष्टिक भोजन को करने से, घर स्वामी के द्वारा इन्कार किये भोजन के करने से, यक्षनाग आदि के लिये तैयार किये भोजन को करने से, निश्चित किया हुआ, अथवा पक्ष, माह, वर्ष को बदलकर दिये गये भोजन को करने से, अपंक्तिबद्ध ऐसे घरो से लाया गया भोजन करने से अथवा शुद्ध-अशुद्ध आहार को मिलाने से जो भोजन दूषित, घट्टित दोषयुक्त हुआ है ऐसा भोजन करने से, अत्यत गृद्धता से भोजन करने मे, साधु को अपने आहार मे, गर्मी के दिनो मे २ भाग पानी १ भाग भोजन और १ भाग खाली रखना तथा ठडी के दिनो मे २ भाग भोजन १ भाग पानी तथा १ भाग खाली मात्रा का ध्यान रखकर आहार करना चाहिये। इस मात्रा का उल्लघन कर मात्रा से अधिक भोजन करने मे मुझे जो भी कोई अतिचार, अनाचार जनित दोष लगे हो वे मेरे दुष्कृत मिथ्या होवे। मैं गोचरी समय लगने वाले दोषो का निराकरण करने के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ।

स्वप्न सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! सुमणिंदियाए, विराहणाए, इत्थिविप्परियासियाए, दिट्ठिविप्परियासियाए, मणि-विप्परियासियाए, वचि-विप्परियासियाए, काय-विप्परियासियाए, भोयण-विप्परियासियाए, उच्चावयाए, सुमण-दंसण-विप्परियासियाए, पुव्वरए, पुव्वखेलिए, णाणा—चिंतासु, विसोतियासु इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसियो) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भते।) हे भगवन्। (सुमणिदियाए) स्वप्न मे (विराहणाए) विराधना मे (इत्थि विप्परियासियाए) स्त्री विपर्यासिका मे

(दिट्ठिविप्परियासियाए) दृष्टि विपर्यासिका मे (मणिविप्परियासियाए) मन विपर्यासिका मे (वचि विपर्यासियाए) वचन विपर्यासिका मे (काय विप्परियासियाए) काय विपर्यासिका मे (भोयण विप्परियासियाए) भोजन विपर्यासिका मे (उच्चावयाए) स्त्री के राग से शुक्रस्राव होने मे । (सुमणदसणविप्परियासियाए) स्वप्न दर्शन विपर्यासिका मे (णाणाचितासु) नाना प्रकार चिताओ मे (विसोतियासु) बार-बार सुनने मे (एत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइओ-देवसिओ) रात्रिक-दिवस मे (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार हुए हो (तस्स) तत्सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो । इसीलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ ।

भावार्थ—हे भगवन् ! स्वप्न मे मेरे द्वारा व्रतो की विराधना की गई हो, विपरीत परिणति हुई हो, उनका मै परिशोधन करता हूँ। पूर्वरत अर्थात् गृहस्थावस्था मे जिसका अनुभव किया हो उसमे, पूर्वक्रीडा अर्थात् पूर्व की गृहस्थावस्था मे क्रीडा की हो उसमे। स्त्री विपर्यासिका-याने स्त्री के विषय मे विपरीतता-सेवन नही करने पर भी स्वप्नादि मे दोष का होना। दृष्टि के विषय मे विपरीतता–स्त्री के अवयव मुँह आदि को देखना तथा नही देखने पर भी देखने की अभिलाषा होना। मन की विपरीतता-स्त्री आदि के विषय मे उनके नही होने पर भी उनके होने की कल्पना करना। वचन विपरीतता-स्त्री सबधी वार्तालापादि के नही होने पर भी रागादि से युक्त वार्तालापादि करने का भाव करना। काय की विपरीतता-गोद मे स्त्री आदि के नही होने पर भी मै उसी अवस्था मे स्थित हूँ ऐसा विचार करना। भोजन विपरीतता-भोजन नही करते हुए भी मै भोजन कर रहा हूँ ऐसी विपरीत धारणा करना। उच्च्यावजात अर्थात् स्त्री के रागवश वीर्य के स्खलन के कारण होने वाला दोष [स्त्री के अनुरागवश वीर्यस्खलन को सस्कृत मे उच्च्याव कहते है] स्वप्नदर्शन विपरीतता मे—स्वप्न मे किसी स्त्री आदि को देखने का विपर्यास हुआ हो। नाना चिन्ताओ से अर्थात् पूर्व मे भोगे हुए भोगो का अनेक प्रकार स्मरण करने से। विसोतिया अर्थात् उनको बार-बार सुनने से। इस प्रकार उपर्युक्त स्वप्न संबधी दोषो से व्रतो से अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार रूप से कोई भी दोष लगा हो। उस सबधी मेरा दुष्कर्म मिथ्या हो। मै निर्दोष बनने की भावना से ही प्रतिक्रमण कर रहा हूँ।

विकथा संबंधी दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! इत्थि-कहाए, अत्थ-कहाए, भत्त-कहाए, राय कहाए, चोर-कहाए, वेर-कहाए, पर-पासड-कहाए, देस-कहाए, भास-कहाए, अ-कहाए, वि-कहाए, निठुल्ल-कहाए, पर-पेसुण्ण-कहाए, कन्द-प्पियाए, कुक्कुच्चियाए, डबरियाए, मोक्खरियाए, अप्प-पसंणदाए, पर-परिवादणाए, पर-दुगछणदाए, पर-पीडा-कराए, सावज्जा-णुमोयणियाए, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (इत्थिकहाए) स्त्री कथा मे (अत्थ कहाए) अर्थ कथा मे, (भत्थ कहाए) भोजन कथा मे (रायकहाए) राज कथा मे (चोर कहाए) चोर कथा मे, (बैर कहाए) शत्रु कथा मे (परपासडकहाए) दूसरे पाखडियो की कथा मे (देसकहाए) देश कथा मे (भास कहाए) भाषा सम्बन्धी कथा मे (अकहाए) असबद्ध प्रलाप मे (विकहाए) विकथा मे (णिट्ठुल्लकहाए) निष्ठुर कथा मे (परपेसुण्ण-कहाए) पर पैशुन्य कथा मे (कदप्पियाए) कदर्पिका कथा के कथन मे (कुक्कुचियाए) कौत्कुच्य मे (डबरियाए) डबरिका मे, (मोक्खरियाए) मौखरिकी कथा मे (अप्पपससणदाए) आत्म प्रशसा मे (परपरिवादणाए) पर-परिवादन मे (परदुगछणदाए) पर जुगुप्सनता मे (परपीडाकराए) पर पीड़ा कारक कथा मे (सावज्जाणुमोयणियाए) सावद्यानुमोदिका कथा मे (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइओ-देवसिओ) रात्रिक या दिवस सबधी (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुआ (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरा (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ ।

भावार्थ—हे भगवन् ! स्त्री कथा अर्थात् स्त्रियो के वदन, नयन, नाभि, नितब आदि के वर्णन रूप कथा मे, अर्थकथा—धन के उपार्जन, रक्षण आदि वचन रूप अर्थ कथा के करने मे, राजा सबधी कथा के करने मे, चोर कथा मे, वैर विरोध की कथा मे, पर पाखडियो की कथा अर्थात् परिव्राजक, बधक, त्रिदडी, आदि की कथा करने मे, गुर्जर, मालव, कर्णाट, लाट आदि देश तथा ग्राम नगरादि की कथा मे १८ देशो मे बोली

जाने वाली भाषा सबधी कथा मे, तप स्वध्याय आदि से रहित अप्रयोजनीय असंबद्ध प्रलाप रूप कथा मे, तप स्वाध्याय आदि से रहित अप्रयोजनीय असबद्ध प्रलाप रूप कथा मे, राग–द्वेष–भोग के वर्णन रूप विकथा, निष्ठुर कथा अर्थात् मर्मभेदी, कठोर तर्जन रूप भयकर वचनयुक्त कथा मे, पर पैशुन्य कथा—दूसरो के दोषो को परोक्ष मे प्रकट करने वाली चुगली रूप कथा मे, कदर्पिका कथा राग के उद्रेक सहित हो हास्य मिश्रित अशिष्ट वचनो वाली कथा के प्रयोग मे, स्त्रियो की कथा, डम्बर, अर्थात् विरह कलह आदि युक्त कथा मे मौखरिकी—दृष्टतायुक्त बहुत प्रलाप करने वाली कथा मे, आत्मप्रशसा रूप कथा मे, परपरिवादन–दूसरो के समक्ष दुष्ट भावो से दूसरो की निन्दा करने वाली कथा मे, दूसरो को पीड़ा पहुँचाने वाली कथा मे, सावद्यअनुमोदिका याने हिसादि का अनुमोदन करने वाली विकथाओ मे, इस प्रकार मेरे द्वार रात्रि मे, दिन मे अपने व्रतो मे जो भी कोई अतिचार अनाचार हुआ तत्सबधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। इसीलिये मै अपने दोषो के निराकरण के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ।

आर्त्तध्यानादि अशुभ परिणाम व कषायादि दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भंते ! अट्टज्झाणे, रुद्दज्झाणे, इह-लोय-सण्णाए, पर-लोय-सण्णाए, आहार-सण्णाए, भए-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए, कोह-सल्लाए, माण-सल्लाए, माया-सल्लाए, लोह-सल्लाए, पेम्म-सल्लाए, पिवास सल्लाए, मिच्छा-दंसण-सल्लाए, कोह-कसाए, माण-कसाए, माया-कसाए, लोह-कसाए, किण्ह-लेस्स-परिणामे, णील-लेस्स-परिणामे, काउ-लेस्स-परिणामे, आरम्भ-परिणामे, परिग्गह-परिणामे, पडिसयाहिलास-परिणामे, मिच्छादंसण-परिणामे, असंजम-परिणामे, पाव-जोग-परिणामे, काय-सुहाहिलास-परिणामे, सद्देसु, रूवेसु, गंधेसु, रसेसु, फासेसु, काइयाहि करणियाए, पदोसियाए, परदावणियाए, पाणाइवाइयासु, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते ! पडिक्कमामि) हे भगवान् ! मैं आर्त्तध्यान आदि अशुभ परिणामो के करने से लगे दोषो की आलोचना करता हूँ—(अट्टज्झाणे) चार प्रकार के आर्त्तध्यान मे, (रुद्दज्झाणे) चार प्रकार के रौद्रध्यान मे

(इहलोयसण्णाए) इस लोक सबधी सुख की इच्छा मे (परलोयसण्णाए) परलोक सबधी सुख की इच्छा मे (आहार सण्णाए) आहार सज्ञा मे (भय सण्णाए) भय सज्ञा मे (मेहुण सण्णाए) मैथुनसज्ञा मे (परिग्गह सण्णाए) परिग्रह सज्ञा मे (कोहसल्लाए) क्रोध शल्य (माण सल्लाए) मानशल्य (माया सल्लाए) माया शल्य मे (लोह सल्लाए) लोभ शल्य मे (पेम्मसल्लाए) प्रेम शल्य (पिवाससल्लाए) पिपासा शल्य (णियाण सल्लाए) निदान शल्य (मिच्छादसणसल्लाए) मिथ्यादर्शन शल्य (कोह-कसाए) क्रोध-कषाय (माणकसाए) मान कषाय (माया कसाए) माया कषाय (लोह कसाए) लोभ कषाय (किण्हलेस्स परिणामे) कृष्णलेश्या के परिणाम (णीललेस्सपरिणामे) नील लेश्या के परिणाम (काउलेस्सपरिणामे) कापोत लेश्या के परिणाम (आरंभपरिणामे) आरभ परिणाम (परिग्गह परिणामे) परिग्रह के परिणाम (पडिसयाहिलासपरिणामे) प्रतिश्रयाभिलाषपरिणाम (मिच्छादसणपरिणामे) मिथ्यादर्शन के परिणाम (असजम परिणामे) असयम के परिणाम (पावजोगपरिणामे) पापयोग्य परिणाम (कायसुहाहिलास परिणामे) शारीरिक सुख की अभिलाषा के परिणाम (सद्देसु) मनोज्ञ शब्दो के सुनने मे (रूवेसु) रूप देखने मे (गधेसु) सुगधित कर्पूर, चन्दन आदि की गध मे (रसेसु) तिक्त मधुरादि रसो मे (फासेसु) मृदु कठोर कोमल स्निग्ध आदि स्पर्श मे (काइयाहिकरणियाए) कायाधिकरण क्रिया मे (पदोसियाए) प्रदोष क्रिया–दुष्ट मन–वचन–काय लक्षण क्रिया मे (परिदावणियाए) परितापन क्रिया मे (पाणाइवाइयासु) प्राणातिपात मे— पॉच इन्द्रियॉ, मन, वचन, काय, श्वासोच्छ्वास, आयु–इन दस प्राणो का वियोग करने मे (इत्थ मे) इस प्रकार आर्त्तध्यानादि परिणामो से मेरे द्वारा (राईओ–देवसिओ) रात्रिक दैवसिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो कोई भी (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुए हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। इसलिए मैं दोषो के निराकरणार्थ प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! मै आर्त्त–रौद्रध्यान रूप सक्लेश परिणामो से

व्रतो मे लगने वाले दोषो की आलोचना करता हूँ। इष्टवियोग, अनिष्ट-सयोग, पीडा चिन्तन निदान बध रूप चार प्रकार के आर्त्तध्यान मे, हिसानन्दी, मृषानन्दी, चौर्यानन्दी, परिग्रहानन्दी चार प्रकार के रौद्रध्यान मे, इस लोक, परलोक सबधी इन्द्रिय सुखो की अभिलाषा से, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार सज्ञाओ मे, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, आसक्ति/पिपासा, निदान शल्यो मे, क्रोधादि चार कषायो मे, मिथ्यादर्शन मे, तीन अशुभ लेश्या के परिणाम, पॉच सूना रूप आरभ परिणाम, परिग्रह परिणाम मे प्रतिश्रय अर्थात् सस्था, मठ आदि मे, मूर्छा परिणाम मे, मिथ्यादर्शन परिणाम, असयम परिणाम, शारीरिक सुख की अभिलाषा के परिणाम, गीत वादित्र के मनोज्ञ शब्दो के सुनने, कामिनियो के सुन्दररूप को देखने मे, सुगधित चन्दन, कर्पूर, आदि की गधो मे, तिक्त, मधुर, क्षार आदि रसो मे, कोमल, कठोर-स्निग्ध, रूक्ष आदि आठ प्रकार के स्पर्शो मे, कायाधिकरण क्रिया मे, प्रदोष क्रिया अर्थात् दुष्ट मन-वचन-काय लक्षण क्रिया मे, परितापन क्रिया मे, पॉच इन्द्रिय, तीन बल और श्वासोच्छ्वास दस प्राणो के वियोग मे, इस प्रकार आर्त्त-रौद्रध्यान रूप सक्लेश परिणामो से मेरे द्वारा रात्रि मे, दिन मे जो भी कोई दोष लगा हो, अतिचार, अनाचार हुआ तत्सबधी मेरा कुकृत्य/दुष्कृत्य मिथ्या हो। मै दोषो के निराकरण के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ।

शका—क्रोध, मान, माया, लोभ कषाय और क्रोध-मान-माया शल्यो मे क्या अन्तर है।

समाधान—क्रोध कषाय से समय परिणामो मे मन्दता होने से कर्मो का अल्पस्थिति बध होता है। परन्तु क्रोध शल्य, बाण की तरह चुभती रहती है। अत कर्मो की स्थिति बध उत्कृष्ट/तीव्र होता है। दोनो मे तीव्रता और मन्दता से स्थित बन्ध की अल्पता और उत्कृष्टता की अपेक्षा अन्तर है।

एक को आदि ले ३३ संख्या पर्यन्त दोषों की आलोचना

पडिक्कमामि भते ! एक्के भावे अणाचारे, दोसु राय- दोसेसु, तीसु दडेसु, तीसु गुत्तीसु, तीसु गारवेसु, चउसु कसाएसु, चउसु सण्णासु, पचसु महव्वएसु, पचसु समिदीसु, छसु जीव–णिकाएसु, छसु आवासएसु,

सत्तसु भएसु, अट्ठसु मएसु, णवसु बभचेर-गुत्तीसु, दसविहेसु समण-धम्मेसु, एयारस-विहेसु, उवासयपडिमासु, बारह-विहेसु भिक्खु-पडिमासु, तेरस-विहेसु किरिया-ट्ठाणेसु, चउदस-विहेसु भूदगामेसु, पणरस-विहेसु पमाय-ठाणेसु, सोलह-विहेसु पवयणेसु, सत्तारस-विहेसु असंजमेसु, अट्ठारस-विहेसु असंपराएसु, उणवीसाय णाहज्झाणेसु, वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु, एक्कवीसाए, सवलेसु, बावीसाए परीसहेसु, तेवीसाय सुद्दयडज्झाणेसु, चउवीसाए अरहंतेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु, छव्वीसाए पुढवीसु, सत्तावीसाए अणगार-गुणेसु, अट्ठावीसाए आयार-कप्पेसु, एउणतीसाए पाव-सुत्त-पसंगेसु, तीसाए मोहणी-ठाणेसु, एकत्तीसाए कम्म-विवाएसु, बत्तीसाए जिणो-वएसेसु, तेतीसाए अच्चासणदाए, संखेवेण जीवाण-अच्चासणदाए, अजीवाण अच्चासणदाए, णाणस्स अच्चासणदाए, दंसणस्स अच्चासणदाए, चरित्तस्स अच्चासणदाए, तवस्स अच्चासणदाए, वीरियस्स अच्चासणदाए, तं सव्वं पुव्वं दुच्चरियं गरहामि, आगामेसीएसु पच्चुप्पण्णं इक्कंतं पडिक्कमामि, अणागय पच्चक्खामि, अगररहिय, गरहामि, अणिंदियं णिंदामि, अणालोचियं आलोचेमि, आराहण—मब्भुट्ठेमि, विराहणं पडिक्कमामि, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवान् ! (एक्के भावे अणाचारे) एक अनाचार रूप भाव मे (वेसु राय-दोसेसु) दो राग-द्वेष परिणामो मे (तीसु दडेसु) तीन दण्डो मे (तीसु गुत्तीसु) तीन गुप्तियो मे (तीसु गारवेसु) तीन गारवो मे (चउसु कसाएसु) चार कषायो मे (चउसु सण्णासु) चार सज्ञाओ मे (पचसु महव्वएसु) पॉच महाव्रतो मे (पचसु समिदीसु) पॉच समितियो मे (छसु जीव-णिकाएसु) छ जीवनिकायो मे, (छसु आवासएसु) छह आवश्यको मे (सत्तसु भएसु) सात भयो मे (अट्ठसु मएसु) आठ मदो मे (णवसु बभचेर गुत्तीसु) नौ प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्तियो मे (दसविहेसु समण-धम्मेसु) दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे (एयारसविहेसु उवासय पडिमासु) ग्यारह प्रकार की श्रावक प्रतिमाओ मे, (बारह-विहेसु भिक्खु-पडिमासु) बारह प्रकार की भिक्षुक प्रतिमाओ मे (तेरस-विहेसु—किरियाट्ठाणेसु) तेरह प्रकार के क्रिया/चारित्र स्थानो मे (चउदसविहेसु भूदगामेसु) चौदह

प्रकार भूत ग्रामो मे (पणरस–विहेसु पमाय ठाणेसु) पन्द्रह प्रकार प्रमाद स्थानो मे (सोलह–विहेसु पवयणेसु) सोलह प्रकार प्रवचनो मे (सत्तारस-विहेसु असजमेसु) सत्रह प्रकार असयमो मे, (अट्ठारस विहेसु असपराएसु) अठारह प्रकार के असम्परायो मे (उणवीसाय णाहज्झाणेसु) उन्नीस प्रकार के नाथाध्ययनो मे (वीसाए असमाहि-ट्ठाणेसु) बीस प्रकार के असमाधि के स्थानो मे, (एक्कवीसाए सवलेसु) इक्कीस प्रकार की सवल क्रियाओ मे (बावीसाए परीषहेसु) बावीस प्रकार के परीषहो मे (तवीसाय सुद्दयड–ज्झाणेसु) तेवीस प्रकार के सूत्राध्ययन मे (चउवीसाए अरहतेसु) चौबीस प्रकार के अरहतो मे (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार की भावनाओ मे (पणवीसाए किरियाट्ठाणेसु) पच्चीस प्रकार के क्रिया स्थानो मे, (छव्वीसाए पुढवीसु) छब्बीस प्रकार पृथ्वियो मे (सत्तावीसाए अणगार गुणेसु) सत्ताईस प्रकार के अनगार गुणो मे (अट्ठावीसाए आयार कप्पेसु) अट्ठाईस प्रकार आचार कल्पो मे, (एउणतीसाए पाव सुत्त पसगेसु) उनतीस प्रकार के पापसूत्र प्रसगो मे (तीसाए मोहणी ठाणेसु) तीस प्रकार के मोहनीय के स्थानो मे, (एकत्तीसाए कम्मविवाएसु) इकतीस प्रकार के कर्म विपाको मे (बत्तीसाए जिणोवएसेसु) बत्तीस प्रकार के जिनोपदेश मे (तेतीसाए अच्चासणदाए) तैतीस प्रकार की अत्यासादना मे (सखेवेण जीवाण–अच्चासणदाए) सख्यात प्रकार जीवो की अत्यासादना मे (अजीवाण अच्चासणदाए) अजीवो की अत्यासादना मे (णाणस्स अच्चासणदाए) ज्ञान की अत्यासादना मे (दसणस्स अच्चासणदाए) दर्शन की अत्यासादना मे (चरित्तस्स अच्चासणदाए) चारित्र की अत्यासादना मे (तवस्स अच्चासणदाए) तप की अत्यासादना मे (वीरियस्स अच्चासदणाए) वीर्य की अत्यासादना मे (त) उस (सव्व) सब (पुव्व दुच्चरिय) पूर्व मे आचरित दुश्चरित की (गरहामि) गर्हा करता हूँ (आगामेसीएसु पच्चुप्पण्ण इक्कत पडिक्कमामि) भूत, भविष्य, वर्तमान के दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ (अणागय पच्चक्खामि) भविष्य काल मे पापो का त्याग करता हूँ (अगरहिय गरहामि) मैं अगर्हित की गर्हा करता हूँ (अणिदिय णिदामि) अनिदित की मै निन्दा करता हूँ (अणालोचिय आलोचेमि) अनालोचित की आलोचना करता हूँ (आराहण–अब्भुट्ठेमि) आराधना को स्वीकार करता हूँ (विराहण पडिक्कमामि) विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ।

(इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा व्रतो मे (जो कोई) जो भी कोई (राइओ) रात्रि मे (देवसिओ) दिन मे (अइचारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार लगा हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो। इसीलिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! मै एक से लेकर तैतीस सख्या पर्यन्त व्रत मे लगे दोषो की आलोचना करता हूँ। हे प्रभो! मै प्रतिक्रमण करता हूँ। एक अनाचार परिणाम मे, दो राग-द्वेष परिणामो मे, तीन मन-वचन-काय की दुष्टता से लगने वाले दोषो मे, मन-वचन-काय तीन गुप्तियो, रस गारव, ऋद्धि गारव व स्वाद गारव या शब्द गारव रूप तीन गारव मे, क्रोध-मान-माया-लोभ चार कषायो मे, पॉच महाव्रतो मे, पॉच समितियो मे, पॉच स्थावर, एक त्रस छ जीवनिकायो मे, इहलोक भय, परलोक भय, अत्राण भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, अकस्मात्भय ऐसे सात भयो मे, ज्ञान-पूजा-कुल-जाति-बल-ऋद्धि-तप-वपु आठ मदो मे, स्त्री सामान्य जाति मन-वचन-काय और कृत-कारित-अनुमोदन से सेवन करने रूप नव प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्ति मे, उत्तम क्षमा आदि १० धर्मो मे, दर्शन-व्रत-सामायिक-प्रोषध, सचित्तत्याग-रात्रिभुक्तित्याग-ब्रह्मचर्य-आरभत्याग-परिग्रह त्याग-अनुमति त्याग और उद्दिष्ट त्याग रूप ११ प्रतिमाओ मे, उत्तम सहननधारी मुनियो की बारह प्रकार प्रतिमाओ मे—

मासिय दुय तिय चउ पच मास छ मास सत्त मासेश्च।
तिण्णेव मेदराई सत्तराउ इन्दियराई पडमाओ।।

उत्तम सहनन वाले मुनिराज किसी देश मे उत्कृष्ट दुर्लभ आहार ग्रहण करने का व्रत ग्रहण करते है। यथा-एक महीने के भीतर-भीतर मुझे ऐसा आहार मिलेगा तो ग्रहण करूँगा अन्यथा नही ऐसी प्रतिज्ञा करना प्रथम प्रतिमा है। महिने के अन्तिम दिन प्रतिमा योग धारण करता है।

प्रथम आहार से सौगुना दुर्लभ आहार दो महिने के भीतर मिलेगा तो ग्रहण करूँगा नही तो नही—ऐसी प्रतिज्ञा करना दूसरी प्रतिमा है।

इसी तरह उत्तरोत्तर उत्कृष्ट आहार तीन माह, चार माह, पॉच माह, छह व सात माह के भीतर मिलेगा तो करूँगा अन्यथा नही—क्रमश ऐसी प्रतिज्ञा करना तीसरी, चौथी, पॉचवी, छठी और सातवी प्रतिमा है।

इसके बाद तीन दिन का अवग्रह करना, फिर सात दिन का अवग्रह करना आठवी प्रतिमा है।

इसके बाद किसी भी प्रकार का आहार प्राप्त होने पर क्रम-क्रम से तीन ग्रास लेने का दो ग्रास व एक ग्रास लेने का अवग्रह करना—नौ, दसवी व ग्यारहवी प्रतिमा है उसके बाद वह अहोरात्रि प्रतिमायोग से रहता है। तत्पश्चात् रात्रि मे प्रतिमा योग से स्थित होकर प्रात काल केवलज्ञान प्राप्त करता है इन बारह प्रतिमाओ मे।

तेरह प्रकार की क्रिया स्थानो मे— ६ आवश्यक, ५ नमस्कार (अरहत-सिद्ध-आचार्य, उपाध्याय, साधु) और निस्सहि, आस्सहि का उच्चारण करना। इन १३ क्रियाओ मे, निस्सहि-जिन मदिर, सूने मकान, धर्मशाला आदि मे प्रवेश करते समय और मल-मूत्र करते समय निस्सहि-निस्सही-निस्सही पदो का उच्चारण करना चाहिये।

आस्सहि—जिनमदिर आदि से निकलते समय "आस्सहि-आस्सहि-आस्सहि" पदो का उच्चारण करना चाहिये। इन १३ क्रियाओ मे,

१४ प्रकार के भूतग्राम—एकेन्द्रिय सूक्ष्मबादर=२, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असैनी व सैनी पचेन्द्रिय=७। इन ७ को पर्याप्त व अपर्याप्त से गुणा करने पर १४ प्रकार के भूतग्राम होते है। १४ जीव समास ही १४ भूतग्राम है अथवा मिथ्यात्व, सासादन आदि १४ गुणस्थानो मे जीव के रहने से भी ये भूतग्राम कहे जाते है। इन १४ भूतग्रामो मे

१५ प्रकार के प्रमाद स्थानो में—४ विकथा, ४ कषाय, ५ इन्द्रिय अभिलाषा, स्नेह और निद्रा ये १५ प्रमाद स्थान है।

१६ प्रकार प्रवचनों मे—तीन प्रकार की विभक्ति- एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, तीन काल-भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यत्काल, तीन लिग-पुरुष/पुलिग, स्त्रीलिग व नपुसक लिग, अधिक, ऊन तथा मिश्र तीन प्रकार के वचन, समय (आगम/शास्त्र) वचन, लौकिक वचन, प्रत्यक्ष व परोक्ष वचन= ३+३+३+३+१+१+१+१=१६ प्रकार के ये प्रवचन है। इन प्रवचनो मे अथवा ७ विभक्ति, ३ लिग, ३ काल, ३ वचन = १६ प्रवचनो मे।

१७ प्रकार के असंयम भावों में—१ पृथ्वीकाय २ जलकाय ३ वायुकाय ४ अग्निकाय ५ वनस्पतिकाय ६ दो इन्द्रिय ७ तीन इन्द्रिय ८ चार इन्द्रिय ९ पञ्चेन्द्रिय- इन ९ प्रकार के जीवो की विराधना करना १० पीछे से प्रतिलेखना करना ११ दुष्परिणामो से प्रतिलेखन करना १२ जीवो को उठाकर दूसरी जगह रखना १३ जिन जीवो को उठाकर दूसरी जगह डाला हो उनका फिर से अवलोकन नही करना १४ मन का निरोध नही करना १५ वचन का निरोध नही करना १६ काय का निरोध नही करना १७ अजीव तृण काष्ठादि को नख आदि से छेदना [यह अजीव असयम है] इस प्रकार इन १७ प्रकार के असयमो मे, अथवा पॉच प्रकार पापो का त्याग करना, पचेन्द्रियो का निग्रह करना, चार कषायो को जीतना, तीन—मन-वचन काय को वश मे करना ये १७ प्रकार के सयम है। इन सयमो का पालन नही करना १७ प्रकार के असयम है।

१८ प्रकार के असाम्परायिक—सम्-समीचीन, पर-मुख्य अय-पुण्य के आगमन अर्थात् समीचीन श्रेष्ठ पुण्य के आगमन मे कारणभूत सम्पराय के भाव को साम्परायिक कहते है और साम्परायिक का नही होना असाम्परायिक है।

क्षमादि दश धर्म, आठ प्रवचनमातृका (पचसमिति+तीन गुप्ति) ये १८ साम्परायिक गुण है और इनका पालन नही करना १८ असाम्परायिक है।

१९ प्रकार के नाथाध्ययन-१ उक्कोडणाग-श्वेतहस्ती नागकुमार की कथा २ कुम्म-कूर्म कथा ३ अडय-अडज कथा ५ प्रकार की (१ कुक्कुट कथा, २ तापसपल्लिकास्थित शुककथा, ३ वेदकशुक कथा ४ अगधन सर्प कथा ५ हसयूथबन्धमोचन कथा) ४ रोहिणी कथा ५ शिष्य कथा ६ तुब-क्रोध से दिये गये कटु तुम्बी के भोजन करने वाले मुनि की कथा, ७ सघादे-समुद्रदत्तादि ३२ श्रेष्ठी पुत्रो की कथा जो सभी अतिवृष्टि के होने पर समाधि को धारण स्वर्ग को प्राप्त हुए ८ मादगिमल्लि-मातगिमल्लि कथा, ९ चदिम-चन्द्रवेध कथा १० तावद्देवप कथा- सगर चक्रवर्ती कथा ११ करकण्डु राजा की कथा १२ तलाय-वृक्ष के कोटर मे हुए तपस्वी मुनि की कथा १३ किण्णे-चावलो के मर्दन मे स्थित पुरुष की कथा १४ सुसुकेय-आराधना ग्रन्थ मे कथित शुशुमार सरोवर सबधी कथा १५ अवरकके-अवरकका नामक पत्तनपुर मे उत्पन्न होने वाले अञ्जन

चोर की कथा १६ णदीफल-अटवी मे स्थित, बुभुक्षा से पीड़ित धन्वतरि, विश्वानुलोम, और भृत्य के द्वारा लाये हुए किपाक फल की कथा १७ उदकनाथकथा ८१ मडूककथा- जातिस्मरण होने वाले मेढक की कथा १९ पुडरीगो-पुडरीक नामक राजपुत्री की कथा।

अथवा

गुणजीवापज्जत्ती, पाणा सण्णाय मग्गणाओ य ।
एउणवीसा एदे, णाहज्झाणा मुणेयव्वा ।।१।।

गुणस्थान १४, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, सज्ञा और मार्गणा ये १९ प्रकार के नाथाध्ययन समझना चाहिये।

अथवा

णवकेवलद्धीओ, कम्मक्खयजा हवंति दसचेव ।
णाहज्झाणाएदे, एउणवीसा वियाणाहि ।।२।।

घातिया कर्मो के क्षय से होने वाले दस अतिशय तथा नव प्रकार की लब्धि सबधी जिनवाणी का यथासमय अध्ययन करना। इस प्रकार १९ नाथाध्ययनो मे, असमाधि के २० स्थानो मे। रत्नत्रय मे स्थित आराधक मुनि के चित्त मे किसी भी प्रकार की आकुलता का न होना समाधि है, इससे विपरीत अर्थात् रत्नत्रय की आराधना मे विक्षिप्त चित्त का रखना असमाधि है। असमाधि के २० स्थान है—

१. **डवडवचर**—ईर्यासमिति से रहित चलना।

२. **अप्पमज्जिय**—बिना देखे-शोधे शौचादि के उपकरणो को रखना या उठाना।

३. **रादीणीयपडिहासी**—अपने से एक रात्रि भी दीक्षा मे बड़ा है, उसके बीच मे बोलना या उसका तिरस्कार करना।

४. **अधिसेज्जाणं**—अपने से दीक्षा मे बड़े है उनके अथवा गुरु के मस्तक पर सोना।

५. **कोही**—गुरु के वचनो पर क्रोध करना।

६. **थेरविवादं तराए**—जहाँ अपने से बड़े गुरु आदि बोल रहे हो वहाँ बीच मे बोलना।

७. **उवघादं**—दूसरो का तिरस्कार करके बोलना।

८. **अणणुवीचि**—वीतराग प्रणीत शास्त्र के विरुद्ध बोलना।

९. **अधिकरणी**—स्वबुद्धि से आगम विरुद्ध तत्त्व का कथन करना।

१०. **पिट्ठिमास-पडिणीओ**—पीठ का मास खाना अर्थात् पीठ पीछे किसी की चुगली करना।

११. **असमाहि कलहं**—एक की बात दूसरे को कहकर झगड़ा पैदा कर देना।

१२. **झंझा**—थोड़ी-थोड़ी कलह करके शेष करना।

१३. **सद्दकरेपढिदा**—सबकी ध्वनि का तिरस्कार करके स्वय बड़े जोर-जोर से पढना जिससे दूसरे अपना पाठ भूल जाये।

१४. **एषणासमिति**—एषणा समिति रहित आहार करना।

१५. **सूरधमाण भोजी**—जिस भोजन से प्रमाद आवे ऐसे गरिष्ठ भोजन का सेवन करना।

१६. **गणांगणिगो**—बहुत अपराध करने वाला अर्थात् एक गण से दूसरे गण मे निकाल देने वाला अपराध करना।

१७. **सरक्खरावदे**—धूलि से भरे हुए पैरो से जल मे प्रवेश करना और गीले पैरो से धूलि मे प्रवेश करना।

१८. **अप्पमाण भोजी**—अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा खाना।

१९. **अकाल सज्झाओ**—अकाल मे स्वाध्याय करना।

२०. **अदिट्ठ**—बिना देखे इधर-उधर देखकर गमन करना।

२१ प्रकार के सबल में—पचरस, पचवर्ण, दो गन्ध, आठ स्पर्श तथा जिन्होने परिवार के लोगो को छोड़ दिया है उन पर स्नेह करना—ये २१ सबल है—

पंचरस पंचवण्णा दो गंधा अट्ठफासगण भेया।
विरदि-जण राग सहिदा इगिवीसा सबल किरियाओ।।

२३ प्रकार के सूत्रकृताग दूसरे अग के अधिकारो मे—

समए वेदालिझे एत्तो उवसग्ग इत्थि परिणामे ।
णिरयतर वीर थुदी, कुसीलपरिभासिए विरिये ।।१।।
धम्मो य अग्ग मग्गे, समोवसरणं तिकागथहिदे ।
आदा तदित्थगाथा, पुडरिको किरियठाणे य ।।२।।
आहारय परिणामे पच्चक्खाणा-णगार गुणकित्ति ।
सुद अत्था णालदे सुद्दयडज्झाणाणि तेवीसं ।।३।।

१. **समए**-समयाधिकार—जिसमे स्वाध्याय के योग्य तीन काल का प्रतिपादन किया हो।

२. **वेदालिझे**-वेदलिगाधिकार—जिसमे तीन लिगो (स्त्री-पुरुष-नपुसक) का वर्णन हो।

३. **उवसग्ग**-उपसर्गाधिकार—जिसमे चार प्रकार के उपसर्गो का निरूपण है।

४. **इत्थिपरिणामे**—स्त्रीपरिणाम अधिकार—स्त्रियो के स्वभाव का वर्णन करता है।

५. **णिरयतर**—नरकान्तर अधिकार—नरकादि चतुर्गतियो का वर्णन करता है।

६. **वीरथुदी**—वीर स्तुति अधिकार—२४ तीर्थकरो के गुणो का वर्णन करता है।

७. **कुसील परिभासिए**—कुशील परिभाषा अधिकार—कुशील आदि ५ प्रकार के पार्श्वस्थ साधुओ का वर्णन करता है।

८. **विरिए**—वीर्याधिकार—जीवो की तरतमता से वीर्य का वर्णन करता है।

९. **धम्मो य**—धर्माधिकार—धर्म और अधर्म के स्वरूप का वर्णन करता है।

१०. **अग्ग**—अग्राधिकार—श्रुत के अग्रपदो का वर्णन करता है।

११. मग्गे—मार्गाधिकार—मोक्ष और स्वर्ग के स्वरूप तथा कारण का वर्णन करता है।

१२. समोवसरण—समवसरणाधिकार—२४ तीर्थकरो के समवशरण का वर्णन करता है।

१३. तिकालगथहिदे—त्रिकालग्रथ का अधिकार—त्रिकालगोचर अशेष परिग्रह के अशुभ का वर्णन करता है।

१४. आदा—आत्माधिकार—जीव के स्वरूप का वर्णन करता है।

१५. तदित्थगाथा—तदित्थगाथाधिकार—तदित्थगाथाधिकारवाद के मार्ग का प्ररूपण करता है।

१६. पुंडरिका—पुडरीक अधिकार—स्त्रियो के स्वर्गादि स्थानो मे स्वरूप का वर्णन करता है।

१७. किरियठाणेय—क्रियास्थानाधिकार—तेरह प्रकार की क्रिया स्थानो का वर्णन करता है।

१८. आहारय परिणामे—आहारक परिणाम अधिकार—सर्वधान्यो के रस और वीर्य के विपाक को तथा शरीर मे व्याप्त सात धातुओ के स्वरूप का वर्णन करता है

१९. पच्चक्खाग—प्रत्याख्यानअधिकार—सर्वद्रव्य के विषय से संबध रखने वाली वृत्तियो का वर्णन करता है।

२०. अणगार गुणकित्ति—अनगार गुण कीर्तन अधिकार—मुनियो के गुणो का वर्णन करता है।

२१. सुद—श्रुताधिकार—श्रुत के माहात्म्य का वर्णन करता है।

२२. अत्थ अर्थाधिकार—श्रुत के फल का वर्णन करता है।

२३. णालंदे—नालदाधिकार—ज्योतिषीदेवो के पटल का वर्णन करता है।

२४ प्रकार के सूत्र अध्ययन— सूत्रकृत अध्ययन से २३ संख्या वाले हैं। द्वितीय अग मे श्रुतवर्णन के अधिकार के अन्वर्थ सज्ञा वाले हैं। इनके अकाल अध्ययनादि के विषय मे, मै प्रतिकमण करता हूँ।

२५ तीर्थंकरो मे— २४ तीर्थकर देवो की यथाकाल वदनादि करना चाहिये, यदि उसका पालन नही किया हो तो इन दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ।

२६ प्रकार की भावनायें— २४ प्रकार की भावनाओ मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

२७ प्रकार क्रियाओ में— २५ क्रियाओ मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

२६ प्रकार की पृथ्वियों में—

रुचिरा सोलस-पडला, सत्तसु पुढवीसु होंति पुढवीओ।
अवसप्पिणीए सुद्धा, खराय उवसप्पिणीयदु।।

१ सौधर्म स्वर्ग से लेकर सिद्धशिला पर्यत रुचिरा नाम की एक पृथ्वी है। भरत और ऐरावत की भूमि अवसर्पिणी काल मे शुद्धा नाम की पृथ्वी कही जाती है और वही उत्सर्पिणी काल मे खरा नाम से कही जाती है। रत्नप्रभा भूमि के खर भाग मे पिण्ड रूप से एक-एक हजार योजन के परिमाण वाली निम्नलिखित भूमियाँ है—१ चित्रा पृथ्वी २ वज्र पृथ्वी ३ वैडूर्यपृथ्वी ४ लौहिताक पृथ्वी ५ मसार गध पृथ्वी ६ गोमेध पृथ्वी ७ प्रवाल पृथ्वी ८ ज्योति पृथ्वी ९ रसाजन पृथ्वी १० अजनमूल पृथ्वी ११ अक पृथ्वी १२ स्फटिक पृथ्वी १३ चदन पृथ्वी १४ पृथ्वी १५ बकुल पृथ्वी १६ शिलामय पृथ्वी, पकभाग मे ८४ हजार योजन प्रमाण, वाल वचक पृथ्वी तथा इसी भूमि के अब्बहुल भाग मे ८० हजार परिमाण वाली "रत्नप्रभा" नामकी पृथ्वी है और आकाश के नीचे ६ नरको की भूमियाँ है कुल २६ पृथ्वियाँ है।

२७ प्रकार के अनगार गुण— १२ भिक्षु प्रतिमा, ८ प्रवचन मातृकाएँ, क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग और द्वेष के अभाव रूप प्रवृत्ति मे (ये २७ मुनियो के गुण हैं)।

२८ प्रकार के मूलगुणों में

२९ प्रकार के पाप सूत्रों में— १ चित्रकर्मादिसूत्र-चित्रकार आदि के शास्त्र, २ गणित सूत्र, ३ चाटुकार सूत्र, ४ वैद्यक सूत्र, ५ नृत्य सूत्र ६ गान्धर्व सूत्र ७ पटह सूत्र ८ अगद सूत्र ९ मद्य सूत्र १० द्यूत सूत्र

११. राजनीति सूत्र, १२ चतुरंग सूत्र, १३-२१ हाथी, घोड़ा, पुरुष, स्त्री, छत्र, गाय, तलवार, दण्ड, अंजन, इनके लक्षण बताने वाले सूत्र।

२२ **व्यञ्जन सूत्र**— किसी के शरीर पर तिल, मसा, लशन आदि देखकर शुभाशुभ कहना व्यजन सूत्र है।

२३. **स्वर सूत्र**—किसी पशु-पक्षी की आवाज सुनकर शुभाशुभ कहना स्वर निमित्त है।

२४. **अंग सूत्र**— किसी स्त्री अथवा पुरुष के नाक, कान आँख, अँगुली आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अग निमित्त है।

२५. **लक्षण सूत्र**—शरीर मे होने वाले ध्वजा आदि को देखकर शुभाशुभ कहना लक्षण निमित्त है।

२६. **छिन्न सूत्र**—वस्त्र को कटा हुआ, चूहे आदि द्वारा खाया हुआ, जला हुआ, स्याही आदि से भरा हुआ देखकर शुभाशुभ कहना छिन्न निमित्त है।

२७ **भौम सूत्र**—पृथ्वी को देखकर—"यहाँ धन है, यहाँ खारा पानी है, यहाँ मीठा पानी है" आदि कहना भौम निमित्त है।

२८. **स्वप्न सूत्र**—स्वप्न का शुभाशुभ फल कहना स्वप्न निमित्त है।

२९. **अन्तरिक्ष सूत्र**—सूर्य चन्द्र, नक्षत्र आदि के उदय, अस्त या आकृति आदि को देखकर शुभाशुभ कहना अन्तरिक्ष निमित्त है। ये २९ पाप सूत्र हैं। अथवा

अट्ठारस य पुराणो, सडंग विण्णास लोयणाणं तु।
बुद्धाई पंच समया परूवणा जासुदे लोए।।

१८ पुराण, लोगो के छह अगो के विन्यास का वर्णन तथा बुद्धि के समय की प्ररूपणा जिनमे हो ऐसे शास्त्र, इनके भेद पाँच हैं।

३०. तीस प्रकार के मोहनीय स्थान—१४ प्रकार के अन्तरंग परिग्रह हिरण्य सुवर्णादि और बहिरंग १० प्रकार का परिग्रह रूप मिथ्यात्वादिभाव तथा पाँच इन्द्रिय और छठे मन से मोह जनित सबध रखने के कारण १०+१४+५+१=३०।

३१. ३१ प्रकार के कर्मो के विपाक में—ज्ञानावरणी के ५ भेद दर्शनावरणी के ९, वेदनीय के २, मोहनीय २, आयु के ४, नामकर्म के २ भेद (शुभ-अशुभ) गोत्र के २, अन्तराय के ५ सब मिलाकर ज्ञानावरणादि आठो कर्मो सबधी ३१ भेद।

३२. बत्तीस प्रकार के जिनोपदेश—

आवास मगपुव्वा, छब्बारस चोदसा य ते कमसो।
बत्तीस इमे णियमा, जिणोवएसा मुणेयव्वा।।

छह आवश्यक, बारह अग, चौदह पूर्व इस प्रकार सब मिलाकर ६+१२+१४=३२ प्रकार का जिनोपदेश है।

३३. ३३ प्रकार की आसादना--

पचेव अत्थिकाया, छज्जीवणिकाय महव्वया पंच।
पवयण मादु पदत्था, तेत्तीसाच्चासणाभणिया।।२।।

पॉच प्रकार के अस्तिकाय, छह प्रकार के जीवो के निकाय, पॉच महाव्रत, आठ प्रवचन माता और जीवादि नौ पदार्थ सबधी अनादर की भावना= ५+६+५+८+९ सब मिलाकर ३३ आसादना होती है।

हे प्रभो! इस प्रकार मेरे द्वारा सक्षेप मे जीवो की अत्यासादना, अजीवो की अत्यासादना, ज्ञान की अत्यासादना, दर्शन की अत्यासादना, चारित्र की अत्यासादना, तप की अत्यासादना, वीर्य की अत्यासादना मे उन सबके प्रति पहले दुश्चरित का आचरण मैने किया हो, मै दूसरो की साक्षीपूर्वक उसकी गर्हा/निन्दा करता हूँ। भूत-भविष्य, वर्तमान मे होने वाले पापो का प्रतिक्रमण करता हूँ। आगे होने वाले पापो का प्रत्याख्यान करता हूँ। अविवेकी होने से मैने आज तक जिन पापो/दोषो की गर्हा न की हो उनकी गर्हा करता हूँ। जिन पापो की निन्दा न की उनकी निन्दा करता हूँ। जिन दोषो की गुरु समीप आलोचना नही की उनकी गुरुसाक्षी मे आलोचना करता हूँ। मै अब दोषो का परित्याग कर आराधना को स्वीकार करता हूँ, व्रत की विराधना का प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन्! रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ मे मेरे द्वारा कोई भी अतिचार, अनाचार रूप दोष हुए हो, तत्सबधी मेरे समस्त पाप आज मिथ्या हो,

निष्फल हो। मै अपने पापो का प्रक्षालन, निराकरण करने के लिये ही प्रतिक्रमण करता हूँ।

इस प्रकार उपर्युक्त एक से तैतीस सख्या पर्यन्त अपने व्रतो मे होने वाली समस्त अत्यासादनाओ सबधी दोषो की निदा, गर्हा, आलोचना करता हूँ। मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

भावार्थ—इस प्रकार उपर्युक्त प्रकार से एक से तैतीस सख्या पर्यन्त अपने व्रतो मे होने वाले अत्यासना आदि रूप दोष की मै निदा, गर्हा, आलोचना करता हूँ मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

इच्छामि भंते ! इमं णिग्गथं पवयण अणुत्तर केवलिय, पडिपुण्ण, णेगाइय, सामाइय, ससुद्ध, सल्लघट्टाण, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्ग, सेढिमग्ग, खतिमग्ग, मुक्तिमग्ग, पमुत्तिमग्ग, मोक्खमग्ग, पमोक्खमग्गं, णिज्जाणमग्ग, णिव्वाणमग्ग, सव्व-दुक्खपरिहाणि-मग्गं, सुचरिय-परिणिव्वाण-मग्ग, अवित्तह, अविसति-पवयणं, उत्तम त सद्दहामि, तं पत्तियामि, त रोचेमि, त फासेमि, इदोत्तरं अण्णं णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चंति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाण मंतं-करेंति, पडि-वियाणंति, समणोमि, संजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहि-णियडि-माण-माय-मोस-मूरण मिच्छाणाण-मिच्छा-दंसण-मिच्छाचरित्तं च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त च रोचमि, जं जिणवरेहि पण्णत्तं, इत्थ मे जो कोई राइओ (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (इम णिग्गथ) इस निर्ग्रंथ लिग की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (इम णिग्गथ) यह बाह्य आभ्यतर परिग्रह से निर्ग्रंथ लिग (पवयण) प्रवचन है अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का साक्षात् कारण आगम मे कहा है। (अणुत्तर) यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रंथ लिग से भिन्न दूसरा और कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नही है (केवलिय) केवली सबधी है अर्थात् केवली भगवान् द्वारा कथित है (पडिपुण्ण) परिपूर्ण है अर्थात् कर्मो का क्षय करने मे कारणभूत होने से परिपूर्ण है (णेगाइय) नैकायिक है अर्थात् परिपूर्ण रत्नत्रय के निकाय से सम्बन्ध

रखने वाला है (सामाइय) सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से निर्ग्रंथ लिग ही सामायिक है (ससुद्ध) सशुद्ध है अर्थात् अतिचार रहित आलोचनादि प्रायश्चित्त से विशुद्ध होने के कारण शुद्ध है (सल्लघट्टाण) माया-मिथ्या-निदान आदि शल्य से दुखी जीवो की (सल्लघत्ताण) माया-मिथ्या-निदान आदि शल्यो का नाश करने वाला है (सिद्धिमग्ग) सिद्धि का मार्ग है अर्थात् स्वात्मोपलब्धि का मार्ग है (सेढिमग्ग) उपशम और क्षपक श्रेणी का मार्ग है (खतिमग्ग) शान्ति और क्षमा का मार्ग है (मुत्तिमग्ग) मुक्ति का मार्ग है (पमुत्ति मग्ग) उत्कृष्ट रूप से तिल-तुष-मात्र परिग्रह का त्याग, परम निस्पृह भाव स्वरूप है (मोक्खमग्ग) मोक्षमार्ग है, (पमोक्खमग्ग) अरहत, सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है (णिज्जाणमग्ग) निर्याणमार्ग अर्थात् चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है (णिव्वाणमग्ग) निर्वाण का मार्ग है (सव्वदुक्खपरिहाणिमग्ग) सर्व दुख-शारीरिक, मानसिक आदि के नाश का मार्ग है (सुचरियपरिणिव्वाणमग्ग) सामायिक आदि शुद्ध चारित्र की पूर्णता द्वारा एक-दो भव मे निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग है (अवित्तह) मोक्षार्थी जीवो को मोक्ष प्राप्ति निर्ग्रंथलिग से ही होती है इसमे कोई विवाद भी नही है (अविसति) मोक्षार्थी इस निर्ग्रंथ लिग का आश्रय लेते है (पवयण) यह निर्ग्रंथ लिग सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत है (त उत्तम) उस उत्तम निर्ग्रंथ लिग का (सद्दहामि) मै श्रद्धान करता हूँ (त पत्तियामि) उस निर्ग्रंथ लिग को मै प्राप्त होता हूँ (त) उस निर्ग्रंथलिग की (रोचेमि) रुचि करता हूँ (त) उस निर्ग्रंथ लिग का (फासेमि) स्पर्श करता हूँ। (इदोत्तर) 'इस निर्ग्रंथ लिग से बढकर (अण्ण) अन्य कोई मोक्ष का हेतु (णत्थि) वर्तमान मे नही है (ण भूद) भूतकाल मे नही था (ण भविस्सदि) न भविष्य काल मे होगा (णाणेण) ज्ञान से (वा) अथवा (दसणेण) दर्शन से (वा) अथवा (चरित्तेण) चारित्र से (वा) या (सुत्तेण) सर्वज्ञ प्रणीत आगम से, क्योकि श्रुत/आगम निर्ग्रंथ लिग का ज्ञापक या कारण होने से (वा) अथवा (इदो) इस निर्ग्रंथ लिग से (जीवा) जीव (सिज्झति) आत्मस्वरूप को प्राप्त कर सिद्ध अवस्था को प्राप्त होते हैं (बुज्झति) वीतरागता की वृद्धि के कारण मुनि अवस्था प्राप्त कर जीवादि तत्त्वो के विशेष ज्ञान को प्राप्त करते है (मुचति) सपूर्ण कर्मो से मुक्त हो जाते है

(परिणिव्वाणयति) पूर्ण निर्वाण को प्राप्त सुखी या कृतकृत्य हो जाते हैं (सव्वदुक्खाणमत करेति) शारीरिक, मानसिक व आगन्तुक सभी प्रकार के दुखो का अन्त करते हैं (परिवियाणति) इस निर्ग्रथ लिग के द्वारा ही सम्पूर्ण पदार्थो को जानते है (समणोमि) मै मुनि/श्रमण होता हूँ (सजदोमि) मै सयत होता हूँ अर्थात् मै प्राणी सयम व इन्द्रिय सयम मे तत्पर होता हूँ (उवरदोमि) उपरत होता हूँ अर्थात् विषय भोगो से विरक्त होता हूँ (उवसतोमि) उपशातभाव अर्थात् राग-द्वेष आदि भावो से उपशान्त होता हूँ (उवहि) उपधि/परिग्रह (णियडि) निकृति/वचना (माण) मान (माय) माया/कुटिलता (मोस) असत्य भाषण (मूरण) मूर्च्छा (मिच्छाणाण) मिथ्याज्ञान (मिच्छादंसण) मिथ्यादर्शन (च) और (मिच्छाचरित्त) मिथ्याचारित्र इनसे (पडिविरदोमि) विरक्त होता हूँ (सम्मणाण) सम्यक्ज्ञान (सम्मदसण) सम्यग्दर्शन (च) और (सम्मचरित्त) सम्यक्चारित्र मे (रोचेमि) श्रद्धान करता हूँ (जिणवरेहि पण्णत्त ज) जिनेन्द्र देव के कहे गये जो तत्त्व है उनका ही श्रद्धान करता हूँ (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (राइओ-देवसिओ) रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ मे (जो कोई) जो भी कोई (अइयारो) अतिचार (अणायारो) अनाचार हुए हो (तस्स मे) तत्सबधी मेरे (दुक्कड मिच्छा) दुष्कृत/समस्त पाप मिथ्या हो, निष्फल हो।

पडिक्कमामि भंते ! सव्वस्स, सव्वकालियाए, इरियासमिदीए, भासा-समिदीए, एसणा-समिदीए, आदाण-निक्खेवण-समिदीए, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइ-ट्ठावणि-समिदीए, मण-गुत्तीए, वचि-गुत्तीए, काय-गुत्तीए, पाणा दिवादादो—वेरमणाए, मुसावादादो-वेरमणाए, अदिण्ण-दाणादो-वेरमणाए, मेहुणादो-वेरमणाए, परिग्गहादो-वेरमणाए, राइभोयणादो-वेरमणाए, सव्व-विराहणाए, सव्व-धम्म-अइक्कमणदाए, सव्व-मिच्छा-चरियाए, इत्थ मे जो कोई राइयो (देवसिओ) अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (सव्वस्स) सम्पूर्ण (अइयारो) अतिचारो का (सव्वकालियाए) सार्वकालिक अर्थात् सम्पूर्ण काल मे होने वाली (इरियासमिदीए) ईर्या समिति मे (भासा-समिदीए) भाषा समिति मे (एसणासमिदीए) एषणा समिति मे (आदाणणिक्खेवणसमिदीए) आदान-निक्षेपण समिति मे (उच्चारपस्सवणखेलसिहाणयवियडिपइट्ठावण समिदीए) मल-मूत्र, खँखार, नासिका मल, शरीर मल आदि के निक्षेपण

लक्षण प्रतिष्ठापन समिति मे (मण गुत्तीए-वचि गुत्तीए-काय गुत्तीए) मनो गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति मे (पाणादिवादादो वेरमणाए) प्राणातिपात से विरक्ति रूप अहिसा महाव्रत मे (मुसावादादो वेरमणाए) असत्य भाषण से विरक्ति रूप सत्य महाव्रत मे (अदिण्णादाणादो वेरमणाए) अदत्तादान से विरक्त रूप अचौर्य महाव्रत मे (मेहुणादो वेरमणाए) मैथुन से विरक्ति रूप ब्रह्मचर्य महाव्रत मे (परिग्गहादो वेरमणाए) परिग्रह से विरक्त रूप अपरिग्रह महाव्रत मे (राई भोयणादो वेरमणाए) रात्रिभोजन से विरक्त रूप षष्ठम रात्रिभोजन अणुव्रत मे (सव्वविराहणाए) सब एकेन्द्रियादि जीवो की विराधना मे (सव्वधम्म अइक्कमणदाए) सर्वधर्मो का अतिक्रमण किया हो अर्थात् जो आवश्यक कार्य जिस काल मे करना बतलाये हैं उनका उल्लघन करने मे (सव्वमिच्छाचरियाए) मिथ्या आचार का सेवन किया हो (इत्थ) इस प्रकार (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो भी कोई (राइयो-देवसिओ) रात्रिक-देवसिक क्रियाओ मे (अइयारो-अणायारो) अतिचार अनाचार हुए हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो, निष्फल हो। इसलिए (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

हे भगवन् ! तेरह प्रकार चारित्र की आराधना मे लगे अतिचार अनाचार रूप दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

इच्छामि भते ! पडिक्कमणादिचारमालोचेउ जो मे राइओ (देवसिओ) अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समणीओ, णाणे, दंसणे, चरित्ते, सुत्ते सामाइए, पंचण्ह महव्वयाणं, पंचण्हं समिदीणं, तिण्ह गुत्तीणं, छण्ह जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाण, विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिएण वा, णिस्सासिएण वा, उम्मिसिएण वा, णिम्मिसिएण वा, खासिएण वा, छिक्किएण वा, जंभाइएण वा, सुहुमेहिं-अग-चलाचलेहिं दिट्ठि-चलाचलेहिं, एदेहिं सव्वेहिं [1]आयरेहिं, असमाहि-पत्तेहि, जाव अरहंताणं, भयवताण, पज्जुवासं करेमि, ताव काय पाव कम्म दुच्चरियं वोस्सरामि।

---

१ धर्मध्यान दीपको मे "एदेहिं सव्वेहि असमाहि पत्तेहि आयरेहि' पाठ छपा हुआ है, किन्तु "प्रतिक्रमण ग्रन्थत्रयी ' मे एदेहि सव्वेहि (एतै प्रागुक्तै सर्वै) आयारेहि (आचारैर्व्यापारैर्य कश्चिद्दोषो जात) पाठ है जो प्रसगानुसार होने से ठीक मालूम होता है।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (पडिक्कमणादिचारमालोचेउ) मैं प्रतिक्रमण सम्बन्धी अतिचार की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ । (मे) मेरे द्वारा (जो कोई) जो कोई (राइयो-देवसिओ) रात्रिक-दैवसिक क्रियाओ मे (अइचारो-अणायारो) अतिचार-अनाचार (आभोगो-अणाभोगो) आभोग-अनाभोग (काइयो-वाइओ-माणसिओ) कायिक-वाचनिक-मानसिक (दुच्चिंतीओ) दुश्चितवन किया हो (दुब्भासिओ) दुर्वचनो का उच्चारण किया हो (दुप्परिणामीओ) मानसिक दुष्परिणाम किये हो (दुस्समणीओ) खोटे स्वप्न देखे हो या खोटा आचारण किया हो (णाणे) ज्ञान मे (दसणे) दर्शन मे (चरित्ते) चारित्र मे (सुत्ते) आगम मे (सामाइए) समताभावरूप सामायिक मे (पचण्ह महव्वयाण) पाच महाव्रत (पचण्ह समिदीण) पाच समिति (तिण्ह गुत्तीण) तीन गुप्ति (छण्ह जीवणिकायाण) छह प्रकार के जीवनिकाय (छण्ह आवासयाण) छह आवश्यक—सबकी (विराहणाए) विराधना की हो (अट्ठविहस्स कम्मस्स) आठ प्रकार के कर्मो का (णिग्घादणाए) निर्घातन अर्थात् नाश करने वाली क्रियाओ के प्रयत्न करने मे जो दोष लगे हो (अण्णहा) अन्य भी दोष लगे हो यथा- (उस्सासिदेण) उच्छ्वास से (वा) अथवा (णिस्सासिदेण) निश्वास से (वा) अथवा (उम्मिसिएण) उन्मेष अर्थात् ऑखो के खोलने से (वा) अथवा (णिम्मिसेण) निमेष अर्थात् ऑखो को बन्द करने से (वा) अथवा (खासिएण) खॉसी लेने से (वा) अथवा (छिकिएण) छीक लेने मे (वा) अथवा (जभाइएण) जभाइ लेने मे (वा) अथवा (सुहुमेहिं) सूक्ष्म रूप से (अङ्गचलाचलेहि) अगो के चलाचल करने मे (दिट्ठिचलालेहि) ऑखो के चलाचल करने मे (एदेहि सव्वेहि) इन सब क्रियाओ मे (असमाहिपत्तेहि) असमाधि को प्राप्त हुआ हूँ (आयारेहि) आचार व्यवहार मे दोष लगा हो, उन सबको दूर करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूँ । (जाव) जब तक (अरहताण) अरहत भगवान् की (भयवताण) सातिशय ज्ञानधारी पूज्य केवली भगवन्तो की (पज्जुवास) पर्युपासना करता हूँ (तावकाल) तब-तक अर्थात् उतने काल पर्यन्त हे भगवन् ! (पावकम्म) पापकर्मो को (दुच्चरिय) दुश्चरित्र को/दुर्गति मे ले जाने वाली कुचेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोड़ता हूँ ।

वद-समि-दिदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदतवण, ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाण जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोह ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होउ मज्झं

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियाया कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेत श्री निष्ठितकरण-वीर भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम् ।

अन्वयार्थ—(अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थ) अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये (रात्रिक–दैवसिक) रात्रिक–दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियायाम्) प्रतिक्रमण क्रिया मे (कृतदोष-निराकरणार्थ) किये गये दोषो का निराकरण करने के लिये (पूर्वाचार्यानुक्रमेण) पूर्व आचार्यो के अनुसार (सकलकर्मक्षयार्थ) सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने के लिये (भाव-पूजा वन्दना-स्तव-समेत) भाव पूजा, वन्दना और स्तवन सहित (निष्ठितकरण) निष्ठितकरण (वीरभक्ति कायोत्सर्ग) वीर भक्ति के कायोत्सर्ग को (अहम्) मै (करोमि) करता हूँ ।

(इति प्रतिज्ञाप्य) ऐसी प्रतिज्ञा करके

दिवसे १०८ रात्रौ च ..... चतुर्विंशतिस्तवं पठेत्) ।

अर्थ—इस प्रकार प्रतिज्ञा करके दिन मे १०८ तथा रात्रि मे ५४ उच्छ्वासो मे "णमो अरहताण" इत्यादि पढकर कायोत्सर्ग करना चाहिये एव तत्पश्चात् थोस्सामि करना चाहिये ।

यः सर्वाणि चराचराणि विधि-वद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवतः सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत्-प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।।१।।

अन्वयार्थ—(य) जो (सर्वाणि) सम्पूर्ण (चर-अचराणि) चेतन और अचेतन (विधिवत्) स्वरूपानुसार उनकी (द्रव्याणि) द्रव्यो को (तेषा) और उनके (गुणान्) समस्त गुणो को (भूतभाविभवत) भूत-भावी और

वर्तमान (सर्वान् पर्यायान्) सम्पूर्ण पर्यायो को (सदा) हमेशा (सर्वदा) सर्वकाल मे (प्रतिक्षण) प्रति समय मे (युगपत्) एकसाथ (जानीते) जानते है (अत) इसलिये (सर्वज्ञ) वे सर्वज्ञ (इति) इस प्रकार (उच्यते) कहे जाते हैं (तस्मै) उन (सर्वज्ञाय) सर्वज्ञ (जिनेश्वराय) जिनेश्वर (महते वीराय) पूज्य महावीर भगवान के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—त्रिकालवर्ती चेतन-अचेतन द्रव्य व उनकी सब पर्यायो को जो युगपत् जानते है उन महापूज्य वीर जिनके लिये नमस्कार है।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो वीरं बुधाः संश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नमः ।
वीरात् तीर्थ-मिदं प्रवृत्त-मतुल वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्री-द्युति-काति-कीर्ति-धृतयो, हे वीर ! भद्रं त्वयि ।।२।।

अन्वयार्थ—(वीर) वीर भगवान् (सर्व सुर असुरेन्द्र महित) सभी सुर/देव और असुर तथा इन्द्रो से पूजित हैं (वीर) वीर प्रभु को (बुधा) ज्ञानी जन (सश्रिता) आश्रय करते है (स्वकर्मनिचय) अपने कर्म समूह को (वीरेण) जिन वीर भगवान् के द्वारा (अभिहत) नष्ट कर दिया गया है (वीराय) उन वीर प्रभु के लिये (भक्त्या) भक्ति से (नम) नमस्कार हो। (वीरात्) वीर प्रभु से ही (इदम्) यह (अतुल) अनुपम, अतुल (तीर्थ) तीर्थ (प्रवृत्त) प्रवृत्त हुआ है (वीरस्य) वीर भगवान् का (तपो) तप (घोर/वीर) उत्कृष्ट है (वीरे) वीर भगवान् मे (श्री) अन्तरग अनत चतुष्टय और बाह्य समवशरणादि लक्ष्मी (द्युति कान्ति कीर्तिधृतय) तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान हैं (हे वीर!) हे वीर भगवान् (त्वयि) आप मे (भद्र) कल्याण निहित है अर्थात् हे वीर भगवान्! आप ही कल्याणकारी है।

इस श्लोक मे कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बध, अधिकरण और सबोधन आठो विभक्तियो का प्रयोग करते हुए वीर भगवान् की सुन्दर अलकार पूर्ण स्तुति की गई है।

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्यम्, ध्यान-स्थिताः सयम-योग-युक्ताः ।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके, संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ।।३।।

अन्वयार्थ—(ये) जो भव्य पुरुष (ध्यान स्थिता) ध्यान मे स्थित होकर (सयमयोगयुक्ता) सयम सहित योग से युक्त होते हुए (नित्य) प्रतिदिन/हमेशा (वीर पादौ) वीर भगवान् के दोनो चरण-कमलो को (प्रणमन्ति) नमस्कार करते है (ते) वे भव्य पुरुष (लोके) ससार मे (हि) निश्चित रूप से (वीतशोका) शोक मुक्त/शोक रहित (भवन्ति) होते है (विषम) विषम (ससार दुर्गम्) ससाररूपी अटवी को (तरति) तिर जाते है अर्थात् पार कर मुक्त हो जाते है।

भावार्थ—इस श्लोक मे वीर भगवान् को नमस्कार करने का फल और पूजक का लक्षण चित्रित किया है। "सयम सहित वीरप्रभु की भक्ति करने वाला मुक्ति को प्राप्त होता है।"

व्रत-समुदय-मूलः संयम-स्कध-बधो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धितः शील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगंधिः सत्-तपश्चित्र-पत्र. ।।४।।
शिव-सुख-फल-दायी यो दया-छाय-योघः,
शुभ-जन-पथिकानां खेद-नोदे समर्थः ।
दुरित-रविज-ताप प्रापयन्नन्तभावम्,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ।।५।।

अन्वयार्थ—(व्रत समुदयमूल) व्रतो का समूह जिसकी जड़ है (सयमस्कन्धबन्धो) सयम जिसका स्कन्ध बन्ध है (यम नियमपयोभि) यम और नियमरूपी जल के द्वारा जो (वर्द्धित) वृद्धि को प्राप्त है (शीलशाख) १८ हजार शील जिसकी शाखाएँ है (समितिकलिक भार) पाँच समिति रूप कलिकाएँ भार है (गुप्ति गुप्तप्रवाल) तीन गुप्तियाँ जिसमे गुप्त कोपल है (गुणकुसुमसुगधि) ८४ लाख उत्तरगुण व २८ मूलगुण जिसके पुष्पो की सुगन्धि है (सत्तप) समीचीन तप (चित्रपत्र) चित्र-विचित्र पत्ते है। (य) जो (शिवसुखफलदायी) मोक्षरूपी फल को देने वाला है (दयाछायया ओघ) दयारूपी छाया समूह से युक्त है (शुभजनपथिकाना) शुभोपयोग मे दत्तचित्त पथिको या भव्य जनो के (खेदनोदे) खेद को दूर करने मे (समर्थ) समर्थ है (दुरित-रविज

ताप) पापरूप सूर्य से उत्पन्न होने वाले ताप को (अभाव) अस्त या नाश को (प्रापयन्) प्राप्त कराता हुआ (स) वह (चारित्रवृक्ष) चारित्र रूपी वृक्ष (न) हमारे (भव) ससार रूप (विभव हान्यै) नश्वर विभूति या पुण्याधीन वैभव के नाश के लिये (अस्तु) हो ॥४-५॥

भावार्थ—इस श्लोक मे चारित्ररूपी वृक्ष के परिवार का सुन्दर चित्रण है—व्रत को जिस वृक्ष की जड कहा गया है सयम को स्कध बन्ध कहा है। यम नियमरूपी पानी से सीचा जाता है शीलरूपी शाखा समिति रूपी कलिकाओ और गुप्ति रूप कोपल से युक्त है। गुण रूपी पुष्पो की जिसमे सुगधी है, तप पत्ते है, मोक्ष फल है, शुभोपयोगी पथिक/मोक्षमार्गी को निर्विघ्न भक्ति मे प्रेरित की थकान को दूर करता है, पापरूपी सूर्य का अस्त करने मे एकमात्र हेतु ऐसा चारित्रवृक्ष ससार के अन्त मे हेतु हो। जिस प्रकार वृक्ष मे जड, स्कध, शाखा, पत्ते, फूल-फल आदि होते है, जीवो को उसका लाभ मिलता है, उसी प्रकार चारित्र को यहाँ वृक्ष की उपमा दी है। और चारित्र वृक्ष के परिवार को समझाया है।

चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ।।६।।

अन्वयार्थ—(सर्वजिनै) सब तीर्थकरो के द्वारा (चारित्र) जिस चारित्र का स्वय (चरित) आचरण किया गया। (च) तथा (सर्वशिष्येभ्य) समस्त शिष्यो के लिये (प्रोक्त) जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस (पचभेद चारित्र) सामायिक, छेदोपस्थापना आदि पॉच भेद युक्त चारित्र को (पचम चारित्र लाभाय) पॉचवे यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिये (प्रणमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

धर्मः सर्व-सुखाकरो हित-करो, धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुखं धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्-नास्त्य-परः सुहृद्-भव-भृतां धर्मस्य मूलं दया,
धर्मे चित्त-महं दधे प्रतिदिनं हे धर्म ! मां पालय ।।७।।

अन्वयार्थ—(सर्वसुख आकर) सब सुखो की खानि (हितकर) हित को करने वाला (धर्म) धर्म है। (बुधा) बुद्धिमान लोग (धर्मं) धर्म को (चिन्वते) सचय करते है (धर्मेण) धर्म के द्वारा (एव) ही

(शिवसुख) मोक्ष सुख (सम् आप्यते) अच्छी तरह से प्राप्त होता है (तस्मै) इसलिये (धर्माय) धर्म के लिये (नम) नमस्कार हो। (भवभृता) ससारी प्राणियो का (धर्मात्) धर्म से (अपर) भिन्न, अन्य कोई दूसरा (सुहृद्) मित्र (न अस्ति) नही है। (धर्मस्य) धर्म की (मूल) जड (दया) दया है। (अह) मै (प्रतिदिन) प्रतिदिन/सदैव (चित्त) मन को (धर्मे) धर्म मे (दधे) लगाता हूँ। (हे धर्म !) हे धर्म (मा) मेरी (पालय) रक्षा करो।

इस श्लोक मे धर्म के साथ सातो विभक्तियो का सुन्दर प्रयोग किया है।

धम्मो मंगल-मुक्किट्ठ अहिंसा संयमो तवो।
[1]देवा वि तं णमंसंति जस्स धम्मे सया मणो।।८।।

अन्वयार्थ—(अहिसा) अहिसा (सयमो) सयम (तवो) और तप रूप (धम्मो) धर्म (मगलम्) मगल (उक्किट्ठ) कहा गया है (जस्स) जिसका (मणो) मन (सया) सदा (धम्मे) धर्म मे लगा रहता है (तस्स) उसको (देवा वि) देव भी (णमसति) नमस्कार करते है।

विश्व के समस्त धर्मो मे अहिसा, सयम और तप ये तीन सिद्धान्त सम्प्रदाय निरपेक्ष है अर्थात् विश्व के समस्त धर्मो ने अहिसा, सयम और तप की महत्ता को स्वीकार किया है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! वीर भत्ति काओसग्गोकओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचारित्त-तव-वीरियाचारेसु, जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु सव्व-मइचार सावज्ज-जोग पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोग-अज्झव-साय-ठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णा-णिदिय-कसाय-गारव-किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहा-णाणी, परि-चिंतियाणि, किण्हणील-काउ-लेस्साओ, विकहा-पालिकुंचिएण, उम्मग-हस्स-रदि-अरदि सोय-भय-दुगछ-वेयण-विज्झंभ-जम्भाइ-आणि, अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि-परिणामदाणि, अणिहुद-कर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त-बहुल-पराय-णेण, अपडि-पुण्णेण वा सरक्खरावय-

---

१ "देवा वि तस्स पणमति" पाठ मे एक अक्षर अधिक है।

परिसंघाय-पडिवत्तिएण, अच्छा-कारिद मिच्छा-मेलिद, आ-मेलिदं, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्ण, अण्णहा-पडिच्छिद, आवास-एसु-परिहीणदाए, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(भते ।) हे भगवन् । (वीरभत्ति काओसग्गोकओ तस्सालोचेउ) वीर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण सम्मदसण-सम्मचरित्त-तव-वीरियाचारेसु) ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार (जम-णियम-सजम-शील-मूलुत्तरगुणेसु) यम-नियम-सयम-शील-मूलगुण और उत्तरगुणो मे होने वाले (सव्व) समस्त (अइयार) अतिचारो व (सावज्जोग) सावद्ययोग से (पडिविरदोमि) विरत होता हूँ, त्याग करता हूँ। (असखेज्जलोगअज्झवसायठाणाणि) असख्यात लोक प्रमाण अध्यवसाय स्थान (अप्पसत्थजोगसण्णा णिदियकसायगारवक्रिरियासु) अप्रशस्तयोग, सज्ञा, इन्द्रिय, कषाय और गारव क्रियाओ मे (मणवयण कायकरणदुप्पणिहाणाणिपरिचितियाणि) मन-वचन-काय का दुष्प्रणिधान हुआ हो, या अशुभ चितन किया हो (किण्हणीलकाउलेस्साओ) कृष्ण, नील, कापोत लेश्याओ मे (विकहापालिकुचिएण) विकथा मे अनुरक्त हुआ हो (उम्मग्ग हस्सरदि अरदिसोयभयदुगछ वेयणविज्जभजभाइआणि) उन्मार्ग, हास्य, रति अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मुँहफाड़कर जँभाई लेना (अट्टरुद्दसकिलेसपरिणामाणि परिणामदाणि) आर्त्त-रौद्र रूप सक्लेश परिणाम मे परिणमित किया हो (अणिहुदकरचरणमणवयणकायकरणेन) अनिभृत/चचल हाथ-पैर-मन-वचन-काय की प्रवृत्ति करने से (अक्खित्तबहुल-परायणेण) इन्द्रिय विषयो मे अति प्रवृत्ति करने या लम्पटता होने से (अपडिपुण्णेण) अपरिपूर्णता से (वा) अथवा (सरक्खरावयपरिसघाय-पडिवत्तिएण) स्वर, अक्षर व्यञ्जन, पद और परिसघात मे अन्यथा प्रवृत्ति करने से (वा) अथवा (अच्छाकारिदं) शीघ्र उच्चारण किया हो (वा) अथवा (मिच्छा-मेलिद) मिथ्या मिलाया हो अर्थात् पदच्छेदादि सबध रहित दूसरे अक्षर मिलाकर पढ़ा हो (आमेलिद वा) अथवा अक्षरो या छन्दो को इधर-उधर मिलाकर पढा हो, जैसा "दशरामसरा" को दशरा-मसरा पढ़ना

(मेलिद वा) अथवा उच्चध्वनि से पढ़ने योग्य अक्षरो को मन्द-ध्वनि-से पढ़ा हो (अण्णहादिण्ण) अन्य प्रकार से उच्चारण किया हो (अण्णहापडिच्छद) अन्यथा सुना हो (आवासएसु) आवश्यक क्रियाओ मे (परिहीणदाए) हानि या त्रुटि (कदो) की हो (वा) अथवा (कारिदो) कराई हो (वा) अथवा (कीरतो) हीनता करने वाले की (समणुमणिदो) अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो, मेरे पाप निष्फल होवे।

वद-समि-दिदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूल-गुणा, समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तोऽहं ।।२।।

छेदोवट्ठावण होउ मज्झ

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियाया कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव समेत, चतुर्विंशति तीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—अब व्रतो मे लगे सभी अतिचारो की विशुद्धि के लिये रात्रिक-दैवसिक प्रतिक्रमण क्रियाओ मे किये गये दोषो का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यो के क्रम से सकल/सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिये भावपूजा-भाव वन्दना स्तवन सहित चौबीस तीर्थकर भक्ति के कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

इति प्रतिज्ञाप्य

अर्थ—ऐसी प्रतिज्ञा करके "णमो अरहताण" इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करना चाहिये तथा तत्पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि चतुर्विंशति स्तव का पाठ करना चाहिये।

चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति

[1]चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे।
सव्वे सगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।१।।

१ क्रियाकलाप पृ० ६७ के अनुसार।

अन्वयार्थ—(उसहाइवीरपच्छिमे) वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीर पर्यन्त (चउवीस) चौबीस (तित्थयरे) तीर्थकरो को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ। (सव्वेसि) समस्त (मुणिगणहरसिद्धे) मुनि, गणधर और सिद्धो को (सिरसा) शिर से अर्थात् शिर झुका कर (णमसामि) नमस्कार करता हूँ ॥१॥

भावार्थ—इस श्लोक मे चौबीस तीर्थकर भगवान् के साथ पचपरमेष्ठी भगवन्तो को नमस्कार किया गया है।

ये लोकेऽष्ट-सहस्र लक्षण-धरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता।
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथनाश्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकः॥
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणूतार्चितास्।
तान देवान् वृषभादि-वीर-चरमान् भक्त्या नमस्याम्यहम्॥

अन्वयार्थ—(ये) जो (लोके) लोक मे (अष्टसहस्रलक्षणधरा) एक हजार आठ लक्षणो के धारक हैं (ज्ञेयार्णवान्तर्गता) जो जीवादिक पदार्थो रूपी महासागर के पारगत है (ये) जो (सम्यक् हेतु) समीचीन कारण है (भवजालमथना) ससाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र के नाश करने के लिए (चन्द्र अर्क तेज अधिका) चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है, (साधु) गणधर-मुनिगण (इन्द्र) इन्द्र (सुर) देव (अप्सरागणशतै) तथा सैकडो अप्सराओ के समूह से (गीत प्रणूता ये) जिनकी स्तुति की गई है, नमस्कार किया गया है (अर्चिता) पूजा की गई है (तान्) उन (वृषभादिवीर चरमान्) वृषभनाथजी को आदि ले अन्तिम महावीर पर्यन्त (देवान्) २४ तीर्थंकर देवो को (अहं) मैं (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (नमस्यामि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—इस श्लोक मे मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र को भवजाल कहा है तथा उस जाल के नाशक कारण एकमात्र जिनेन्द्रदेव की भक्ति को बताया है। वे देवाधिदेव चौबीस तीर्थंकर भगवान् गणधर, इन्द्र, देव आदि के समूह से स्तुत्य, पूजित तथा वन्द्य है तथा चन्द्र और सूर्य से भी अधिक कान्तियुक्त है।

नाभेयं देवपूज्यं, जिनवर-मजितं सर्व-लोक-प्रदीपम्।
सर्वज्ञं संभवाख्यं, मुनि-गण-वृषभं नन्दनं देवदेवम्॥

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं, वर-कमल-निभ पद्म-पुष्पाभि-गंधम् ।
क्षान्त दान्तं सुपार्श्वं, सकल-शशि-निभ चंद्रनामान-मीडे ।।

अन्वयार्थ—(जिनवर) जिनो मे श्रेष्ठ (देवपूज्य) देवो के द्वारा पूज्य (नाभेय) नाभि राजा के पुत्र/नाभिनन्दन श्री आदिनाथ जिनेन्द्र की। (सर्वलोकप्रदीप) तीन लोक को प्रकाशित करने के लिये उत्कृष्ट दीप सम श्री (अजित) अजितनाथ जिनेन्द्र की। (सर्वज्ञ) त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य और उनकी समस्त पर्यायो को युगपत् जानने वाले श्री (सभव) सभवनाथ जिनेन्द्र। (मुनिगणवृषभ देवदेव) मुनियो के समूह मे श्रेष्ठ, देवाधिदेव (नन्दन) श्री अभिनन्दन जिनेन्द्र की। (कर्मारिघ्न) कर्मरूपी शत्रुओ को नाश करने वाले (सुबुद्धि) श्री सुमतिनाथ जिनेन्द्र की। (पद्मपुष्प अभिगन्ध) कमल के पुष्प समान जिनके पावन शरीर की सुगधि है ऐसे (वरकमलनिभ) श्रेष्ठ कमल पुष्प के समान आभायुक्त श्री पद्मप्रभ् जिनेन्द्र की। (क्षात) क्षमा/शान्ति/सहिष्णुता गुण युक्त (दान्त) जितेन्द्रिय (सुपार्श्व) सुपार्श्वनाथ जिनेन्द्र की। (सकलशशिनिभ) पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा की आभा समान (चन्द्रनामान) चन्द्रप्रभ नाम भगवान् की (ईडे) मै स्तुति करता हूँ।

विख्यात पुष्पदन्त, भव-भय-मथनं शीतलं लोक-नाथम् ।
श्रेयांसं शील-कोश, प्रवर-नर-गुरुं वासुपूज्य सुपूज्यम् ।।
मुक्त दान्तेंद्रियाश्व, विमल-मृषि-पति सैंहसेन्यं मुनीद्रम् ।
धर्मं सद् धर्म-केतु, शम-दम-निलय स्तौमि शांति शरण्यम् ।।

अन्वयार्थ—(विख्यात) विशेष प्रसिद्धि को प्राप्त (पुष्पदन्त) श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्र की/ (भवभयमथन) ससार के भय का मथन/नाश करने वाले (शीतल) श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र की/ (सुपूज्य) सम्यक् प्रकार से सौ इन्द्रो से पूज्य (प्रवरनरगुरु) श्रेष्ठ या उत्तम मनुष्य-चक्रवर्ती गणधर आदिको के गुरु (मुक्त) चार घातिया कर्मो से रहित (दान्त इन्द्रिय अश्व) इन्द्रियरूपी घोड़ो का दमन करने वाले (विमल) विमलनाथ जिनेन्द्र की। (ऋषिपति) ऋद्धिधारी मुनियो के अर्थात् गणधर आदि सप्तर्द्धिधारी मुनियो के स्वामी (मुनीन्द्र) मुनियो मे श्रेष्ठ (सैंह सैन्यं) सिहसेन राजा के पुत्र श्री अनन्तनाथ जिनेन्द्र की (सत् धर्म केतु)

समीचीन/श्रेष्ठ रत्नत्रय धर्म की ध्वजा स्वरूप (धर्म) धर्मनाथ जिनेन्द्र की (शमदमनिलय) शान्ति/साम्यभाव तथा दमन रूप सयम भाव के खजाने (शरण्य) ससार के दुखो से पीड़ित समस्त जीवो के शरणभूत (शान्ति) श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्र की (स्तौमि) मै स्तुति करता हूँ।

कुन्थु सिद्धालयस्थं, श्रमण-पतिमर त्यक्त-भोगेषु चक्रम् ।
मल्लिं विख्यात-गोत्रं, खचर-गण-नुत सुव्रतं सौख्य-राशिम् ।।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं, हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम् ।
पार्श्वं नागेंद्र-वंद्यं, शरण-मह-मितो वर्धमान च भक्त्या ।।५।।

अन्वयार्थ—(सिद्धालयस्थ) सिद्धालय मे स्थित (कुन्थु) कुन्थुनाथ भगवान् की (श्रमणपति) मुनियो के अधिपति (त्यक्तभोगेषु चक्र) त्याग दिया है भोगरूपी बाणो के समूह और हाथ मे आये हुए चक्ररत्न को जिन्होने ऐसे (अर) अरनाथ जिनेन्द्र (कामदेव-चक्री पद के धारी) की। (विख्यातगोत्र) प्रसिद्ध है इक्ष्वाकु वश है जिनका ऐसे (मल्लि) मल्लिनाथ भगवान् की / (खचरगणनुत) विद्याधरो के समूह से नमस्कृत (सौख्यराशिम्) सुख की राशि (सुव्रत) मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र का। (देवेन्द्रार्च्य) देवेन्द्रो के द्वारा पूजित (नमीश) नमिनाथ जिनेन्द्र की (भव अन्त) भव के अन्त को प्राप्त (हरिकुलतिलक) हरिवश के तिलक (नेमिचन्द्र) नेमिनाथ भगवान् की। (नागेन्द्र वन्द्य) धरणेन्द्र के द्वारा वन्दित, अर्चित (पार्श्व) श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र (च) और (वर्धमान) वर्धमान जिनेन्द्र की (अह) मै (भक्त्या) भक्ति से/श्रद्धा से (शरण) शरण को (इत) प्राप्त होता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं पंच-महा-कल्लाण-सपण्णाण, अट्ठमहा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणि-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोव-गूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं-उस-हाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, णिच्च-कालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भंते !) हे भगवन् ! (चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो) चौबीस तीर्थंकर भक्ति का कायोत्सर्ग (कओ) मैने किया। (तस्स) तत्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (पचमहाकल्लाण संपण्णाण) गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान और मोक्ष इन पॉच महाकल्याणक से सम्पन्न (अट्ठमहापाडिहेरसहियाणं) आठ महाप्रतिहार्यो से युक्त (चउतीसातिसयविसेससजुत्ताण) ३४ अतिशय विशेषो से युक्त (बत्तीसदेविंदमणिमयमउडमत्थयमहियाण) बत्तीस देवेन्द्रो के मणिमय मुकुटो से सुशोभित मस्तको से पूजित (बलदेववासुदेव चक्कहर) बलदेव, वासुदेव चक्रधर/चक्रवर्ती (रिसिमुणिजइअणगार) ऋषि, मुनि, यति और अनगारो से (अवगूढ) (थुइसयसहस्सणिलयाण) लाखो स्तुतियो के पात्र/खजाने (उसहाइवीरपच्छिममगल-महापुरिसाण) वृषभदेव को आदि लेकर महावीर पर्यन्त मगलमय महापुरुषो की (णिच्चकाल) नित्यकाल/हमेशा (अचेमि) मै अर्चना करता हूँ, (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ। (दुक्खक्खओ) मेरे दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) मुझे बोधि का लाभ हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो (सुगइगमण) मेरा सुगति मे गमन हो (समाहिमरण) मेरा समाधिपूर्वक मरण हो (जिन गुणसपत्ति) जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति (मज्झ) मुझे (होउ) प्राप्त होवे।

भावार्थ— आठ प्रतिहार्य—

भाषा प्रभा वलयविष्टर-पुष्पवृष्टि.
पिण्डिद्रुमत्रिदशदुदुभि-चामराणि।
छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नमस्त्रिभुवन प्रभवे जिनाय।।६।। समवशरण अष्टक।

१ दिव्यध्वनि २ भामडल ३ सिहासन ४ पुष्पवृष्टि ५ अशोक-वृक्ष ६ दुदुभिनाद ७ चवर और ८ तीन छत्र।

६४ चँवर—बत्तीस नागकुमार युगल भगवान् पर ६४ चॅवर ढुराते है।

९ बलदेव—विजय, अचल, धर्म, सुप्रभ, अपराजित, नन्दिषेण, नन्दिमित्र, रामचन्द्र और बलदेव।

९ नारायण—त्रिपृष्ट, द्विपृष्टि, स्वयभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिह, पुण्डरीक, दत्त, लक्ष्मण और कृष्ण।

१२ चक्रवर्ती—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, सुभौम, पद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त।

३४ अतिशय—

दस होते है जन्म के, दस ही केवलज्ञान।
चौदह होते देवकृत, ये चौतीस बखान।

१० अतिशय जन्म के—

नित्य नि स्वेदत्व, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्व च।
स्वाद्याकृति-सहनने, सौरूप्य सौरभ च सौलक्ष्यम्।।३८।।
अप्रमितवीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दश विख्याता, स्वतिशय-धर्मा स्वय भुवो देहस्य।।३९।। न भ.।।

१ पसीना रहित शरीर २ निहार रहित शरीर ३ दुग्धवत् सफेद खून ४ समचतुरस्रसस्थान ५ वज्रवृषभनाराचसहनन ६ सुन्दर रूप ७ सुगन्धित शरीर ८ शरीर मे १००८ लक्षण ९ अतुलबल और १० हितमित प्रिय वाणी।

१० केवलज्ञान के अतिशय—

गव्यूति-शत चतुष्टय, सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवध·।
भुक्त्युपसर्गाभावश्चतुरास्यत्व च सर्व विद्येश्वरता।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख केशत्वम्।
स्वतिशय-गुणा भगवतो घाति क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव।।४१।। न. भ.।।

१ चारो दिशाओ मे १००-१०० योजन सुभिक्ष २ आकाश मे गमन ३ हिसा का अभाव ४ कवलाहार का अभाव ५ उपसर्ग का अभाव ६ एक मुख चतुर्मुख दिखना ७ सब विद्या का स्वामित्व ८ छाया नही पड़ना ९ पलको का नही झपकना और १० नख और केश का नही बढ़ना।

१४ देवकृत अतिशय—

देवरचित है चार दश अर्द्धमागधी भाष,
आपस माँहि मित्रता निर्मल दिश आकाश।

होत फूल फल ऋतु सबै पृथ्वी काच समान,
चरण कमल तल कमल है नभतै जय-जयवान।
मन्द सुगन्ध बयार पुनि गन्धोदक की वृष्टि,
भूमि विषै कण्टक नही हर्षमयी सब सृष्टि।
धर्मचक्र आगे चले मुनि वसु मगल सार,
अतिशय श्री अरिहत के ये चौतीस प्रकार।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।
खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा, समणाण जिणवरेहिं पण्णत्ता।
एत्थ पमाद-कदादो, अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।

छेदोवट्ठावण होउ मज्झ

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं रात्रिक (दैवसिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्मक्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव समेतं श्री सिद्धभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठित-करण-वीर-भक्ति, चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्तिः कृत्वा तद्धीनाधिक-दोष-विशुद्ध्यर्थं, आत्म-पवित्री-करणार्थं समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (अहम्) मै (सर्व) सब (अतिचार विशुद्ध्यर्थ) अतीचारो की विशुद्धि के लिये (रात्रिक-दैवसिक) रात्रिक-दैवसिक (प्रतिक्रमण क्रियाया) प्रतिक्रमण क्रियाओ मे (कृतदोषनिराकरणार्थ) लगे अपने दोषो को दूर करने के लिये (पूर्व-आचार्य-अनुक्रमेण) पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से (सकल) समस्त (कर्मक्षयार्थ) कर्मों को क्षय करने के लिये (भावपूजावन्दनास्तवसमेत) भावपूजा, भाववदना व स्तव सहित (श्री सिद्धभक्ति) श्री सिद्धभक्ति को (श्री प्रतिक्रमणभक्ति) श्री प्रतिक्रमण भक्ति (निष्ठितकरण वीर भक्ति) निष्ठितकरण वीरभक्ति को और (चतुर्विंशति तीर्थङ्कर भक्ति) चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति को (कृत्वा) करके (तत्) उनमे होने वाले/तत्सबधी (हीनाधिक) कमी-अधिक रूप (दोषनिराकरणार्थं) दोषो को दूर करने के लिये तथा (आत्मपवित्रीकरणार्थं) आत्मा को पवित्र करने के लिये (समाधिभक्ति) समाधिभक्ति सम्बन्धी (कायोत्सर्गं) कायोत्सर्ग को (करोमि) मै करता हूँ।

(इति विज्ञाप्य-णमो अरहताणं इत्यादि दण्डकं पठित्वा कायोत्सर्गं कुर्यात् । थोस्सामीत्यादि स्तवं पठेत्)

इस प्रकार विज्ञापन करके-णमो अरहताण इत्यादि दण्डक को पढकर कायोत्सर्ग को करे। थोस्सामी इत्यादि स्तव पढे।

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथमं करण चरण द्रव्य नमः ।

अर्थ—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः सगतिः सर्वदार्यैः,
सद्-वृत्ताना गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावनाचात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ।।१।।

अन्वयार्थ—(मम) मुझे (यावत्) जब तक (अपवर्ग) मोक्ष की प्राप्ति न हो तब तक (भवभवे) भव/भव अर्थात् जन्म-जन्म मे (शास्त्र) शास्त्रो का (अभ्यास) पठन-मनन-चितन (जिनपतिनुति) जिनेन्द्र देव के चरणो को नमस्कार (सर्वदा) हमेशा (आर्यै) आर्य पुरुष/चारित्रवान्, सज्जन पुरुषो की (सगति) सगति (सद्वृत्ताना गुणगणकथा) सच्चारित्र परायण पुरुषो के गुणो की कथा (दोष वादे च) पर के दोष कथन और दूसरो से विवाद मे (मौन) मौन (सर्वस्यापि) सब जीवो के साथ (प्रिय हितवच) प्रिय व हितकर वचन (आत्मतत्त्वे) आत्मतत्त्व मे स्वात्मास्वरूप मे (भावना) भावना (एते) इन सब वस्तुओ की (सम्पद्यन्ता) प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे प्रभो। जब तक मुझे उत्तम मुक्ति पद की प्राप्ति नही हो तब तक इन इष्ट वस्तुओ की प्राप्ति प्रत्येक जन्म मे होती रहे—जिनागम का अभ्यास, पचपरमेष्ठी नमन, आर्यजन सगति सज्जनो की गुणकथा, दूसरो के दोष व विवाद मे मौन, हित-मित प्रियवचन और आत्मतत्त्व की भावना।

तव पादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद्-यावन्-निर्वाण-सम्प्राप्तिः ।।२।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव ! (मम) मुझे (यावत्) जब तक (निर्वाणसम्प्राप्ति) मोक्ष सुख की प्राप्ति (न) नही होवे (तावत्) तब तक (तव) आपके (पादौ) दोनो चरण-कमल (मम) मेरे (हृदये) हृदय मे (तिष्ठतु) विराजमान रहे (मम) मेरा (हृदय) हृदय (तव) आपके (पदद्वये) दोनो चरण-कमलो मे (लीन) लीन रहे।

भावार्थ—हे जिनदेव ! जब तक मुझे निर्वाण की प्राप्ति न हो तब तक आपके दोनो चरण-कमल मेरे हृदय मे रहे और मेरा हृदय आपके चरणो मे लीन रहे जिससे हमारे मन मे अशुभ विचारो का चिन्तन नही होगा एव पाप-कर्मो का क्षय होगा।

अक्खर-पयत्थ-हीण, मत्ता-हीणं च जं मए भणियम् ।
त खमउ णाण-देव ! य मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।।३।।

अन्वयार्थ—(णाणदेव !) हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव ! (मए) मेरे द्वारा (ज) जो भी (अक्खरपयत्थहीणम्) अक्षर-पद-अर्थ रहित (च) और (मत्ताहीण) मात्रा रहित (भणिय) कहा गया (त) उसको (खमउ) क्षमा कीजिये (य) और (मज्झवि) मेरे भी (दुक्खक्खय) दु खो का क्षय (कुणउ) कीजिये।

आलोचना

इच्छामि भते ! समाहि-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्प-झाणलक्खण-समाहि-भत्तीए णिच्च काल अचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमण, समाहि-मरणम्, जिन-गुण-सपत्ति होउ मज्झ ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (समाहिभत्ति) मैंने समाधिभक्ति का (काउस्सग्गो) कायोत्सर्ग (कओ) किया (तस्स) तत्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। मै (रयणत्तयरूव-परमप्पज्झाणलक्खण) रत्नत्रय स्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसे (समाहिभत्तिम्) समाधिभक्ति की (णिच्चकाल) सदा, हमेशा/नित्यकाल (अंचेमि) अर्चना करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ, (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ)

दु खो का क्षय/नाश हो, (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ हो, (सुगइगमण) सुगति मे गमन हो (समाहिमरण) सम्यक् प्रकार आधि-व्याधि-उपाधि-रहित समाधिपूर्वक मरण हो (मज्झ) मुझे (जिनगुणसपत्ति) जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

।। इति रात्रिक दैवसिक प्रतिक्रमण समाप्त ।।

पाक्षिकादिप्रतिक्रमण—विधि

गद्य

[शिष्यसधर्माण: पाकिादिप्रतिक्रमलेध्वीभि: सिद्धश्रुताचार्य भक्तिभिराचार्यंवन्देरन्]

अर्थ— [शिष्य मुनि और साधर्मी मुनि मिलकर पाक्षिक-चातुर्मासिक-वार्षिक आदि प्रतिक्रमणो के प्रारभ मे लघु सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्तियो द्वारा आचार्यश्री की वन्दना करे।]

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनाया प्रतिष्ठापन-सिद्ध-भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम् ।

[यहाँ वन्दना करते समय प्रात काल के समय "नमोस्तु पौर्वाण्हिक तथा सन्ध्याकाल के समय "आपराह्णिक" शब्द का प्रयोग करना चाहिये ।]

अर्थ—हे आचार्य देव भगवन् ! नमोस्तु/नमस्कार हो, मै आचार्य वन्दना मे प्रारम्भिक प्रतिष्ठापन सिद्धभक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ। इस प्रकार प्रतिज्ञा कर ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप्य करे तथा निम्नलिखित सिद्ध भक्ति पढ़े।

गाथा

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुम तहेव अवगहण ।
अगुरु-लघु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।

अन्वयार्थ—(सिद्धाण) सिद्ध परमेष्ठी के (सम्मत्त) क्षायिक सम्यक्त्व (णाण) अनन्तज्ञान (दसण) अनन्त दर्शन (वीरिय) अनन्त वीर्य (सुहुम) सूक्ष्मत्व (तहेव) तथा (अवगहण) अवगाहन (अगुरुलघु) अगुरुलघु (अव्वावाह) अव्याबाधत्व (अट्ठगुणा) आठगुण (होति) होते है।

गद्य

तवसिद्धे, णयसिद्धे सजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य ।
णाणम्मि दसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

अन्वयार्थ—(तव सिद्धे) तप से सिद्ध (णय सिद्धे) नय से सिद्ध (सजमसिद्धे) सयम से सिद्ध (य) और (चरित्तसिद्धे) चारित्र से सिद्ध (णाणम्हिसिद्धे) ज्ञान से सिद्ध (य) तथा (दसणम्हिसिद्धे) दर्शन से सिद्ध, सब सिद्ध भगवन्तो को (सिरसा) मस्तक से अर्थात् मस्तक झुकाकर (णमस्सामि) मै नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्म-विप्पमुक्काणं, अट्ठगुण संपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पयट्ठियाणं, तव सिद्धाणं, णय सिद्धाणं, सयम सिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं, अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं सव्व-सिद्धाणं, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाओ सुगइगमणं समाहि-मरणं जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं ।

[अञ्चलिका का अर्थ पूर्व मे दिया जा चुका है]

गद्य

नमोऽस्तु आचार्य-वन्दनायां प्रतिष्ठापन-श्रुत-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् । (९ जाप्य)

अर्थ—हे आचार्य परमेष्ठी भगवन् ! नमस्कार हो, मै आचार्य वन्दना मे प्रतिठापन श्रुतभक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करके ९ बार णमोकार मत्र का जाप्य कर निम्नलिखित श्रुतभक्ति का पाठ करे—

कोटी-शतं द्वादश चैव कोट्यो, लक्षाण्यशीति-त्र्यधिकानि चैव ।
पंचाश-दष्टौ च सहस्र-संख्य-मेतच्छ्रुतं पंचपदं नमामि ।।१।।
अरहत-भासियत्थं गणहर-देवेहिं गंथियं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो सुद-णाण-महोवहिं सिरसा ।।२।।

अन्वयार्थ—(कोटी शत) सौ करोड़ (द्वादशचैवकोट्यो) और बारह करोड़ (अशीतिलक्षाणि) अस्सी लाख (च) और (त्रि अधिकानि) तीन लाख अधिक (एव) तथा (पचाशत् अष्टौ) अट्ठावन (सहस्रसख्य)

हजार सख्या (च) और (पचपद) पॉच मद प्रमाण (एतत्) इस (श्रुत) श्रुत को (नमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

११२ करोड़ ८३ लाख ५८ हजार और ५ पद प्रमाण इस श्रुतज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ ।।१।।

(अरहत भासियत्थ) अरहत देव द्वारा कहा गया (गणहरदेवेहि गथिय सम्म) समीचीन रूप से गणधर देवो के द्वारा गूथित (सुदणाणमहोवहि) श्रुतज्ञान रूप महासमुद्र को (भत्तिजुत्तो) भक्ति से युक्त हुआ (सिरसा) सिर झुकाकर (पणमामि) मै प्रणाम करता हूँ।

अरहत देव के द्वारा कथित, गणधर देव द्वारा ग्रथ रूप से ग्रथित श्रुतज्ञान रूप महासमुद्र को मै भक्ति पूर्वक सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते ! सुदभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउ अंगोवग-पइण्णय-पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्म-कहाइय णिंच्चकाल अंचेमि, पूजेमि, वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरणं-जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झ ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (सुदभक्तिकाउस्सग्गो कओ) श्रुतभक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स) उसकी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। श्रुतज्ञान के जो (अग उवग पइण्णए) अग-उपाग-प्रकीर्णक (पाहुडय परियम्म सुत्तपढमाणि ओग पुव्वगय चूलिया चेव) प्राभृतक, परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका (सुत्तत्थयथुइ, धम्मकहाइय) सूत्रार्थ, स्तुति धर्मकथा आदि है, मैं उनकी (णिच्चकाल) नित्यकाल हमेशा (अच्चेमि) अर्चना करता हूँ, (पूज्जेमि) पूजा करता हूँ (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (मज्झ) मेरे (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) सब कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो, (सुगइगमण) सुगति की प्राप्ति हो, (समाहिमरण) समाधिमरण की प्राप्ति हो और (जिनगुणसपत्ति) जिनेन्द्र देव के अनन्त गुणो की सपति (होउ) प्राप्त हो।

गद्य

नमोऽस्तु आचार्य वन्दनायां प्रतिष्ठापनाचार्य भक्ति-कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।(९ जाप्य)

हे आचार्य परमेष्ठी भगवन् ! नमस्कार हो, मै आचार्य वन्दना मे प्रतिष्ठापन आचार्य भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को करता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करके ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप्यकर निम्नलिखित आचार्यभक्ति का पाठ करे।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।।१।।

अन्वयार्थ— जो (श्रुतजलधि) श्रुत रूप समुद्र के (पारगेभ्य) पारगामी/पारगत (स्वपरमत-विभावना) स्वमत और परमत के विचार करने मे (पटुमतिभ्य) निपुण बुद्धि वाले है (सुचरिततपोनिधिभ्यो) सम्यक् चारित्र और तप के खजाने है (गुणगुरुभ्य) गुणो मे महान् है (गुरुभ्यो) ऐसे गुरुजनो के लिये (नम) नमस्कार हो।

छत्तीस-गुण-समग्गे पच-विहाचार-करण संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।

अन्वयार्थ—(छत्तीसगुणसमग्गे) जो छत्तीस गुणो से पूर्ण है (पचविहाचारकरणसदरिसे) पॉच प्रकार के आचार को पालन करने वाले है (सिस्साणुग्गहकुसले) शिष्यो के अनुग्रह करने मे कुशल (धम्म) जिनधर्म के (आइरिये) आचार्य/धर्माचार्य की (सदा) सदा (वन्दे) मैं वन्दना करता हूँ

गुरु- भत्ति संजभेण य तरंति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णतिं अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ।।३।।

अन्वयार्थ—(गुरुभत्ति) गुरुभक्ति (सजमेण य) और सयम से (घोर) घोर (ससरसायर) ससार सागर से (तरन्ति) तिर जाते हैं (अट्ठकम्म) अष्टकर्मों को (छिण्णति) छेद देते है (य) और (जम्म मरण ण पावेति) जन्म-मरण को प्राप्त नही होते है।

ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा कुलाः ।
षट्-कर्माभि-रतास्तपो-धन-धनाः साधुक्रियाः साधवः ।।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका ।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणंतु मा साधवः ।।४।।

अन्वयार्थ—(ये) जो (नित्य) प्रतिदिन (व्रत मन्त्र-होम-निरता) व्रत, मन्त्र, रूप, होम मे निरत है, (ध्यान) ध्यानरूपी (अग्निहोत्राकुल) अग्नि मे शीघ्र हवन करने वाले है (षट्कर्माभिरता) षट् आवश्यक क्रियाओ मे लीन है (तपोधनधना) तपरूपी धन ही जिनका धन है (साधु क्रियासाधव) साधु की क्रियाओ को साधने वाले है (शीलप्रावरणा) अठारह हजार शील ही जिनके ओढने का वस्त्र है (गुणप्रहरणा) चौरासी लाख गुण ही जिनके पास शस्त्र है (चन्द्र अर्क तेज अधिका) चन्द्र और सूर्य के तेज से भी जिनका तेज अधिक है (मोक्षद्वार कपाट) मुक्ति महल के द्वार को (पाटनभटा) उद्घाटन/खोलने मे जो भट है/योद्धा हैं (साधव) ऐसे साधुजन (मा) मुझ पर (प्रीणन्तु) प्रसन्न हो।

गुरवः पान्तु नो नित्य ज्ञान-दर्शन-नायकाः ।
चारित्रार्णव-गभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।।५।।

अन्वयार्थ—(ज्ञानदर्शननायका) ज्ञान व दर्शन के स्वामी (चारित्र आर्णव गभीरा) चारित्ररूपी सागर के धनी, गभीर (मोक्षमार्ग) मोक्षमार्ग के (उपदेशका) उपदेशक (गुरव) गुरुजन/गुरुदेव (नित्य) नित्य ही (नो) हमारी (पातु) रक्षा करे।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! आइरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदसण-सम्मचरित्त जुत्ताण पंच विहाचाराणं आइरियाणं आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं; ति-रयण-गुण-पालण रयाणं सव्वसाहूणं; णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन्! मैने (आयरियभत्ति काउस्सग्गो

कओ) आचार्य भक्ति सम्बधी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचउ इच्छामि) तत्सबधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ (सम्मणाण) सम्यक् ज्ञान (सम्मदसण) सम्यक् दर्शन (सम्मचरित्त जुत्ताण) सम्यक् चारित्र से युक्त (पचविहाचाराण) पॉच प्रकार के आचार दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार के पालक (आयरियाण) आचार्य परमेष्ठी (आयारादिसुदणाणोवदेसयाण) आचाराग आदि द्वादशाग श्रुत ज्ञान के उपदेशक (उवज्झायाण) उपाध्याय परमेष्ठी (तिरयणगुणपालणरयाण) तीन रत्न—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र रूप गुणो के पालन करने मे रत (सव्वसाहूण) सर्व साधु परमेष्ठी की मैं (णिच्चकाल) प्रतिदिन हमेशा (अच्चेमि) अर्चा करता हूँ, (पुज्जेमि) पूजा करता हूँ (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रयरूप बोधि का लाभ हो (सुगइ-गमण) उत्तम, अच्छी गति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (मज्झ) मुझे (जिनगुणसपत्ति) जिनेन्द्रगुण रुप सपत्ति की (होउ) प्राप्ति हो।

नम: श्रीवर्धमानाय निर्धूत-कलिलात्मने।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्-विद्या दर्पणायते ।।१।।

अन्वयार्थ—जिन्होने (आत्मने) आत्मा से (कलिलनिर्धूत) पाप मल को जड़ से धो डाला है। नष्ट कर दिया है, (यद्) जिनका (विद्या) ज्ञान (स अलोकाना) अलोक सहित (त्रिलोकाना) तीनो लोको को (दर्पणायते) दर्पण के समान आचरण करता है ऐसे (श्री वर्धमानाय) अन्तरग बहिरग लक्ष्मी के स्वामी वर्धमानजिनेन्द्र के लिये (नम) नमस्कार हो।

समता सर्व-भूतेषु संयमः शुभ-भावना।
आर्त्त-रौद्र-परित्याग-स्तद्धि सामायिय्य मतं ।।२।।

अन्वयार्थ—(सर्वभूतेषु) सब जीवो मे (समता) समता भाव धारण करना (संयमे शुभभावना) संयम मे शुभभावना होना (आर्त्तरौद्रपरित्याग) आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान का पूर्ण त्याग करना (तद्) वह (हि) निश्चय से (सामायियं) सामायिकं (मतम) माना गया है।

अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक)

प्रतिक्रमण-क्रियाया कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री सिद्धभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक प्रतिक्रमण क्रिया मे किये गये दोषो का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिये भाव पूजा वन्दना स्तव सहित सिद्ध भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहताण इत्यादि सामायिक दडक को पढ़कर कायोत्सर्ग करे पश्चात् "थोस्सामि" इत्यादि स्तुति पढ़कर सिद्धभक्ति का पाठ करे।

सिद्धभक्ति

सिद्धा-नुद्धूत-कर्म-प्रकृति-समुदयान् साधितात्म-स्वभावान्।
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै, तदनुपम-गुण-प्रग्रहाकृष्टि-तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्।
योग्योपादान-युक्त्या दृषद् इह यथा हेम-भावोपलब्धिः ।।१।।
नाभावः सिद्धि-रिष्टा न निज-गुण-हतिस्तत्-तपोभि-र्न युक्तेः।
अस्त्यात्मानादि-बद्धः स्व-कृतज-फल-भुक्-तत्-क्षयान् मोक्षभागी ।।
ज्ञातादृष्टा स्वदेह-प्रमिति-रुपसमाहार-विस्तार-धर्मा।
ध्रौव्योत्पत्ति-व्ययात्मा स्व-गुण-युत-इतो नान्यथा साध्य-सिद्धिः ।।२।।
स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-
संपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरित-तया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः।
कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य सम्यक्त्व-लब्धि-
ज्योति-र्वातायनादि-स्थिर-परम-गुणै-रद्भुतै-र्भासमानः ।।३।।
जानन् पश्यन् समस्तं सम-मनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं निचित-मनुपमं प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनासौ क्षण-मुपजनयन्-सत्-स्वयंभूः प्रवृत्तः ।।४।।
छिन्दन् शेषानशेषान्-निगल-बल-कलींस्तै-रनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरु-लघुक-गुणैः क्षायिकैः शोभमानः।

अन्यै-श्चान्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं-व्रज्या-स्वभावात् समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्रे ।।५।।
अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च भवति परो येन तेनाल्प-हीनः,
प्रागात्मोपात्त-देह-प्रति-कृति-रुचिराकार एव ह्यमूर्तः ।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह,
व्यापत्त्याद्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता ।।६।।
आत्मोपादान-सिद्ध स्वय-मतिशय-वद्-वीत बाधं विशालम्,
वृद्धि-ह्रास-व्यपेतं विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम् ।
अन्य-द्रव्यानपेक्षं निरुपम-ममितं शाश्वतं सर्वकालम्,
उत्कृष्टानन्त-सारं परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम् ।।७।।
नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद् विविध-रस-युतै-अन्न-पानै-रशुच्या,
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-र्नहि मृदु-शयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावत् ।
आतकार्ते-रभावे तदुपशमन- सद्भे षजानर्थ तावद्
दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगत- तिमिरे दृश्यमाने समस्ते ।।८।।
तादृक्-सम्पत्समेता विविध-नय-तपः संयम-ज्ञान-दृष्टि-
चर्या-सिद्धाः समन्तात् प्रवितत-यशसो विश्व-देवाधि देवाः ।
भूता भव्या भवन्तः सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टै,
स्तान् सर्वान नौम्यनन्तान् निजिग-मिषु-ररं तत्स्वरूपं त्रिसन्ध्यम् ।।९।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सा-लोचेउं सम्मणाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविह-कम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं, चरित्तसिद्धाणं अतीता-णागद-वट्टमाण-कालत्तय सिद्धाणं, सव्वसिद्धाणं णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिणगुण-संपत्ति होदु मज्झं ।

अर्थ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं आलोचना चारित्र भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये आलोचना रूप चारित्र भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहताण आदि सम्पूर्ण दण्डक पाठ को पढकर ९ बार णमोकार मत्र का जाप्य करे थोस्सामि आदि स्तव पढकर चारित्रभक्ति का पाठ करे-

श्री चारित्रभक्ति

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हारांगदान्,
भास्वन्-मौलि-मणि-प्रभा-प्रविसरोत्-तुंगोत्तमागान्-नतान् ।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनय-श्चक्रुः प्रकामं सदा,
वन्दे पञ्चतयं तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम् ।।१।।

ज्ञानाचार का स्वरूप

अर्थ-व्यञ्जन-तद्-द्वया-विकलता-कालोपधा-प्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनह्नवो बहु-मति-श्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्री-मज्ज्ञाति कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धृतये कर्मणाम् ।।२।।

दर्शनाचार का स्वरूप

शंका-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षण-विधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धताम्,
वात्सल्यं विचिकित्सना-दुपरति धर्मोपबृंहक्रियाम् ।
शक्त्या शासन-दीपनं हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनम्,
वन्दे दर्शन-गोचरं सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात् ।।३।।

तप-आचार (बाह्यतप) का स्वरूप

एकान्ते शयनोपवेशन कृतिः संतापनं तानवम्,
संख्या-वृत्ति-निबन्धना मनशनं विष्वाणमर्द्धोदरम् ।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्,
षोढा बाह्य-महं स्तुवे शिव-गति प्राप्त्यभ्युपायं तपः ।।४।।

अन्तरंग तपों का वर्णन

स्वाध्यायः शुभ-कर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृति-रामयाविनि गुरौ वृद्धे च बाले यतौ ।

कायोत्सर्जन-सत्-क्रिया विनय इत्येव तपः षड्-विधम्,
वन्देऽभ्यन्तर-मन्तरग बल-वद्-विद्वेषि विध्वसनम् ।।५।।

वीर्याचार का वर्णन

सम्यग्ज्ञान-विलोचनस्य दधतः श्रद्धान-मर्हन्-मते,
वीर्यस्यावि निगूहनेन तपसि स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्ति-स्तरणीव-नौ-रविवरा लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचार-महं तमूर्जित-गुण वन्दे सता-मर्चितम् ।।६।।

चारित्राचार का वर्णन

तिस्रः सत्तम-गुप्तय-स्तनु-मनो-भाषा निमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्च-व्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयो-दश-तयं पूर्वं न दृष्टं परै-
राचार परमेष्ठिनो जिनपते-र्वीर नमामो वयम् ।।७।।

पञ्चाचार पालनेवाले मुनिराजों की वन्दना

आचारं सह-पञ्च-भेद-मुदितं तीर्थं परं मंगलम्,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्र-महतो वन्दे समग्रान् यतीन् ।
आत्माधीन-सुखोदया-मनुपमा लक्ष्मी-मविध्वंसिनीम्,
इच्छन् केवल-दर्शनावगमन प्राज्य प्रकाशोज्ज्वलाम् ।।८।।

चारित्र पालन में दोषों की आलोचना

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमितोऽवर्तिष्यहं चान्यथा,
तस्मिन्-नर्जित-मस्यति प्रतिनवं चैनो निराकुर्वति ।
वृत्ते सप्ततयीं निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतम्,
तन् मिथ्या गुरु-दुष्कृतं भवतु मे स्वं निन्दितो निंदितम् ।।९।।

चारित्र धारण करने का उपदेश

संसार-व्यसना हति-प्रचलिता नित्योदय-प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न-विमुक्तयः सुमतयः शान्तैनसः प्राणिनः ।
मोक्षस्यैव कृतं विशाल-मतुलं सोपान-मुच्चै-स्तराम्,
आरोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं जैनेन्द्र-मोजस्विनः ।।१०।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चारित्त-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, सम्मणाण-जोयस्स, सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्व-पहाणस्स, णिव्वाण-मग्गस्स, कम्म-णिज्जर-फलस्स, खमा-हारस्स, पच-महव्वय-सपण्णस्स, तिगुत्ति-गुत्तस्स, पच-समिदि-जुत्तस्स, णाण-ज्झाण-साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्मचारित्तस्स, णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिणगुण-सपत्ति होदु मज्झं ।

वृहद् आलोचना

विशेष— [श्री गौतमस्वामी मुनियो के दुष्षमकाल मे दुष्ट परिणामो से प्रतिदिन होने वाले व्रतो मे दोषो की आलोचना या अतिचारो की विशुद्धि के लिये दिनो की गणनापूर्वक आलोचना लक्षण उपाय को बताते हुए लिखते है ।]

[इच्छामि भते ! अट्ठमियम्मि आलोचेउ, अट्ठण्ह दिवसाण, अट्ठण्हं राइण, अब्भतरदो, पचविहो आयारो णाणायारो, दसणायारो, तवायारो वीरियायारो, चारित्तायारो चेदि ।।१।।]

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (णाणायारो) ज्ञानाचार (दसणायारो) दर्शनाचार (वीरियायारो) वीर्याचार (तवायारो) तपाचार (च) और (चरित्तायारो) चारित्राचार (इदि) इस प्रकार (आयारो पचविहो) पॉच प्रकार का आचार है (अट्ठण्ह दिवसाण) आठ दिन और (अट्ठण्ह राईण) आठ रात्रि के (अब्भत्तरगओ) भीतर (अट्ठमियम्मि) आठ दिनो मे ज्ञानाचार आदि मे जो अतिचार लगा है, तत्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ ।

[इच्छामि भते ! पक्खियम्मि आलोचेउ पण्णरसण्हं दिवसाणं, पण्णरसण्ह राइणं, अब्भंतरदो, पचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।।२।।]

अन्वयार्थ—(भंते) हे भगवन् (पक्खियम्मि) पाक्षिक अर्थात् १५

दिन मे (पण्णरसण्ह दिवसाण) १५ दिनो (पण्णरसण्ह राईण) १५ रात्रि के (अब्भतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दसणायारो) दर्शनाचार (चरित्तायारो) चरित्राचार (तवायारो) तपाचार (वीरियायारो) वीर्याचार (इदि) इस प्रकार (पचविहो आयारो) पॉच प्रकार के आचार मे जो (च) और अतिचार लगा हो तत्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ।

[इच्छामि भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउं, चउण्हं मासाणं, अट्ठण्ह पक्खाणं, वीसुत्तर-सयदिवसाणं, वीसुत्तर-सय-राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।।३।।]

अर्थ—(भते) हे भगवन् ! (चउमासयम्मि) चातुर्मास मे (चउण्ह मासाण) चार माह मे (अट्ठण्ह पक्खाण) आठ पक्षो मे (विसुत्तरसय-दिवसाण) १२० दिनो के (वीसुत्तरसयराइण) एक सौ बीस रात्रियो के (अब्भतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दसणायारो) दर्शनाचार (तवायारो) तपाचार (चरित्तायारो) चारित्राचार (च) और (वीरियायारो) वीर्याचार (इदि) इस प्रकार (पचविहोआयारो) पॉच प्रकार के आचार मे अतिचार लगा हो तत्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ।

[इच्छामि भते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउं, बारसण्हं मासाणं, चउवीसण्हं पक्खाणं, तिण्हं-छावट्ठिसय-दिवसाणं, तिण्हं-छावट्ठि-सय-राइणं अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।।४।।]

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (सवच्छरियम्मि) एक वर्ष मे (वारसण्ह मासाण) बारह मास मे (चउवीसण्ह पक्खाण) चौवीस पक्ष मे (तिण्ह छावट्ठिसयदिवसाण) तीन सौ छ्यासठ दिन मे (तिण्ह छावट्ठिसयराइण) तीन सौ छयासठ रात्रि के (अब्भतराओ) भीतर (णाणायारो) ज्ञानाचार (दसणायारो) दर्शनाचार (चारित्तायारो) चारित्राचार (तवायारो) तपाचार (च) और (वीरियायारो) वीर्याचार (पचविहो

आयारो) पाँच प्रकार के आचार मे जो अतिचार आदि दोष लगा हो, तस्सबधी (आलोचेउ) आलोचना करने की (इच्छामि) मैं इच्छा करता हूँ।

तत्थ णाणायरो अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे तहेव अणिण्हवणे, विजण-अत्थ-तदुभये चेदि। णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खर-हीण वा, सर-हीणं वा, विंजण-हीण वा, पद हीणं वा, अत्थ-हीणं वा, गथ-हीण वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोग-द्दारेसु वा, अकाले-सज्झाओ, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिद वा, मिच्छा-मेलिद वा, आ-मेलिद, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।१।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन पाँच प्रकार के आचारो मे पहला (णाणायारो) ज्ञानाचार (अट्ठविहो) आठ प्रकार का है—(काले) कालाचार (विणये) विनयाचार (उवहाणे) उपधानाचार (बहुमाणे) बहुमानाचार (तहेव) तथा (अणिण्हवणे) अनिह्नवाचार (विजण) व्यञ्जनाचार (अत्थ) अर्थाचार (च) और (तदुभये) उभयाचार (इदि) इस प्रकार है। (तत्थ) उस (अट्ठविहो णाणायारो) आठ प्रकार के ज्ञानाचार का (थएसु) तीर्थंकर, पञ्चपरमेष्ठी या नव देवताओ के गुणो का वर्णन करने वाले स्तवनो मे (वा) अथवा (थुईसु) तीर्थंकर पचपरमेष्ठी आदि गुणो का वर्णन करने वाली स्तुतियो मे (वा) अथवा (अत्थक्खाणेसु) चारित्र और पुराणो रूप अर्थाख्यानो मे वा प्रथमानुयोग,करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोगो मे (वा) अथवा (अणियोगेसु) अनुयोगो मे (वा) अथवा (अणियोगद्दारेसु) कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारो मे (अक्खरहीण) अक्षरहीन (वा) अथवा (सरहीण) स्वरहीन (वा) अथवा (पदहीण) सुबन्ततिडन्त से रहित (विजणहीण) व्यजन हीन [ककारादि व्यञ्जनहीन] (अत्थहीण) अर्थहीन वाक्य, अधिकाररहित अथवा (गंन्थहीण) ग्रथहीन (वा) अथवा (अकाले) अकाल मे उल्कापात सध्या काल आदि मे (सज्झाओ) स्वाध्याय (कदो) किया हो (वा) अथवा (कारिदो) कराया हो (वा) अथवा (कीरतो

समणुमण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो (वा) अथवा (काले) काल मे आगम का स्वाध्याय किया हो, (परिहाविदो) आगम मे कथित गोसर्गिकादि काल मे स्वाध्याय नही किया हो (अच्छाकारिद) श्रुत का जल्दी-जल्दी उच्चारण किया हो (मिच्छामेलिद) किसी अक्षर या शब्द को किसी अक्षर या शब्द के साथ मिलाया हो (वा) अथवा (आमलिद) शास्त्र के अन्य अवयव को किसी अन्य अवयव के साथ जोडा हो (मेलिद) उच्चध्वनि युक्त पाठ को नीच ध्वनि युक्त पाठ के साथ, नीच ध्वनियुक्त पाठ को उच्च ध्वनि युक्त पाठ के साथ जोडकर पढा हो (अण्णहादिण्ण) अन्यथा कहा हो (अण्णहापडिच्छिद) अन्यथा ग्रहण किया (आवासएसु परिहीणदाए) छह आवश्यक क्रियाओ मे परिहीनता/कमी करके ज्ञानाचार का परिहापन किया हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

दंसणाथारो अट्ठविहो

णिस्संकिय णिकक्खिय णिव्विदिगिच्छा अमूढदिट्ठीय ।
उवगूहण ठिदिकरण वच्छल्ल-पहावणा चेदि ।।१।।

दसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिछाए, अण्ण-दिट्ठी-पसंसणाए, परपाखड-पससणाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्लदाए, अपहावणाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२।।

अर्थ—दर्शनाचार के निम्न आठ भेद है—(णिस्सकिय) नि शकित (णिकक्खिय) नि काक्षित (णिव्विदिगिंछो) निर्विचिकित्सा (अमूढदिट्ठीय) अमूढदृष्टि (उवगूहण) उपगूहन (ठिदिकरण) स्थितिकरण (बच्छल्ल) वात्सल्य (च) और (पहावणा) प्रभावना (इदि) इस प्रकार।

अन्वयार्थ—(दसणायारो अट्ठविहो) आठ प्रकार के दर्शनाचार के विपरीत आठ दोष है—(सकाए) शका से (कखाए) काक्षा से (विदिगिछाए) विचिकित्सा से (अण्णदिट्ठि पससणदाए) अन्यदृष्टि प्रशसा से (परपाखडपससणदाए) पर पाखडियो की प्रशसा से (अणायदणसेवणदाए) छह अनायतनो की सेवा से (अवच्छल्लदाए) साधर्मीजनो मे प्रीति न करने रूप अवात्सल्य से (अप्पहावणदाए) पूजा,

दान, व्रत, उपवास आदि के द्वारा जिनशासन का माहात्म्य प्रकट न करके अप्रभावना से दर्शनाचार के परिहापन सबधी जो दोष लगा हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरा (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो अर्थात् दर्शनाचार को दूषित करने वाले मेरे सभी पाप मिथ्या हो।

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो-छव्विहो, बाहिरो-छव्विहो चेदि। तत्थ बाहिरो अणसण, आमोदरिय, वित्ति-परिसखा, रस-परिच्चाओ, सरीर-परिच्चाओ, विवित्त-सयणासण चेदि। तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्त, विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाण, विउस्सग्गो चेदि। अब्भतरं बाहिरं बारसविह-तवोकम्म, ण कद, णिसण्णेण पडिक्कत तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

अन्वयार्थ—(बारसविहो तवायारो) बारह प्रकार का तपाचार है (अब्भतरो छव्विहो) छह प्रकार का आभ्यतर तप (च) और (छव्विहो) छह प्रकार का (बाहिरो) बाह्य तप (तत्थ) उसमे (बाहिरो अणसण) बाह्य-अनशन (अमोदरिय) अवमौदर्य, (वित्तिपरिसख्या) वृत्तिपरिसख्यान (रस-परिच्चाओ) रस परित्याग (सरीरपरिच्चाओ) कायक्लेश (च) और (विवित्तसयणासण) विविक्त शयनासन (इदि) इस प्रकार (तत्थ अब्भतरो) तथा आभ्यतर तप (पायच्छित्त) प्रायश्चित्त (विणओ) विनय (वेज्जावच्च) वैय्यावृत (सज्झाओ) स्वाध्याय (झाण) ध्यान (च) और (विउस्सग्गो) व्युत्सर्ग (इदि) इस प्रकार। (अब्भतर–बाहिर) बाह्य और अभ्यतर (बारसविह) बारह प्रकार का (तवोकम्म) तप कर्म (णिसण्णेण पडिक्कत) परीषह आदि के द्वारा पीडित होने से छोड़ दिया हो (ण कद) नही किया हो (तस्स) उस बारह प्रकार के तप के परिहापन सबधी (दुक्कड मे) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

वीरियायारो पचविहो परिहाविदो वर-वीरिय-परिक्कमेण, जहुत्त-माणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहिय, तवो-कम्मं, ण कदं, णिसण्णेण पडिक्कत तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।४।।

अन्वयार्थ—(वीरियायारो) वीर्याचार (पचविहो) पॉच प्रकार का

है (वर वीरिय परिक्कमेण) वरवीर्य परिक्रम (जहुत्तमाणेण) यथोक्तमान (बलेण) बल (वीरियेण) वीर्य और (परिक्कमेण) परिक्रम/पराक्रम। (तवोकम्म) इस पॉच प्रकार तप कर्म का अनुष्ठान करते हुए (णिगूहिय) तप करने के योग्य वीर्य को छिपाया हो (ण कद) नही किया हो (णिसण्णेण पडिक्कत) परीषह आदि से पीडित हो उस तप कर्म को छोड दिया हो (परिहाविदो) पूर्ण अनुष्ठान नही किया हो (तस्स) उस वीर्याचार के परिहापन सबधी (मे दुक्कड) मेरे दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो।

पॉच प्रकार के वीर्याचार का परिहापन रूप यह आलोचना है। तपश्चरण करने मे सामर्थ्य प्रकट करना वीर्याचार है, सामर्थ्य को छिपा लेना परिहापन है।

पॉच प्रकार का वीर्याचार—१. वरवीर्यपराक्रम-वीर्य के पराक्रम उत्साह को वीर्यपराक्रम है, उत्कृष्ट वीर्य का पराक्रम वरवीर्यपराक्रम है, इस श्रेष्ठ वीर्यपराक्रम से अनशनादि तप करना चाहिये।

२. **यथोक्तमान**-आगम कथित परिमाण से तप करना यथोक्तमान वीर्य है। जैसे आगम मे सिक्थग्रास या चन्द्रायणव्रत की विधि जिस परिमाण से कही है उसी परिमाण से करना अथवा कायोत्सर्ग करने की विधि जिस क्रिया मे जहॉ जिस प्रकार कही गई है वहॉ उसी प्रकार ९ या ३६ बार आदि णमोकार मत्र का विधिवत् जाप करके तप करना चाहिये।

३. **बलेन**-काल, आहार, क्षेत्र, आदि देखकर शारीरिक बल के सामर्थ्य अनुसार तप करना बलवीर्य है।

४. **वीर्य**-स्वाभाविक सहज सामर्थ्य अनुसार तप करना। अर्थात् आत्मशक्ति अनुसार तप करना।

५. **पराक्रम**-आगम मे कहे गये क्रमानुसार उत्कृष्ट तप करना पराक्रम है अथवा परा=उत्कृष्ट, क्रम=क्रम कहा गया है जैसे-मूलगूणो का अनुष्ठान करने वालो को उत्कृष्ट गुणो का अनुठान करना चाहिये विपरीत नही इसका नाम पराक्रमवीर्य है।

चारित्राचार तथा प्रथम अहिंसा महाव्रत के दोषों की आलोचना

चरित्तायारो तेरमविहो परिहाविदो पच-महव्वदाणि, पच-समिदीओ, तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण से पुढवि-काइया जीवा असंखेज्जासखेज्जा, आऊ-काइया जीवा असखेज्जासखेज्जा, तेऊ-काईया जीवा असखेज्जासखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असंखेज्जा सखेज्जा, वणप्फदिकाइया जीवा अणताणंता हरिया, बीआ, अकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावण, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

अन्वयार्थ—(पचमहव्वयाणि) पॉच महाव्रत (पच समिदीओ) पॉच समिति (च) और (तिगुत्तीओ) तीन गुप्ति (इदि) इस प्रकार (तेरसविहो) तेरह प्रकार का (चारितायारो) चारित्राचार है (तस्स) उस चारित्राचार का किसी भी कारण (परिहाविदो) खडन हुआ हो या उसमे दोष लगा हो तो (मे) मेरा (दुक्कड) पाप (मिच्छा) मिथ्या हो। मेरे दुष्कृत मिथ्या हो।

[शेष अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखे]

बे-इंदियाजीवा असंखेज्जासखेज्जा कुक्खि, किमि, सख, खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गण्डवाल, सबुक्क, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावण, परिदावण, विराहण उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

ते-इदिया-जीवा असखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविच्छिय-गोभिद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसि उद्दावण, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दस-मसस-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसि उद्दावणं, परिदावण, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड।

पचिंदियाजीवा असंखेज्जासखेज्जा अडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, ससेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदेसि, उद्दावण, परिदावण, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

[इन सबका अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखे]

द्वितीय सत्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे दुव्वे महव्वदे मुसावादादो वेरमणं से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, राएण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भयेण वा, पदोसेण वा, पमादेण, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण-वि-कारणेण जादेण वा, सव्वो मुसावादो भासिओ, भासाविओ, भासिज्जतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२।।

अन्वयार्थ—(आहावरे) जब अन्य (दुव्वे) दूसरे (महव्वदे) महाव्रत मे (मुसावादादो वेरमण) मृषावाद/असत्य भाषण का त्याग करता हूँ (से) वह असत्यभाषण (कोहेण वा) क्रोध से अथवा (माणेण वा) मान से अथवा (मयाए वा) माया से अथवा (लोहेण वा) लोभ से अथवा (राएण वा) राग से अथवा (दोसेण वा) द्वेष से अथवा (मोहेण वा) मोह से अथवा (हस्सेण वा) हास्य से अथवा (भएण वा) भय से या (पदोसेण वा) प्रदोष से या (पमादेण वा) प्रमाद से या (पेम्मेण वा) प्रेम/स्नेह से या (पिवासेण वा) पिपासा से या (लज्जेण वा) लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से (अणादरेण वा) अनादर से या (महत्वाकाक्षा) से या (केण वि कारणेण) किसी भी कारण से (जादेण वा) उत्पन्न होने पर अथवा (मुसावादादो) असत्य भाषण (भासिओ) बोला हो (भासाविओ) बुलवाया हो (भासिज्जतो वि समणुमण्णिदो) असत्य भाषण बोलने वालो की अनुमोदना भी की हो (तस्स) तो तत्सबन्धी (मे सव्वो) मेरे सभी (दुक्कड) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो ।।२।।

तीसरे अचौर्यमहाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे तव्वे महव्वदे अदिण्णा-दाणादो वेरमण से गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मडवे वा, मंडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा,

घोसे वा, आसमे वा, सहाए वा, सवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिण्ह वा, कट्ठं वा, वियडि वा, मणि वा, एवमाइय अदिण्ण गिण्हिय, गेण्हावियं, गेण्हिज्जते वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।३।।

अन्वयार्थ—(आहावरे) अब अन्य (दितिये) तीसरे (अदिण्ण-दाणादो) अदत्तादान से (वेरमण) विरक्त होता हूँ अर्थात् तीसरे महाव्रत मे उस (महव्वदे) महाव्रत मे वस्तु के स्वामी या किसी के द्वारा नही दी गई वस्तु का ग्रहण करने से विरक्त होना चाहिये । (से) वह अदत्तादान (गामे वा) ग्राम मे या (णसरे वा) नगर मे या (खेडे वा) खेट मे या (कव्वडे वा) कर्वट मे या (मडवे वा) मटब मे या (मडले वा) मडल मे या (पट्टणे वा) पत्तन मे या (दोणमुहे वा) द्रोणमुखे या (घोसे वा) घोस मे या (आसमे) आश्रम मे या (सहाए वा) सभा मे या (सवाहे वा) सवाह मे या (सण्णिवेसे वा) सन्निवेश मे (तिण्ह वा) तृण ग्रहण मे या (कट्ठ वा) काठ के ग्रहण मे हुआ हो या (वियडिं वा) विकृति मे हुआ हो (मणि वा) मणि आदि के ग्रहण मे हुआ हो (एवमाइय) इस प्रकार (अदत्त गिण्हिय) बिना दी गई वस्तु को ग्रहण किया हो (गेण्हाविय) ग्रहण कराया हो (गेण्हिज्जते समणुमण्णिदो) ग्रहण करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो ।

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमण से देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तेरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, मणुण्णा मणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णा मणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु गंधेसु, मणुण्णा मणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु, चक्खिदिय-परिणामे, सोदिंदिय-परिणामे, घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिंदिय परिणामे, फासिदिय परिणामे, णो-इंदिय-परिणामे, अगुत्तेण अगुत्तिदिएण, णवविह बंभचरियं, ण रक्खियं, ण रक्खावियं, ण रक्खिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।४।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब अन्य (चउत्थे) चौथे (महव्वदे) महाव्रत मे (मेहुणादो) मैथुन से (वेरमण) विरक्त होना चाहिये (से)

उस ब्रह्मचर्य महाव्रत मे (देविएसु वा) देवियो या (तेरिच्छिएसु वा) तिर्यंचनियो के या (अचेयणिएसु वा) अचेतनस्त्रियो के या (मणुण्णा मणुण्णेसु) मनोज्ञ अमनोज्ञ (रूवेसु) रूपो मे (मणुणामणुणेसु सद्देसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दो मे, (मणुण्णामणुण्णेसु गधेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ गधो मे (मणुण्णा मणुण्णेसु रसेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसो मे (मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श मे (चक्खिदिय-परिणामे) चक्षु इन्द्रिय के परिणाम मे (सोदिदियपरिणमे) श्रोत्रेन्द्रिय परिणाम मे (घाणिदियपरिणामे) घ्राण इन्द्रिय के परिणाम मे (जिब्भिदियपरिणामे) जिह्व इन्द्रिय के परिणाम मे (फासिदिय परिणामे) स्पर्शन इन्द्रिय के परिणाम मे (णो इदिय परिणामे) नो इद्रिय (मन) के परिणाम मे (अगुत्तेण) मन-वचन काय का सवरण न कर और (अगुत्तिदिएण) इन्द्रियो को वश मे न रखकर मैने जो (णवविह बभचरिय) नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य की (ण रक्खिय) रक्षा नही की हो (ण रक्खाविय) न रक्षा कराई हो और (ण रक्खिज्जतो वि समणुमण्णिदो) न रक्षा करने वालो की सम्यक् प्रकार अनुमोदना की हो (तस्स) उस नव प्रकार के ब्रह्मचर्य के रक्षण सबधी (मे) मेरा (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

अपरिग्रह महाव्रत के दोषों की आलोचना

अहावरे पचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमण सो वि परिग्गहो दुविहो अब्भंतरो बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भतरो परिग्गहो णाणावरणीयं, दसणावरणीय, वेयणीय, मोहणीयं, आउग्ग, णाम गोद, अंतराय चेदि अट्ठविहो। तत्थ बाहिरो परिग्गहो-उवयरण-भड-फलह-पीढ-कमण्डलु-सथार-सेज्ज-उवसेज्ज, भत्तपाणादि-भेदेण अणेयविहो, एदेण परिग्गहेण अट्ठविहं कम्मरय बद्ध बद्धाविय, बज्झन्त वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब अन्य (पचमे महव्वदे) पाँचवे परिग्रह त्याग महाव्रत मे (परिग्गहादो) परिग्रह से (वेरमण) विरक्त, विरमण करना चाहिये। (सो) वह (परिग्गहो) परिग्रह (वि) भी (दुविहो) दो प्रकार का है (अब्भतरो) आभ्यतर (च) और (बाहिरो) बाह्य (इदि) इस प्रकार। (तत्थ) उस दो प्रकार के परिग्रह के मध्य (अब्भतरो परिग्गहो)

आभ्यतर परिग्रह (णाणावरणीय) ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणी (दसणावरणीय) दर्शन का आवरण करने वाला दर्शनावरणीय है (वेयणीय) सुख-दुख का वेदन कराने वाला वेदनीय है, (मोहणीय) मोहित करने वाला कर्म मोहनीय है, (आउग्ग) नरक-तिर्यच आदि भवो को प्राप्त कराने वाला आयु कर्म (णाम) जो आत्मा को नमाता है वह नाम कर्म है (गोद) उच्च-नीच कुल मे उत्पन्न करने वाला गोत्र कर्म है (च) और (अतराय) दाता और पात्र के बीच मे आ जाता है वह अन्तराय कर्म है (इदि) इस प्रकार (अट्ठविहो) आठ प्रकार (तत्थ) उन दोनो परिग्रहो के मध्य मे (बाहिरो परिग्गहो) बाह्य परिग्रह (उवयरण) उपकरण-उपकरण दो प्रकार के है-ज्ञानोपकरण और सयमोपकरण। ज्ञानोपकरण पुस्तकादि और सयमोपकरण पिच्छिका आदि। (भड) भाजन-औषध, तैल आदि द्रव्य के भाजन, (फलह) फलक-सोने के लिये पाय रहित फड काष्ठ, आदि, (पीढ) बैठने का पाटा, चौकी आदि, (कमण्डलु) कमण्डलु (सथार) काष्ठ तृण आदि का सस्तर (सेज्ज उवसेज्ज) शय्या वसतिका, उपशय्या देवकुलिका आदि (भत्तपाणादि) चावल आदि भोजन तथा दूध, छाछ आदि पेय पदार्थ आदि (भेदेण) भेद से (अणेयविहो) परिग्रह अनेक प्रकार का है (एदेण परिग्गहेण) इस प्रकार पूर्व मे कथित प्रकार से परिग्रह (अट्ठविह कम्मरय) आठ प्रकार का कर्म है वह कर्म ही शुद्धात्मस्वरूप की प्राप्ति मे मलिनता का हेतु होने से वह रज है, उस कर्म रज को प्रकृति, प्रदेश आदि रूप (बद्ध) मैने स्वय बाँधा हो (बद्धाविय) अन्य से बँधवाया हो (बज्झन्त वि समणुमण्णिदो) और बाँधते हुए अन्य की अनुमोदना की हो (तस्स) उस बाह्य अभ्यतर परिग्रह से उपार्जित (मे) मेरा (दुक्कड) दुष्कृत पाप (मिच्छा) मिथ्या हो।

छठा अणुव्रत रात्रि भोजन सम्बन्धी दोषों की आलोचना

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमणं से असण, पाण, खाइयं, साइयं चेदि। चउव्विहो आहारो से तित्तो वा, कडुओ वा, कसाइलो वा, अमिलो वा, महुरो वा, लवणो वा, अलवणो वा, दुच्चिंतिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, दुस्समिणिओ, रत्तीए भुत्तो, भुंजावियो, भुंज्जिजंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।६।।

अन्वयार्थ—(अहावरे) अब (छट्ठे) षष्ठम (अणुव्वदे) अणुव्रत मे (राइभोयणादो वेरमण) रात्रि भोजन से विरक्ति है। इस रात्रिभोजनत्याग अणुव्रत मे प्राणातिपात हिसा आदि के समान पूर्णरूप से विरति का अभाव है। यहाँ रात्रि मे ही भोजन से निवृत्ति है, दिन मे नही, यथाकाल भोजन मे प्रवृत्ति सभव होने इसे रात्रि भोजन त्याग अणुव्रत कहते है (से) जिस आहार की अपेक्षा रात्रि मे भोजन का त्याग का होता वह (चउविहो) चार प्रकार का (आहारो) आहार है। (असण) भात, दाल आदि अन्न अशन है (पाण) दूध, छाछ आदि पान है (खाइय) खाद्य-लड्डू आदि (च) और (साइय) स्वाद्य-रुचि उत्पादक सुपारी, इलायची (इदि) इस प्रकार। (से) वह चार प्रकार का आहार (तित्तो वा) चरपरा आहार या (कडुओ वा) कड़वा आहार या (कसाइलो वा) कषैला आहार या (अमिला वा) खट्टा आहार या (महुरो वा) मधुर आहार या (लवणो वा) लवण या क्षार आहार या (अलवणो वा) अलवण रूप होता है अथवा (दुच्चितिओ) वह चार प्रकार का आहार खाने-पीने-योग्य नही होने पर भी खाने-पीने योग्य है ऐसा अशुभ चितन किया हो (दुब्भासिओ) अयोग्य आहार को भी यह खाने योग्य है, इसे खावे ऐसा कहा गया हो (दुप्परिणामिओ) अयोग्य आहार को मन के द्वारा ग्रहण करने की स्वीकारता दी हो (दुस्समिणिओ) स्वप्न मे खाया हो (रत्तीएभुत्तो) रात्रि मे खाया हो (भुजावियो) दूसरो को खिलाया हो (वा) अथवा (भुज्जिज्जतो) अन्य रात्रि मे खाने वालो की (समणुमण्णिदो) सम्यक् प्रकार से अनुमोदना की हो (तस्स) इस प्रकार उस रात्रिभोजन त्याग सम्बधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो।

पाँच समिति के अन्तर्गत ईर्या समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

पंचसमिदीओ, इरियासमिदी, भासासमिदी, एसणासमिदी, आदाण-णिक्खेवण समिदी, उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावण-समिदी चेदि।

तत्थ इरियासमिदी पुव्वुत्तर-दक्खिण-पच्छिम चउदिसि, विदिसासु, विहर-माणेण, जुगंतर-दिट्ठिणा, भव्वेण दट्ठव्वा। डव-डव-चरियाए, पमाद-

दोसेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।७।।

अन्वयार्थ—(पचसमिदीओ) समितियाँ पाँच है (इरियासमिदी) ईर्यासमिति (भासासमिदी) भाषा समिति (एसणासमिदी) एषणा समिति (आदाणणिक्खेवणसमिदी) आदाननिक्षेपण समिति (च) और (उच्चार-पस्सवण-खेल-सिहाणयवियडि पइट्ठावणसमिदी) उच्चार-प्रस्रवण-क्ष्वेल-सिहाण-विकृति-प्रतिष्ठापना समिति (तत्थ) उन पाँच समितियो मे (इरियासमिदी) ईर्यासमिति–प्राणी पीड़ा के परिहार के लिये विवेकपूर्वक प्रवृत्ति। [अथवा ईरणमीर्या गमन]। इस ईर्या समिति मे (पुव्वुत्तर) पूर्व और उत्तर (दक्खिण पश्चिम चउदिसि) दक्षिण-पश्चिम चार दिशाओ मे (विदिसासु) चार विदिशाओ-वायव्य, ईशान, नैऋत और आग्नेय इनमे (विहरमाणेण) विहार करते हुए मुझे (जुगतर दिट्ठिणा दट्ठव्वा) को चार हाथ प्रमाण सामने भूमि को देखकर चलना चाहिये किन्तु (पमाददोसेण) इस ईर्या समिति मे सावधान न रहकर प्रमादवश (डव-डव-चरियाए) अति जल्दी ऊपर मुख करके इधर-उधर गमन करते हुए (पाण) विकलेन्द्रिय जीव (भूद) वनस्पतिकायिक जीव (जीव) पञ्चेन्द्रिय जीव (सत्ताण) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीवो का (उवघादो) एकदेश या पूर्ण घात (कदो वा) मैने स्वय किया हो या (कारिदो वा) कराया हो अथवा (कीरतो वा, समणु-मण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो (तस्स) ईयासमिति सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) पाप (मिच्छा) मिथ्या हो।

भाषा समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ भासासमिदी कक्कसा, कडुवा, परुसा, णिट्ठुरा, परकोहिणी, मज्झकिसा, अइ-माणिणी, अणयंकरा, छेयंकरा, भूयाण-वहंकरा चेदि। दसविहा भासा, भासिया, भासाविया, भासिज्जंतो वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।८।।

अन्वयार्थ—(तत्थ भासासमिदी) उनमे भाषा समिति दस प्रकार की है। उन्ही दस भेदो को कर्कश आदि रूप मे आगे कहा जाता है—

(कक्कस्सा) कर्कश–सन्ताप उत्पन्न करने वाली भाषा कर्कशा/कक्कसा कहलाती है जैसे–तू मूर्ख है, कुछ नही जानता है इस प्रकार बोलना। (कडुया) कटुक–दूसरो के मन मे उद्वेग करने वाली भाषा है, जैसे–तू जातिहीन है, तू अधर्मी, धर्महीन, पापी है इत्यादि वचन कहना। (परुसा) परुषा अर्थात कठोर वाणी, मर्मभेदी वचन, जैसे–तू अनेक दोषो से दूषित है इत्यादि। (णिट्ठुरा) निष्ठुर भाषा। जैसे–तुझे मारूँगा, तेरा शिर काट लूँगा इत्यादि वचन। (परकोहिणी) परकोपिनी–दूसरो को रोष उत्पन्न करने वाली परकोपिनी भाषा है, जैसे–तेरा तप किसी काम का नही है, तू हँसी का पात्र है, निर्लज्ज है, इत्यादि वचन। (मज्झकिसा) मध्यकृशा भाषा–इतनी निष्ठुर, कठोर भाषा जो हड्डियो का मध्यभाग भी छेद दे (अईमाणिणी) अतिमानिनी भाषा–स्वप्रशसा और परनिदा कर अपने महत्त्व को प्रसिद्ध करने वाली भाषा (अणयकरा) अनयकरी भाषा–समान स्वभाव वालो मे विच्छेद कराने वाली या परस्पर मित्रो मे द्वेष, विरोध उत्पन्न करने वाली भाषा (छेयकरा) छेदकरी भाषा–वीर्य, शील आदि गुणो को जड से नाश करने वाली अथवा असद्भूतदोष अर्थात् जो दोष नही है उन्हे प्रकट करने वाली भाषा (च) और (भूयाणवहकरा) जीवो की वधकारी भाषा–जीवो के प्राणो का वियोग करने वाली भाषा (इदि) इस प्रकार (दसविहाभासा) दस प्रकार की भाषाएँ (भासिया) स्वय बोली हो (भासाविया) दूसरो से बुलाई हो (भासिज्जतो वि समणुमण्णिदो) बोलते हुए दूसरों की मैंने अनुमोदना भी की हो (तस्स) उस भाषा समिति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो। हे भगवन्, भाषा समिति सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

एषणा समिति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ एसणासमिदी अहाकम्मेण वा, पच्छाकम्मेण वा, पुरा-कम्मेण वा, उदड्डियडेण वा, णिद्दिट्ठियडेण वा, कीडयडेण वा, साइया, रसाइया, संइगाला, सधूमिया, अइगिद्धीए, अग्गीव, छण्ह जीव-णिकायाणं विराहणं, काऊण, अपरिसुद्धं, भिक्खं, अण्णं, पाणं, आहारियं, आहाराविय, आहारिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।९।।

अन्वयार्थ—(तत्थ एसणासमिदी) उद्गमादि दोषो से रहित योग्य

निर्दोष आहार को ग्रहण करना यह एषणा समिति है। इसके विपरीत जो अशुद्ध आहार है वह मुनियो को ग्रहण नही करना चाहिये। आहार मे अशुद्धता सबधी दोष कैसे होते है उसी को आगे कहते है—(आहकम्मेण वा) अध कर्म से अर्थात् पृथ्वी आदि छ जीवनिकाय की विराधना करके बनाये गये आहार से या (पच्छाकम्मेण वा) पश्चात् कर्म अर्थात् मुनि के आहार करके जाने के बाद पुन भोजन बनाने से या (पुराकम्मेण वा) पुराकर्म अर्थात् मुनि ने आहार नही किया उसके पहले पाकादि क्रिया प्रारभ करने से अथवा (उद्दिट्ठयडेण वा) उद्दिष्टकृत अर्थात् मुनि को उद्देश्य करके उनका सकल्प करके जो भोजन बनाया अथवा देवता, पाखण्डी आदि का उद्देश्य करके जो भोजन बना है उसके ग्रहण से अथवा (णिद्दिट्ठयडेण वा) निर्दिष्टकृत अर्थात् आपके लिये यह भोजन बनाया है ऐसा कहने पर ग्रहण करने से (कीडयडेण वा) क्रीत दोष से बनाये भोजन को ग्रहण करने से। क्रीत दोष दो प्रकार का है—

१. द्रव्यक्रीत कृत।
२. भावक्रीत कृत।

१. द्रव्यक्रीत कृत दो प्रकार का है- (१) चेतन द्रव्यक्रीत कृत (२) अचेतनद्रव्यक्रीत कृत।

(१) चेतन द्रव्यक्रीत वृत—मुनियो को चर्यामार्ग से आते देखकर चेतन गाय, भैस, बैल आदि द्रव्यो को बेचकर आहार दान की सामग्री लाना और मुनियो को देना चेतन-द्रव्यक्रीतकृत दोष है।

(२) अचेतनद्रव्यक्रीत कृत—मुनियो को चर्यामार्ग से आते देखकर अचेतन सुवर्ण, चॉदी आदि बेचकर भोजन सामग्री लाना और मुनियो को देना अचेतनद्रव्यकीत कृत दोष है।

२. भावक्रीत कृत दोष—मत्र, तत्र आदि प्रज्ञप्ति आदि विद्या चेटिका आदि मत्र देकर भोजन-सामग्री लाना और उससे आहार दान देना।

(साइया) स्वादिष्ट (रसाइया) रसयुक्त/रसीले (सइङ्गाला) अति आसक्ति से ग्रहण किये गये (सधूमिया) दातार आदि की निन्दा करते हुए (अइगिद्धीए) अति गृद्धता अर्थात् लालसापूर्वक (अग्गिव) अग्नि

की तरह (छण्ह) छह प्रकार के (जीवणिकायाण विराहण काऊण) जीवनिकाय के समूह की विराधना करके (अपरिसुद्ध) सदोष, अयोग्य (भिक्ख) भिक्षा मे (अण्ण पाण) अन्न पान रूप आहार भोजनादि को (आहारिय) स्वय ग्रहण किया हो (आहाराविय) दूसरे को कहकर आहार ग्रहण कराया हो (आहारिज्जत वि) और आहार करते हुए की भी (समणुमण्णिदो) अनुमोदना की हो (तस्स) उस एषणा समिति सम्बन्धी (दुक्कड) दुष्कृत (मे) मेरे (मिच्छा) मिथ्या हो ।

आदान निक्षेपण समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ आदाण-णिक्खेवण-समिदी चक्कलं वा, फलह वा, पोत्थय वा, पीढ वा, कमण्डलु वा, वियडि वा, मणि वा, एवमाइय, उवयरणं, अप्पडिलेहिऊण-गेण्हंतेण वा, ठवतेण वा, पाण-भूद-जीव-सत्ताण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।१०।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन पॉच समितियो मे (आदाण णिक्खेवणसमिदी) चतुर्थ आदाननिक्षेपण समिति मे (चक्कल वा) चक्कल या (फलह वा) निर्दोष, जीवहिसा रहित बैठने के लिए फलक/पाट अथवा (पोत्थयं वा) ज्ञान का उपकरण शास्त्र या (पीढ वा) आसन या (कमडलु वा) शौच उपकरण कमण्डलु या (वियडि वा) विकृति-मलादि रूप विकार या (मणि वा) मणि अर्थात् मणि आदि की जपमाला या (एवमाइय) इत्यादि वस्तु रूप (उवयरण) उपकरणो को (अप्पडिलेहिऊणगेण्हतेण वा) पिच्छी आदि के द्वारा प्रतिलेखन न करके उठाते हुए या (ठवतेण) धरते हुए मैने (पाण-भूद-जीव-सत्ताण) प्राण, भूत, जीव और सत्व का (उवघादो) उपघात (कदो वा) मैने स्वय किया हो, या (कारिदो वा) दूसरो से कराया हो या (कीरतो वा समणुमण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस आदाननिक्षेपण समिति सम्बधी मेरे (दुक्कड) दुष्कृत/पाप (मिच्छा) मिथ्या हो ।

प्रतिष्ठापन समिति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तत्थ उच्चार-पस्सवण-खेल-सिंहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी

रत्तीए वा, वियाले वा, अचक्खुविसए, अवत्थडिले, अब्भोवयासे, सणिद्धे, सवीए, सहरिए, एवमाइयासु, अप्पासु गट्ठाणेसु, पइट्ठावतेण, पाण-भूद-जीव-सत्ताण, उवघादो, कदो वा कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।११।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन समितियो मे (उच्चार-पस्सवण-खेल-सिहाणय-वियडि-पइट्ठावणिया समिदी) प्राणी पीडा परिहार रूप प्रतिष्ठापना समिति मे उच्चार, प्रस्रवण, क्ष्वेल, सिहाणक, विकृति इन वस्तुओ के त्यागने मे प्रमादवश (रत्तीए वा) रात्रि मे या (वियाले वा) सध्या-काल मे या (अचक्खुविसये अवत्थडिले) चक्षु से देखने मे न आवे ऐसे असस्कारित या सस्कारित अप्रासुक उच्च भूमि प्रदेश मे या नीच अप्रासुक भूमि प्रदेश मे (अब्भोवयासे) अब्भ्रावकाश–पानी वृक्ष आदि से अप्रच्छादित अप्रासुक खुले आकाश प्रदेश यह उपलक्षण मात्र है, इससे वृक्षादि से अप्रच्छादित और अप्रासुक खुले स्थान का ही ग्रहण होता है, उसमे (सणिद्धे) स्निग्ध-आर्द्र, कोमल भूमि प्रदेश मे (सवीये सहरिए) बीज सहित हरितकाय युक्त भूमि प्रदेश मे (अप्पासुगट्ठाणेसु) अप्रासुक भूमि प्रदेशो मे (पइट्ठावतेण) मल-मूत्र आदि का क्षेपण करते हुए मैने (पाण-भूद-जीव-सत्ताण) विकलेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, पञ्चेन्द्रिय और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु कायिक जीवो का (उवघादो) उपघात (कदो वा) किया हो या (कारिदो वा) कराया हो या (कीरतो वा समणुमण्णिदो) अथवा करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस प्रतिष्ठापना समिति सम्बन्धी (मे दुक्कड) मेरे पाप (मिच्छा) मिथ्या हो ।

मन गुप्ति सम्बन्धी दोषों की आलोचना

तिण्णि-गुत्तीओ, मण-गुत्तीओ, वचि-गुत्तीओ, काय-गुत्तीओ चेदि । तत्थ मण-गुत्ती, अट्टे झाणे, रुद्दे झाणे, इह-लोय-सण्णाए, पर-लोए-सण्णाए, आहारसण्णाए, भय-सण्णाए, मेहुण-सण्णाए, परिग्गह-सण्णाए, एवमाइयासु जा मण-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जंतं वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१२।।

अन्वयार्थ—(तिण्णि-गुत्तीओ) गुप्तियाँ तीन है—(मणगुत्तीओ, वचिगुत्तिओ, कायगुत्तीओ च इदि) मनगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति

इस प्रकार। मन, वचन, काय इन योगो को सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है (तत्थ मणगुत्ती) उन तीन गुप्तियो को प्रथम मनगुप्ति [आर्त्तध्यान आदि रूप अशुभ परिणामो से मन को रोकना मनगुप्ति है] का (अट्टेझाणे) आर्त्तध्यान मे (रुद्देझाणे) रौद्र ध्यान मे (इहलोयसण्णाए) इस लोक सबधी आहार आदि सज्ञा मे (परलोयसण्णाए) परलोक सबधी सुखादि की अभिलाषा मे (आहार सण्णाए) आहार की वाञ्छा मे (भयसण्णाए) भय सज्ञा मे (मेहुण सण्णाए) मैथुन सज्ञा मे (परिग्गहसण्णाए) परिग्रह सज्ञा मे (एव) इस प्रकार इहलोक सज्ञा, परलोक सज्ञा आदि के विषयो मे (जा) जो (मणगुत्ती) मनगुप्ति का मैने (ण रक्खिया) रक्षण नही किया हो (ण रक्खाविया) रक्षण नही कराया हो (अपि) और (ण रक्खिजत वि समणुमण्णिदो) रक्षण नही करने वालो की अनुमोदना भी की हो तो (तस्स) मनगुप्ति सम्बन्धी मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो।

वचन गुप्ति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ वचि-गुत्ती इत्थि-कहाए, अत्थ-कहाए, भत्त-कहाए, राय-कहाए, चोर-कहाए, वेर-कहाए, परपासड-कहाए, एवमाइयासु जा वचि-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रखिज्जत वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।१३।।

अन्वयार्थ—(तत्थ) उन तीन गुप्तियो मे (वचिगुत्ती) विकथा के विषय मे वचनो का गोपन/रक्षण करना वचनगुप्ति है तथा उत्सूत्र अर्थात् आगमविरुद्ध भाषा का रोकना तथा गृहस्थो जैसी व्यर्थ भाषा का रोकना या मौन रहना वचन गुप्ति है। किन-किन विकथाओ मे वचन का रक्षण करना चाहिये उसी को आगे कहते है (इत्थिकहाए) स्त्री कथा मे—उन स्त्रियो के नयन, नाभि, नितम्ब आदि के वर्णन रूप कथा मे (अत्थकहाए) धन के उपार्जन, रक्षण आदि के कथन रूप अर्थकथा मे (भत्तकहाए) भोजन का वर्णन करने रूप भक्त कथा मे (रायकहाए) राजा की कथा रूप राजकथा मे (चोरकहाए वेरकहाए) चौरो का वर्णन करने वाली चौर कथा मे और विद्वेष या वैर बढ़ाने वाली वैर कथा मे (परपासंडकहाए) दूसरे कुलिगी, मिथ्यादृष्टियो की चर्चा या कथन करने रूप परपाखंड कथा

मे (एवमादियासु) इस प्रकार की कथाओ मे (जा वचिगुत्ती) जो वचनो का गोपन (ण रक्खिया) वचनो का रक्षण स्वय मैने नही किया हो (ण रक्खाविया) दूसरो से रक्षण नही कराया हो (ण रक्खिज्जत वि समणुमण्णिदो) वचन गुप्ति का रक्षण नही करने वालो की अनुमोदना की हो तो (तस्स) उस वचन गुप्ति सम्बन्धी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो ।

काय गुप्ति संबंधी दोषों की आलोचना

तत्थ काय-गुत्ती चित्त-कम्मेसु वा, पोत्त-कम्मेसु वा, कट्ठ-कम्मेसु वा, लेप्प-कम्मेसु वा, लय-कम्मेसु वा, एवमाइयासु जा काय-गुत्ती, ण रक्खिया, ण रक्खाविया, ण रक्खिज्जत वि समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।१४।।

अन्वयार्थ—(तत्थ कायगुत्ती) चित्र आदि स्त्रियो के रूप आदि मे अपने हाथ-पैरो का रक्षण करना तथा अपने हाथ-पैर आदि की यथेष्ट प्रवृत्ति रोकना कायगुप्ति है। चेतन स्त्री के रूप आदि मे तो ब्रह्मचर्यव्रत होने से काय गुप्ति सिद्ध ही है, अचेतन के विषय मे किस-किस मे काय का गोपन करना चाहिये उसे आगे कहते है—(चित्तकम्मेसु) चित्र-रचना कार्यो मे अर्थात् स्त्री की फोटो आदि मे (वा) अथवा (पोत्तकम्मेसु) पुस्तकर्म अर्थात् ग्रथ-लेखन-कार्यो मे (वा) अथवा (कट्ठकम्मेसु) काष्ठ की बनी पुत्तलिका आदि कार्यो मे (लेप्पकम्मेसु) लेपकर्म सबधी कार्यो मे (लय-कम्मेसु वा) या लयन कर्म मे (एवमाइयासु) इस प्रकार स्त्री के प्रतिबिंब आदि मे मैने जो (कायगुत्ती ण रक्खिया) कायगुप्ति का रक्षण स्वय नही किया हो (ण रक्खाविया) कायगुप्ति का रक्षण नहो कराया हो (ण रक्खिज्जत वि समणुमण्णिदो) और सरक्षण नही करने वालो की भी अनुमोदना की हो (तस्स) उस कायगुप्ति सबधी (मे दुक्कड) मेरे दुष्कृत (मिच्छा) मिथ्या हो ।

आलोचनाओं का उपसंहार तथा कलाकांक्षा संबंधी विवेचन

दोसु अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामेसु, तीसु अप्प-सत्थ-संकिलेस-परिणामेसु, मिच्छाणाण-मिच्छादंसण-मिच्छाचरित्तेसु, चउसु उवसग्गेसु, चउसु सण्णासु, चउसु पच्चएसु, पचसु चरित्तेसु, छसु जीव-णिकाएसु,

छसु आवासएसु, सत्तसु भयेसु, अट्ठसु सुद्धीसु, णवसु बभचेर-गुत्तीसु, दससु समण-धम्मेसु, दससु धम्मज्झाणेसु, दससु मण्डेसु, बारसेसु संजमेसु, बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए भावणासु, पणवीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु उत्तरगुणेसु (अट्ठमियम्मि), (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि), अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो जो त पडिक्कमामि । मए पडिक्कत तस्स मे सम्मत्तमरणं, पंडियमरण, वीरिय-मरण, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिणगुण-सम्पत्ति होदु मज्झ ।

अन्वयार्थ—(दोसु अट्टरुद्द सकिलेसपरिणामेसु) दो भेद रूप आर्त रौद्र सक्लेश परिणाम (तीसुअप्पसत्थ-सकिलेसपरिणामेसु) माया, मिथ्या, निदान रूप तीन अप्रशस्त सक्लेश परिणामो मे (मिच्छाणाण-मिच्छा दसण-मिच्छा चरित्तेसु) मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्रो मे (चउसु उवसग्गेसु) चार प्रकार के उपसर्गो मे (चउसु सण्णासु) चार प्रकार की सज्ञाओ मे (चउसु पच्चएसु) चार प्रकार के आस्रवो मे (पचसु चरित्तेसु) पॉच प्रकार के चारित्रो मे (छसु जीवणिकाएसु) छह प्रकार के जीवो के समूह मे (छह आवासएसु) छह प्रकार आवश्यको मे (सत्तसु भयेसु) सात प्रकार के भयो मे (अट्ठसु सुद्धीसु) आठ प्रकार की शुद्धियो मे (णवसु बभचेरगुत्तीसु) नव-प्रकार ब्रह्मचर्य गुप्तियो मे (दससु समण-धम्मेसु) दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे (दससु धम्मज्झाणेसु) दस प्रकार के धर्म्यध्यानो मे (दससु मुण्डेसु) दस प्रकार के मुॅडो मे (बारसेसु-सजमेसु) बारह प्रकार सयमो मे (बावीसाए परीसहेसु) बावीस प्रकार परीषहो मे (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार भावनाओ मे (पणवीसाए किरियासु) पच्चीस प्रकार की क्रियाओ मे (अट्ठारस-सील-सहस्सेसु) अठारह हजार शीलो मे (चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु) चौरासी लाख गुणो मे (मूलगुणेसु) मूल गुणो मे (उत्तरगुणेसु) उत्तर गुणो मे [अट्ठमियम्मि] आठ दिनो मे [पक्खियम्मि] एक पक्ष मे, [चउमासियम्मि] चातुर्मास मे [सवच्छरियम्मि] एक वर्ष मे, [अदिक्कमो] अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार, (आभोगो)

आभोग (अणाभोगो) अनाभोग (जो) जो हुआ (त) उसका (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ। (मए पडिक्कत तस्स) व्रत सबधी दोषो का प्रतिक्रमण मेरे द्वारा किया गया (मे सम्मत्तमरण) मेरा सम्यक्मरण हो, (पडिय मरण) पडित मरण हो (वीरिय मरण) वीर मरण हो (दुक्खक्खओ) दु खो का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) बोधिलाभ हो (सुगइ-गमण) सुगति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिनगुण सम्पत्ति होदु मज्झ) जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दो भेद रूप आर्त्त-रौद्रध्यानमय सक्लेश परिणामो मे माया, मिथ्या, निदान रूप तीन अशुभ परिणामो मे, मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रो मे। मनुष्यकृत, देवकृत, तिर्यंचकृत और अचेतनकृत चार प्रकार के उपसर्गो मे, आहार, भय, मैथुन और परिग्रह चार सज्ञाओ मे। चार प्रकार आस्रव-मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योगो मे। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म-साम्पराय और यथाख्यात पॉच प्रकार के चारित्रो मे। पॉच स्थावर और एक त्रस ऐसे छह जीव निकायो मे। समता, वदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यको मे। सात भयो मे—इहलोक, परलोक, वेदना, मरण अरक्षा, अगुप्ति और आकस्मिक भयो मे।

मनोवाक्कायभैक्ष्येर्या, सूत्सर्गे शयनासने।
विनये च यते शुद्धि, शुद्ध्यष्टकमुदाहृदम्॥

मन, वचन, काय, भिक्षा, ईर्या, उत्सर्ग, शयनासन और विनय इन आठ प्रकार की शुद्धियो मे। तिर्यंच, मनुष्य, देवस्त्रियो मे प्रत्येक का मन-वचन-काय से सेवन नही करने रूप नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियो मे। दस प्रकार के श्रमण धर्मो मे। अपायविचय, उपायविचय, विपाकविचय, आज्ञाविचय, सस्थानविचय, ससारविचय, विरागविचय, लोकविचय, भवविचय, जीवविचय दस प्रकार के धर्म्यध्यानो मे। पॉच इन्द्रिय, वचन, हाथ, पॉव, शरीर, और मन को निरोध करने रूप दस मुडो मे—

पंचवि इंदिय मुंडा, वचि मुंडा हत्थ-पाय-तणुमुंडा।
मणमुण्डेण य सहिया, दसमुंडा विण्णदा समये॥

छह प्रकार का इन्द्रिय सयम और छह प्रकार का प्राणी सयम इस

प्रकार १२ प्रकार के सयमो मे। बावीस प्रकार के परीषहो मे। अहिसा आदि व्रतो को स्थिर रखने की २५ भावनाओ मे। २५ प्रकार की क्रियाओ मे। १८ हजार शीलो मे, ८४ लाख उत्तरगुणो मे और अठाईस प्रकार के मूलगुणो यति आचारो मे, आठ दिन, पन्द्रह दिन, चातुर्मास, एक वर्ष के अनुष्ठानो मे मैने जो भी अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, कापोतलेश्या के वश से पूजा, ख्याति की अभिलाषा से अतिप्रकट अनुष्ठान करने रूप आभोग, लज्जा आदि के वश से लोक मे अप्रकट रूप अनुष्ठान करने रूप अनाभोग आदि जो किया है उस सब क्रिया का मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

मेरे द्वारा अतिक्रम, व्यतिक्रम, आभोग, अनाभोग आदि दूषित क्रिया का प्रतिक्रमण कर निर्दोष व्रतानुष्ठान करने से मेरा सम्यक्त्व सहित मिथ्यात्व रहित मरण हो, समाधिमरण हो, भक्त प्रत्याख्यान, इगिनी और प्रायोपगमन रूप पडित मरण, भय रहित वीर मरण हो, दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, बोधिलाभ हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

लघु-सिद्ध भक्ति

नमोऽस्तु सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं सिद्ध-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—हे भगवन्! नमोस्तु/नमस्कार हो, मै सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये सिद्ध-भक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ

[कायोत्सर्ग]

सम्मत्त-णाण-दंसण-वीरिय-सुहुम तहेव अवगहणं।
अगुरु-लघु-मव्वावाहं अट्ठगुणा होंति सिद्धाणं ।।१।।
तवसिद्धे, णयसिद्धे संजमसिद्धे चरित्तसिद्धे य।
णाणम्मि दसणम्मि य सिद्धे सिरसा णमंसामि ।।२।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! सिद्धभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताणं, अट्ठविहकम्मविप्पमुक्काणं, अट्ठगुणसंपण्णाणं, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाणं तवसिद्धाणं, णयसिद्धाणं, संजमसिद्धाणं,

चरित्तसिद्धाण अतीता-णागदवट्टमाण-कालत्तय सिद्धाण, सव्वसिद्धाण णिच्चकाल, अचेमि, पूजेमि, वन्दामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमण समाहि-मरण, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झ ।

[इन गाथाओ का तथा गद्य का अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

लघु योगिभक्ति

नमोऽस्तु सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थ-मालोचना-योगि-भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम् ।

अर्थ—हे भगवन् ! नमस्कार हो, मै अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये योगि भक्ति सबधी कायोत्सर्ग करता हूँ

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।

[कायोत्सर्ग]

प्रावृट्-काले सविद्युत्-प्र-पतित सलिले वृक्ष-मूलाधिवासा·,
हेमन्ते रात्रि-मध्ये प्रति-विगत-भया.काष्ठ-वत्-त्यक्त देहा· ।
ग्रीष्मे सूर्यांशु-तप्ता-गिरि-शिखर-गता. स्थान-कूटातर-स्थास्-,
ते मे धर्मं प्रदद्युर्मुनि-गण-वृषभा मोक्ष-निःश्रेणि-भूता. ।।१।।

गिम्हे गिरि-सिहरत्था वरिसा-याले रुक्ख-मूल-रयणीसु ।
सिसिरे वाहिर-सयणा ते साहू वदिमो णिच्च ।।२।।
गिरि-कन्दर-दुर्गेषु ये वसन्ति दिगम्बरा. ।
पाणि-पात्र-पुटाहारा-स्ते यांति परमा गतिम् ।।३।।

[अञ्चलिका]

इच्छामि भते ! योगिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णा-रस-कम्म-भूमिसु, आदावण-रुक्ख-मूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-वीरासणेक्क-पास-कुक्कुडासण-चउ-छ-पक्ख-खवणादिजोग-जुत्ताण सव्वसाहूण णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमण समाहि-मरण, जिणगुणसंपत्ति होदु मज्झ ।

[इन गाथा, श्लोक व गद्य का अर्थ योगी भक्ति मे देखिये]

आलोचना

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंच-महव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, तेऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।१।।

बे-इंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुक्खि, किमि, संख, खुल्लय-वराडय-अक्ख-रिट्ठय-गण्डवाल, सव्वुक, सिप्पि, पुलविकाइया एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो, कदो वा, कारिदो, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२।।

ते-इंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थूद्देहियविच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो, वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।३।।

चउरिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा दंस-मसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।४।।

पंचिंदियाजीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, एदेसिं, उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।५।।

वद समि-दिंदिय-रोधालोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगणा समणाण जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद कदादो अइचारादो णियत्तो हं ।।२।।
छेदोवट्ठावण होदु मज्झ ।।३।।

इस प्रकार आचार्य श्री उपर्युक्त पाठ का तीन बार बोलकर अरहत-देव के समक्ष अपने दोषो की आलोचना करे। पश्चात् जैसे दोष लगे हो उनके अनुसार स्वय प्रायश्चित्त लेकर निम्नलिखित पाठ तीन बार बोले।

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-षडावश्यक-क्रिया-लोचादयोऽष्टविंशति-मूलगुणा., उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्य-सयम-तप-स्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्याणि दश-लाक्षणिको धर्म., अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतुरशीति-लक्ष-गुणा, त्रयोदशविध चारित्र, द्वादशविध तपश्चेति। सकलं-सम्पूर्ण अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिक सम्यक्त्व-पूर्वक दृढ-व्रत, सुव्रत, समारूढ ते मे भवतु ।।१।।

[सर्व आलोचना प्रकारण का अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखिये]

उपर्युक्त पचमहाव्रत-पचसमिति आदि पाठ तीन बार बोलकर प्रायश्चित्त के योग्य शिष्यो को प्रायश्चित्त देवे। पश्चात् देव के लिये निम्नलिखित गुरुभक्ति बोले।

[निष्ठापनाचार्य भक्ति]

प्रतिज्ञा—अथ नमोस्तु श्री निष्ठापना आचार्य भक्ति कायोत्सर्ग करोम्यहम् —

अर्थ—नमस्कार हो, निष्ठापन श्री आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ।

कायोत्सर्ग करना

श्रुत-जलधि-पारगेभ्य: स्व-पर-मत-विभावना-पटु-मतिभ्य: ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्य: ।।१।।
छत्तीस-गुण-समग्गे पच-विहाचार-करण-संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।

गुरु-भत्ति-संजमेण य तरति ससार-सायर घोर।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरण ण पावेंति ।।३।।
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुला,
षट्-कर्माभि-रतास्तपो-धन-धनाः साधु क्रियाः साधवः।
शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणतु मा साधवः ।।४।।
गुरवः पान्तु नो नित्य ज्ञान-दर्शन-नायका·।
चारित्रार्णव-गभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशकाः ।।५।।

[आचार्य श्री शिष्यो मुनि और साधर्मी मुनि मिलकर आचार्य श्री के समक्ष निम्न पाठ पढे।]

इच्छामि भंते! (पक्खियम्मि), (चउमासियम्मि), (संवच्छरियम्मि) आलोचेउं, पंच महव्वदाणि तत्थ पढम महव्वद पाणादिवादादो वेरमण, बिदियं महव्वद मुसावादादो वेरमण, तिदिय महव्वद अदिण्णा-दाणादो वेरमणं, चउत्थ महव्वदं मेहुणादो वेरमण, पचम महव्वदं परिग्गहादो वेरमण, छट्ठ अणुव्वद राइभोयणादो वेरमण, तिस्सु गुत्तीसु, णाणेसु, दंसणेसु, चरित्तेसु, बावीसाए परीसहेसु, पण-वीसाए भावणासु, पण-वीसाए किरियासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, बारसण्ह सजमाण, बारसण्ह तवाणं, बारसण्हं अगाणं, तेरसण्ह चरित्ताणं, चउदसण्ह पुव्वाणं, एयारसण्हं पडिमाणं दसविह मुण्डाणं, दसविह-समण-धम्माणं, दसविह-धम्मज्झाणाणं, णवण्ह बभचेर-गुत्तीण, णवण्ह णो-कसायाणं, सोलसण्हं कसायाण, अट्ठण्हं कम्माणं, अट्ठण्हं सुद्धीणं, अट्ठण्हं पवयण-माउयाण, सत्तण्ह भयाण, सत्तविहसंसाराणं, छण्हं जीव-णिकायाणं, छण्हं आवासयाणं, पंचण्हं इन्दियाणं, पंचण्हं महव्वयाणं, पंचण्ह समिदीणं, पंचण्हं चरित्ताणं, चउण्हं सण्णाणं, चउण्हं पच्चयाण, चउण्हं उवसग्गाणं, मूलगुणाणं, उत्तरगुणाणं, दिट्ठियाए, पुट्ठियाए, पदोसियाए, परिदावणियाए, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, एदेसि अच्चासादणाए, तिण्हं

दडाण, तिण्ह लेस्साण, तिण्हं गारवाण, तिण्ह अप्पसत्थसकिलेस-परिणामाण, दोण्ह अट्टरुद्द, संकिलेस-परिणामाण, मिच्छाणाण-मिच्छादसण-मिच्छाचरित्ताण, मिच्छत्त-पाउग्ग, असजम-पाउग्ग, कसाय-पाउग्ग, जोगपाउग्ग, अप्पाउग्ग-सेवणदाए, पाउग्ग-गरहणदाए इत्थ मे जो कोई (पक्खियम्मि) (चउमासियम्मि) (सवच्छरियम्मि) अदिक्मो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भते ! पडिक्कमामि पडिक्कत तस्स मे सम्मत्त-मरण, पडिय-मरण, वीरिय-मरण, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिण-गुण-सपत्ति, होदु मज्झ ।

वद-समि-दिदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाण ।
खिदि-सयण-मदतवण ठिदि-भोयण मेय-भत्त च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाण जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो ह ।।२।।

छेदोवट्ठावण होदु मज्झ

पञ्चमहाव्रत-पञ्चसमिति-पञ्चेन्द्रियरोध-षडावश्यक-क्रियालोचादयोऽष्टाविंशति मूलगुणाः, उत्तमक्षमामार्दवार्जव-शौच-सत्य सयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य-ब्रह्मचर्याणि दशलाक्षणिको धर्मः, अष्टादश-शील-सहस्राणि, चतुरशीति-लक्ष-गुणाः, त्रयोदश-विध चारित्र, द्वादशविध तपश्चेति, सकल सम्पूर्ण, अर्हत्सिद्धा-चार्योपाध्याय-सर्व-साधु-साक्षिक, सम्यक्त्व-पूर्वक, दृढव्रत, सुव्रत, समारूढ ते मे भवतु ।।१।।

पञ्चमहाव्रत - पचसमिति - पञ्चेन्द्रियरोध.........
सम्यक्त्व-पूर्वक, दृढव्रत, सुव्रतं, समारूढ ते मे भवतु ।।२।।
पञ्चमहाव्रत - पचसमिति - पञ्चेन्द्रियरोध.........
सम्यक्त्व-पूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।३।।

नोट—आचार्य भक्ति से यहाँ पर्यन्त अर्थ पूर्व मे दैवसिक प्रतिक्रमण क्रिया मे आ चुका है ।]

प्रतिक्रमण भक्तिः

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियाया कृत-दोष-निराकरणार्थ पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थ, भावपूजा-वन्दना-स्तव-समेत श्री प्रतिक्रमणभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सर्व अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक प्रतिक्रमण क्रिया मे कृत दोषो का निराकरण करने के लिए पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से, सकल कर्मो के क्षय के लिये, भाव पूजा, वन्दना व स्तव सहित श्री प्रतिक्रमण भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

[इस प्रकार विज्ञापन का उच्चारण कर आचार्य श्री सहित सभी शिष्य व साधर्मी मुनिगण निम्नलिखित णमो अरहताण इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करे]

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।

चत्तारि-मगल-अरहता-मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल केवलि-पण्णत्तो धम्मो मगल । चत्तारि लोगुत्तमा-अरहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरण पव्वज्जामि-अरहंते सरण पव्वज्जामि, सिद्धे सरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्त धम्मं सरण पव्वज्जामि ।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु, जाव-अरहताण, भयवताण, आदियराण, तित्थयराण, जिणाण, जिणोत्तमाण, केवलियाण, सिद्धाण, बुद्धाणं परिणिव्वुदाणं, अतयडाण, पारगयाण, धम्माइरियाणं, धम्म-देसगाण, धम्म-णायगाण, धम्म-वर-चाउरग-चक्कवट्टीण, देवाहि-देवाण, णाणाण, दसणाण, चरित्ताण, सदा करेमि किरियम्म ।

करेमि भंते ! सामाइयं सव्व-सावज्ज-जोग, पच्चक्खामि जावज्जीव तिविहेण मणसा, वचसा, काएण, ण करेमि, ण कारेमि, अण्ण कीरंत

पि ण समणुमणामि, तस्स भते ! अइचार पच्चक्खामि, णिदामि, गरहामि, अप्पाण, जाव-अरहताणं, भयवताण, पज्जुवास करेमि तावकाल, पावकम्म, दुच्चरिय वोस्सरामि ।

(२७ उच्छ्वासो मे कायोत्सर्ग करना)

[यथोक्त परिकर्म के बाद केवल आचार्य श्री निम्नलिखित थोस्सामि दण्डक पढे]

थोस्सामि ह जिणवरे तित्थयरे केवली अणत जिणे ।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रस-मले महप्पण्णे ।।१।।
लोयस्सुज्जोययरे धम्म तित्थकरे जिणे वन्दे ।
अरहते कित्तिस्से चउवीस चेव केवलिणो ।।२।।
उसह-मजिय च वन्दे सभव-मभिणदण च सुमइं च ।
पउ-मप्पह सुपास जिणं च चदप्पहं वन्दे ।।३।।
सुविहि च पुप्फयत सीयल सेय च वासुपुज्ज च ।
विमल-मणत भयव धम्म संति च वदामि ।।४।।
कुथु च जिणवरिंद अर च मल्लि च सुव्वय च णमि ।
वदामिरिट्ठ-णेमि तह पास वड्ढमाणं च ।।५।।
एव मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला-पहीण-जर-मरणा ।
चउवीस पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु ।।६।।
कित्तिय वदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा ।
आरोग्ग-णाण-लाह दिंतु समाहि च मे बोहि ।।७।।
चंदेहि णिम्मल-यरा, आइच्चेहि अहिय-पया-सता ।
सायर-मिव गभीरा सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ।।८।।

[अब यहॉ मात्र आचार्य श्री गणधर वलय का पाठ पढ़े]

[गणधर-वलय]

जिनान् जिताराति-गणान् गरिष्ठान्,
देशावधीन् सर्व-परावधीश्च ।
सत्-कोष्ठ-बीजादि-पदानुसारीन्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यै ।।१।।

अन्वयार्थ—(जित आराति) जीत लिया है घातिकर्म रूप शत्रुओ को जिनने ऐसे (जिनान्) जिनेन्द्र भगवान् को (गणान्) गुणो मे (गरिष्ठान्) श्रेष्ठ (देशावधीन्) देशावधि (सर्वपरावधीन् च) सर्वावधि और परमावधि धारक (सत् कोष्ठ बीज आदि पदानुसारीन्) कोष्ठ ऋद्धि, बीज ऋद्धि पदानुसारि आदि ऋद्धि के धारक (गणेशान् अपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

संभिन्न-श्रोतान्वित-सन्-मुनीन्द्रान्,
प्रत्येक-सम्बोधित-बुद्ध-धर्मान्।
स्वय-प्रबुद्धांश्च विमुक्ति-मार्गान्,
स्तुवे गणेशानपि तद्-गुणाप्त्यैः ।।२।।

अन्वयार्थ—(सभिन्न श्रोतान्वित) सभिन्न श्रोतृत्व से सहित (प्रत्येक सम्बोधित-बुद्ध) प्रत्येक बुद्ध, बोधितबुद्ध (च) और (स्वय प्रबुद्धान्) स्वय बुद्ध जो कि (विमुक्ति मार्गान् धर्मान्) मोक्षमार्ग रूप धर्म के (सन्मुनीन्द्रान्) सच्चे मुनियो के स्वामी है ऐसे (गणेशान् अपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

द्विधा मनःपर्यय-चित्-प्रयुक्तान्,
द्विपञ्च-सप्तद्वय-पूर्व-सक्तान्।
अष्टांग-नैमित्तिक शास्त्र-दक्षान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।३।।

अन्वयार्थ—(द्विधा मन पर्ययचित्प्रयुक्तान्) दो प्रकार के मन - पर्ययज्ञान के धारक (द्विपञ्च) दस पूर्व (सप्तद्वयपूर्वसक्तान्) चौदह पूर्व के धारक (अष्टाङ्गनैमित्तिक शास्त्रदक्षान्) अष्टाग महानिमित्त के ज्ञाता, कुशल शास्त्रज्ञ (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

विकुर्वणाख्यर्द्धि-महा-प्रभावान्,
विद्याधरांश्चारण-ऋद्धि-प्राप्तान्।

प्रज्ञाश्रितान् नित्य-ख-गामिनश्च,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्तयै ।।४।।

अन्वयार्थ—(महाप्रभावान्) महा प्रभावशाली (विकुर्वणाख्य ऋद्धि) विक्रिया नामक ऋद्धि के धारक, (विद्याधरान्) विद्याधारक (चारण-ऋद्धि प्राप्तान्) चारण ऋद्धि को प्राप्त (प्रज्ञाश्रितान्) प्रज्ञावान (च) और (नित्य) सदा (खगामिन) आकाश मे गमन करने वाले (गणेशानपि) गणधर देवों की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

आशी र्विषान् दृष्टि-विषान् मुनीन्द्रा-,
नुग्राति-दीप्तोत्तम-तप्त तप्तान् ।
महातिघोर-प्रतप प्रसक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।५।।

अन्वयार्थ—(आशीर्विषान्) आशीविष (दृष्टिविषान्) दृष्टिविष ऋद्धि के धारक (मुनीन्द्रान्) मुनियो को (उग्रअति) अति उग्र/उग्राग्र तप (दीप्त उत्तम) उत्तम दीप्त तप (तप्ततप्तान्) तप्त तप/घोर तप (महा अति घोर प्रतप) महा अतिघोर प्रकृष्ट तप के धारक (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

वन्द्यान् सुरै-र्घोर-गुणाश्च लोके,
पूज्यान् बुधै-र्घोर-पराक्रमांश्च ।
घोरादि-ससद्-गुण ब्रह्म युक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।६।।

अन्वयार्थ—(सुरै) देवो के द्वारा (वद्यान्) वदित (लोके पूज्यान्) लोक मे पूज्य (घोरगुणान्) घोर गुणो के धारक (च) और (बुधै पूज्यान्) लोक मे ज्ञानियो के द्वारा पूज्य (घोरपराक्रमान्) घोर पराक्रम धारक (घोरादिससद् गुणब्रह्मयुक्तान्) समीचीन श्रेष्ठ घोर गुण ब्रह्मचर्य आदि से युक्त (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्-गुणाप्त्यै) उनके गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

आमर्द्धि-खेलर्द्धि-प्रजल्ल-विडर्द्धि-
सर्वर्द्धि-प्राप्ताश्च व्यथादि-हन्तॄन् ।
मनो-वचः काय-बलोपयुक्तान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।७।।

अन्वयार्थ—(आमर्द्धिखेलर्द्धिप्रजल्लविडर्द्धि) आमर्द्धि, खेलर्द्धि, प्रकृष्ट जल्लऋद्धि, विड्ऋद्धि (सर्वर्द्धिप्राप्तान् च) और सर्वऋद्धि प्राप्त (व्यथा आदि हतृन्) पीडा आदि को हरने वाले (मन वच काय बल उपयुक्तान्) मनोबली, वचन बल, काय बल ऋद्धि से युक्त (गणेशानपि) गणधर देवो की (तद्) उनके (गुणाप्त्यै) गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) मै स्तुति करता हूँ।

सत् क्षीर-सर्पि-र्मधुरामृतर्द्धीन्,
यतीन् वराक्षीण महानसांश्च ।
प्रवर्धमानांस्त्रिजगत्-प्रपूज्यान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।८।।

अन्वयार्थ—(सत्क्षीरसर्पिर्मधुरामृतर्द्धीन्) (सत्क्षीर, सर्पि मधुर अमृत ऋद्धीन्) समीचीन क्षीरस्रावी, सर्पिस्रावी, मधुरस्रावी और अमृतस्रावी ऋद्धि के धारक (वर अक्षीण महानसान् च) श्रेष्ठ अक्षीण सवास और अक्षीण महानस ऋद्धियो से (प्रवर्धमानान्) सुशोभित (त्रिजगत्प्रपूज्यान्) तीन लोक में पूज्य (यतीन्) यतिराज (गणेशानपि) गणधरो की (तद्गुणाप्त्यै) उनके गुणो की प्राप्ति के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ ।

सिद्धालयान् श्रीमहतोऽतिवीरान्,
श्रीवर्धमानर्द्धि विबुद्धि-दक्षान् ।
सर्वान् मुनीन् मुक्तिवरा-नृषीन्द्रान्,
स्तुवे गणेशानपि-तद्-गुणाप्त्यै ।।९।।

अन्वयार्थ—(सिद्धालयान्) सिद्धालय मे विराजमान (श्री महत अतिवीरान्) श्री अति महान्, अति वीर (श्रीवर्द्धमान ऋद्धि, विबुद्धिदक्षान्) श्री वर्द्धमान ऋद्धि और विशिष्ट बुद्धि ऋद्धि मे दक्ष, कुशल (मुक्तिवरान्) मुक्तिलक्ष्मी को वरण करने वाले (सर्वान् मुनीन्) सब मुनियो की (ऋषि

इन्द्रान्) ऋषिगणो को (गणेशानपि) तथा गणधर देवो की (तद्-गुणाप्त्यै) मै उनके गुणो को प्राप्त करने के लिये (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

नृ-सुर-खचर-सेव्या विश्व-श्रेष्ठर्द्धि-भूषा,
विविध-गुण-समुद्रा मार मातंग-सिहाः ।
भव-जल-निधि-पोता वन्दिता मे दिशन्तु,
मुनि-गण-सकलाः श्री-सिद्धिदाः सदृषीन्द्राः ।।१०।।

अन्वयार्थ—(नृसुरखचरसेव्या) मनुष्य, देव, विद्याधरो से पूज्य (विश्वश्रेष्ठ ऋद्धि भूषा) समस्त श्रेष्ठ ऋद्धियो से भूषित (विविध गुण समुद्रा) अनेक गुणो के समुद्र (मार-मातङ्गसिहा) कामदेवरूपी हाथी को वश मे करने के लिये सिह समान (भवजलनिधिपोता) ससाररूप समुद्र को पार करने के लिये जहाज (सदृशा) समान, (वन्दिता) वन्दना किये गये (मुनिगणसकला इन्द्रा) समस्त मुनि समूह/सघ के इन्द्र गणधर देव (मे सिद्धिदा दिशन्तु) मुझे सिद्धपद प्रदान करने वाले हो।

[1]नित्यं यो गणभृन्मन्त्र, विशुद्धसन् जपत्यमुम्,
आस्रवस्तस्य पुण्याना, निर्जरा पापकर्मणाम् ।
नश्यादुपद्रवकश्चिद्, व्याधिभूत विषादिभिः,
सदसत् वीक्षणे स्वप्ने, समाधिश्च भवेन्मृतो ।।

(य) जो (नित्य) प्रतिदिन (विशुद्ध सन्) शुद्ध मन होता हुआ/शुद्धिपूर्वक (अमुम्) इस (गणभृन्मन्त्र) गणधर वलय मन्त्र को (जपति) पढता है (तस्य) उसको (पुण्याना आस्रव) पुण्यकर्मो का आस्रव होता है तथा (पापकर्मणा निर्जरा) पापकर्मो की निर्जरा होती है (विषादिभि व्याधिभूत) विष आदि से होने वाले रोग, पिशाच आदि (उपद्रव) बाधा (नश्यात्) दूर होते है (स्वप्ने सत् असत् वीक्षणे) स्वप्न मे शुभ-अशुभ दिखाई देता है (च) और (मृतौ) मरण समय मे (समाधि) समाधिमरण (भवेत्) होता है।

प्रतिक्रमण-दण्डक

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।

---
[1] आ० विद्यानन्द जी को प्राप्त हस्तलिखित प्रति से।

णमो जिणाणं[१], णमो ओहि-जिणाण[२], णमो परमोहि-जिणाण[३], णमो सव्वोहि-जिणाण[४], णमो अणतोहि-जिणाण[५], णमो कोट्ठ-बुद्धीणं[६], णमो बीज-बुद्धीणं[७], णमो-पादाणु-सारीण[८], णमो सभिण्ण-सोदारणं[९], णमो सयं-बुद्धाण[१०], णमो पत्तेय-बुद्धाण[११], मणो बोहिय-बुद्धाण[१२], णमो उजु-मदीणं[१३], णमो विउल-मदीणं[१४], णमो दस पुव्वीण[१५], णमो चउदस-पुव्वीणं[१६], णमो अट्ठग-महा-णिमित्त-कुसलाण[१७], णमो विउव्वइड्ढि-पत्ताणं[१८], णमो विज्जाहराण[१९], णमो चारणाण[२०], णमो पण्ण-समणाणं[२१], णमो आगासगामीण[२२], णमो आसी-विसाण[२३], णमो दिट्ठिविसाण[२४], णमो उग्ग-तावाण[२५], णमो दित्त-तवाण[२६], णमो तत्त-तवाणं[२७], णमो महा-तवाणं[२८], णमो घोर-तवाण[२९], णमो घोर-गुणाणं[३०], णमो घोर-परक्कमाण[३१], णमो घोर-गुण-बभयारीण[३२], णमो आमोसहि-पत्ताणं[३३], णमो खेल्लोसहि-पत्ताण[३४], णमो जल्लोसहि-पत्ताण[३५], णमो विप्पोसहि-पत्ताण[३६], णमो सव्वोसहि-पत्ताण[३७], णमो मण-बलीणं[३८], णमो वचि-बलीणं[३९], णमो काय-बलीण[४०], णमो खीर-सवीणं[४१], णमो सप्पि-सवीण[४२], णमो महुर-सवीण[४३], णमो अमिय-सवीणं[४४], णमो अक्खीण महाणसाणं[४५], णमो वड्ढमाणाण[४६], णमो सिद्धायदणाणं[४७], णमो भयवदो-महदि-महावीर-वड्ढमाण-बुद्ध-रिसीणो[४८] चेदि ।

अर्थ—

१. **णमो जिणाणं**—उन जिनेन्द्रो को नमस्कार हो। कौन से जिनो को ? तत्परिणत भाव जिन और स्थापना जिनो को नमस्कार हो।

२. **णमो ओहि जिणाण**—अवधि जिनो को नमस्कार हो। रत्नत्रय सहित अवधिज्ञानी अवधि जिन है, ऐसे अवधिस्वरूप अथवा रत्नत्रय मडित देशावधि जिनो को नमस्कार हो।

३. **णमो परमोहि जिणाण**— उन परमावधि जिनो को नमस्कार हो। जो परम अर्थात् श्रेष्ठ हैं, ऐसा अवधिज्ञान जिनके है वे परमावधि जिन है। यह ज्ञान देशावधि की अपेक्षा महाविषय वाला है, सयत मनुष्यो मे ही उत्पन्न होता है, केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण है, अप्रतिपाती है इसलिये इसे ज्येष्ठपना है।

४. णमो सव्वोहि जिणाण—उन सर्वावधि जिनो को नमस्कार हो। जो सर्वावधि जिन समस्त ससारी जीव और समस्त पुद्गल द्रव्य (अणुमात्र को भी) जानते है ऐसे सर्वावधि जिन परमावधि जिन से महान् है।

५. णमो अणतोहि जिणाण—उन अनन्तावधि जिनो को नमस्कार हो। जिनके अवधिज्ञान की कोई सीमा, मर्यादा नही है। इस ऋद्धि के धारक केवलज्ञानी होते है।

६. णमो कोट्ठबुद्धीणं—उन कोष्ठबुद्धि जिनो को नमस्कार हो। जैसे-शाली, व्रीहि, जौ और गेहूँ आदि के आधारभूत कोथली, पल्ली आदि का नाम कोष्ठ है। वैसे श्रुतज्ञान सबधी समस्त द्रव्य व पर्यायो को धारण करने रूप गुण से कोष्ठ के समान होने से उस बुद्धि को कोष्ठ कहा जाता है। कोष्ठरूप जो बुद्धि है वह कोष्ठबुद्धि है। यह धारणावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होता है।

७. णमो बीजबुद्धीण—उन बीज बुद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। जिस प्रकार बीज, अकुर, पत्र, पोर, स्कध, प्रसव, तुष, कुसुम, क्षीर और तदुल आदिको का आधार है, उसी प्रकार बारह अगो के अर्थ का आधारभूत जो पद है वह बीजतुल्य होने से बीज है। सख्यात शब्दो द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थो से सम्बद्ध भिन्न-भिन्न लिगो के साथ बीज पद को जाननेवाली बीजबुद्धि है। बीजबुद्धि अवग्रहावरणीय कर्म के क्षयोपशम से होती है।

८. णमो पदाणुसरीण—उन पदानुसारी ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। जो पद का अनुसरण या अनुकरण करती है वह पदानुसारी बुद्धि है। बीजबुद्धि से पद को जानकर यहॉ यह इन अक्षरो का लिग होता है और इनका लिग नही होता इस प्रकार विचार कर समस्त श्रुत के अक्षर और पदो को जाननेवाली पदानुसारी बुद्धि है। यह ईहा और अवायावरणी कर्म के तीव्र क्षयोपशम से होती है।

९. णमो संभिण्णसोदाराणं—सभिन्न श्रोतृ जिनो को नमस्कार हो। एक अक्षौहिणी मे नौ हजार हाथी, एक के आश्रित सौ रथ, एक-एक रथ के आश्रित सौ घोड़े और एक-एक घोड़े के आश्रित सौ मनुष्य होते हैं।

ऐसी चार अक्षौहिणी अक्षर-अनक्षर स्वरूप अपनी-अपनी भाषाओ से यदि युगपत् बोले तो भी "सभिन्नश्रोतृ" युगपत् सब भाषाओ को ग्रहण करके प्रतिपादन करता है। इनसे सख्यातगुणी भाषाओ से भरी हुई तीर्थंकर मुख से निकली हुई ध्वनि के समूह को युगपत् ग्रहण करने मे समर्थसभिन्न श्रोतृ के विषय मे यह कोई आश्चर्य की बात नही है। यह बुद्धि बहु-बहुविध और क्षिप्र ज्ञानावरणीय कर्मो के क्षयोपशम से होती है।

१०. णमो सयं बुद्धाण—उन स्वयबुद्ध जिनो को नमस्कार हो। जो वैराग्य का किचित् कारण देखकर परोपदेश की कोई अपेक्षा न रखकर स्वय ही जो वैराग्य को प्राप्त होते है वे स्वयबुद्ध कहलाते है।

११. णमो पत्तेय बुद्धाणं—उन प्रत्येक बुद्ध जिनो को नमस्कार हो जो परोपदेश के बिना किसी एक निमित्त से वैराग्य को प्राप्त हो जाते है। जैसे नीलाञ्जना को देखकर आदिनाथ भगवान् को।

१२. णमो बोहिय बुद्धाणं—उन बोधितबुद्ध जिनो को नमस्कार हो जो भोगो मे आसक्त महानुभाव अपने शरीर आदि मे आशाश्वत रूप को देखकर परोपदेश से वैराग्य को प्राप्त होते है वे बोधितबुद्ध जिन है।

१३. णमो उजुमदीणं—उन ऋजुमति मन पर्यायज्ञानियो को नमस्कार हो। जो सरलता से मनोगत, सरलता से वचनगत व सरलता से कायगत अर्थ को जानने वाले है।

१४. णमो विउलमदीणं—उन विपुलमति मन पर्ययज्ञानियो को नमस्कार हो। जो ऋजु या अनृजु मन-वचन-काय मे स्थित दोनो ही प्रकारो से उनको अप्राप्त और अर्धप्राप्त वस्तु को जानने वाले विपुलमति हैं।

१५. णमो दसपुव्वीणं—अभिन्न दसपूर्वीक जिनो को नमस्कार हो। ऐसा क्यो ? भिन्न और अभिन्न के भेद से दसपूर्वीक के दो भेद है। उनमे ग्यारह अगो को पढ़कर पश्चात् परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका इन पाँच अधिकारो मे निबद्ध दृष्टिवाद को पढ़ते समय उत्पादपूर्व से लेकर पढ़ने वालो के दसम पूर्व विद्यानुप्रवाद के समाप्त होने पर अगुष्ठ-प्रसेनादि सात सौ क्षुद्रविद्याओ से अनुगत रोहिणी आदि पाँच सौ महाविद्याएँ

"भगवन् क्या आज्ञा है" ऐसा कहकर उपस्थित होती है। इस प्रकार उपस्थित सब विद्याओ के जो लोभ को प्राप्त होता है वह भिन्न दसपूर्वी है, इनके जिनत्व नही रह पाता/क्योकि इनके महाव्रत नष्ट हो जाते है। किन्तु जो कर्मक्षय के अभिलाषी होकर उनमे लोभ नही करते वे अभिन्नदसपूर्वी कहलाते है।

१६. णमो चउदसपुव्वीण—उन चौदहपूर्वधारी जिनो को नमस्कार है। जो सफल श्रुतधारक होने से चौदहपूर्वी कहलाते है।

यद्यपि अग व चौदह पूर्वो मे जिनवचनो की अपेक्षा समानता है तथापि चौदह पूर्व की समाप्ति करके रात्रि मे कायोत्सर्ग मे स्थित साधु की, प्रभात समय मे भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी देवो द्वारा महापूजा (शख काहल आदि के शब्दो से) की जाती है। [विद्यानुवाद और लोकबिन्दुसार का महत्व है क्योकि इनमे देवपूजा पायी हाती है]

चौदहपूर्वीधारक की विशेषता है कि ये मिथ्यात्व को प्राप्त नही होते और उस भव मे असयम को भी प्राप्त नही होते है।

१७ णमो अट्ठगमहाणिमित्तकुसलाण—अट्ठागमहानिमित्तो मे कुशलता को प्राप्त जिनो को नमस्कार हो।

जो अग, स्वर, व्यञ्जन, लक्षण, छिन्न, भौम, स्वप्न और अन्तरिक्ष इन आठ निमित्तो के द्वारा जन समुदाय के शुभाशुभ जानने वाले हैं।

१८. णमो विउव्वइड्ढिपत्ताण—उन विक्रियाऋद्धिधारकजिनो को नमस्कार हो जो अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामरूपित्व इस प्रकार विक्रिया ऋद्धि को प्राप्त जिन हैं।

१९. णमो विज्जाहराण—उन विद्याधर जिनो को नमस्कार हो। जाति, कुल और तप विद्या के भेद से विद्याएँ तीन प्रकार की है। स्वकीय मातृपक्ष से प्राप्त विद्याएँ जाति विद्याएँ हैं और पितृपक्ष से प्राप्त हुए कुल विद्याएँ है तथा षष्ठम और अष्टम उपवास आदि करके सिद्ध गई तपविद्याएँ हैं। यहाँ सिद्ध हुई समस्त विद्याओ के कार्य के परित्याग से उपलक्षित

जिनो को विद्याधर स्वीकार किया गया है। जो सिद्ध हुई विद्याओ से काम लेने की इच्छा नही करते, केवल अज्ञान निवृत्ति के लिये उन्हे धारण करते हैं, वे विद्याधर जिन है।

२०. **णमो चारणाण**—उन चारण ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। जो जल-जघा-तन्तु-फल, पुष्प, बीज, आकाश और श्रेणी के भेद से चारण ऋद्धि आठ प्रकार की है। जल, जघा आदि आठ का आलम्बन लेकर गमन मे कुशल ये ऋषिगण जीवो को पीडा न पहुँचाकर सुखपूर्वक गमन करते है।

२१. **णमो पण्णसमणाण**—उन प्रज्ञाश्रमण जिनो को नमस्कार हो। औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा, परिणामिकी इस प्रकार प्रज्ञा चार प्रकार की है। विनय से अधीत श्रुतज्ञान आदि प्रमादवश विस्मृत हो जाय तो उसे औत्पत्तिकी प्रज्ञा परभव मे उपस्थित करती है और केवलज्ञान को बुलाती है। विनय से श्रुत के बारह अगो का अवधारण करके देवो मे उत्पन्न होकर पश्चात् अविनष्ट सस्कार के साथ मनुष्यो मे उत्पन्न होने वाले इस भव मे पढने, सुनने, व पूछने आदि के व्यापार से रहित जीव की प्रज्ञा औत्पत्तिकी कहलाती है।

विनयपूर्वक बारह अगो को पढने वाले के उत्पन्न हुई प्रज्ञा वैनयिकी है।

गुरु के उपदेश बिना तपश्चरण से उत्पन्न बुद्धि कर्मजा है अथवा औषध सेवा के बल से उत्पन्न बुद्धि भी कर्मजा है और अपनी-अपनी जातिविशेष से उत्पन्न बुद्धि पारिणामिका कही जाती है।

२२. **णमो आगासगामीण**—उन आकाशगामी जिनो को नमस्कार हो। जो आकाश मे इच्छानुसार मानुषोत्तर पर्वत से घिरे हुए इच्छित प्रदेशो मे गमन करने वाले है।

प्र०—आकाशचारण और आकाशगामी मे क्या भेद है ?

उ०—चरण, चारित्र सयम व पापक्रियानिरोध एकार्थवाची है। जीव पीड़ा के बिना पैर उठाकर गमन करने वाले आकाश चारण है, पल्यकासन, कायोत्सर्गासन, शयनासन और पैर उठाकर इत्यादि सब प्रकारो से आकाश

मे गमन करने मे समर्थ ऋषि आकाशगामी कहे जाते है। तप बल से आकाश मे गमन करने वाले इन जिनो को नमस्कार हो।

२३. **णमो आसीविसाण**—उन आशीर्विष जिनो को नमस्कार हो। अविद्यमान अर्थ की इच्छा का नाम आशिष है, आशिष है विष जिनका वे आशीर्विष कहे जाते है। मर जाओ इस प्रकार जिसके प्रति निकला वचन उसको मारने मे निमित्त होता है, भिक्षा के लिये भ्रमण करो, शिर का छेद हो इस प्रकार जिनके वचन व्यक्तिविशेष के लिये उस-उस कार्य मे निमित्त होता है वे आशीर्विष नामक साधु है। अथवा

आशिष है अविष अर्थात् अमृत जिनका वे आशीर्विष है। विष से पूरित स्थावर अथवा जगम जीवो के प्रति "निर्विष हो" इस प्रकार निकला वचन जिनके लिये जिलाता है व्याधि, दारिद्र्य आदि के विनाश हेतु निकला जिनका वचन उस कार्य को करता है वे आशीर्विष है। यहाँ सूत्र का अभिप्राय है कि तप के प्रभाव से जो इस प्रकार की शक्तियुक्त होते हुए भी जो निग्रह व अनुग्रह नही करते है वे आशीर्विष जिन है।

२४. **णमो दिट्ठिविसाण**—दृष्टिविष जिनो को नमस्कार हो। दृष्टि शब्द से यहाँ चक्षु और मन का ग्रहण किया है। रुष्ट होकर वह यदि "मारता हूँ" इस प्रकार देखते है, सोचते है व क्रिया करते है, जो मारते है, तथा क्रोधपूर्वक अवलोकन से वह अन्य भी अशुभ कार्य को करने वाले दृष्टि विष है।

इसी प्रकार दृष्टि अमृतो का भी लक्षण जानना चाहिये। इन शुभ-अशुभ लब्धि से युक्त तथा हर्ष व क्रोध रहित छह प्रकार के दृष्टिविष जिनो को नमस्कार हो।

२५. **णमो उग्गतवाण**—उग्र तप धारक जिनो को नमस्कार हो। उग्रतप ऋद्धि के धारक दो प्रकार के होते है—१ उग्रोग्र तप २ अवस्थित उग्र तप। जो एक उपवास कर पारणा कर दो उपवास, पश्चात् पारणा फिर तीन उपवास कर पारणा, इस प्रकार एक अधिक वृद्धि के साथ जीवन पर्यन्त तीन गुप्तियो से रक्षित होकर उपवास करने वाले उग्रोग्रतपधारक हैं।

दीक्षा के लिये एक उपवास करके पारणा करे पश्चात् एक दिन के अन्तराल से ऐसा करते हुए किसी निमित्त से षष्ठोपवास हो गया। फिर एक षष्ठोपवास वाले के अष्टमोपवास हो गया। इस प्रकार दसम-द्वादशम आदि क्रम से नीचे न गिरकर जो जीवनपर्यत विहार करता है। वह अवस्थित उग्रतप का धारक कहा जाता है। इस तप का उत्तम फल मोक्ष ही है।

२६ **णमो दित्ततवाण**—दीप्ततप ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। दीप्ति का कारण होने से तप को दीप्त कहते है। दीप्त है तप जिनका वे दीप्त तप है। चतुर्थ व छट्टम आदि उपवासो के करने पर जिनका शरीर-गत तेज तपजनित लब्धि के माहात्म्य से प्रतिदिन शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढता जाता है वे ऋषि दीप्त तप कहलाते है उन्हे नमस्कार है।

२७ **णमो तत्ततवाण**—तप्ततप ऋद्धिधारको को नमस्कार हो। जिनके तप के द्वारा मल-मूत्र शुक्रादि तप्त अर्थात् नष्ट कर दिया जाता है, वे उपचार से तप्ततप कहलाते है। और जिनके द्वारा ग्रहण किये हुए चार प्रकार के आहार का तपे हुए लोहपिड द्वारा आकृष्ट पानी के समान नीहार नही होता है वे तप्ततप ऋद्धिधारक जिन है।

२८ **णमो महातवाण**—महातप ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। महत्व के हेतुभूत तप को महान् कहते है, वह जिनके होता है वे महातप ऋषि है। वे महातपधारक अणिमादि आठ, जलचारण आदि आठ गुणो से सहित, प्रकाशमान शरीरयुक्त, दो प्रकार अक्षीण ऋद्धिधारक, सर्वौषधिरूप, समस्त इन्द्रो से अनन्तगुणा बलधारी, आशार्विष-दृष्टिविषऋद्धि धारक, तप ऋद्धि से युक्त व समस्त विद्याधारी होते है। मति-श्रुत, अवधि मन पर्ययज्ञान से त्रिलोक के व्यापार को जानने वाले होते है। ऐसे महातप ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो।

२९. **णमो घोरतवाण**—घोर तपधारी ऋद्धि जिनो को नमस्कार हो। अनशन आदि बारह तपो मे मास का उपवास, अवमौदर्य मे एक ग्रास, वृत्तिपरिसख्यान मे चौराहे मे भिक्षा की प्रतिज्ञा, रस परित्यागो मे उष्ण जलयुक्त ओदन का भोजन, विविक्तशय्यासनो मे वृक, व्याघ्र आदि

हिस्र जीवो से सेवित अटवियो मे निवास, कायक्लेशो मे जहाँ अति ठडक या अति गर्मी पड़ती है ऐसे प्रदेशो मे, वृक्षमूल मे, खुले आकाश आदि मे निवास, आतापन योग आदि का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् जो इस प्रकार बाह्य मे उत्कृष्ट तप करते है। जिन्हे देखते ही कायर जीव भय को प्राप्त होते है। ऐसे ही अन्तरग मे भी कठोर तप को धारण करने वाले घोर तप ऋद्धि के धारक जिनो को नमस्कार हो।

३०. णमो घोर गुणाण—घोरगुण जिनो को नमस्कार हो। घोर अर्थात् रौद्र है गुण जिनके वे घोरगुण कहे जाते है।

शका—चौरासी लाख गुणो के घोरत्व कैसे सभव है ?

समाधान—घोर कार्यकारी शक्ति को उत्पन्न करने के कारण उनको घोरत्व सभव है। जिन शब्द की अनुवृत्ति होने से यहॉ घोरत्व अपेक्षा अतिप्रसग दोष नही आता है।

३१. णमो घोर परक्कमाण—घोर पराक्रम ऋद्धिधारक जिनो को नमस्कार हो। तीन लोक का उपसहार करने, पृथ्वीतल को निगलने, समस्त समुद्र के जल को सुखाने, जल, अग्नि तथा शिला पर्वतादि को बरसाने की शक्ति का नाम घोरपराक्रम है। यहॉ "जिन" शब्द की अनुवृत्ति होने से क्रूर कर्म करने वाले आसुरो को नमस्कार का अतिप्रसग प्राप्त नही होता। क्योकि जलादि सुखाने एव अग्नि, शिलादि वर्षा की शक्ति देवगति के देवो मे भी पाई जाती है।

प्र०—घोर गुण और घोर पराक्रम मे क्या अन्तर है ?

उ०—गुण और पराक्रम दोनो मे एकत्व नही है, क्योकि गुण से उत्पन्न हुई शक्ति को पराक्रम कहते है। गुण कारण है पराक्रम उसका कार्य है।

३२. णमोऽघोरगुणबभयारीणं—उन अघोर गुण ब्रह्मचारी जिनो को नमस्कार हो। ब्रह्म का अर्थ १३ प्रकार का चारित्र है। क्योकि यह चारित्र शाति का पोषण करने मे हेतु है। अघोर अर्थात् शान्त है गुण जिसमे वह अघोरगुण है अघोर ब्रह्म का आचरण करने वाले अघोरगुणब्रह्मचारी कहलाते है। जिनको तप के प्रभाव से डमरी, ईति, रोग, दुर्भिक्ष, वैर,

कलह, वध, बन्धन, रोध आदि को शान्त करने की शक्ति प्राप्त हुई है [सूत्र मे अघोर का अकार लोप हो गया है]

३३. णमो आमोसहिपत्ताण—आमर्षौंषधिजिनो को नमस्कार हो। जिनको आमर्ष अर्थात् स्पर्श औषधपने को प्राप्त है। अर्थात् तप के प्रभाव से जिनका स्पर्श औषधपने को प्राप्त हो गया है उनको आमर्षौषधि जिन कहते है, उन्हे नमस्कार हो।

शका—इन्हे अघोर गुण ब्रह्मचारी जिनो मे अन्तर्भाव कर लेना चाहिये ?

उत्तर–नही। क्योकि इनके मात्र व्याधि नष्ट करने मे ही शक्ति देखी जा सकती है।

३४ णमो खेल्लोसहिपत्ताण—खेल्लोषधि जिनो को नमस्कार हो। श्लेष्म, लार, सिहाण अर्थात् नासिका-मल और विप्रुष आदि की खेल सज्ञा है। जिनका यह खेल औषधित्व को प्राप्त हो गया है।

३५. णमो जल्लोसहिपत्ताणं—जल्लौषधि प्राप्त जिनो को नमस्कार हो। बाह्य अग-मल जल्ल कहलाता है। जिनका बाह्य अग मल तप के प्रभाव से औषधिपने को प्राप्त हो गया है वे जल्लौषधि प्राप्त जिन है।

३६. णमो विप्पोसहिपत्ताण/णमो विट्ठोसहिपत्ताण (ध.पु.९)—विप्नुडौषधि प्राप्त योगियो को नमस्कार हो। विप्नुड् नाम ब्रह्मबिन्दु अर्थात् वीर्य का है, जिनका वीर्य ही औषधिपने को प्राप्त हो गया है उन विप्नुडोषधि प्राप्त योगी जिनो को नमस्कार। दूसरा पाठ है "विट्ठोसहिपत्ताण" उसका अर्थ है जिनका विष्टा ही औषधरूप को प्राप्त हो गया है उन विष्ठौषधि जिनो को नमस्कार हो।

३७. णमो सव्वो सहिपत्ताण—सर्वौषधि जिनो को नमस्कार हो। रस रुधिर, मास, मेदा, अत्थि, मज्जा शुक्र, फुप्फुस, खरीष, कालेय, मूत्र, पित्त, ऑतडी, उच्चार अर्थात् मल आदिक सब जिनके औषधिपने को प्राप्त हो गये है वे सर्वौषधि जिन है।

३८. णमो मणबलीणं—मनबल ऋद्धि युक्त जिनो को नमस्कार हो। बारह अगो मे निर्दिष्ट त्रिकालविषयक अनन्त अर्थ व व्यञ्जन पर्यायो से

व्याप्त छह द्रव्यो का निरन्तर चिन्तन करने पर भी खेद को प्राप्त नही होना मन बल है। यह जिनके है वे मनबली है। यह मनबल लब्धि तप के प्रभाव से प्राप्त होती है। अन्यथा बहुत वर्षो मे बुद्धिगोचर होने वाला बारह अगो का अर्थ एक मुहूर्त मे चित्तखेद को कैसे न करेगा, करेगा ही।

३९. णमो वचिबलीण—वचनबली ऋषियो/जिनो को नमस्कार हो। तप के माहात्म्य से जिनके इस प्रकार का वचनबल उत्पन्न हो गया है कि बारह अगो का बहुत बार प्रति वाचन करने पर भी खेद को प्राप्त नही होते है।

४०. णमो कायबलीण—कायबली जिनो को नमस्कार हो। जो तीनो लोको को हाथ की अँगुली से ऊपर उठाकर अन्यत्र रखने मे समर्थ है वे कायबली जिन है। चारित्र विशेष से यह सामर्थ्य प्राप्त होता है।

४१ णमो खीरसवीणं—क्षीरस्रावी जिनो को नमस्कार हो। क्षीर का अर्थ दूध है। विषसहित वस्तु से भी क्षीर को बहाने वाले क्षीरस्रावी कहलाते है। हाथरूपी पात्र मे गिरे हुए सब आहारो को क्षीरस्वरूप उत्पन्न करने वाली शक्ति भी कारण मे कार्य का उपचार होने से क्षीरस्रावी कही जाती है।

शका—अन्य रसो मे स्थित द्रव्यो का तत्काल ही क्षीर स्वरूप से परिणमन कैसे सभव है ?

समाधान—असभव नही, क्योकि जिस प्रकार अमृत समुद्र मे गिरे हुए विष का अमृत रूप परिणमन होने मे कोई विरोध नही है, उसी प्रकार तेरह प्रकार चारित्र समूह से घटित अजुलिपुट मे गिरे हुए सब आहारो का क्षीर रूप परिणमन होने मे कोई विरोध नही है।

४२. णमो सप्पिसवीण—सर्पिस्रावी जिनो को नमस्कार हो। सर्पिष् का अर्थ घी है। जिनके तप के प्रभाव से अजुलि पुट मे गिरे हुए सब आहार घृतरूप परिणमन कर जाते हैं वे सर्पिस्रावी जिन होते हैं।

४३. णमो महुरसवीणं—मधुस्रावी जिनो को नमस्कार हो। मधु शब्द से गुड़, खॉड व शर्करा आदि का ग्रहण किया गया है। क्योकि

मधुरस्वाद के प्रति इनमे समानता पायी जाती है, जो हाथ मे रखे हुए समस्त आहारो को मधु, गुड़, खाँड, व शक्कर के स्वाद रूप परिणमन कराने मे समर्थ हैं वे मधुस्रावी जिन है।

४४. णमो अमियसवीण—अमृतस्रावी जिनो को नमस्कार हो। जिनके हस्त पुट को प्राप्त कर आहार अमृतरूप से परिणत होता है वे अमृतस्रावी जिन है। यहाँ अवस्थित होते हुए जो देवाहार को ग्रहण करते है वे अमृतस्रावी जिन है।

४५. णमो अक्खीण-महाणसाण—अक्षीण महानस जिनो को नमस्कार हो। यहाँ चूँकि अक्षीण महानस शब्द देशामर्शक है। अतएव उससे वसति अक्षीण जिनो का भी ग्रहण होता है। महानस का अर्थ है रसोईघर जिनको भात, घृत व भिगोया हुए अन्न स्वय परोस देने के पश्चात् चक्रवर्ती की सेना को भोजन कराने पर भी समाप्त नही होता वे अक्षीण महानस ऋद्धिधारक जिन है तथा जिनके चार हाथ प्रमाण भी गुफा मे रहने पर चक्रवर्ती का सैन्य भी उस गुफा मे रह जाता है, वे अक्षीणावासधारक जिन है।

४६. णमो वड्ढमाणाणं—वर्द्धमान जिन को नमस्कार हो। यहाँ महावीर भगवान् को पुन नमस्कार करने का भाव यह है कि जिनके पास धर्मपथ प्राप्त हो उसके निकट विनय का व्यवहार करना चाहिये। तथा उनका शिर, अग आदि पचाग व मन-वचन-काय से नित्य ही सत्कार करना चाहिये। यह जैन-परम्परा का नियम है। उस नियम की पुष्टि यहाँ प्रयोजन है।

४७. णमो सिद्धायदणाणं—लोक मे सब सिद्धायतनो को नमस्कार हो। यहाँ "सब सिद्ध" इस वचन से पूर्व मे कहे गये समस्त जिनो को ग्रहण करना चाहिये। क्योकि जिनो से पृथग्भूत देशसिद्ध व सर्वसिद्ध पाये नही जाते। सब सिद्धो के जो आयतन है वे सर्व सिद्धायतन है। इससे कृत्रिम व अकृत्रिम जिनगृह, जिनप्रतिमा तथा ईषत्प्राग्भार, ऊर्जयन्त, चम्पापुर व पावापुर/पावानगर आदि क्षेत्रो व निषिधिकाओ का भी ग्रहण करना चाहिये।

४८. णमो भयदो महदि महावीर वड्ढमाणबुद्धिरिसीणं चेदि —

ऋषि, बुद्ध, वर्धमान, महावीर, महतिमहावीर जिन को नमस्कार हो। अर्थात् जन्म से ही मतिश्रुत, अवधि ज्ञानत्रयधारक, पूजा के अतिशय को प्राप्त भगवान् महावीर, वर्धमान, बुद्ध और ऋषि को नमस्कार हो।

ऋषि—महावीर भगवान् प्रत्यक्षवेदी थे और ऋद्धिधारक भी थे, अत वे ऋषि थे।

बुद्ध—हेय-उपादेय के विवेक से सम्पन्न होने से महावीर भगवान् बुद्ध थे। इस प्रकार—

जस्सतिय धम्म-पहं णियच्छे, तस्सतिय वेणइय पउं जे।
काएण वाचा मणसा वि णिच्चं, सक्कारए त सिर-पंचमेण ।।१।।

अन्वयार्थ—(जस्सतिय) जिन भगवान् के समीप (धम्म-पह) धर्म-पथ को (णियच्छे) नियम से प्राप्त हुआ हूँ (तस्सतिय) उन भगवान् के समीप मे (वेणइय पउ जे) विनय से प्रयुक्त होता हूँ। (काएण-वाचा-मणसा) काय से, वचन से और मन से (वि) भी (णिच्च) नित्य (त) उनको (सिर पचमेण सक्कारए) पचाग से नमस्कार करता हूँ। अर्थात् जिन जिनेन्द्रदेव के समीप मै धर्मपथ को नियम से प्राप्त हुआ हूँ उन जिनदेव के समीप मे विनय से प्रयुक्त होता हूँ, और काय से वचन से, मन से भी नित्य ही उनको पचाग (दो हाथ, दो पैर और एक सिर) नमस्कार भी करता हूँ।

सुदं मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण, भयवदो, महदिमहावीरेण, महा-कस्सवेण, सव्वण्हुणा, सव्वलोग-दरिसिणा, सदेवासुर-माणुसस्स लोयस्स, आगदिगदि-चवणोववादं, बंधं, मोक्खं, इड्ढि, ठिदिं, जुदि अणुभाग, तक्क, कलं, मणो, माणसियं, भूतं, कयं, पडिसेविय, अदिकम्म, अरुह-कम्मं, सव्वलोए, सव्वजीवे, सव्वभावे, सव्वं समं जाणंता पस्संता विहर-माणेण, समणाणं पचमहव्वदाणि, राइभोयण-वेरमण-छट्ठाणि, अणुव्वदाणि स-भावणाणि, समाउग पदाणि, स-उत्तर-पदाणि, सम्मं धम्मं उवदेसिदाणि।

तं जहा—

अन्वयार्थ—(सुद मे आउस्सतो !) हे आयुष्मान् भव्यो ! सुनो (इह खलु समणेण, भयवदो, महदिमहावीरेण, महाकस्सवण, सव्वण्हुणा सव्वलोग-दरिसिणा) इस भरतक्षेत्र मे काश्यप-गोत्रीय श्रमण भगवान सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महति महावीर तीर्थकर देव ने (सदेवासुर, माणुसस्स लोयस्स) लोक के देव, असुर, मनुष्यो सहित प्राणी गण की (आगदि) आगति (गदि) गति (चवणोववाद) च्यवन और उपपाद (बध-मोक्ख) बध, मोक्ष (इड्ढि) ऋद्धि (ठिदि) स्थिति (जुदि) द्युति-चमक (अणुभाग) अनुभाग, कर्मो की फलदान शक्ति (तक्क) तर्कशास्त्र (कल) बहत्तर कला (मणो-माणसिय) परकीय चित्त, मन की चेष्टा (भूत) पूर्व मे अनुभूत (कय) पूर्वकृत (पडिसेविय) पुन सेवन किये गये (आदिकम्म) युग की आदि मे प्रवृत्त असि, मसि, कृषि आदि षट्कर्म (अरुहकम्म) अकृत्रिम द्वीप, समुद्र चैत्यालय आदि कर्म (सव्वलोए) सर्वलोक मे (सव्वजीवे) सब जीवो को (सव्वभावे) सब भावो व पर्यायो को (सम जाणता) एक साथ जानते हुए (पस्सता) देखते हुए (विहरमाणेण) विहार करते हुए (स-भावणाणि) पच्चीस भावनाओ सहित (समाउग पदाणि) मातृका पदो सहित (स-उत्तरपदाणि) उत्तर पदो सहित (समणाण पचमहव्वदाणि) श्रमणो के पॉच महाव्रत (राइ-भोयण-वेरमण-छट्ठाणि) रात्रिभोजन षष्ठम अणुव्रत रूप (सम्म धम्म) समीचीन धर्मो का (उवदेसिदाणि) उपदेश दिया है। त (जैसा कहा है वह इस प्रकार है—

भावार्थ—हे आयुष्मान् भव्यात्माओ ! सुनिये इस भरतक्षेत्र के अन्तिम तीर्थकर, काश्यप गोत्र मे उत्पन्न, श्रमण, भगवान, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महावीर प्रभु ने तीन लोक के जीवो की आगति कहॉ से आगमन कहॉ गमन, च्युत होना, उत्पत्ति, बन्ध, मोक्ष, ऋद्धि, स्थिति, द्युति, कर्मो की फलदान शक्ति, तर्कशास्त्र, गणित आदि बहत्तर कला, दूसरो की मानसिक चेष्टा, पूर्व मे अनुभूत, पूर्व मे किये गये, पुन -पुन सेवन किये गये, युग की आदि मे होने वाले असि, मसि आदि छ कर्म, अकृत्रिम चैत्यालय, द्वीप, समुद्र आदि सम्बन्धित कर्म, तीन लोक मे समस्त जीवो के समस्त भावो पर्यायो को एक साथ जानते हुए, देखते हुए २५ भावनाओ, अष्ट मातृकाओ, उत्तर पदो सहित श्रमणो के पॉच महाव्रत व रात्रिभोजन विरति नामक छठे अणुव्रत रूप समीचीन धर्म का उपदेश दिया है।

जिनेन्द्र देव ने महाव्रतो का स्वरूप जैसा कहा है वह इस प्रकार है—

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण, विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमण, तिदिए, महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमण, चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमण, पंचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमण, छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमण चेदि ।

अन्वयार्थ— (पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण) प्रथम महाव्रत मे प्राणानिपात/प्राणो की हिसा से विरक्ति (विदिए महव्वदे मुसावादादो वेरमण) द्वितीय महाव्रत मे मृषावाद से विरक्ति (तिदिए महव्वदे अदिण्णादाणादो वेरमण) तीसरे महाव्रत मे अदत्तादान से विरक्ति (चउत्थे महव्वदे मेहुणादो वेरमण) चतुर्थ महाव्रत मे मैथुन से/अब्रह्म से विरति (पचमे महव्वदे परिग्गहादो वेरमण) पञ्चम महाव्रत मे परिग्रह से विरति (च) और (छट्ठे अणुव्वदे राइ-भोयणादो वेरमण इदि) छठे अणुव्रत मे रात्रिभुक्ति से विरक्ति इस प्रकार ।

भावार्थ—मुनियो को पहले अहिसाव्रत मे प्राणियो की हिसा का त्याग, दूसरे सत्य महाव्रत मे झूठ बोलने का त्याग, अचौर्य महाव्रत मे अदत्त वस्तु के ग्रहण का त्याग, चतुर्थ महाव्रत मे अब्रह्म का त्याग और पचम परिग्रह त्याग महाव्रत मे सम्पूर्ण परिग्रह का त्याग करना चाहिये ।

अब प्रथम अहिंसा महाव्रत में मुनि के लिये सम्पूर्ण हिंसा से विरति को दिखाते है

तत्थ पढमे महव्वदे सव्व भते ! पाणादिवाद पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण-मणसा, वचसा, काएण, से एइंदिया वा, बे इदिया वा, ते इदिया वा, चउरिंदिया वा, पचिदिया वा, पुढवि-काइए वा, आऊ-काइए वा, तेऊ-काइए वा, वाऊ-काइए वा, वणप्फदि-काइए वा, तस-काइए वा, अडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, ससेदिमे वा, समुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा, तसे वा, थावरे वा, बादरे वा, सुहुमे वा, पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा, पज्जत्ते वा, अपज्जत्ते वा, अविचउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, णेव सय पाणादिवादिज्ज,

णो अण्णेहिं पाणे अदिवादावेज्ज, अण्णेहि पाणे, अदिवादिज्जंतो वि ण समणुमणिज्ज । तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं, वोस्सरामि । पुव्विंचणं भंते ! जं पि मए रागस्स वा, दोसस्स वा, मोहस्स वा, वसंगदेण सयं पाणे अदिवादिदे, अण्णेहिं पाणे, अदिवादाविदे, अण्णेहिं पाणे अदिवादिज्जते वि समणुमण्णिदे तं वि ।

इमस्स णिग्गंथस्स, पवयणस्स, अणुत्तरस्स, केवलियस्स, केवलि-पण्णत्तस्स-धम्मस्स-अहिंसा-लक्खणस्स, सच्चा-हिट्ठियस्स, विणय-मूलस्स, खमा-बलस्स, अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमंडियस्स, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्स, विहू-सियस्स, णवसु-बंभचेर-गुत्तस्स, णियदि-लक्खणस्स, परिचाग-फलस्स, उवसम-पहाणस्स, खंतिमग्ग-देसयस्स, मुत्ति-मग्ग-पयासयस्स, सिद्धि-मग्गपज्जव-साहणस्स, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, अण्णाणेण वा, अदंसणेण वा, अवीरिएण वा, असंयमेण वा, असमणेण वा, अणहि-गमणेण वा, अभिमंसिदाए वा, अबोहिदाए वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा, पमादेण वा, पेम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण वि कारणेण जादेण वा, आलसदाए, बालिसदाए, कम्म-भारिगदाए, कम्मगुरु-गदाए, कम्म-दुच्चरिदाए, कम्म-पुरुक्कडदाए, ति-गारव-गुरु-गदाए, अबहु-सुददाए, अविदिद-पर-मट्ठदाए, तं सव्वं पुव्वं, दुच्चरियं गरहामि । आगमेसि च अपच्चक्खियं-पच्चक्खामि, अणालोचियं-आलोचेमि, अणिंदियं-णिंदामि, अगरहियं-गरहामि, अपडिक्कंतं-पडिक्कमामि, विराहणं वोस्सरामि, आराहणं अब्भुट्ठेमि, अण्णाणं वोस्सरामि, सण्णाण अब्भुट्ठेमि, कुदंसणं वोस्सरामि, सम्मदंसणं अब्भुट्ठेमि, कुचरियं वोस्सरामि, सुचरियं अब्भुट्ठेमि, कुतवं वोस्सरामि, सुतवं अब्भुट्ठेमि, अकरणिज्जं वोस्सरामि, करणिज्जं अब्भुट्ठेमि, अकिरियं वोस्सरामि, किरियं अब्भुट्ठेमि, पाणादिवादं वोस्सरामि, अभयदाणं अब्भुट्ठेमि, मोसं वोस्सरामि, सच्चं अब्भुट्ठेमि, अदिण्णादाणं वोस्सरामि, दिण्णं-कप्प-णिज्जं अब्भुट्ठेमि, अबंभं वोस्सरामि, बंभचरियं अब्भुट्ठेमि, परिग्गहं वोस्सरामि, अपरिग्गहं अब्भुट्ठेमि, राइ-भोयणं वोस्सरामि, दिवा-भोयण-मेग-भत्तं-पच्चुप्पणं-फासुगं-अब्भुट्ठेमि, अट्ट-

रुद्द-ज्झाण वोस्सरामि, धम्मसुक्क-ज्झाण अब्भुट्ठेमि, किण्ह-णील-काउ-लेस्स वोस्सरामि, तेउ-पम्म-सुक्क-लेस्स अब्भुट्ठेमि, आरंभ वोस्सरामि, अणारंभ अब्भुट्ठेमि, असजम वोस्सरामि, सजमं अब्भुट्ठेमि, सग्गथ वोस्सरामि, णिग्गथ अब्भुट्ठेमि, सचेल वोस्सरामि, अचेल अब्भुट्ठेमि, अलोच वोस्सरामि, लोच अब्भुट्ठेमि, ण्हाण वोस्सरामि, अण्हाण अब्भुट्ठेमि, अखिदि-सयण वोस्सरामि, खिदिसयण अब्भुट्ठेमि, दतवण वोस्सरामि, अदतवण अब्भुट्ठेमि, अट्ठिदि-भोयण वोस्सरामि, ठिदि-भोयण-मेग-भत्त अब्भुट्ठेमि, अपाणि-पत्त वोस्सरामि, पाणिपत्त अब्भुट्ठेमि, कोह वोस्सरामि, खति अब्भुट्ठेमि, माण वोस्सरामि, मद्दवं अब्भुट्ठेमि, माय वोस्सरामि, अज्जवं अब्भुट्ठेमि, लोह वोस्सरामि, सतोस अब्भुट्ठेमि, अतव वोस्सरामि, दुवादस-विह-तवो-कम्म अब्भुट्ठेमि। मिच्छत्तं परिवज्जामि, सम्मत्त उवसंपज्जामि, असील परिवज्जामि, सुसील उवसपज्जामि, ससल्ल परिवज्जामि, णिसल्ल उवसपज्जामि, अविणय परिवज्जामि, विणय उवसपज्जामि, अणाचार परिवज्जामि, आचार उवसंपज्जामि, उम्मग्ग परिवज्जामि, जिणमग्ग उवसपज्जामि, अखति परिवज्जामि, खतिं उवसपज्जामि, अगुत्ति परिवज्जामि, गुत्ति उवसपज्जामि, अमुत्ति परिवज्जामि, सुमुत्ति उवसपज्जामि, असमाहि परिवज्जामि, सुसमाहि उवसंपज्जामि, ममत्ति परिवज्जामि, णिममत्ति उवसपज्जामि, अभावियं भावेमि, भावियं ण भावेमि, इम णिग्गथ पव्वयण, अणुत्तर केवलिय-पडिपुण्ण, णेगाइयं, सामाइयं ससुद्धं, सल्लघट्टाण-सल्लघत्ताण, सिद्धि-मग्गं, सेढि मग्गं, खंति-मग्गं, मुत्ति-मग्ग, पमुत्ति-मग्ग, मोक्ख-मग्ग, पमोक्ख-मग्ग, णिज्जाण-मग्ग, णिव्वाण-मग्ग, सव्व-दुक्ख-परिहाणि-मग्गं, सु-चरिय-परिणिव्वाण-मग्ग, जत्थ-ठिया-जीवा, सिज्झति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाणयंति, सव्व-दुक्खाणमत करेंति। त सद्दहामि, तं पत्तियामि, तं रोचेमि, त फासेमि, इदो उत्तर, अण्ण णत्थि, ण भूदं, ण भविस्सदि कयाचिवा, कुदोचिवा णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, सीलेण वा, गुणेण वा, तवेण वा, णियमेण वा, वदेण वा, विहारेण वा, आलएण वा, अज्जवेण वा, लाहवेण वा, अण्णेण वा, वीरिएण वा, समणोमि, सजदोमि, उवरदोमि, उवसंतोमि, उवहि-णियडि-माण-माया-मोस-मूरण, मिच्छाणाण-मिच्छादसण मिच्छाचरित्त च पडिविरदोमि।

सम्मणाण-सम्मदंसण-सम्मचरित्त च रोचेमि । ज जिणवरेहिं पण्णत्तो, जो मए पक्खिय (चाउम्मासिय) (सवच्छरिय) इरयावहि-केस-लोचाइचारस्स, संथारादिचारस्स, पथादि-चारस्स, सव्वादिचारस्स, उत्तमट्ठस्स सम्मचरित्त च रोचेमि ।

पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमण, उवट्ठावण-मडले, महत्थे, महागुणे, महाणुभावे, महाजसे, महापुरिसाणु-चिण्णे, अरहत-सक्खिय, सिद्ध-सक्खिय, साहु-सक्खिय, अप्प-सक्खिय, पर-सक्खिय, देवता-सक्खिय, उत्तमट्ठम्हि । "इद मे महव्वद, सुव्वद, दिढव्वद होदु, णित्थारय, पारय, तारय, आराहिय चावि ते मे भवतु ।।"

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (तत्थ) उन पॉच महाव्रतो मे (पढमे महव्वदे) प्रथम अहिसा महाव्रत मे (सव्व) सब सूक्ष्म और स्थूल (पाणादिवाद) प्राणातिपात का (जावज्जीव) जीवनपर्यत (तिविहेण) तीन प्रकार (मणसा, वचसा , काएण) मन से, वचन से, काय से (पच्चक्खामि) त्याग करता हूँ। (से) वह अहिसाव्रत सबधी त्याग (एइदिया वा, बेइदिया, तेइदिया वा, चउरिंदिया वा, पचिदिया वा) एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पॉच इन्द्रिय (पुढविकाइए वा आउकाइए वा, तेऊकाइए वा, वाऊकाइए वा वणप्फदिकाइए वा तस्सकाइए वा) पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पति-कायिक व त्रसकायिक (अडाइए वा, पोदाइए वा, जराइए वा, रसाइए वा, ससेदिमे वा, समुच्छिमे वा, उब्भेदिमे वा, उववादिमे वा) अडायिक, पोतायिक, जरायिक, रसायिक, सस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम और उपपादिम (तसे वा थावरे वा) त्रस और स्थावर (बादरे वा सुहुमे वा) बादर और सूक्ष्म (पाणे वा, भूदे वा, जीवे वा, सत्ते वा) प्राण भूत जीवे और सत्त्व (पज्जत्ते वा अपज्जत्ते वा) पर्याप्त और अपर्याप्त मे (अविचउरासीदिजोणिप-मुह-सद-सहस्सेसु) तथा चौरासी लाख योनि के प्रमुख जीव इनमे (सय णेव पाणादिवादिज्ज) स्वय प्राणातिपात अर्थात् प्राणो का घात न करे (णो अण्णेहि पाणे अदिवादावेज्ज) न दूसरो से प्राणो का घात करावे और (अदिवादिज्जतो वि ण समणुमणिज्ज) प्राणो का घात करने वाले अन्य जीवो की अनुमोदना भी न करे । (भते !) हे भगवन् ! (तस्स)

उस प्रथम महाव्रत सबधी (अइचार पडिक्कमामि) अतिचार का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। (अप्पाण णिदामि गरहामि) अपनी निन्दा, गर्हा करता हूँ। (भते !) हे भगवन् ! (पुव्विचण) भूतकाल मे उपार्जित अतिचारो का (वोस्सरामि) त्याग करता हूँ। (मए ज पि) मेरे द्वारा जो (रागस्स वा दोसस्स वा मोहस्स वा) राग-द्वेष या मोह के (वसगदेण) वशीभूत हो (सय पाणे) स्वय प्राणो का (अदिवादिदे) अतिपात किया हो (अण्णेहि पाणे अदिवादिज्जतो वि ण समणुमण्णिदे) दूसरो से प्राणो का घात कराया हो और प्राणो का अतिपात करने वालो की अनुमोदना की हो (त वि) उसका भी मै त्याग करता हूँ।

(इमस्स णिग्गथस्स) यह निर्ग्रथो का रूप है (पवयणस्स) पावन है (अणुत्तरस्स) अनुत्तर है (केवलियस्स) केवली का है (केवलि पण्णत्तस्स धम्मस्स-अहिसा लक्खणस्स) यह केवलिप्रणीत अहिसाधर्म लक्षण का धारक है (सच्चाहिट्ठियस्स) सत्य से अधिष्ठित है (विणय-मूलस्स) विनय का मूल है (खमा बलस्स) क्षमा का बल है (अट्ठारस-सील-सहस्स-परिमडियस्स) अठारह हजार शीलो से परिमडित है (चउरासीदि-गुण-सय सहस्स विहूसियस्स) चौरासी लाख उत्तर गुणो से विभूषित है (णवसु बभचेर गुत्तस्स) नौ प्रकार ब्रह्मचर्य से गुप्त है (णियदि लक्खणस्स) विषयो की निवृत्ति से लक्षित है (परिचाग-फलस्स) बाह्य-आभ्यन्तर त्याग का फल है (उवसमपहाणस्स) उपशम की प्रधानता सहित है (खतिमग्गदेसयस्स) क्षमा-मार्ग का उपदेशक है (मुत्तिमग्गपयासयस्स) मुक्ति-मार्ग का प्रकाशक है (सिद्धमग्गपज्जवसाहणस्स) सिद्धि मार्ग साधन का परम प्रकर्ष है। इस परम पावन धर्म का

(से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा) क्रोध से या मान से या माया से या लोभ से या (अण्णाणेण वा अदसणेण वा) अज्ञान से या अदर्शन से या (अवीरिएण वा) शक्ति के अभाव से या (असंयमेण वा) असयम से या (असमणेण वा) असाधुत्वपना से या (अणहि-गमणेण वा) अनधिगम से या (अमिमसिदाए वा[1]) बिना विचार से या (अबोहिदाए वा) अबोध से या (रागेण वा दोसेण वा मोहेण वा) राग से या द्वेष से या मोह से (हस्सेण वा भएण वा) हास्य से या भय से या

१ अभिमसिदाए वा भी पाठ है।

(पदोसेण वा, पमादेण वा पेम्मेण वा) प्रकृष्ट द्वेष से या प्रमाद से या प्रेम से या (पिवासेण वा लज्जेण वा) विषयो की गृद्धि से या लज़्ज़ा से या (गारवेण वा) गारव से या (अणादरेण वा) अनादर से या (केण वि कारणेण जादेए वा) इनमे से किसी भी कारण के होने पर या (आलसदाए) आलस्य से (बालिसदाए) कर्म प्रदेशो की बहुलता (कम्म भारिग दाए) कर्मो की शक्ति की बहुलता के भार से (कम्म गुरु गदाए) कर्मों के गुरुतर भार से (कम्म-दुच्चरिदाए) कर्मो की दुश्चरित्रता से (कम्म पुरुक्कडदाए) कर्मो की अत्यत तीव्रता से (तिगारव-गुरु-गदाए) तीन गारव के भार से (अबहु सुददाए) श्रुत की अल्पता से (अविदिद-परमट्ठदाए) परमार्थ-ज्ञान न होने से (त सव्व पुव्व, दुच्चरिय वोस्सरामि) इन सब पूर्व मे कहे कारणो से मेरे द्वारा जो भी दुश्चरित्र हुआ उस सबका मै त्याग करता हूं। (आगमेसि च अपच्चक्खिय पच्चक्खामि) और आगामी काल के लिये जिन दोषो का अभी तक त्याग नही किया उनका मैं त्याग करता हूँ (अणालोचिय-आलोचेमि) जिनकी अभी तक आलोचना नही की उनकी आलोचना करता हूं (अगरहिय-गरहामि) जिनकी अभीतक गर्हा नही की उनका गुरुसाक्षीपूर्वक गर्हा करता हूं (अपडिक्कत-पडिक्कमामि) जिन दोषो का प्रतिक्रमण नही किया, प्रतिक्रमण करता हूं, (विराहण वोस्सरामि, आराहण अब्भुट्ठेमि) विराधना का त्याग करता हूँ, आराधना को स्वीकार करता हूं (अण्णाण-वोस्सरामि, सण्णाण अब्भुट्ठेमि) अज्ञान का त्याग करता हूं, सम्यग्ज्ञान को स्वीकार करता हूं (कुदसण वोस्सरामि सम्मदसण अब्भुट्ठेमि) कुदर्शन का त्याग करता हूँ, सम्यग्दर्शन को स्वीकार करता हूँ, (कुचरिय वोस्सरामि-सुचरिय अब्भुट्ठेमि) कुचारित्र का त्याग करता हूँ, सुचारित्र को ग्रहण करता हूं, (कुतव वोस्सरामि, सुतव अब्भुट्ठेमि) कुतप को छोड़ता हूँ सुतप को ग्रहण करता हूं (अकरणिज्ज वोस्सरामि करणिज्ज अब्भुट्ठेमि) अकरणीय/ न करने योग्य का त्याग करता हूँ, करणीय/करने योग्य स्वीकार करता हूं (अकिरिय-वोस्सरामि, किरिय अब्भुट्ठेमि) कुकृत्य जो करने योग्य नही हैं उनको छोड़ता हूँ, करने योग्य सत्कृत्यो को मैं करता हूं। (पाणादिवाद वोस्सरामि अभयदाण अब्भुट्ठेमि) प्राणातिपात का त्याग करता हूँ अभयदान को स्वीकार करता हूँ (मोस वोस्सरामि-सच्च अब्भुट्ठेमि) मृषा/झूठ का त्याग करता हूँ, सत्य को

स्वीकार करता हूँ (अदिण्णादाण वोस्सरामि दिण्ण कप्पणिज्ज अब्भुट्ठेमि) अदत्तादान का त्याग करता हूँ, दी गई वस्तु को नित्य स्वीकार करता हूँ (अबभ वोस्सरामि, बभचरिय अब्भुट्ठेमि) अब्रह्म का त्याग करता हूँ, ब्रह्मचर्यव्रत को स्वीकार करता हूँ (परिग्गह वोस्सरामि अपरिग्गह अब्भुट्ठेमि) परिग्रह का त्याग करता हूँ, अपरिग्रह व्रत को स्वीकार करता हूँ (राइभोयण) रात्रिभोजन को (वोस्सरामि) छोडता हूँ। (दिवाभोयण मेग भुत्त फासुग अब्भुट्ठेमि) दिन मे एक बार प्रासुक भोजन को स्वीकार करता हूँ (अट्ट-रूद्ध-ज्झाण वोस्सरामि) आर्त्त-रौद्रध्यान का मै त्याग करता हूँ (धम्म-सुक्कज्झाण अब्भुट्ठेमि) धर्म-शुक्लध्यान को धारण करता हूँ (किण्ह-णील-काउ-लेस्स वोस्सरामि) कृष्ण-नील-कापोत लेश्या का त्याग करता हूँ (तेउ-पम्म-सुक्क लेस्स अब्भुट्ठेमि) पीत/तेज, पद्म, शुक्ल लेश्या को मै स्वीकार करता हूँ (आरभ वोस्सरामि) आरभ का त्याग करता हूँ (अणारभ अब्भुट्ठेमि) अनारभ को स्वीकार करता हूँ (असजम वोस्सरामि) असयम का त्याग करता हूँ (सजम अब्भुट्ठेमि) सयम को ग्रहण करता हूँ (सगथ वोस्सरामि) सग्रथ/परिग्रह का त्याग करता हूँ (णिग्गथ अब्भुट्ठेमि) निर्ग्रथता को ग्रहण करता हूँ (सचेल वोस्सरामि) वस्त्रावस्था का त्याग करता हूँ (अचेल अब्भुट्ठेमि) निर्वस्त्रता को ग्रहण करता हूँ (अलोच वोस्सरामि) अलोच का त्याग करता हूँ (लोच अब्भुट्ठेमि) लोच को स्वीकार करता हूँ (ण्हाण वोस्सरामि) स्नान का त्याग करता हूँ (अण्हाण अब्भुट्ठेमि) अस्नान को स्वीकार करता हूँ (अखिदि-सयण वोस्सरामि) बिस्तर आदि पर सोने का त्याग करता हूँ (खिदिसयण अब्भुट्ठेमि) भूमि-शयन को स्वीकार करता हूँ (दतवण वोस्सरामि) दाँत धोने का त्याग करता हूँ (अदतवण अब्भुट्ठेमि) अदत धौवन को स्वीकार करता हूँ (अट्ठिदि-भोयण वोस्सरामि) बैठे-बैठे भोजन करने का त्याग करता हूँ (ठिदि-भोयण मेग भत्त अब्भुट्ठेमि) खडे-खडे एक बार भोजन को स्वीकार करता हूँ, (अपाणि पत्त वोस्सरामि) अपाणिपात्र/बर्तनो मे भोजन का त्याग करता हूँ (पाणिपत्त अब्भुट्ठेमि) पाणिपात्र/करपात्र को स्वीकार करता हूँ (कोह वोस्सरामि) क्रोध का त्याग करता हूँ (खति अब्भुट्ठेमि) क्षमा को स्वीकार करता हूँ (माण वोस्सरामि) मान का त्याग करता हूँ (मद्दव अब्भुट्ठेमि) मार्दव को स्वीकार करता हूँ (मायं वोस्सरामि) माया का

त्याग करता हूँ (अज्जव अब्भुट्ठेमि) आर्जव को स्वीकार करता हूँ (लोह वोस्सरामि) लोभ का त्याग करता हूँ (सतोस अब्भुट्ठेमि) सतोष को स्वीकार करता हूँ (अतव वोस्सरामि) अतप का त्याग करता हूँ (दुवादस-विह-तवो-कम्म-अब्भुट्ठेमि) बारह प्रकार के तप कर्म को स्वीकार करता हूँ (मिच्छत्त परिवज्जामि) मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ (सम्मत्त उवसपज्जामि) सम्यक्त्व की शरण जाता हूँ (असील परिवज्जामि) अशील/कुशील का त्याग करता हूँ (सुसील-उवसपज्जामि) सुशील को स्वीकार करता हूँ (ससल्ल परिवज्जामि) शल्य का त्याग करता हूँ (णिसल्ल) नि शल्य को (उवसपज्जामि) स्वीकार करता हूँ (अविणय-परिवज्जामि) अविनय का त्याग करता हूँ (विणय उवसपज्जामि) विनय का पालन करता हूँ (अणाचार परिवज्जामि) अनाचार को छोड़ता हूँ (आचार उवसपज्जामि) आचार का पालन करता हूँ (उम्मग्ग परिवज्जामि) उन्मार्ग को छोड़ता हूँ (जिणमग्ग उवसपज्जामि) जिन-मार्ग की शरण जाता हूँ (अखति परिवज्जामि) अशाति का त्याग करता हूँ (खति उवसपज्जामि) शाति को धारण करता हूँ (अगुत्ति परिवज्जामि) अगुप्ति को छोडता हूँ (गुत्ति उवसपज्जामि) गुप्ति को धारण करता हूँ (अमुत्ति परिवज्जामि) अमुक्ति/ससार दशा का परिवर्जन करता हूँ (सुमुत्ति-उवसपज्जामि) सुमुक्ति को स्वीकार करता हूँ (असमाहिं परिवज्जामि) असमाधि को छोड़ता हूँ (सुसमाहि उवसपज्जामि) सुसमाधि को स्वीकार करता हूँ (ममत्ति परिवज्जामि) ममत्व का परिवर्तन करता हूँ (णिममत्ति उवसपज्जामि) निर्ममत्व को स्वीकार करता हूँ (अभाविय भावेमि) अभावित को भाता हूँ (भाविय ण भावेमि) भावित को नही भाता हूँ।

(इम णिग्गथ पव्वयण) इस निर्ग्रंथ लिग को आगम मे मोक्षमार्ग रूप कहा गया है (अणुत्तर केवलिय पडिपुण्ण) केवलीप्रणीत यह लिंग अनुत्तर है, (णेगाइय) रत्नत्रय रूप समूह से उत्पन्न नैकायिक है (सामाइय ससुद्ध) समय मे होने वाला यह लिग सामायिक है, निर्दोष होने से सशुद्ध है, विशुद्ध है (सल्लघट्टाण-सल्लघत्ताण) माया-मिथ्या-निदान तीन शल्यो का नाशक है (सिद्धि-मग्ग) सिद्धि का मार्ग है (सेढि मग्ग) श्रेणी का मार्ग-उपशम क्षपकश्रेणी का मार्ग है अथवा/गुण श्रेणी निर्जरा का मार्ग है (खति मग्ग) उत्तम क्षमा का मार्ग है (मुत्तिमग्ग) मुक्ति का मार्ग

है (पमुत्ति मग्ग) प्रकृष्ट मुक्ति-मार्ग है (मोक्खमग्ग) मोक्ष का मार्ग है (पमोक्ख-मग्ग) प्रमोक्ष मार्ग है (णिज्जाण-मग्ग) निर्याण का/निर्वाण का मार्ग है (णिव्वाण मग्ग) मुक्ति का मार्ग है (सव्व दुक्ख परिहाणि मग्ग) सब दुखो के क्षय करने का मार्ग है (सुचरिय-परिणिव्वाण मग्ग) सुचारित्र के धारक मनुष्यो के परिनिर्वाण का मार्ग है (जत्थ-ठिया-जीवा सिज्झति, बुज्झति, मुचति, परिणिव्वाण-यति सव्व दुक्खाणमत करेति) जिस निर्ग्रथ रूप चारित्र मे स्थित होकर जीव सिद्ध होते है बुद्ध/केवलज्ञानी होते है, मुक्त होते है पूर्ण निर्वाण को प्राप्त कर सभी प्रकार के दुखो का अन्त करते है। (त सद्दहामि) उस निर्ग्रथ लिग की मै श्रद्धा करता हूँ (त पत्तियामि) उसी की मै प्रतीति करता हूँ (त रोचेमि) उसी की मै रुचि करता हूँ (त फासेमि) उसी का स्पर्श करता हूँ (इदो उत्तर अण्ण णत्थि) इस निर्ग्रंथ लिंग से भिन्न अन्य कोई लिग नही है (ण भूद) भूतकाल मे भी नही था (ण भविस्सदि) न भविष्यकाल मे होगा (कयाचि वा कुदोचि वा) कभी भी या किसी के भी नही है। (णाणेण वा, दसणेण वा, चरित्तेण वा) ज्ञान से या दर्शन से या चारित्र से (सुत्तेण वा) या सूत्र से (सीलेण वा, गुणेण वा, तवेण वा) शील से या गुण से या तप से (णियमेण वा) नियम से या (वदेण वा, [1]विहारेण वा, आलएण वा) व्रत से या विहार से या [2]आलाप से या (अज्जवेण वा) आर्जव से या (लाहवेण[2] वा) लाभ से (अण्णेण वा) अन्य भी कारणो से (वीरिएण वा) वीर्य से (समणोमि) मै श्रमण होता हूँ (सजदोमि) मै सयत होता हूँ (उवरदोमि) मै उपरत होता हूँ (उवसतोमि) मै उपशान्त होता हूँ (उवहि-णियडि-माण-माया-मोस-मूरण) उपधि, निकृति/वचना, मान, माया, असत्य, मूर्च्छा (मिच्छाणाण-मिच्छादसण-मिच्छाचरित्त च पडिविरदोमि) मैं मिथ्यादर्शन और मिथ्याचारित्र का त्याग करता हूँ। (सम्मणाण-सम्म दसण-सम्म-चरित च रोचेमि) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र की रुचि करता हूँ/श्रद्धा करता हूँ। (ज जिणवरेहिं पण्णत्तो) जो जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रज्ञप्त है (जो मए) मेरे द्वारा जो (पक्खिय) पक्ष/१५ दिनो मे [चउम्मासिय] चातुर्मास मे (संवछरिय) सवत्सार/एक वर्ष मे (इरियावहि-केसलोचाइचारस्स) ईर्यापथ मे, केशलोच के अतिसार का (सथारादिचारस्स) संस्तर आदि के अतिचार का (पथादिचारस्स) पथ आदि अतिचार का

१ कृतिकर्म मे "निहारेण" वा भी पाठ है। २ कृतिकर्म मे "आलापेण" वा भी पाठ है।

(सव्वादिचारस्स) सभी अतिचार का (उत्तमट्ठस्स) उत्तमार्थ का प्रतिक्रमण करता हूँ (च) और (सम्मचरित्त रोचेमि) सम्यग्चारित्र की रुचि/श्रद्धा करता हूँ।

(महत्थे) महार्थ (महागुणे) महान् गुणो मे (महाणुभावे) महानुभाव (महाजसे) महायश (महापुरिसाणु-चिण्णे) महापुरुषानुचिह्न ऐसे (पढमे-महव्वदे) प्रथम अहिसा महाव्रत मे (पाणादिवादादो वेरमण) प्राणातिपात विरति लक्षण मे (उवट्ठावण मडले) व्रत-आरोपण होने पर मै श्रमण होता हूँ। (अरहत-सक्खिय) अरहत साक्षिक (सिद्ध सक्खिय) सिद्ध साक्षिक (साहु-सक्खियं) साधु साक्षिक (अप्प सक्खिय) आत्मा साक्षिक (पर-सक्खिय) पर साक्षिक (देवता-सक्खिय) देवता साक्षिक (उत्तमट्ठम्हि) उत्तमार्थ के लिये धारण किया गया (इद मे महव्वद यह मेरा अहिसा) महाव्रत (सुव्वद) सुव्रत हो (दिढव्वद होदु) दृढ़व्रत हो (णित्थारय पारय तारय) ससारसमुद्र से निस्तारक, पार करने वाला, तारने वाला हो (आराहिय) आराधित यह व्रत (चावि ते मे भवतु) मेरे और शिष्य गणो के लिये ससार का तारक हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! प्रथम अहिसा महाव्रत मे मैं सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रकार जीवो के प्राणातिपात का त्याग करता हूँ। जीवनपर्यन्त मन-वचन-काय से त्रिधा प्रकार से एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक, अण्डज, पोतज, जरायुज, रसायिक, सस्वेदिम, सम्मूर्छिम, उद्भेदिम और उपपादिम, त्रस, स्थावर, बादर्, सूक्ष्म, प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, पर्याप्त, अपर्याप्त चौरासी लाख योनि के प्रमुख जीवो का प्राणो का मैं स्वय घात नही करता हूँ, अन्य जीवो से भी इनका घात नही कराता हूँ और प्राणो का घात करने वाले अन्य किसी की मै अनुमोदना भी नही करता हूँ। अर्थात् मै मन-वचन-काय, कृत, कारित अनुमोदना से चौरासी लाख योनियो के जीवो के घात का त्याग करता हूँ।

हे भगवन् ! मैं उस अहिंसा महाव्रत मे लगे अतीचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन् ! अतीत काल मे व्रतो मे उपार्जित अतीचारो का मैं त्याग करता हूँ।

भगवन्। मेरे द्वारा जो भी राग-द्वेष-मोह के वश से स्वय जीवो के प्राणो को घात किया गया हो, अन्यो के द्वारा प्राणो का घात करवाया गया हो अथवा अन्यो के द्वारा प्राणो का घात किया जाने पर उसकी अनुमोदना की गई हो तो मै उन सबका त्याग करता हूँ।

यह जो निर्ग्रंथ का रूप है पावन है, अथवा प्रवचन मे प्रतिपादित है, अनुत्तर है अर्थात् इससे भिन्न कोई उत्कृष्ट रूप नही है, केवलि भगवन्तो से प्रणीत है, अहिसा धर्मरूप लक्षण का धारक है, सत्य से अधिष्ठित है, विनय का मूल है, क्षमा जिसका बल है, अथवा क्षमा से बलिष्ठ है, अठारह हजार शीलो से परिमडित है, चौरासी लाख उत्तरगुणो से अलकृत है, नव प्रकार ब्रह्मचर्य से सुरक्षित है, निवृत्ति रूप लक्षण से युक्त है, बाह्य-आभ्यतर परिग्रह के त्याग का फल है, क्रोधादि कषायो की उपशमता रूप होने से उपशम की जहाँ प्रधानता है, क्षमा के मार्ग का उपदेशक है, मोक्षमार्ग का प्रकाशक है अर्थात् कर्मो की एकदेश निर्जरा का प्रकाशक है, सिद्धिमार्ग अर्थात् सम्पूर्ण कर्मो की निर्जरा या अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति के हेतु यथाख्यातचारित्र का परम प्रकर्ष है। ऐसे इस परम धर्म का क्रोध से, या मान से, या माया से या लोभ से या अज्ञान से या अदर्शन से या शक्ति से या असयम से या, असाधुत्वपन से या अनधिगम से या अविचार, अबोध, राग, द्वेष, मोह, हास्य, भय, प्रकृष्ट द्वेष, प्रमाद, प्रेम, विषयो की गृद्धि, लज्जा, गारव, अनादर, आलस्य, कर्मबोझ कर्म प्रदेशो की बहुलता, कर्मो की शक्ति की बहुलता, कर्मो की दुश्चरित्रता, कर्मो की अत्यत तीव्रता तीन गारव के भार से, श्रुत की अल्पता/पूर्ण शास्त्रज्ञान की अप्रवीणता, परमार्थज्ञान का अभाव इन सब कारणो मे से किसी भी कारण से पूर्व मे जो दुश्चरित्र हुआ है उसकी गुरुसाक्षी से गर्हा करता हूँ, प्रतिक्रमण से निराकरण करता हूँ क्योकि आगामी दोषो का निराकरण प्रतिक्रमण से नही होता है, कृत दोषो का निराकरण करने मे प्रतिक्रमण ही समर्थ है। भावी दोषो का निराकरण प्रत्याख्यान से होता है अत भावी दोषो के कारण राग-द्वेष आदि की उत्पत्ति के निराकरण के लिये मैं प्रत्याख्यान करता हूँ अत मैं अनालोचित की आलोचना करता हूँ, अनिन्दित की निन्दा करता हूँ, अगर्हित की गर्हा करता हूँ, जिसका मैंने अभी तक प्रतिक्रमण नही किया उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।

विराधना अर्थात् रत्नत्रय के विषय मे मन-वचन-काय से की गई सावद्यवृत्ति दूषित प्रवृत्ति का त्याग करता हूँ, आराधना अर्थात् रत्नत्रय के विषय मे मन-वचन-काय से निर्दोष वृत्ति का अनुसरण करता हूँ। अज्ञान का त्याग करता हूँ अर्थात् कुमति, कुश्रुत और कुअवधि रूप अज्ञान का त्याग करता हूँ और मति-श्रुत-अवधि-मन पर्यय और केवलज्ञान रूप सम्यग्ज्ञान का अनुष्ठान करता हूँ। कुदर्शन का त्याग करता हूँ अर्थात् विपरीताभिनिवेश स्वरूप या विपरीत अभिप्रायस्वरूप मिथ्यादर्शन का त्याग करता हूँ तथा तत्त्वार्थ श्रद्धान लक्षण सम्यग्दर्शन का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्याचारित्र का त्याग करता हूँ और सामायिक आदि सम्यक् रूप चारित्र का अनुष्ठान करता हूँ। पचाग्नि आदि कुतप का त्याग करता हूँ और बाह्य-आभ्यतर के भेद से १२ भेद रूप तप का अनुष्ठान करता हूँ। नही करने योग्य हिसा आदि अव्रतो का जो अकृत्य है, त्याग करता हूँ और करने योग्य अहिसा आदि व्रतो का अनुष्ठान करता हूँ। अपने न करने योग्य "अक्रिया" का त्याग करता हूँ और करने योग्य क्रिया ध्यान-अध्ययन, समता, स्तुति, वन्दना, प्रतिक्रमण आदि का अनुष्ठान करता हूँ। प्राणो के घात का त्याग करता हूँ और अभयदान का अनुष्ठान करता हूँ। मृषावाद (असत्य वचन) का त्याग करता हूँ और सत्य का अनुष्ठान करता हूँ। अदत्तादान (चोरी) का त्याग करता हूँ और अचौर्य का अनुष्ठान करता हूँ। अब्रह्मचर्य का त्याग करता हूँ और ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान करता हूँ। परिग्रह का त्याग करता हूँ और अपरिग्रह का अनुष्ठान करता हूँ। रात्रिभोजन का त्याग करता हूँ और दिन मे यथासमय प्राप्त प्रासुक एक-भुक्त भोजन का अनुष्ठान करता हूँ। आर्त्त-रौद्रध्यान ससार के हेतु है अत उनका त्याग करता हूँ और धर्म्यध्यान, शुक्लध्यान मुक्ति के हेतु हैं उनका अनुष्ठान करता हूँ। जीवो को पाप से लिप्त करने वाली कृष्ण-नील-कापोत लेश्याओ का त्याग करता हूँ और जीवो को पुण्य कर्म से लिप्त करने वाली पीत-पद्म-शुक्ल लेश्याओ का अनुष्ठान करता हूँ। असि, मसि, कृषि आदि व्यापार के आरभ का त्याग करता हूँ और असि-मसि-कृषि व्यापार के अभाव का अनुष्ठान करता हूँ। असंयम का त्याग करता हूँ और सयम का अनुष्ठान करता हूँ। वस्त्रो का त्याग करता हूँ और अचेलत्व को स्वीकार कर निर्ग्रंथपना का अनुष्ठान करता हूँ। अलोच का

त्याग करता हू और लोच का अनुष्ठान करता हूँ। स्नान का त्याग करता हू और अस्नान का अनुष्ठान करता हूँ। अक्षितिशयन अर्थात् पलग आदि पर सोने का त्याग करता हूँ, क्षितिशयन का अर्थात् भूमिशयन अनुष्ठान करता हूँ। दन्तधावन का त्याग करता हू और अदन्तधावन का अनुष्ठान करता हूँ। अस्थिति भोजन अर्थात् बैठकर अनेक बार भोजन करने का त्याग करता हू और खडे होकर एक बार भोजन अर्थात् स्थिति भोजन का अनुष्ठान करता हूँ। पात्र मे भोजन करने का त्याग करता हूँ और करपात्र मे भोजन करने का अनुष्ठान करता हूँ। क्रोध का त्याग करता हूँ, क्षमा का अनुष्ठान करता हूँ। मान का त्याग करता हूँ, मार्दव का अनुष्ठान करता हूँ। माया का त्याग करता हू और आर्जव का अनुष्ठान करता हूँ। लोभ का त्याग करता हूँ, सन्तोष का अनुष्ठान करता हूँ। कुतप या अतप का त्याग करता हूँ और बारह प्रकार के सुतप का अनुष्ठान करता हूँ। मिथ्यात्व का त्याग करता हूँ, सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूँ। कुशील/अशील का त्याग करता हूँ, सुशील का पालन करता हूँ। शल्य का त्याग करता हूँ, नि शल्य को स्वीकार करता हूँ। अविनय का परित्याग करता हूँ, विनय का पालन करता हूँ। अनाचार का परिवर्जन करता हूँ, सदाचार का परिपालन करता हूँ। उन्मार्ग का परिवर्जन करता हूँ, जिनमार्ग को स्वीकार करता हूँ। अशान्ति का परिवर्जन करता हूँ, शान्ति को स्वीकार करता हूँ। अगुप्ति का त्याग करता हूँ, गुप्ति का समादर करता हूँ। अमुक्ति का त्याग करता हूँ, सुमुक्ति का सुस्वागत करता हूँ। धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान को समाधि कहते इसके अभाव को असमाधि कहते हैं। असमाधि का परिवर्जन करता हूँ, सुसमाधि को स्वीकार करता हूँ। ममत्व का परिवर्जन करता हूँ, निर्ममत्व को धारण करता हूँ।

अनादि से ससार मे भ्रमण करते हुए मैने जिन सम्यग्दर्शन आदि की भावना नही की, जिनका कभी भी अभ्यास नही किया, उसी सम्यग्दर्शन आदि की भावना मै करता हूँ और जिस मिथ्यात्व आदि मे रमता रहा, जिसका आजतक अभ्यास करता रहा उस मिथ्यात्व आदि की भावना का त्याग करता हूँ।

यह निर्ग्रथ लिग आगम मे मोक्षमार्ग के रूप मे कहा गया है। यह

लिग अनुत्तर है अर्थात् इस लोक मे निर्ग्रथलिग से ऊँचा अन्य लिग नही है जो मोक्ष का मार्ग है, यह निर्ग्रथलिग केवलीसबधी है अथवा केवली प्रणीत है। अयोगकेवली मे यह लिग साक्षात् कर्मक्षय का हेतु होने से परिपूर्ण है। परिपूर्ण रत्नत्रय रूप निकाय मे उत्पन्न हुआ है इसलिये नैकायिक है। सर्वसावद्य की व्यावृत्ति रूप, एकत्व विभक्त आत्मस्वरूप होने से समय है और समय जिसकी प्राप्ति का हेतु है या समय मे होने वाला यह लिग सामायिक है। यह लिग निरतिचार निर्दोष होने से सशुद्ध है। अथवा आलोचना आदि प्रायश्चित्तो से विशुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यो से पीड़ित जीवो के तीनो शल्यो का नाश करने वाला है। सिद्धि अर्थात् स्वात्मोपलब्धि की प्राप्ति का मार्ग है। प्रतिसमय असख्यात गुणश्रेणी रूप निर्जरा का कारण है। अथवा उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी मे आरोहण करने का कारण है। उत्तम क्षमा का मार्ग है। मुक्ति मार्ग है क्योकि बाह्य-अभ्यतर सर्व परिग्रह के त्याग का कारण है। प्रमुक्तिमार्ग है क्योकि अर्हन्त अवस्था रूप घातिया कर्मो के क्षय का कारण है। सिद्ध अवस्था रूप सर्व घातिया-अघातिया कर्मो के क्षय का कारण है अत मोक्षमार्ग है। चतुर्गतिरूप ससार मे परिभ्रमण रूप ससार के अभाव का कारण है अत प्रमोक्ष मार्ग है। चौरासी लाख योनि मे भ्रमण के अभाव का उपाय है अत निर्वाण मार्ग है। परम शाश्वत सुख-शान्ति का उपाय है। सब दु खो के क्षय का मार्ग है अत निर्वाण-मार्ग है। सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, यथाख्यात आदि विशुद्धि युक्त विशुद्ध चारित्र के धारक पुरुषो के परिनिर्वाण का मार्ग है क्योकि निर्ग्रथलिग अपने चारित्रधारको को उसी भव मे या द्वितीय आदि भवो मे मोक्ष प्राप्त करा देता है। यह निर्ग्रंथ दिगम्बर लिग एक महती धरोहर रत्नत्रय का पिटारा है, इस लिग मे स्थित जीव सिद्धि स्वात्मोपलब्धि को प्राप्त होता है। जीवादि तत्त्वो का समीचीन बोधकर केवलज्ञान को प्राप्त होता है। सर्व कर्मो से मुक्त हो कृतकृत्य होता है। परिनिर्वृत्ति को प्राप्त होता है और सभी शारीरिक-मानसिक व आगन्तुक दु खो का अन्त करता है। मै ऐसे उस शुद्ध स्वात्मोपलब्धिप्रदाता निर्ग्रंथ लिग की श्रद्धा करता हूँ, उसी निर्ग्रथ अवस्था मे रुचि करता हूँ, उसी अवस्था मे श्रद्धा करता हूँ तथा उसी लिग को प्राप्त करने की भावना करता हूँ, अत उसी का स्पर्शन करता है। इस निर्ग्रंथलिग से श्रेष्ठ दूसरा अन्य

लिग नही है, भूतकाल मे वैसा अन्य लिग नही था, न वर्तमान मे इससे उत्तम/श्रेष्ठ लिग कोई है और न भविष्य मे कभी भी, कही भी किसी भी क्षेत्र मे इससे बढ़कर कोई अन्य लिग होगा। ज्ञान की अपेक्षा, दर्शन की अपेक्षा, चारित्र की अपेक्षा, सूत्र, शील, गुण, तप, नियम, व्रत, विहार, आयतन, आर्जव, लाघव की अपेक्षा और अन्य भी कारणो से व पराक्रम की अपेक्षा इस निर्ग्रन्थ लिग से श्रेष्ठ अन्य कोई लिग इस लोक मे न अन्य है, न अन्य हुआ है और न भविष्य मे होगा। इस निर्ग्रथ लिग मे स्थित हुआ मै श्रमण होता हूँ। प्राणीसयम और इन्द्रियसयम मे तत्पर सयत होता हूँ। पञ्चेन्द्रिय विषयो से उपरत अर्थात् विरक्त होता हूँ। प्राणी-मात्र मे राग-द्वेष से रहित हो उपशान्त होता हूँ। उपाधि, निकृति, वञ्चना, मान, माया, कुटिलता, असत्य से रहित होता हुआ मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र से प्रतिविरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग्चारित्र मे श्रद्धा करता हूँ।

महार्थ, महागुण, महानुभाव, महायश, महापुरुषानुचिह्न ऐसे प्रथम अहिसा महाव्रत प्राणातिपातविरति लक्षण मे व्रत आरोपण होने पर मै श्रमण होता हूँ। यह प्रथम महाव्रत जीवो की विराधना से रहित है, उत्कृष्ट जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रणीत आगम मे प्रतिपादित है। प्राणातिपात से विरमण रूप यह मेरा महाव्रत अरहतसाक्षिक, सिद्धसाक्षिक, साधुसाक्षिक, आत्मसाक्षिक, परसाक्षिक और देवतासाक्षिक है उत्तमार्थ के लिये है। सर्व महान् आत्माओ के साक्षिक से ग्रहण किया गया मेरा यह महाव्रत सुव्रत हो, दृढ़व्रत हो अर्थात् निर्दोष व अखड हो तथा ससार महादुर्गरूप दुखो से निस्तारक हो, ससाररूपसमुद्र मे डूबे जीवो को ससार-समुद्र से पार लगाने वाला हो, ससार के दुखरूपी महार्णव से तारने वाला हो, महाव्रत का आराधक मैं अनन्त चतुष्टयरूप और शिष्य समुदाय गुणो को प्राप्तकर साधु होवे।

इस प्रकार प्रथम महाव्रत को व्रतरूप ग्रहण कर लेने पर उस अहिंसा व्रत मे लगे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के लिये दैवसिक (रात्रिक), पाक्षिक, चातुर्मासिक, सावत्सरिक, कालनियमानुसार इन कालो मे लगने वाले व्रत सबधी अतीचारो की विशुद्धि के लिये मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। ईर्यापथ के अतिचार का, केशलोच के अतिचार का, सस्तर मे फलक,

पाषाण, चटाई आदि सबधी अतिचार का, मार्ग के अतिचार का सब अतिचारो का मैं व्रत की विशुद्धि के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ। उत्तमार्थ की मुझे प्राप्ति हो और समयग्चारित्र मे श्रद्धा हो।

पहला महाव्रत सब व्रतधारी प्राणियो को सम्यक्त्वपूर्वक हो, दृढता-पूर्वक हो, उत्तमव्रत हो उसमे मै समारूढ होता हूँ, वह मुझे व शिष्य वर्ग को निर्दोष हो।

णमो अरहंताणं............ सव्वसाहूण ।।१।।
णमो अरहंताणं...... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताणं...... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वकं, दृढव्रतं, सुव्रतं, समारूढं ते मे भवतु ।।१।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषा .... ते मे भवतु ।।२।।

प्रथमं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।

द्वितीय सत्य महाव्रत संबंधी दोषों का प्रतिक्रमण

अहावरे विदिये महव्वदे सव्वं भंते ! मुसावादं पच्चक्खामि, जावज्जीवेण तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से कोहेण वा, माणेण वा, मायाए वा, लोहेण वा, रागेण वा, दोसेण वा, मोहेण वा, हस्सेण वा, भएण वा, पदोसेण वा,पमादेण वा, पिम्मेण वा, पिवासेण वा, लज्जेण वा, गारवेण वा, अणादरेण वा, केण वि कारणेण जादेण वा, णेव सयं मोसं भासेज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासाविज्ज, णो अण्णेहिं मोसं भासिज्जंतं वि समणुमणिज्ज । तस्स भते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (अहावरे विदिए महव्वदे) द्वितीय सत्य महाव्रत मे (मिथ्या सव्व-मुसावाद) सभी प्रकार के मृषा वचनो का (मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से (जावज्जीवेण पच्चक्खामि) जीवनपर्यन्त के लिये मैं त्याग करता हूँ। (से कोहेण वा) उस सत्य महाव्रत मे दूषितता उत्पन्न करने वाले क्रोध से या (माणेण

वा) मान से या (मायाए वा) माया से या (लोहेण वा) लोभ से या (रागेण वा) राग से या (दोसेण वा) द्वेष से या (मोहेण वा) मोह से या (हस्सेण वा) हास्य से या (भएण वा) भय से या (पदोसेण वा) प्रद्वेष से या (पमादेण वा) प्रमाद से या (पिम्मेण वा) प्रेम से या (पिवासेण वा) पिपासा से या (लज्जेण वा) लज्जा से या (गारवेण वा) गारव से या (अनादरेण वा) अनादर से या (केण वि कारणेण जादेण वा) अन्य भी किसी कारण के उत्पन्न होने पर (णेव सय मोस भासेज्ज) न ही स्वय मिथ्या बोले (णो अण्णेहि मोस भासाविज्ज) न ही अन्य जीवो से असत्य बुलवावे और (णो अण्णेहिं मोस भासिज्जत वि समणुमणिज्ज) न ही अन्य असत्य बोलने वालो की अनुमोदना ही करे।

(भते ।) हे भगवन् । (तस्स) इस द्वितीय सत्य महाव्रत मे लगे (अइचार) अतिचारो का (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) निदा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ, (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् । प्रथम महाव्रत से भिन्न द्वितीय असत्यभाषण त्याग महाव्रत मे सभी स्थूल व सूक्ष्म असत्यवचन का जीवनपर्यन्त को मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। सत्य महाव्रत मे अतिचार या दोष उत्पन्न करने वाले क्रोध से, मान से, माया से, लोभ से, राग से, द्वेष से, मोह से, हास्य से, भय से, प्रद्वेष से, प्रमाद से, प्रेम से, पिपासा से, लज्जा से, गारव से, अनादर से अथवा अन्य भी किसी कारण के उत्पन्न होने पर स्वय असत्य भाषण न करे, न अन्य/दूसरो से असत्य बुलवाये और न असत्य बोलने वाले दूसरो की अनुमोदना ही करे। हे भगवन । इस द्वितीय सत्यमहाव्रत सम्बन्धी अतिचार की विशुद्धि या दोषो को दूर करने के लिये प्रतिक्रमण करता हूँ। स्वसाक्षी पूर्वक अपने दोषो की निन्दा करता हूँ, गुरु की साक्षीपूर्वक अपनी गर्हा करता हूँ, हे भगवन् पूर्वकाल मे उपार्जित अतिचारो का त्याग करता हूँ। **मेरे द्वारा जो भी राग के, द्वेष के या मोह के वश मे स्वय असत्य भाषण किया है, दूसरो से असत्य भाषण कराया है और असत्य भाषण करने वालो की भी अनुमोदना की है उस सब का मै परित्याग करता हूँ।**

[नोट–शेष अर्थ प्रथम महाव्रत के अर्थ मे पढिये ।]

द्वितीय महाव्रत सभी व्रतधारियो का सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हो मै और शिष्य वर्ग इस व्रत मे निर्दोषरूप से आरूढ हो।

द्वितीयं महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।
द्वितीय महाव्रतं सर्वेषा .... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।
णमो अरहंताण णमो.... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहंताण . .... णमो लोए सव्वसाहूण ।।३।।

तृतीय अचौर्य महाव्रत सम्बन्धी दोषों का प्रतिक्रमण

अहावरे तिदिए महव्वदे सव्व भंते! अदिण्णादाण पच्चक्खामि जावज्जीवं, तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से देसे वा, गामे वा, णयरे वा, खेडे वा, कव्वडे वा, मंडवे वा, मडले वा, पट्टणे वा, दोणमुहे वा, घोसे वा, आसणे वा, सहाए वा, संवाहे वा, सण्णिवेसे वा, तिणं वा, कट्ठ वा, वियडि वा, मणि वा, खेत्ते वा, खले वा, जले वा, थले वा, पहे वा, उप्पहे वा, रण्णे वा, अरण्णे वा, णट्ठ वा, पमुट्ठं वा, पडिदं वा, अपडिदं वा, सुणिहिद वा, दुण्णिहिद वा, अप्पं वा, बहु वा, अणुयं वा, थूलं वा, सचित्त वा, अचित्त वा, मज्झत्थ वा, बहित्थं वा, अवि दंतंतरसोहण-णिमित्तं, वि णेव सय अदत्त गेण्हिज्ज, णो अण्णेहिं अदत्तं गेण्हा-विज्ज णो अण्णेहिं अदत्त गेण्हिजत वि समणुमणिज्ज, तस्स भंते! अइचारं पडिक्कमामि, णिदामि, गरहामि, अप्पाणं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते!) भगवन्! (अहावरे) अब (तिदिए महव्वदे) तीसरे अचौर्य महाव्रत मे (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से तीनो प्रकार से (जावज्जीव) जीवनपर्यत (सव्व) सभी प्रकार से (अदिण्णादाण पच्चक्खामि) अदत्तादान का मै त्याग करता हूँ। (से) उस अचौर्य महाव्रत मे (देसे वा) देश मे या (गामे वा) ग्राम में या (णयरे वा) नगर मे या (खेडे वा) खेट मे या (कव्वडे वा) कर्वट में या (मंडवे वा) मटंब मे या (मडले वा) मंडल मे या (पट्टणे वा) पत्तन मे या (दोणमुहे वा) द्रोणमुख मे या (घोसे वा) घोष

मे या (आसणे वा) आसन मे या (सहाए वा) सभा मे या (सवाहे वा) सवाह मे या (सण्णिवेसे वा) सन्निवेश मे या (तिण वा) तृण या (कट्ठ वा) काष्ठ या (वियडि वा) विकृति या (मणि वा) मणि या (खेत्ते वा खले वा) खेत मे या खलियान मे (जले वा) जल मे या (थले वा) स्थल मे या (पहे वा) पथ मे या (उप्पहे वा) उन्मार्ग मे या (रण्णे वा) रण मे या (अरण्णे वा) अरण्य मे या (णट्ठ वा) नष्ट या (पमुट्ठ वा) प्रनष्ट या (पडिद वा अपडिद वा) पतित या अपतित (सुणिहिद वा दुण्णिहिद वा) अच्छी तरह से रखी हुई या नही रखी हुई या (अप्प वा बहु वा) थोडी या बहुत या (अणुय वा थूल वा) छोटी या बड़ी या (सचित्त वा अचित्त वा) सचित्त या अचित्त या (मज्झत्थ वा बहित्थ वा) भीतर रखी हो या बाहर रखी हो (अवि दततर-सोहण-णिमित्त) दाँत के मध्य लगी को शोधन करने के निमित्त भी (वि णेव सय अदत्त गेण्हिज्ज) कभी स्वय बिना दिया ग्रहण न करे (णो अण्णेहि अदत्त गेण्हाविज्ज) न अन्य जीवो से बिना दिया ग्रहण करावे और (णो अण्णेहि अदत्त गेण्हिज्जत वि समणुमणिज्ज) न अदत्त ग्रहण करने वाले की अनुमोदना ही करे। (भते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस तीसरे अचौर्यमहाव्रत मे लगे दोषो (अइचार) अतिचार का (पडिक्कमामि) मैं प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) उन दोषो की निंदा करता हूँ/स्वय मे पश्चात्ताप करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ/गुरुदेव की साक्षीपूर्वक दोषो की निन्दा करता हूँ (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से उन अपराधो को छोड़ता हूँ, त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! द्वितीय महाव्रत से भिन्न तृतीय अचौर्य महाव्रत मे स्थूल और सूक्ष्म अदत्तादान की जीवनपर्यन्त के लिये मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। अदत्तादान से विरति स्वरूप उस अचौर्य महाव्रत की क्षति को करने मे कारणभूत देश मे, ग्राम मे, नगर मे, खेट मे, कर्वट, मडब, पट्टन, द्रोणमुख, घोष, आसन, सभा, सवाह और सन्निवेश इन जनपद समूह के आश्रयभूत प्रदेशो मे तथा खेत मे, खलियान मे, जल मे, स्थल मे, मार्ग मे, उन्मार्ग मे, रण मे, अरण्य इन स्थानो मे, नष्ट, प्रनष्ट, पतित, अपतित, सुनिहित अर्थात् अच्छी तरह से रखी हुई, दुर्निहित,

थोड़ी या बहुत सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त, घर के भीतर रखी हुई या घर से बाहर स्थित, दाँतो के भीतर लगी अशुद्धि को दूर करने के लिये या दन्तान्तर शोधन मात्र भी वस्तु तृण, काष्ठ/लकड़ी, विकृति, मणि आदि अल्पमूल्य या बहुमूल्य की वस्तु को न तो स्वय ग्रहण करे न अन्य किसी से ग्रहण करावे और न अदत्तग्रहण करते हुए अन्य की अनुमोदना करे।

हे भगवन्। मै इस तृतीय महाव्रत के अतिचार को त्यागता हूँ, अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और पूर्व मे इस व्रत मे मेरे जो अतिचार लगे हैं उनका त्याग करता हूँ।

हे भगवन्। जो भी मेरे द्वारा राग, मोह के वश मे स्वय अदत्त/बिना दिया ग्रहण किया गया अर्थात् बिना दी गई वस्तु ग्रहण की गई हो, अन्य से बिना दी गई वस्तु ग्रहण कराई गई हो या बिना दी गई वस्तु को ग्रहण करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो उसका भी मै त्याग करता हूँ।

ग्राम—वृत्ति से वेष्टित ग्राम होता है।

नगर—चार गोपुरो से रमणीय नगर होता है।

खेट—पर्वत व नदी से घिरा हुआ खेट होता है।

कर्वट—पर्वत से वेष्टित कर्वट कहलाता है।

मटब—जो पॉच सौ ग्रामो मे प्रधानभूत होता है उसका नाम मटब है।

पट्टन—जो उत्तम रत्नो की योनि/खान होता है, उसका नाम पट्टन है।

द्रोणमुख—समुद्र की वेला से वेष्टित द्रोणमुख होता है और

सवाहन—बहुत प्रकार के अरण्यो/जगलो से युक्त महापर्वत के शिखर पर स्थित सवाहन जानना चाहिये।

[इस महाव्रत का शेष अर्थ प्रथम महाव्रत मे से देखिये]

"तृतीय अचौर्य महाव्रत सब व्रतधारियो के सम्यक्त्वपूर्वक हो, मैं और शिष्य वर्ग निर्दोष रूप से इस व्रत मे समारूढ हो'

णमो अरहताणं........ णमो लोए सव्वसाहूणं ।। ३

चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत का या मैथुन त्याग महाव्रत का प्रतिक्रमण

अहावरे चउत्थे महव्वदे सव्व भते ! अबंभ पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से देविएसु वा,माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा, अचेयणिएसु वा, कट्ठकम्मेसु वा,चित्त-कम्मेसु वा, पोत्त-कम्मेसु वा, लेप्प-कम्मेसु वा, लय-कम्मेसु वा, सिल्ला-कम्मेसु वा, गिह-कम्मेसु वा, भित्ति-कम्मेसु वा, भेद-कम्मेसु वा, भण्ड-कम्मेसु वा, धादु-कम्मेसु वा, दंत-कम्मेसु वा, हत्थ-सघट्टणदाए, पाद-सघट्टणदाए, पुग्गल-सघट्टणदाए मणुण्णामणुण्णेसु सद्देसु, मणुण्णामणुण्णेसु रूवेसु, मणुण्णामणुण्णेसु गधेसु, मणुण्णामणुण्णेसु रसेसु, मणुण्णामणुण्णेसु फासेसु, सोदिदय परिणामे, चक्खिदिय-परिणामे, घाणिंदिय-परिणामे, जिब्भिदिय-परिणामे, फासिदिय-परिणामे, णो-इन्दिय-परिणामे, अगुत्तेण, अगुत्तिदिएण, णेव सय अबंभ सेवाविज्ज, णो अण्णेहि अबभ सेविज्जंत, वि समणुमणिज्ज तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि, णिदामि, गरहामि, अप्पाण वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (अहावरे चउत्थे महव्वदे) अब चतुर्थ महाव्रत मे (सव्व अबभ पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) सभी प्रकार के अब्रह्म का मन से, वचन से, काय से जीवन-पर्यन्त के लिये त्याग करता हूँ। (से) उस चतुर्थ महाव्रत मे (देविएसु वा, माणुसिएसु वा, तिरिच्छिएसु वा अचेयणिएसु वा) देवियो मे या मानुषियो मे या तिर्यचनियो मे या अचेतन स्त्रियो मे (कट्ठ-कम्मेसु वा) काष्ठ कर्मो मे या (चित्त-कम्मेसु वा) चित्र कर्मो मे या (पोत्त-कम्मेसु वा) पोत कर्मो मे या (लेप्प-कम्मेसु वा) लेप कर्मो मे या (लय कम्मेसु वा) लय कर्मो मे या (सिल्ला कम्मेसु वा) शैल कर्मो मे या (गिह कम्मेसु वा) गृह कर्मो मे या (भित्ति कम्मेसु वा) भित्तिकर्मो मे या (भेद-कम्मेसु वा) भेद कर्मो मे या (भण्ड-कम्मेसु वा) भॉड कर्मो मे या (धादु-कम्मेसु वा) धातु कर्मो मे या (दत-कम्मेसु वा) दत कर्मो मे या (हत्थ-सघट्टणदाए) हाथो के सघर्षण से (पाद सघट्टणदाए) पैरो के सघर्षण से (पुग्गल सघट्टणदाए) पुद्गल के सघर्षण से (मणुण्णा मणुण्णेसु-सद्देसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दो मे (मणुण्णा-मणुण्णेसु-रूवेसु) मनोज्ञ-

अमनोज्ञ रूपो मे (मणुण्णा-मणुण्णेसु रसेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसो मे (मणुण्णा-मणुण्णेसु-फासेसु) मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्शो मे (सोदिदिय परिणामे) श्रोत्रेन्द्रिय परिणाम मे (चक्खिदिय परिणामे) चक्षु-इन्द्रिय परिणाम मे (घाणिदिय-परिणामे) घ्राणेन्द्रिय परिणाम मे (जिब्भिदिय परिणामे) जिह्वा इन्द्रिय परिणाम मे (फासिदिय परिणामे) स्पर्शेन्द्रिय परिणाम मे (णो-इदिय परिणामे) नो इन्द्रिय परिणाम मे (अगुत्तेण) प्रकट रूप से (अगुत्तिदिएण) प्रकट रूप इन्द्रियो के द्वारा (णेव सय अबभ सेविज्ज) न स्वय अब्रह्म का सेवन करे (णो अण्णेहि अबभं सेवाविज्ज) न दूसरो को अब्रह्म का सेवन करावे (णो अण्णेहि अबभ सेविज्जत वि समणुमणिज्ज) न अन्य अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना करे ।

(भते !) हे भगवन् ! (तस्स) इस ब्रह्मचर्य व्रत मे लगे (अइचार पडिक्कमामि) अतिचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! तृतीय अचौर्य महाव्रत के कथन के बाद चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत मे सब चेतन-अचेतन सम्बन्धी अब्रह्म का मै जीवन-पर्यन्त के लिये मन-वचन-काय से त्याग करता हूँ। उस चतुर्थ महाव्रत मे ब्रह्मचर्य व्रत के विनाश के कारणभूत देवी, मानुषी, तिर्यचिनी व अचेतन स्त्रियो मे काष्ठ कर्म—नाचना, हँसना, गाना तथा तुरई व वीणा आदि वाद्यो के बजाने रूप क्रियाओ मे प्रवृत्त हुए देव, मानुषी तिर्यच और मनुष्यो की काष्ठ से निर्मित प्रतिमाओ को काष्ठ कर्म कहते हैं[१], उस काष्ठ कर्म मे, चित्रकर्म-पट, कुड्य (भित्ति) एव फलहिका (काष्ठ का तख्ता) आदि मे नाचने आदि क्रिया मे प्रवृत्त देव, नारकी, तिर्यंच और मनुष्यो की प्रतिमाओ को चित्रकर्म कहते है, क्योकि चित्र से जो किये जाते है वे चित्रकर्म है[२], उन चित्रकर्मो मे। पोतका अर्थ वस्त्र है उससे की गई मनुष्य, तिर्यच आदि की प्रतिमाओ का नाम पोतकर्म है[३], उन पोतकर्मो मे। खड़िया, मिट्टी, शर्करा (बालू) व मृत्तिका आदि के लेप का नाम लेप्य है, उससे निर्मित मनुष्य आदि की प्रतिमाएँ लेप्यकर्म कही जाती है[४], उन लेप्य कर्मों मे। लयन का अर्थ पर्वत है, उसमे निर्मित

स्त्री आदि की प्रतिमाओ का नाम लयन कर्म है[५], उन लयन कर्मो मे। शैल का अर्थ पत्थर है, उसमे निर्मित सभी प्रकार की स्त्रियो की प्रतिमाओ का नाम सिल्ल कर्म/शैल कर्म है[६], उन शैल कर्मो मे। गृहो से अभिप्राय गृहादिको का है, उनमे की गई सभी प्रकार की स्त्रियो की प्रतिमाओ का नाम गृहकर्म है[७], उन गृहकर्मो मे। घोडा, हाथी, मनुष्य एव वराह (सूकर) आदि के स्वरूप से निर्मित घर गृहकर्म कहलाते है[८], यह अभिप्राय है। घर की दीवालो मे उनसे अभिन्न रची गई स्त्री आदि प्रतिमाओ का नाम भित्तिकर्म है[८], उन भित्तिकर्मो मे। भेद कर्मो मे अर्थात् वस्त्र आदि को कैची से कतर कर बनाये गयी सभी प्रकार की स्त्रियो की प्रतिमाओ का नाम भेद कर्म है, उन भेद कर्मो मे। भण्डकर्मो याने भाडकर्मो अर्थात् बर्तनो पर सभी प्रकार की स्त्रियो के चित्रो मे। धातु कर्मो अर्थात् सोना-चाँदी आदि धातुओ पर उकेरे स्त्री चित्रो/प्रतिमाओ मे। हाथी दाँतो पर खोदी गयी स्त्री आदि की प्रतिमाओ को दन्त कर्म कहते है। उन दन्त कर्मो मे अर्थात् हाथी दातो पर उकेरे गये स्त्रियो के चित्र आदि।

इन अचेतन स्त्रियो के रूपादिक से हाथो का सघर्षण, पैरो का सघर्षण, शरीर के अन्य अवयवो का सघर्षण होने पर, कर्णेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ शब्दो मे, चक्षु इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ रूपो मे, घ्राणेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ गधो मे, जिह्वा इन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ रसो मे, स्पर्शेन्द्रिय के विषय मनोज्ञ-अमनोज्ञ स्पर्श मे, चक्षु इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम मे, घ्राण इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम मे, जिव्हा इन्द्रिय सम्बन्धी विकृत परिणाम मे, स्पर्श इन्द्रिय सम्बधी विकृत परिणाम होने पर या मन सम्बन्धी विकृत परिणाम होने पर प्रकट रूप से प्रकट इन्द्रियो के द्वारा न स्वय अब्रह्म का सेवन करे, न दूसरो के द्वारा अब्रह्म का सेवन करावे और न अन्य अब्रह्म सेवन करते हुए की अनुमोदना करे।

हे भगवन्! इस ब्रह्मचर्य महाव्रत के व्रत मे लगे अतिचार का निराकरण करने के लिये मै प्रतिक्रमण करता हूँ, अपनी निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और पूर्व मे इस व्रत मे मेरे द्वारा जो अतिचार लगे है उनका त्याग करता हूँ।

१ धवला पु ९, पृ २४९। २ धवला पु० ९, पृ० २४९। ३,४,५,६,७,८ वही है।

हे भगवन्! मैने राग, द्वेष के वश से अब्रह्म का सेवन किया हो अन्यो से सेवन कराया हो और अन्य अब्रह्म सेवते हुए की अनुमोदना की हो तो मै उसका भी त्याग करता हूँ।

[इस व्रत सम्बन्धी शेष अर्थ प्रथम महाव्रत के वर्णन मे देखिये]

चतुर्थ ब्रह्मचर्य व्रत सब व्रतधारियो का सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत हो, सुव्रत हो, मै और शिष्यवर्ग इस व्रत मे निर्दोष रूप से आरूढ हो।

चतुर्थ महाव्रत सर्वेषां .. ... . ते मे भवतु ।।२।।
चतुर्थ महाव्रतं सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाण।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।
णमो अरिहताण .... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहताण ... .. णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत का प्रतिक्रमण

अहावरे पंचमे महव्वदे सव्व भते! दुविहं-परिग्गह पच्चक्खामि। तिविहेण मणसा-वचसा-काएण। सो परिग्गहो दुविहो अब्भतरो, बाहिरो चेदि। तत्थ अब्भतर परिग्गह–

मिच्छत्त-वेय-राया-तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चउदस अब्भतर गंथा ।।१।।

तत्थ बाहिर परिग्गह से हिरण्ण वा, सुवण्ण वा, धण वा, खेत्तं वा, खल वा, वत्थुं वा, पवत्थु वा, कोसं वा, कुठार वा, पुरं वा, अत-उर वा, बलं वा, वाहणं वा, सयड वा, जाणं वा, जपाणं वा, जुगं वा, गड्डिय वा, रह वा, सदण वा, सिविय वा, दासी-दास-गो-महिस-गवेडयं, मणि-मोत्तिय-संख-सिप्पिपवालयं, मणिभाजणं वा, सुवण्ण-भाजण वा, रजत-भाजणं वा, कंस-भाजणं वा, लोह-भाजणं वा, तंब-भाजण वा, अडज वा, वोडजं वा, रोमज वा, वक्कलज वा, चम्मजं वा, अप्पं वा, बहु वा, अणुं वा, थूलं वा, सचित्तं वा, अचित्त वा, अमत्थु वा, बहित्थं वा, अवि वालग्ग-कोडि मित्त पि णेव सयं असमण-पाउग्ग-परिग्गह-गिण्हिज्ज, णो अण्णेहिं असमण-पाउग्गं परिग्गह-गेण्हाविज्ज,

णो अण्णेहि असमण-पाउग्ग परिग्गह, गिण्हज्जतं वि समणुमणिज्ज, तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि, णिदामि, गरहामि, अप्पाण वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (पचमे महव्वदे) पचक महाव्रत मे (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन, वचन, काय तीनो प्रकार से (सव्व) सभी (दुविह परिग्गह) दोनो प्रकार के परिग्रह को (पच्चक्खामि) मै छोडता हूँ , त्याग करता हूँ। (सो परिग्गहो) वह परिग्रह (दुविहो) दो प्रकार का है (अब्भतरो बाहिरो चेदि) अन्तरग और बाह्य। (तत्थ अब्भतर परिग्गह) उनमे अन्तरग परिग्रह को कहते है—

(मिच्छत्त) मिथ्यात्व (वेय) वेद (राया) राग (हस्सादिया य छद्दोसा) हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा (तह) तथा (चत्तारि कसाया) चार कषाय–क्रोध, मान माया लोभ (चउदस अब्भतर गथा) ये १४ प्रकार के अभ्यन्तर परिग्रह है। (तत्थ) तथा (बाहिर परिग्गह) बाह्य परिग्रह (हिरण्ण वा) चॉदी, या (सुवण्ण वा) स्वर्ण या (धण वा) धन या (खेत्त वा) क्षेत्र/खेत या (खल) खलिहान या (वत्थु वा) वस्तु या (पवत्थु वा) प्रवस्तु या (कोस वा) कोष या (कुठार वा) कुठार या (पुर वा) नगर या (अत उर वा) अन्त पुर या (वल वा) बल या (वाहण वा) वाहन या (सयड वा) शकट/गाड़ी या (जाण वा) यान याने पालकी या (जपाण वा) माला या (जुग वा) जुआ या (गद्दिय वा) गड्डिय या (रह वा) रथ या (सदण वा) स्यन्दन या (सिवाय वा) शिविका या (दासी-दास) दासी-दास (गो-महिस-गवेडय) गाय-भैस-भेड (मणि-मोत्तिय-सख-सिप्पि-पवालय) मणि, मोती, शख, सीप, प्रवाल (मणि भाजण वा) मणि के बर्तन या (सुवण्ण-भाजण वा) सोने के बर्तन या (रजत-भाजण वा) चॉदी के बर्त्तनो मे या (लोह भाजण वा) लोहे के बर्तन या (तबभाजण वा) तॉबे के बर्तन या (अडज वा) अडज अर्थात्/रेशम के कपड़े या (वोडज) कपास के कपडे या (रोमज वा) ऊनी वस्त्र या (वक्कलज वा) वल्कल अर्थात् छाल के वस्त्र या (चम्मज) चर्म से बने वस्त्र या (अप्प वा) अल्प या (बहु वा) बहुत या (अणु वा) सूक्ष्म या (थूल वा) स्थूल या (सचित्त वा) सचित्त या (अचित्त वा) अचित्त या (अमत्थु वा) यहॉ स्थित या (बहित्थ वा) बाहर स्थित ये सब बाह्य

परिग्रह है (अवि वालग्ग-कोडि मित्त पि) इनमे बाल के अग्र भाग प्रमाण भी (असमण पाउग्ग परिग्गह गिण्हिज्ज णेव सय) श्रमण के अयोग्य परिग्रह को स्वय ग्रहण न करे (णो अण्णेहि असमण-पाउग्ग परिग्गह गेण्हाविज्ज) न श्रमण के अयोग्य परिग्रह को दूसरो से ग्रहण करावे, (णो अण्णेहि असमण-पाउग्ग परिग्गह गिण्हज्जत वि समणुमणिज्ज) न ही श्रमण के अयोग्य परिग्रह को ग्रहण करने वालो की अनुमोदना करे (भते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस परिग्रह त्याग महाव्रत मे जो (अहिचार) अतिचार लगा हो (पडिक्कमामि) मै उसका प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) मै निदा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से उन दोषो का त्याग करता हूँ।

भावार्थ—अब चतुर्थ ब्रह्मचर्य महाव्रत के बाद पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत मे हे भगवन् ! सब बाह्य अभ्यन्तर दोनो प्रकार के परिग्रह का त्रिविध से, मन से, वचन से, काय से, मै त्याग करता हूँ। वह परिग्रह दो प्रकार का है—बाह्य और अभ्यन्तर। उसमे अभ्यन्तर परिग्रह—

गाथार्थ—मिथ्यात्व १, वेद ३, उसी प्रकार ही हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, ६ और क्रोध, मान, माया लोभ ४ कषाय, इस प्रकार ये चौदह प्रकार अभ्यतर परिग्रह है ।

तथा बाह्य परिग्रह। उसका चॉदी, सुवर्ण, धन, गो आदि और ब्रीही आदि धान्य, धान्य की उत्पत्ति का स्थान खेत, खलिहान, वस्तु, प्रवस्तु, कोश अर्थात् (भाडागार) कुठार, नगर, अन्त पुर, बल—हाथी, घोड़ा, रथ और पदाति (पैदल) चार प्रकार सैन्यबल, हाथी, घोड़ा आदि वाहन, शकट याने बैलगाड़ी, यान याने पालकी, जपाण-माला, जुग-जुआँ, गड्डिय-रथ, स्यन्दन-शिविका दासी, दास, गाय, भैस, मणि, मौक्तिक, शख, सीप, प्रवाल, मणि के बर्तन, सोने के बर्तन, चॉदी के बर्तन, काँसा के बर्तन लोहे के बर्तन या ताम्बे के बर्तन, रेशमी वस्त्र, कपास के वस्त्र, रोमज-ऊनी वस्त्र, छाल के वस्त्र, चर्म के वस्त्र, थोड़ा या बहुत, सूक्ष्म या स्थूल, सचित्त या अचित्त, यहॉ स्थित या बाहिर स्थित ये सब बाह्य परिग्रह है। मेष के बाल के अग्र भाग प्रमाण भी श्रमण के अयोग्य ज्ञानोपकरण शास्त्र आदि और सयमोपकरण पीछी आदि को छोड़कर अन्य परिग्रह को

स्वय न ग्रहण करे, न श्रमण के अयोग्य परिग्रह को दूसरो से ग्रहण करावे और न श्रमण के अयोग्य परिग्रह ग्रहण करने वाले दूसरो की अनुमोदना करे।

हे भगवन्! इस परिग्रह त्याग महाव्रत सम्बन्धी अतिचार का मै प्रतिक्रमण करता हूँ, अपने दोषो की मै निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। हे भगवन्! भूतकाल मे मेरे द्वारा जो भी राग-द्वेष, मोह के वशीभूत हो स्वय-श्रमण के अयोग्य परिग्रह का ग्रहण किया गया हो, श्रमण के अयोग्य परिग्रह दूसरो से ग्रहण कराया गया हो तथा श्रमण के अयोग्य परिग्रह को ग्रहण करते हुए अन्यो की अनुमोदना की हो तो उसका मै त्याग करता हूँ। यह पञ्चम परिग्रह त्याग महाव्रत सभी व्रतधारियो के सम्यक्त्वपूर्वक दृढ़व्रत हो, सुव्रत हो, मै स्वय और शिष्यगण इस महाव्रत मे आरूढ हो।

[शेष अर्थ प्रथम महाव्रत मे देखिये]

पचम महाव्रत सर्वेषा व्रतधारिणा सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत सुव्रत समारूढ ते मे भवतु ।।१।।

पचम महाव्रत सर्वेषा .... ते मे भवतु ।।२।।
पचमं महाव्रत सर्वेषा . ... ते मे भवतु ।।३।।
णमो अरहताणं णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।
णमो अरहंताणं...... . . णमो लोए सव्वसाहूणं ।।२।।
णमो अरहताण .... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

छठे अणुव्रत रात्रिभोजन का प्रतिक्रमण

अहावरे छट्ठे अणुव्वदे सव्वं भते! राइ-भोयण पच्चक्खामि जावज्जीव तिविहेण मणसा-वचसा-काएण, से असणं वा, पाण वा, खादियं वा, सादियं वा, कडुयं वा, कसाय वा, आमिल वा, महुर वा, लवण वा, अलवणं वा, सचित्त वा, अचित्तं वा, तं-सव्वं-चउव्विह-आहारं, णेव सयं रत्तिं भुंजिज्ज, णो अण्णेहिं रत्ति भुजाविज्ज, णो अण्णेहिं रत्तिं भुंजिज्जंतं पि समणुमणिज्ज, तस्स भते! अइचारं पडिक्कमामि, णिदामि, गरहामि, अप्पाण वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! (अहावरे) अब (छट्ठे अणुव्वदे) छठे अणुव्रत मे (तिविहेण मणसा-वचसा-काएण) मन से, वचन से, काय से, तीनो प्रकार से (सव्व राइभोयण) सब प्रकार रात्रिभोजन को (पच्चक्खामि) मै त्यागता हूँ। (से) उस रात्रिभोजन त्याग छठे अणुव्रत मे (असण वा) अशन या (पाण वा) पान या (खादिय वा) खाद्य या (सादिय वा) स्वाद्य या (कडुय वा) कटुक या (कसाय वा) कसैला या (आमिल) खट्टा या (महुर वा) मधुर या (लवण वा) क्षार/खारा (अलवण वा) क्षाररहित या (सचित्त वा) सचित्त या (अचित्त वा) अचित्त या (त-सव्व-चउव्विह आहार) उस चारो प्रकार के आहार को (णेव सय रत्ति भुजिज्ज) स्वय रात्रि को न खावे (णो अण्णेहि) न दूसरो को (रत्ति भुजाविज्ज) रात्रि मे खिलावे (णो अण्णेहि रत्ति भुजिज्ज पि समणुमणिज्जि) न अन्य को रात्रि मे खाने वालो की अनुमोदना करे (भते !) हे भगवन् ! (तस्स) उस छठे अणुव्रत मे लगे (अइचार) अतिचारो का (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से उनका त्याग करता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन् ! षष्ठम (छठे) अणुव्रत मे सब प्रकार रात्रि-भोजन का त्रिविध मन-वचन-काय से जीवनपर्यन्त प्रत्याख्यान करता हूँ। उस रात्रि-भोजन विरति मे क्षति के कारण अशन, पान, खाद्य, स्वाद, कटुक, कषैला, आमिला, खट्टा, मधुर/मीठा, लवण/खारा, सचित्त और अचित्त सब प्रकार के चतुर्विध आहार को मै स्वय रात्रि मे नही खाऊँगा, न अन्य को रात्रि मे खिलाऊँगा और न रात्रि मे खाते हुए अन्य का अनुमोदन करूँगा।

हे भगवन् ! छठे अणुव्रत रात्रिभोजन विरति मे जो भी अतिचार लगे है मै उनका प्रतिक्रमण करता हूँ। अपनी निन्दा और गर्हा करता हूँ। मेरे द्वारा जो राग-द्वेष-मोह के वश हो चार प्रकार का आहार रात्रि मे स्वय खाया गया हो, दूसरो को रात्रि-भोजन खिलाया गया हो या रात्रि मे भोजन करते हुए किसी की अनुमोदना की गई हो, उसका मै त्याग करता हूँ।

[शेष अर्थ प्रथम महाव्रत मे देखिये]

षष्ठ अणुव्रत सभी व्रतधारियो के सम्यक्त्वपूर्वक दृढव्रत हो, सुव्रत हो। मै और शिष्य इस व्रत मे आरूढ हो ॥

षष्ठ अणुव्रत सर्वेषां .... ते मे भवतु ।।२।।
षष्ठ अणुव्रत सर्वेषां . ... ते मे भवतु ।।२।।
णमो अरिहंताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूण ।।१।।
णमो अरहताण .... णमो लोए सव्वसाहूण ।।२।।
णमो अरहताण .... णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

चूलिका

चूलियंतु पवक्खामि भावणा पंचविंसदी ।
पंच पंच अणुण्णादा एक्केक्कम्हि महव्वदे ।।१।।

अन्वयार्थ—(चूलियतु पवक्खामि) चूलिका को कहता हूँ (भावणा) भावना (पचविसदी) पच्चीस है (एक्केक्कम्हि महव्वदे) एक-एक महाव्रत मे (पच-पच) पॉच-पॉच (अणुण्णादा) स्वीकार की गई है।

चूलिका—उक्त-अनुक्त और दुरुक्त का कथन करने वाली चूलिका कहलाती है। [उक्त याने कहा हुआ, अनुक्त याने नही कहा हुआ तथा दुरुक्त याने कठिन विषय]

आचार्यश्री अब पॉच महाव्रतो सबधी प्रतिक्रमण का वर्णन करने के बाद अब उक्त-अनुक्त और दुरुक्त का कथन करने वाली चूलिका का कथन करने की प्रतिज्ञा करते है। प्रथमत पॉच महाव्रतो की रक्षिका पच्चीस भावनाओ का वर्णन करते हुए लिखते है कि—भावना २५ हैं उनमे एक-एक व्रत की पॉच-पॉच भावनाएँ है।

मणगुत्तो वचिगुत्तो इरिया-काय-संयदो ।
एसणा-समिदि संजुत्तो पढमं वदमस्सिदो ।।२।।

अन्वयार्थ—(पढम) प्रथम (वदमस्सिदो) अहिंसाव्रत का आश्रय वाला व्यक्ति (मणगुत्तो) मन से गुप्त अर्थात् मन गुप्ति (वचिगुत्तो) वचन गुप्त अर्थात् वचन गुप्ति (इरिया) ईर्यासमिति अर्थात् चार हाथ जमीन देखकर चलना (काय संयदो) शरीर को सयमित रखना और (एसणासमिदिसजुत्तो) एषणा समिति अर्थात्

देख-शोधकर भोजन करना इन अहिसा महाव्रत की पॉच भावनाओ से युक्त होता है। मै इन पॉच भावनाओ से युक्त हो अहिसा महाव्रत मे स्थित होता हूँ। क्योकि इनके बिना व्रत निर्मल नही रहता।

अकोहणो अलोहो य भय-हस्स-विवज्जिदो।
अणुवीचि-भास-कुसलो विदिय वदमस्सिदो ।।३।।

अन्वयार्थ—(विदिय वदमस्सिदो) द्वितीय सत्य महाव्रत के आश्रित जीव (अकोहणो) क्रोध से रहित (अलोहो) लोभ से रहित (भय-हस्सविवज्जिदो) भय, हास्य से रहित (य) और (अणुवीचिभासकुसलो) आगम के अनुकूल बोलने मे कुशल हो। ये पॉच सत्य महाव्रत की भावनाएँ है। इन भावनाओ से युक्त सत्य व्रत निर्मल होता है। मै सत्यव्रत की निर्मलता के लिये इन भावनाओ को भाता हूँ, अपने व्रत मे स्थित होता हूँ।

अदेहण भावणं चावि उग्गहं य परिग्गहे।
संतुट्ठो भत्तपाणेसु तिदियं वदमस्सिदो ।।४।।

अन्वयार्थ—तृतीय अचौर्यव्रत की विशुद्धि को बनाये रखने के लिये मै अचौर्यव्रत की पॉच भावनाओ मे तत्पर होता हूँ, क्योकि [अदेहण] अदेहन अर्थात् कर्मवशात् जो देह मैने प्राप्त किया है वही मेरा धन है, अन्य परिग्रह कोई मेरा नही है तथा अदेहन शब्द मे पृषोदरादि इत्यादि वाक्य से ध का लोप होकर अदेहधन के स्थान मे अदेहन बन गया है। अत जो १ प्रथम भावना शरीर मात्र को धन मानता है ? २ शरीर मे अशुचित्व की भावना करता है, ३ शरीर मे अनित्यत्व आदि भावना करता है [अदेहन से तीन भावनाओ को ग्रहण करना।] (या) जो (परिग्गहे) ४ परिग्रह मे (उग्गह) अवग्रह अर्थात् निर्वृत्ति की भावना भाता है (चा) और (भत्तपाणेसु सतुट्ठो) भोजन-पान आदि चतुर्विध आहार मे गृद्धता से रहित होता है (तिदिय वदमस्मिदो) वह तृतीय अचौर्यव्रत का धारक है।

इत्थिकहा इत्थि-संसग्ग-हास-खेड-पलोयणे।
णियमम्मि ट्ठिदो णियत्तो य चउत्थं वदमस्सिदो ।।५।।

अन्वयार्थ—(इत्थिकहा) स्त्रीकथा (इत्थिससग्ग) स्त्रियो का ससर्ग (हास-खेड-पलोयणे) स्त्रियो के साथ हास्य-विनोद/हँसी मजाक, स्त्रियो

के साथ क्रीडन, स्त्री के मुख आदि का राग भाव से अवलोकन (णियमम्मि) इनके नियमो मे मै (ट्ठिदो) स्थित हूँ। जो ब्रह्मचर्य के घातक होने से मै इन क्रियाओ से निवृत्त होता हूँ। इसलिये मै (चउत्थ) चतुर्थब्रह्मचर्य (वदमस्सिदो) महाव्रत मे आश्रय लेता हूँ। १ स्त्री-कथा त्याग, २ स्त्री-ससर्ग त्याग, ३ स्त्री मे हास्य त्याग, ४ स्त्री से क्रीडा त्याग और ५ स्त्री के अगो का रागभाव से अवलोकन का त्याग, इन ब्रह्मचर्यव्रत की पॉच भावनाओ का व्रत निर्मल होता है।

सचित्ताचित्त-दव्वेसु बज्झ-मब्भतरेसु य।
परिग्गहादो विरदो पचम वदमस्सिदो ।।६।।

अन्वयार्थ—(पचम वदमस्सिदो) पचम परिग्रहत्याग महाव्रत का आश्रय लिया है जिसने ऐसा मै (सचित्त अचित्त दव्वेसु) सचित्त द्रव्य—गाय, भैस, दासी-दास आदि द्रव्यो मे, अचित्त—धन-धान्य आदि अचित्त द्रव्यो मे, (बज्झब्भतरेसु) और बाह्य-वस्त्र, आभरण आदि द्रव्य मे तथा आभ्यन्तर-ज्ञानावरण, दर्शनावरणादि, द्रव्यो मे तथा (परिग्गको) घर, क्षैत्र आदि सभी बाह्य आभ्यन्तर २४ परिग्रहो मे (विरदो) विरति अर्थात् त्याग करता हूँ। इस प्रकार सचित्त द्रव्य त्याग भावना, अचित्त द्रव्य त्याग भावना, बाह्य द्रव्य त्याग भावना, आभ्यन्तर द्रव्य त्याग भावना और सर्व परिग्रह त्याग भावना, इन पॉच भावनाओ के भाने वाले जीव के परिग्रह त्याग महाव्रत निर्मल होता है।

धिदिमंतो खमाजुत्तो, झाण-जोग-परिट्ठिदो।
परिसहाण-उरं देत्तो उत्तमं वदमस्सिदो ।।७।।

अन्वयार्थ—(धिदिमतो) धैर्य्यवान (खमाजुत्तो) क्षमावान् (झाण-जोग-परिट्ठिदो) ध्यान और योग मे अच्छी तरह से स्थित (परीसहाण-उर देत्तो) बावीस परीषहो को जीतने वाला महापुरुष ही (उत्तम वदमस्सिदो) पॉच महाव्रत रूप उत्तम व्रतो का आश्रय लेता है।

जो सारो सव्वसारेसु सो सारो एस गोयम।
सारं झाणंति णामे ण सव्वं बुद्धेहिं देसिदं ।।८।।

अन्वयार्थ—(गोयम!) हे गौतम! (सव्वसारेसु) सभी सार वस्तुओ मे (जो) जो (सारो) सार है (सो) वह (सारो) वह सार (एस) यह

व्रत है। (सव्व सार झाणति णामे ण) सब सार मे "सार ध्यान" से (बुद्धेहि) सर्वज्ञदेवो ने, ज्ञानियो ने (देसिद) कहा है।

तात्पर्य यह है कि सब सारो मे सार व्रत है तथा उनमे ध्यान व्रत का भी सार है ऐसा जानना चाहिये क्योकि ध्यान व्रतो की विशुद्धि का हेतु है।

इच्चेदाणि पंचमहव्वदाणि, राइ-भोयणादो वेरमण छट्ठाणि, सभावणाणि, समाउग्ग-पदाणि, स उत्तर-पदाणि, सम्म, धम्मं, अणुपाल-इत्ता, समणा, भयवता, णिग्गथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुच्चति, परिणिव्वाणयंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति, परिविज्जाणति।

अर्थ—इस प्रकार ये पाँच महाव्रत और षष्ठम रात्रिभोजन विरक्ति/त्याग ये छह महान् व्रत है। जो भावनाओ सहित है, अष्ट प्रवचन मातृकाओ से सहित है, उत्तर पदो सहित है। ये व्रत सम्यक् धर्म है, इनका पालन करके श्रमण भगवन्त निर्ग्रन्थ अर्थात् पूर्ण रूप से अन्तरग-बहिरग परिग्रह के त्यागी निर्ग्रन्थ हो करके स्वात्मोपलब्धि रूप सिद्धि को प्राप्त होते है, हेयोपादेय रूप विवेक से सम्पन्न हो केवलज्ञान प्राप्त कर बुद्ध होते है, अष्ट कर्मों से छूटकर मुक्त होते है, ससाररूप समुद्र से पार होते है, समस्त दु खो का क्षय करते है और त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को युगपत् अच्छी तरह से जानते है।

तं जहा–

वह इस प्रकार कहा है—

पाणादिवादं चहि मोसगं च, अदत्त मेहुण्ण परिग्गह च।
वदाणि सम्मं अणुपाल-इत्ता, णिव्वाण-मग्गं विरदा उवेंति ॥१॥

अन्वयार्थ—(विरदा) विरत मुनि (पाणादिवाद) प्राणातिपात अर्थात् हिसा (च) और (मोसग) असत्य (अदत्त) चोरी (मेहुण्ण) मैथुन (च) और (परिग्गहं) परिग्रह को (चहि) छोड़कर/त्यागकर (वदाणि) व्रतो का (सम्म अणुपालइत्ता) समीचीन रूप से अनुपालन कर (णिव्वाणमग्ग) निर्वाणमार्ग को (उवेति) प्राप्त होते हैं ॥१॥

जाणि काणि वि सल्लाणि गरहिदाणि जिण-सासणे।
ताणि सव्वाणि वोसरित्ता णिसल्लो विहरदे सया मुणी ॥२॥

अन्वयार्थ—(जिण सासणे) जिनेन्द्रदेव के शासन मे (जाणि काणि वि) जो भी कोई (सल्लाणि) शल्य — माया, मिथ्यात्व, निदान, आदि या क्रोध, मान, माया, लोभ (गरहिदाणि) निन्दित कहे गये हैं (मुणी) मुनिराज (सया) सदा (ताणि सव्वाणि) उन सबको (वोसरित्ता) त्याग कर (णिसल्लो) नि शल्य होते है, हुए (विहरदे) विहार करते है अथवा मुनिराज सब शल्यो का त्याग करके निज स्वरूप मे "विहरदो" अर्थात् विचरण करते है।

उप्पण्णाणुप्पण्णा माया अणुपुव्वं सो णिहंतव्वा।
आलोयण पडिकमण णिदण गरहणदाए।।३।।

अन्वयार्थ—(उप्पण्ण) उत्पन्न अथवा (अणुप्पणा) अनुत्पन्न (माया) माया को (सो) वे मुनि (अणुपुव्व) क्रमश (आलोयण) आलोचना (पडिकमण) प्रतिक्रमण (णिदण) निन्दा (गरहणदाए) गर्हा से (णिहतव्वा) नाश करे।

मन-वचन-काय की कुटिलता का नाम माया है। मुनियो का कर्तव्य है कि जो-जो माया जब-जब उत्पन्न हो तब-तब आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा के द्वारा उनका विनाश करे।

अब्भुट्ठिद-करण-दाए अब्भुट्ठिद-दुक्कड-णिराकरणदाए।
भवं भाव पडिक्कमणं सेसा पुण दव्वदो भणिदा।।४।।

अन्वयार्थ—(अब्भुट्ठिदकरणदाए) माया जिन परिणामो से जिस काल मे उत्पन्न हुई है, (अब्भुट्ठिददुक्कडणिराकरणदाए) उत्पन्न हुई उस माया का उसी काल मे आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा के द्वारा निराकरण कर नष्ट करना चाहिये (भव भाव पडिकमण) इससे यह भाव प्रतिक्रमण होता है, (सेसा पुण) पुन शेष सर्व प्रतिक्रमण (दव्वदो भणिदा) द्रव्य प्रतिक्रमण कहा गया है।

अर्थात् माया परिणति का निन्दा, गर्हा आदि से निराकरण करना भाव प्रतिक्रमण है और शेष शब्दोच्चारण मात्र रूप द्रव्य प्रतिक्रमण है।

एसो पडिक्कमण-विही पण्णत्तो जिणवरेहिं सव्वेहिं।
संजम-तव-ट्ठिदाणं णिग्गंथाणं महरिसीणं।।५।।

अन्वयार्थ—(सजमतवट्ठिदाण) सयम और तप मे स्थित (णिग्गथाण महरिसीण) निर्ग्रन्थ महर्षियो के लिये (एसो पडिकमणविही) यह द्रव्य और भाव दोनो प्रकार की प्रतिक्रमण विधि (सव्वेहि जिणवरेहि) सभी चतुर्विशति तीर्थकरो ने (पण्णत्तो) कही है।

अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीण च ज भवे एत्थ ।
तं खमउ णाण-देवय ! देउ समाहिं च बोहि च ।।६।।

अन्वयार्थ—(अक्खर पयत्थहीण) अक्षर, पद, अर्थ से हीन (च) और (मत्ताहीण) मात्रा से हीन (ज) जो (भवे एत्थ) यहाँ हो (त) उसे (णाण देवय !) हे श्रुतदेवि (खमउ) क्षमा करो (च) और (मे) मुझे (समाहि) रत्नत्रय (च) (बोहि) बोधि (देउ) दो।

काऊण णमोक्कारं अरहंताण तहेव सिद्धाणं ।
आइरिय-उवज्झायाण लोयम्मि य सव्वसाहूणं ।।७।।

अन्वयार्थ—(लोयम्मि) लोक मे (अरहताण) सब अरहतो को (तहेव) उसी प्रकार (सिद्धाण) सब सिद्धो को (आइरिय-उवज्झायाण) सब आचार्यो को, सब उपाध्यायो को (य) और (सव्वसाहूण) सब साधुओ को (णमोक्कार काऊण) नमस्कार करके

इच्छामि भंते ! पडिक्कमणमिद, सुत्तस्स, मूलपदाणं, उत्तर-पदाण-मच्चासणदाए त जहा—

अर्थ—हे भगवन् ! सूत्र के मूल पदो की और उत्तर पदो की अवहेलना होने से जो कोई दोष उत्पन्न हुआ है उसका निराकरण करने के लिये यह प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। उसी को कहते है

पदादि की अवहेलना संबंधी प्रतिक्रमण

णमोक्कारपदे, अरहंतपदे, सिद्धपदे, आइरियपदे, उवज्झाय-पदे, साहु-पदे, मंगल-पदे, लोगोत्तम-पदे, सरण-पदे, सामाइय-पदे, चउवीस-तित्थयर-पदे, वंदण-पदे, पडिक्कमण-पदे, पच्चक्खाण-पदे, काउस्सग्ग-पदे, असीहिय-पदे, निसीहिय-पदे, अंगंगेसु, पुव्वंगेसु, पइण्णएसु, पाहुडेसु, पाहुड-पाहुडेसु, कदकम्मेसु वा, भूद कम्मेसु वा, णाणस्स-अइक्कमणदाए, दंसणस्स-अइक्कमणदाए, चरित्तस्स-अइक्कमणदाए, तवस्स-

अइक्कमणदाए, वीरियस्स-अइक्कमणदाए, से अक्खर-हीण वा, सर-हीण वा, विजण-हीण वा, पद-हीणं वा, अत्थ-हीणं वा, गथ-हीण वा, थएसु वा, थुइसु वा, अट्टक्खाणेसु वा, अणि-योगेसु वा, अणि-योगद्दारेसु वा, जे भावा पण्णत्ता, अरहंतेहि, भयवंतेहिं, तित्थयरेहि, आदियरेहिं, तिलोग-णाहेहिं, तिलोग-बुद्धेहिं, तिलोग-दरसीहिं, ते सद्दहामि, ते पत्तियामि, ते रोचेमि, ते फासेमि, ते सद्दहतस्स, ते पत्तयंतस्स, ते रोचयतस्स, ते फासयतस्स, जो मए पक्खिओ (चउमासिओ) (सवच्छरिओ) अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, अकालो, सज्झाओ, कओ काले वा, परिहाविदो, अच्छाकारिदं, मिच्छामेलिद, आमेलिदं, वा मेलिद, अण्णहा-दिण्णं, अण्णहा-परिच्छदं, आवासएसु, पडिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(णमोक्कार पदे) नमस्कार पद मे, (अरहत पदे) अरहत पद मे (सिद्ध पदे) सिद्ध पद मे (आइरियपदे) आचार्य पद मे (उवज्झाय-पदे) उपाध्याय पद मे (साहुपदे) साधु पद मे (मगल पदे) मगल पद मे, (लोगोत्तम पदे) लोकोत्तम पद मे (सरण पदे) शरण पद मे (सामाइय-पदे) सामायिक पद मे (चउवीस-तित्थयर पदे) चौबीस तीर्थकर पद मे (वदण वदे) वन्दन पद मे, (पडिक्कमण पदे) प्रतिक्रमण पद मे (पच्चक्खाण पदे) प्रत्याख्यान पद मे, (काउस्सग्ग पदे) कायोत्सर्ग पद मे, (असीहिय पदे) अ सही पद मे (निसीहिय-पदे) निषेधिका पद मे (अगगेसु) ११ अगो मे, (पुव्वगेसु) पूर्वो मे, (पइण्णएसु) प्रकीर्णको मे, (पाहुडेसु) प्राभृतो मे, (पाहुड-पाहुडेसु) प्राभृत-प्राभृतो मे, (कदकम्मेसु वा) कृतिकर्मो मे, या (भूद कम्मेसु वा) भूत कर्मो मे या (णाणस्स-अइक्कमणदाए) ज्ञान की अवहेलना मे, या (दसणस्स-अइक्कमणदाए) दर्शन की अवहेलना मे (चरित्तस्स-अइक्कमणदाए) चारित्र की अवहेलना मे (तवस्स अइक्कमणदाए) तपकी अवहेलना मे (वीरियस्स-अइक्कमणदाए) वीर्य की अवहेलना मे (से अक्खरहीण वा) उनमे अक्षर की हीनता या (सरहीण वा) स्वर की हीनता या (विंजण हीण वा) व्यजन की हीनता या (पद हीण वा) पद की हीनता या (अत्थ हीण वा) अर्थहीन या (गथ हीण वा) ग्रन्थ की हानि (थएसु वा) स्तव मे या (थुइसु) स्तुति मे या (अट्टक्खाणेसु वा)

अर्थाख्यानो मे या (अणि-योगेसुवा) अनुयोगो मे या (अणियोगद्दारेसु वा) अनुयोगद्वारो मे (जे भावा पण्णत्ता) जो भावा प्रज्ञप्त है (अरहतेहि) अरहतो (भयवतेहि) भगवन्तो (तित्थयरेहि) तीर्थंकरो (आदियरेहि) आदि तीर्थ कर्ता (तिलोय-णाहेहि) त्रिलोकीनाथ (तिलोग बुद्धेहि) त्रिलोक ज्ञाता (तिलोगदरसीहि) त्रिलोक दृष्टा है (ते सद्दहामि) उनमे मै श्रद्धा करता हूँ (ते पत्तियामि) उनमे विश्वास करता हूँ (ते रोचेमि) उनमे मै रुचि करता हूँ (ते फासेमि) उनका स्पर्श करता हूँ (ते सद्दहतस्स) उनका श्रद्धान करने वाले (ते पत्तयतस्स) उनका विश्वास करने वाले (ते रोचयतस्स) उनका रुचि करने वाले (ते फासयतस्स) उनका स्पर्श करने वाले (जो मए) मेरे द्वारा जो (पक्खिओ) पाक्षिक (चउमासिओ) चातुर्मासिक (सवच्छरिओ) सावत्सरिक (अदिक्कमो) अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभोग) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग दोष लगा हो (अकाले सज्झाओ) अकाल मे स्वाध्याय किया हो (कओ काले वा परिहाविदो) या स्वाध्याय काल मे स्वाध्याय नही किया हो (अच्छाकारिद) अन्यथा किया हो (मिच्छा मेलिद) मिथ्या के साथ मिलाया हो (आमेलिद वा मेलिद) अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ मिलाकर पढा हो (अण्णहा-दिण्ण) अन्यथा कहा हो (अण्णहा पडिच्छद) अन्यथा समझा हो (आवासएसु पडिहीणदाए) छ आवश्यको मे परिहीनता की हो (तस्स मिच्छा मे दुक्कड) तत्सबधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

भावार्थ—पञ्चनमस्कार णमो अरहताण आदि पद मे अरहतपद मे, सिद्धपद मे आचार्य पद मे, उपाध्याय पद मे, साधु पद मे, लोक मे चार मगल है-अरहत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म इन चार मगल पदो मे, अरहत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म लोक मे उत्तम हैं ऐसे लोकोत्तम पद मे, अरहत, सिद्ध, साधु और जिनधर्म लोक मे शरण है ऐसे लोक मे चार शरण है, ऐसे चार शरण पदो मे, सर्व सावद्य विरतोऽस्मि ऐसे सामायिक पद मे, आदिनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर पद मे, सिद्धानुद्धूत आदि और जयति भगवान हेमाम्भोज इत्यादि वन्दना पद मे, पडिक्कमामि भते रूप अथवा दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक,

चातुर्मासिक, सावत्सारिक आदि रूप प्रतिक्रमण पद मे, अनागत, अतिक्रान्त आदि नौ प्रकार का प्रत्याख्यान पद मे, वन्दना, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण योग सबधी २८ प्रकार कायोत्सर्ग मे, अ सही पद मे, नि सही पद मे, आचाराग आदि ग्यारह अगो मे, उत्पाद पूर्व आदि चौदह पूर्वो मे, प्रकीर्णक मे, प्राभृत मे, प्राभृत-प्राभृत मे, करने योग्य षडावश्यक कर्मो मे या जिनके करने से पाप का क्षय होता है ऐसे कृति कर्मो मे, भूत कर्मों मे लगे दोषो का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। तथा ज्ञान की अवहेलना, दर्शन की अवहेलना, चारित्र की अवहेलना, तप की अवहेलना और वीर्य की अवहेलना मे, चौबीस तीर्थकरो के गुणो का वर्णन करने वाले स्तव मे और एक तीर्थकर के गुणो का वर्णन करने वाला स्तुति मे, पुराण पुरुषो के चारित्र का कथन करने वाले अर्थाख्यानो मे, प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, करणानुयोग आदि अनुयोग मे, कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारो मे, स्वरहीन, अक्षरहीन, पदहीन, व्यञ्जनहीन, अर्थहीन और ग्रन्थहीन दोषो का प्रतिक्रमण करने की इच्छा करता हूँ। अर्हंतो, भगवन्तो, तीर्थकरो त्रिलोकीनाथो, त्रिलोकज्ञाताओ, त्रिलोकदृष्टाओ के द्वारा प्रतिपादित जो जीवादि पदार्थ है मै उनकी श्रद्धा करता हूँ, प्रतीति करता हूँ, रुचि करता हूँ , विश्वास करता हूँ। वीतराग अरहत द्वारा प्रतिपादित उन पदार्थो मे श्रद्धा, प्रतीति, रुचि, विश्वास करने वाले मुझे जो भी दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक [चातुर्मासिक सावत्सरिक] अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, आभोग, अनाभोग दोष लगा, मैने अकाल मे स्वाध्याय किया, स्वाध्याय काल मे स्वाध्याय नही किया, अन्यथा किया अर्थात् बहुत जल्दी या बहुत धीरे उच्चारण किया, मिथ्या के साथ मिलाया, अन्य अवयव को अन्य अवयव के साथ जोड़कर पद्य बोला हो, उच्चध्वनियुक्त पाठ को नीचध्वनि से और नीचध्वनियुक्त पाठ को उच्चध्वनि से पढ़ा, अन्यथा कहा, अन्यथा ग्रहण किया, अन्यथा समझा, छह आवश्यक क्रियाओ मे परिहीनता की हो इन सब दोषो सम्बन्धी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो।

तिथि, मास, वर्ष आदि के अन्तर्गत दोषों का प्रतिक्रमण

अह पडिवदाए, विदियाए, तिदियाए, चउत्थीए, पंचमीए, छट्ठीए, सत्तमीए, अट्ठमीए, णवमीए, दसमीए, एयारसीए बारसीए, तेरसीए,

चउद्दसीए, पुण्ण-मासीए, पण्णरस-दिवसाणं, पण्णरस-राइणं, (चउण्ह-मासाणं, अट्ठणं-पक्खाणं, वीसुत्तरसय-दिवसाण, वीसुत्तरसय-राइणं) (बारसण्हं-मासाणं, चउवीसण्ह-पक्खाण, तिण्हि-छावट्ठि-सय-दिवसाण, तिण्हिं-छावट्ठि-सय-राइणं) (पचवरिसादो) परदो, अब्भतरदो वा, दोण्ह-अट्ट-रूद्द-सकिलेस-परिणामाणं, तिण्ह-अप्पसत्थ-सकिलेस-परिणामाणं, तिण्हं-दंडाणं, तिण्ह-लेस्साण, तिण्हं-गुत्तीणं, तिण्हं-गारवाणं, तिण्हं-सल्लाणं, चउण्हं-सण्णाण, चउण्ह-कसायाण, चउण्ह-उवसग्गाणं, पचण्हं महव्वयाणं पंचण्हं इंदियाण, पंचण्हं-समिदीण, पचण्हं-चरित्ताणं, छण्हं-आवासयाणं, सत्तण्हं-भयाणं, सत्त-विहससाराण, अट्ठण्ह-मयाणं, अट्ठण्हं-सुद्धीण, अट्ठण्हं-कम्माणं, अट्ठण्हं-पवयण-माउयाण, णवण्हं-बंभचेर-गुत्तीणं, णवण्ह-णो-कसायाण, दस-विह-मुडाणं, दसविह-समण-धम्माण, दसविह-धम्मज्झाणाण, बारसण्हं सजमाण, बारसण्ह तवाण, बारसण्हं अंगाणं, तेरसण्ह किरियाण, चउदसण्हं पुव्वाणहं, पण्णरसण्ह पमायाणं, सोलसण्हं कसायाणं बावीसाए परीसहेसु, पणवीसाए किरियासु, पणवीसाए भावणासु, अट्ठारस-सील-सहस्सेसु, चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु, मूलगुणेसु, उत्तरगुणेसु, अदिक्कमो, वदिक्कमो, अइचारो, अणाचारो, आभोगो, अणाभोगो, तस्स भते ! अइचार पडिक्कमामि, पडिक्कंतं, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिद, तस्स भंते ! अइचारं पडिक्कमामि, णिंदामि, गरहामि, अप्पाण वोस्सरामि, जाव अरहंताण, भयवताण, णमोक्कार करेमि, पज्जुवास करेमि, ताव काल पावकम्म दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(अह) अब (पडिवदाए) प्रतिपदा मे (विदियाए) द्वितीया मे (तदियाए) तृतीया मे (चउत्थीए) चतुर्थी मे (पचमीए) पचमी मे (छट्ठमीए) षष्ठी मे (सत्तमीए) सप्तमी मे (अट्ठमीए) अष्टमी मे (णवमीए) नवमी मे (दसमीए) दशमी मे (एयारसीए) एकादशी मे (बारसीए) द्वादशी मे (तेरसीए) त्रयोदशी मे (चउद्सीए) चतुर्दशी मे (पुण्णमासीए) पूर्णमासी मे (पण्णरस-दिवसाण) पन्द्रह दिनो मे (पण्णरस-राइण) पन्द्रह रात्रियो मे [चउण्ह-मासाण, अट्ठण्ह पक्खाण, वीसुत्तरसय-दिवसाण, वीसुत्तरसय-राइण] चार माह मे, आठ पक्षो मे,

एक सौ बीस दिनो मे, एक सौ बीस रात्रियो मे [वारसण्ह मासाण, चउवीसण्ह पक्खाण, तिण्हि छावट्ठि-सय-दिवसाण, तिण्हि छावट्ठि-सय-राइण] बारह महीनो मे, चौबीस पक्षो मे, तीन सौ छ्यासठ दिनो मे, तीन सौ छ्यासठ रात्रियो मे [पचवरिसादो] पाँच वर्षो मे (परदो) पाँच वर्ष के आगे/परे (अब्भतरदो वा) अथवा पाँच वर्ष के भीतर (दोण्ह-अट्ट-रुद्द-सकिलेस-परिणामाण) दोनो प्रकार के आर्त्त-रौद्र सक्लेश परिणामो (तिण्ह-अप्पसत्थ-सकिलेस-परिणामाण) तीन प्रकार के अप्रशस्त सक्लेश परिणामो (तिण्ह दडाण) तीन प्रकार के दड-मन-वचन-कायो (तिण्ह लेस्साण) तीन प्रकार की लेश्याओ (तिण्ह-गुत्तीण) तीन प्रकार की गुप्तियो (तिण्ह-गारवाण) तीन गारवो (तिण्ह-सल्लाण) तीन शल्यो (चउण्ह-सण्णाण) चार सज्ञाओ (चउण्ह कसायाण) चार कषायो (चउण्ह-उवसग्गाण) चार प्रकार के उपसर्गो (पचण्ह-महव्वयाण) पाँच महाव्रतो (पचण्ह-इदियाण) पाँच प्रकार इन्द्रियो (पचण्ह-समिदीण) पाँच प्रकार समितियो (पचण्ह-चरित्ताण) पाँच प्रकार चारित्रो (छण्ह-आवासयाण) छह प्रकार के आवश्यको (सत्तण्ह-भयाण) सात प्रकार के भयो (सत्तविह-ससाराण) सात प्रकार का ससारो (अट्ठण्ह-मयाण) आठ प्रकार के मदो (अट्ठण्ह-सुद्धीण) आठ प्रकार की शुद्धियो (अट्ठण्ह-कम्माण) आठ प्रकार के कर्मो (अट्ठण्ह-पवयण-माउयाण) आठ प्रकार की प्रवचन मातृकाएँ (णवण्ह बभचेर गुत्तीण) नव प्रकार की ब्रह्मचर्य गुप्तियो (णवण्ह णो कसायाण) नौ प्रकार की नोकषायो (दस-विह मुडाण) दस प्रकार के मुण्डो (दसविह-समण-धम्माण) दस प्रकार का श्रमण धर्मो (दसविह-धम्मज्झाणाण) दस प्रकार का धर्म्यध्यानो (वारसण्ह सजमाण) बारह प्रकार का सयमो (वारसण्ह तवाण) बारह प्रकार का तपो (वारसण्ह अगाण) बारह प्रकार के अगो (तेरसण्ह किरियाण) तेरह प्रकार की क्रियाओ (चउदसण्ह पुव्वाण्ह) चौदह प्रकार पूर्वो (पण्णरसण्ह पमायाण) पन्द्रह प्रकार प्रमादो (सोलसण्ह कसायाण) सोलह प्रकार कषायो (बावीसाए परीसहेसु) बावीस प्रकार परीसहो (पणवीसाए किरियासु) पच्चीस प्रकार क्रियाओ (पणवीसाए भावणासु) पच्चीस प्रकार भावनाओ (अट्ठारस-सील-सहस्सेसु) अठारह हजार शीलो मे (चउरासीदि-गुण-सय-सहस्सेसु) ८४ लाख गुणो मे (मूलगुणेसु) मूलगुणो मे (उत्तरगुणेसु) उत्तरगुणो मे (अदिक्कमो)

अतिक्रम (वदिक्कमो) व्यतिक्रम (अइचारो) अतिचार (अणाचारो) अनाचार (आभागो) आभोग (अणाभोगो) अनाभोग हुआ हो (भते ।) हे भगवन् । (तस्स) तत्सबधी (अइचार पडिक्कमामि) अतिचार का मै प्रतिक्रमण करता हूँ (पडिक्कत) व्रतो का उल्लघन (कदो वा) किया हो या (कारिदो वा) कराया हो या (समणुमण्णिद) अच्छी तरह अनुमोदना की हो (भते ।) हे भगवन् (तस्स) तत्सबधी (अइचार पडिक्कमामि) अतिचार का मै प्रतिक्रमण करता हूँ (णिदामि) निन्दा करता हूँ (गरहामि) गर्हा करता हूँ (अप्पाण वोस्सरामि) आत्मा से/अन्तरग से उनका त्याग करता हूँ (जाव अरहताण भयवताण) जितने अरहत भगवन्त है उनको (णमोक्कार करेमि) नमस्कार करता हूँ (पज्जुवास करेमि) पर्युपासना करता हूँ (ताव काल) उतने काल पर्यन्त (पावकम्म-दुच्चरिय वोस्सरामि) पापकर्म, दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ।

भावार्थ—अब प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पचमी, षष्ठी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, दशमी, एकादशी, द्वादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, पन्द्रह दिनो मे, पन्द्रह रात्रि मे, छह मास मे, आठ पक्ष मे, एक सौ बीस दिनो मे, एक सौ बीस रात्रियो मे, बारह माह मे, चौबीस पक्ष मे, तीन सौ छ्यासठ दिनो मे, तीन सौ छ्यासठ रात्रियो मे, पॉच वर्ष से परे अर्थात् आगे या पॉच वर्ष के भीतर दोनो प्रकार आर्त्त-रौद्र परिणाम, माया-मिथ्या-निदान रूप तीन प्रकार के अप्रशस्त सक्लेश परिणाम, मन-वचन-काय तीन दण्ड, तीन लेश्या कृष्ण–नील-कापोत, तीन गुप्ति, तीन गारव, तीन शल्य, चार सज्ञा आहार, भय, मैथुन व परिग्रह, चार कषाय, चार उपसर्ग, पॉच महाव्रत, पॉच इन्द्रिय, पाँच समिति, पॉच प्रकार का चारित्र, छह आवश्यक, सात भय, सात प्रकार ससार, आठ मद, आठ शुद्धि, आठ कर्म, आठ प्रवचनमातृका, नव ब्रह्मचर्य गुप्ति, नौ नोकषाय, दस प्रकार मुण्ड, दसविध श्रमणधर्म, दसविध धर्मध्यान, बारहविध सयम, बारह तप, बारह अग, तेरह क्रिया, चौदह पूर्व, पन्द्रह प्रमाद, सोलह कषाय, पच्चीस क्रियाओ मे, पच्चीस भावनाओ मे, बावीस परीषहो मे, अठारह हजार शीलो मे, चौरासी लाख मूलगुणो मे, उत्तरगुणो मे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार, आभोग अर्थात् पूजासत्कार की भावना से

अतिप्रकट रूप से अनुष्ठान करना और अनाभोग अर्थात् लज्जा आदि के वश किसी को प्रकट न होने पावे, इस तरह छिपकर अनुष्ठान करना। आदि दोष लगे है। हे भगवन्! उन अतिचारो का प्रतिक्रमण करता हूँ

हे भगवन्! व्रतो का उल्लघन किया हो, कराया हो, करते हुए की अच्छी तरह अनुमोदना की हो, उस अतिचार का (दोष का) प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ, आत्मा से उनका त्याग करता हूँ। जब तक अरहत भगवान् को मै नमस्कार करता हूँ, उनकी पर्युपासना करता हूँ, तक तब पाप कर्मस्वरूप दुश्चरित्र रूप काय से ममत्व का त्याग करता हूँ।

णमो अरहताणं... ...णमो लोए सव्वसाहूण ।।२।।

णमो अरहंताणं.......णमो लोए सव्वसाहूणं ।।३।।

श्रावक के १२ व्रतों के अन्तर्गत पाँच अणुव्रतों का वर्णन

पढम ताव सुद मे आउस्संतो ! इह खलु समणेण, भयवदो, महदि, महावीरेण, महाकस्सवेण, सव्वण्हुण, सव्व-लोय-दरसिणा, सावयाणं, सावियाणं, खुड्डयाण, खुड्डीयाण, कारणेण, पंचाणुव्वदाणि, तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि, बारस-विह गिहत्थ-धम्म सम्म उवदेसियाणि। तत्थ इमाणि पचाणुव्वदाणि पढमे अणुव्वदे थूलयडे पाणादिवादादो वेरमणं, विदिये अणुव्वदे थूलयडे मुसावादादो वेरमणं, तिदिये अणुव्वदे, थूलयडे अदिण्णादाणादो वेरमण, चउत्थे अणुव्वदे, थूलयडे सदार-सतोस-परदारा-गमण-वेरमण, कस्स य पुणु सव्वदो विरदी, पचमे अणुव्वदे, थूलयडे इच्छा-कद-परिमाणं चेदि, इच्चेदाणि पंच अणुव्वदाणि।

अर्थ—हे आयुष्मानो मैने [गौतम ने] यहाँ निश्चय से पूज्य श्रमण भगवान् महावीर, महाकश्यपगोत्रीय, सर्वज्ञदेव, सर्वलोकदर्शी से सम्यक् प्रकार उपदेशित श्रावक-श्राविका, क्षुल्लक-क्षुल्लिकाओ के कारण से पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को प्रथम सुना है। उन बारह व्रतो मे ये पॉच व्रत हैं—प्रथम अहिसा अणुव्रत मे स्थूल प्राणातिपात [जीवहिसा] से विरत्ति, दूसरे सत्याणुव्रत मे स्थूल असत्य वचनालाप से विरति, तीसरे अचौर्याणुव्रत मे अदत्तादान

से विरति, चतुर्थ ब्रह्मचर्य अणुव्रत मे स्थूल ब्रह्मचर्य पालन अर्थात् स्वस्त्री मे सतोष और परस्त्री सेवन से विरति । पॉचवे अणुव्रत मे इच्छाओ का परिमाण करना या परिग्रह का प्रमाण करना ये पॉच अणुव्रत है ।

श्रावक के १२ व्रतों में ३ गुणव्रत

तत्थ इमाणि तिण्णि गुणव्वदाणि तत्थ पढमे गुणव्वदे दिसि-विदिसि पच्चक्खाणं, विदिये, गुणव्वदे, विविध-अणत्थ-दंडादो वेरमणं, तिदिये गुणव्वदे भोगोपभोग-परिसखाण चेदि, इच्चेदाणि तिण्णि गुणव्वदाणि ।

अर्थ—श्रावक के बारह व्रतो मे ये तीन गुणव्रत है उनमे पहले गुणव्रत दिग्व्रत मे दिशा और विदिशा मे प्रत्याख्यान है, दूसरे अनर्थदण्डव्रत नामक गुणव्रत मे विविध अनर्थदण्डो अर्थात् अप्रयोजनीय कार्यों से विरति है, और तीसरे भोगोपभोगपरिसख्यापरिमाण नामक गुणव्रत मे भोग और उपभोग की वस्तुओ की सख्या का नियत परिमाण हो जाता है, इत्यादि ये तीन गुणव्रत हैं ।

श्रावक के १२ व्रतों में ४ शिक्षाव्रत

तत्थ इमाणि चत्तारि सिक्खावदाणि तत्थ पढमे सामाइयं, विदिये पोसहोवासयं, तिदिये अतिथि-संविभागो, चउत्थे सिक्खावदे पच्छिम-सल्लेहणा-मरण चेदि । इच्चेदाणि चत्तारि सिक्खाव-दाणि ।

अर्थ—उन १२ व्रतो मे ये चार शिक्षाव्रत हैं, उनमे पहला शिक्षाव्रत सामायिक, दूसरा प्रोषधोपवास, तीसरा अतिथिसविभाग, चौथे शिक्षाव्रत मे अन्तिम मे सल्लेखनापूर्णक मरण । इस प्रकार ये चार शिक्षाव्रत हैं ।

से अभिमद-जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्ण-पाव-आसव-बंध-संवर-णिज्जर-मोक्ख-महि-कुसले, धम्माणु-रायरत्तो, पेम्माणुराय-रत्तो, अट्ठि-मज्जाणुराय-रत्तो,, मुच्छिदट्ठे, गिहि-दट्ठे, विहि-दट्ठे, पालि-दट्ठे, सेविदट्ठे, इणमेव णिग्गंथ-पवयणे, अणुत्तरे, से-अट्ठे, सेवणुट्ठे ।

अर्थ—उन श्रावक के १२ व्रतो मे प्राप्त/स्वीकृत उपलब्ध जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, सवर, निर्जरा, बध, मोक्ष प्राप्ति मे कुशल हैं, धर्मानुरागरक्त होने पर मूर्च्छित अर्थ मे गृहीत अर्थ मे, विहित/कथित अर्थ मे, पालित अर्थ मे, सेवित अर्थ मे इस प्रकार यह ही निर्ग्रंथ प्रवचन जो अनुपम/अनुत्तर है, उस पदार्थ के सेवन अर्थ मे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए आठ अग सहित सम्यग्दर्शन सेवनीय है ।

भावार्थ—उक्त बारह व्रतो का धारक जिसने जीवादि सात तत्त्व, नव पदार्थो को जान लिया है ऐसे नव पदार्थो के विषय मे अभिकुशल-निपुण व्यक्ति मे धर्मानुराग से अनुरक्त होकर भी मॉ-लक्ष्मी के अनुराग मे रक्त हो (गृहस्थ होने से परिग्रह त्यागी नही है) एव अस्थिमज्जा के समान अनुराग से रक्त है । (जिस प्रकार सात धातुओ मे अस्थि मज्जा नामक धातु से निरन्तर सलग्न रहती है, उसी प्रकार सह धर्मियो के साथ प्रीति का होना ऐसी सघन प्रीति को अस्थिमज्जा प्रीति कहते है) ऐसा गृहस्थ मूर्च्छितार्थ-ममतापूर्वक ग्रहण किये गये पदार्थ मे, गृहीतार्थ—सामान्य रूप से ग्रहण किये गये पदार्थ मे, गृहीतार्थ-सामान्य रूप से ग्रहण किये गये पदार्थ मे, विहितार्थ—अपने द्वारा किये गये पदार्थ मे, पालितार्थ—अपने द्वारा पालन किये गये पदार्थ मे, सेवितार्थ—अपने द्वारा सेवित उपयोग मे आने वाले पदार्थ मे, निर्ग्रंथ प्रवचन—मुनियो के प्रवचन मे अनुत्तर, सर्वश्रेष्ठ,श्रेयो-कल्याणकारी पदार्थ मे, सेवितार्थ—सेवन प्रवृत्ति (सेअट्ठे) रूप क्रिया मे [प्रमाद से जो दोष हुआ हो वह मिथ्या हो] ऐसा अभिप्राय है ।

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिच्छा अमूढदिट्ठी य ।
उवगूहण ठ्ठिदिकरणं वच्छल्ल-पहावणा य ते अट्ठ ।।१।।

अर्थ—१ नि शकित २ नि काक्षित ३ निर्विचिकित्सा ४ अमूढदृष्टि ५ उपगूहन ६ स्थितिकरण ७ वात्सल्य और ८ प्रभावना ये सम्यक्त्व के आठ अग है ।

सव्वेदाणि पंचाणुव्वदाणि; तिण्णि गुणव्वदाणि, चत्तारि सिक्खावदाणि; बारसविहं-गिहत्थ-धम्ममणु-पाल-इत्ता ।

अर्थ—पॉच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत सब बारह विधि रूप गृहस्थ धर्म अनुपालन करके

दसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइ-भत्तेय ।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुदिट्ठ देसविरदोय ।।१।।

१ दर्शन प्रतिमा, २ व्रत प्रतिमा ३ सामायिक प्रतिमा ४ प्रोषध-प्रतिमा ५ सचित्तत्याग प्रतिमा ६ रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा ७ ब्रह्मचर्य-प्रतिमा ८ आरभत्याग प्रतिमा ९ परिग्रहत्याग प्रतिमा १० अनुमतित्याग प्रतिमा और ११ उद्दिष्टत्याग प्रतिमा ये देशव्रत के ग्यारह स्थान रूप ११ प्रतिमा हैं, इनका पालन करे ।

महु-मंस-मज्ज जूआ वेसादि-विवज्जणा सीलो ।
पंचाणुव्वय-जुत्तो सत्तेहि सिक्खावयेहि संपुण्णो ।।२।।

अर्थ—श्रावक मधु, मास, मद्य तीन प्रकार के मकार के सेवन का त्यागी, जुआ, वेश्याव्यसनादि सात व्यसनो का त्यागी, पॉच अणुव्रत से युक्त, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत रूप सात शीलो से परिपूर्ण होता है ।

निर्दोष श्रावक व्रत पालने का फल

जो एदाइं वदाइं धरेइ, सावया-सावियाओ वा, खुड्डय-खुड्डियाओ वा, दह-अट्ठ-पंच, भवणवासिय-वाणवितर-जोइसिय, सोहम्मीसाण-देवीओ वदिक्कमित्तु उवरिम्र-अण्णदर-महड्डियासु देवेसु उववज्जंति ।

अर्थ—जो श्रावक-श्राविका अथवा क्षुल्लक-क्षुल्लिका इन बारह व्रतो को धारण करते है, वे दस प्रकार के भवनवासी, आठ प्रकार के वाण व्यन्तर, पॉच प्रकार के ज्योतिषी देवो, सौधर्म-ईशान स्वर्ग की देवियो का व्यतिक्रम अर्थात् उल्लघन करके उपरिम अन्यतर महर्द्धिक वैमानिक देवो मे उत्पन्न होते है ।

तं जहा-सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिद-बम-बंभुत्तर-लातव-कापिट्ठ सुक्क-महासुक्क सतार-सहस्सार आणत-पाणत-आरण-अच्चुत-कप्पेसु उववज्जंति ।

अर्थ—उसी को कहते है—सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लातव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, सतार, सहस्रार, आनत, प्रानत, आरण और अच्युत देवो मे उत्पन्न होते हैं ।

अडयबर-सत्थधरा कडयगद-बद्धनउडकय-सोहा ।
भासुरवर-बोहिधरा देवा य महड्डिया होंति ।।१।।

संस्कृत छाया

अष्टाकम्बर शस्त्रधरा कटकाङ्गद बद्ध नूपुर कृतशोभाः ।
भासुरवर बोधिधरा, देवाश्च महर्द्धिका भवन्ति ।।

अन्वयार्थ—(य) और (अष्टकाबर) अष्ट ऋद्धि सहित, वस्त्र (सत्थधरा) शस्त्र धारक (कडय अगद) कटक/करधनी, बाजूबद (बद्धनउडकय सोहा) बाजूबद की उत्कृष्ट शोभा सहित (वरभासुर) उत्कृष्ट तेज के धारक (बोहिधरा) एकादशाग के पाठ या सम्यग्ज्ञान के धारी (महर्द्धिका देवा भवन्ति) महा ऋद्धि के धारी महर्द्धिक देव होते हैं ।

भावार्थ—जो जीव श्रावक के १२ व्रतो का निरतिचार पालन कर निर्दोष देशसंयम की आराधना करते हैं वे भवनत्रिक देवो को छोड़कर कल्पवासी देवो मे अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व इन अष्ट ऋद्धियो के धारक, सुन्दर वस्त्र के धारक, अस्त्रो के धारक, कमर मे करधनी, कंकण अर्थात् बाजूबंद, नुपूर आदि

आभूषणो की उत्कृष्ट शोभा से युक्त हो, ग्यारह अग के पाठी ऐसे महा ऋद्धि के धारक महर्द्धिक देवो मे उत्पन्न होते हैं।

उक्कसेण दो-तिण्ण भव-गहणाणि, जहण्णेण सत्तट्ठ-भव-गहणाणि, तदो सुमाणुसत्तादो-सुदेवत्तं, सुदेवत्तादो-सुमाणुसत्तं, तदो साइहत्था, पच्छा-णिग्गंथा होऊण, सिज्झंति, बुज्झंति, मुंचंति, परिणिव्वाण-यंति, सव्वदुक्खाणमंतं करेंति। जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कार करेमि, पज्जुवासं करेमि, तावकालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

अर्थ—वे निर्दोष श्रावक के व्रतो का पालन करने वाले भव्य जीव महर्द्धिक देवो मे उत्पन्न होते है तथा उत्कृष्ट से दो या तीन भव ससार मे लेते है, जघन्य से सात-आठ भवो को वे ग्रहण करते है, पश्चात् वे सुमनुष्यत्व से, सुदेवत्व, सुदेव से सुमानुष्य मे उत्पन्न हो पश्चात—निर्ग्रन्थ/मुनिव्रत धारण करके सिद्धि को प्राप्त होते है, केवलज्ञान को प्राप्तकर बुद्ध होते है, कर्मो से मुक्त होते है, पूर्ण निर्वाण को प्राप्त करते है, सब दुखो का अन्त करते है।

जब तक अरहत भगवान् को नमस्कार करता हूँ, उनकी पर्य्युपासना अर्थात् पूजा-अर्चा-वन्दना करता हूँ, तब तक पाप कर्मरूप दुश्चरित्र को छोड़ता हूँ, त्याग करता हूँ।

वीरभक्ति

अथ सर्वातिचार विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां, कृत-दोष-निराकरणार्थं पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेतं श्री निष्ठितकरण-चन्द्रवीरभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्।

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक [चातुर्मासिक, सावत्सरिक] प्रतिक्रमण क्रिया मे पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से समस्त कर्मो के क्षय करने के लिये भावपूजा, वन्दना, स्तुति सहित-निष्ठितकरण वीर भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

विशेष—इस प्रकार उच्चारण के पश्चात् णमो अरहताण इत्यादि दण्डक पढ़कर पाक्षिक प्रतिक्रमण मे ३०० उच्छ्वास तथा चातुर्मासिक व सावत्सरिक प्रतिक्रमण मे ४००, ५०० श्वासोच्छ्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढकर चन्द्रप्रभ और वीरस्तुति भक्ति अञ्चलिका सहित पढे।

श्री चन्द्रप्रभजिनस्तुति

चन्द्रप्रभं चन्द्रमरीचिगौरं, चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवंद्यं, महतामृषीन्द्रं, जिनं जितस्वान्तकषाय बंधम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(चन्द्रमरीचिगौर) चन्द्रमा की किरणो के समान गौर वर्ण (जगति) ससार मे (द्वितीयं चन्द्र इव कान्तम्) दूसरे चन्द्रमा के समान कान्तिमान/सुन्दर (ऋषीन्द्र) गणधर आदि ऋषियो के इन्द्र अर्थात् बड़े-बड़े ऋषियो के स्वामी (महता अभिवन्द्य) इन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों से पूज्य, अभिवन्दनीय (जिन) घातिया कर्मरूप शत्रुओ को जीतने से जिन और (स्वान्त-कषाय-बन्धम्-जित) अपने विभाव परिणामस्वरूप कषायो को जीतने से जो "जित" हैं (चन्द्रप्रभ) चन्द्रमा की कान्तिसम कान्ति के धारक चन्द्रप्रभ भगवान् की (वन्दे) मैं वन्दना करता हूँ ।

यस्याङ्गलक्ष्मी परिवेशभिन्नं, तमस्तमोरेरिव रश्मिभिन्नम् ।
ननाश बाह्य बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके (अङ्गलक्ष्मीपरिवेशभिन्नम्) शारीरिक सौन्दर्य रूप बाह्य लक्ष्मी रूप दिव्य प्रभामडल से विदारित (बहुबाह्य तम) बहुत सारा बाह्य अन्धकार (च) और (ध्यानप्रदीप अतिशयेन) शुक्लध्यानरूप दीपक के अतिशय से (भिन्नम्) विदारित (बहुमानस तम) बहुत सारा मानसिक अज्ञान अन्धकार (तमोरे) सूर्य की (रश्मिभिन्नम्) किरणो से विदारित (तम इव) अन्धकार के समान (ननाश) नष्ट हो गया था ।

स्वपक्ष सौस्थित्यमदावलिप्ता, वाक्सिंह, नादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदार्द्रगण्डा, गजा यथा केसरिणो निनादै : ।।३।।

अन्वयार्थ—(यथा) जिसप्रकार (केसरिण निनादै) सिंह की गर्जनाओ से (मदार्द्रगण्डा गजा) मद से गीले है गण्डस्थल जिनके ऐसे हाथी (विमदा) मदरहित हो जाते है (तथा) उसी प्रकार (यस्य) जिनके (वाक्सिंहनादै) वचनरूपी सिह गर्जना के द्वारा (स्वपक्ष-सौस्थित्यमदावलिप्ता) अपने पक्ष की सुस्थिति के घमण्ड से गर्वीले (प्रवादिन) प्रवादी जन (विमदा) मद रहित (बभूवु) हो जाते थे ।

अर्थात्—चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र की वाणी रूप सिंहनाद से प्रवादीरूप गर्वीले हाथियो का मद चूर हो गया था ।

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः, पदं बभूवाद्भुत कर्मतेजाः ।
अनन्त-धामाक्षरविश्व-चक्षुः, समस्त दुःख क्षय शासनश्च ।।४।।

अन्वयार्थ—(य) जो (सर्वलोके) तीन लोक मे (परमेष्ठिताया) परमेष्ठी के (पद) स्थान (बभूव) हुए थे । (अद्भुत कर्मतेजा) तीव्र

तपश्चरण रूप कार्य से जिनका तेज आश्चर्यकारी था अथवा भव्यात्माओ को प्रतिबोधित करने रूप कर्म मे जिनका केवलज्ञानरूप तेज आश्चर्यकारी था (अनन्तधामाक्षरविश्वचक्षु) अनन्त ज्ञान अर्थात् अनन्त केवलज्ञान ही जिनका लोकालोक प्रतिभासक अविनाशी चक्षु था (च) और (शासन) जिनका शासन (समस्त) मुझ समन्तभद्र के अथवा सम्पूर्ण जीवो के समस्त चतुर्गति सबधी (दु खक्षय) दु खो का क्षय करने वाला था।

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां, विपन्न-दोषाभ्र-कलङ्क-लेपः।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः, पूयात्पवित्रो भगवान्मनो मे ।।५।।

अन्वयार्थ—जो (भव्यकुमुद्वतीना) भव्यरूपी कुमुदिनियो को विकसित करने के लिये (चन्द्रमा) चन्द्रमा है, (विपन्नदोषाभ्रकलकलेप) विनष्ट हो गया है रागादि दोषो रूप बादलो के कलक का आवरण जिनका (व्याकोशवाड्न्यायमयूखमाल) जो अत्यन्त स्पष्ट वचनो की न्यायरूप किरणो की माला से युक्त है, (पवित्र) पवित्र है, अर्थात् घाति कर्म रूप मल से रहित शुद्ध है (स भगवान्) वे चन्द्रप्रभ भगवान् (मे) मेरे (मन) मन को (पूयात्) पवित्र करे।

वीरभक्ति

य· सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषा गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवत. सर्वान् सदा सर्वदा।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नमः ।।१।।

वीरः सर्व-सुरासुरेन्द्र-महितो वीर बुधाः सश्रिता,
वीरेणाभिहतः स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नमः।
वीरात् तीर्थ-मिदं प्रवृत्त-मतुल वीरस्य घोरं तपो,
वीरे श्री-द्युति-कांति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्रं त्वंयि ।।२।।

ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्य,
ध्यान-स्थिताः संयम-योग-युक्ता।
ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके
संसार-दुर्गं विषमं तरन्ति ।।३।।

व्रत-समुदय-मूल· सयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम-नियम-पयोभि-र्वर्धित. शील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम-सुगन्धि· सत्-तपश्चित्र-पत्र ।।४।।
शिव-सुख -फलदायी यो दया-छाय-योद्ध.,
शुभजन-पथिकाना खेदनोदे समर्थः ।
दुरित-रविज-तापम् प्रापयन्-नन्तभाव,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तु चारित्र-वृक्षः ।।५।।
चारित्रं सर्व-जिनैश्चरितं प्रोक्त च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेद पञ्चम-चारित्र-लाभाय ।।६।।
धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्म बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुख धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान् नास्त्यपरः सुहृद्-भव-भृता धर्मस्य मूल दया,
धर्मे चित्त-मह दधे प्रतिदिन हे धर्म ! मा पालय ।।७।।
धम्मो मगल-मुक्किट्ठ अहिसा सयमो तवो ।
देवा वि त णमस्संति जस्स धम्मे सया मणो ।।८।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! वीरभत्ति काउस्सग्गो तस्सालोचेउं, सम्मणाण सम्मदसण-सम्म-चारित्त-तव-वीरियाचारेसु, जम-णियम-संजम-सील-मूलुत्तर-गुणेसु, सव्वमइचार, सावज्ज-जोग पडिविरदोमि, असंखेज्ज-लोय-अज्झवसायठाणाणि, अप्पसत्थ-जोग-सण्णा-णिंदिय-कसाय-गारव-किरियासु, मण-वयण-काय-करण-दुप्पणिहाणि, परिचिंतियाणि, किण्ह-णील-काउ-लेस्साओ, विकहापालिकुंचिएण-उम्मग्ग-हस्स-रदि-अरदि-सोय-भय-दुगंछ-वेयण-विज्जंभ-जंभाइ-आणि, अट्ट-रुद्द-संकिलेस-परिणामाणि, परिणामिदाणि, अणिहुद-कर-चरण-मण-वयण-काय-करणेण, अक्खित्त-बहुल-परायणेण, अपडिपुण्णेण वा, सरक्खरावय-परिसंघाय पडिवत्तिएण, अच्छा-कारिदं, मिच्छा-मेलिदं, आ-मेलिद, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्हं, अण्णहा-पडिच्छिदं, आवासएसु-परिहीणदाए कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो ह ।।२।।

छेदोवट्ठावण होदु मज्झ

शान्ति-चतुर्विंशति-स्तुति

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं पाक्षिक (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकलकर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वन्दना-स्तव-समेत, शान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थंकर-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

अर्थ—अब सर्व अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक (चातुर्मासिक-सावत्सरिक) प्रतिक्रमण क्रिया मे पूर्व आचार्यो के अनुक्रम से, सम्पूर्ण कर्मो के क्षय के लिये भावपूजा वन्दना, स्तव सहित, शान्ति चतुर्विंशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

इस प्रकार उच्चारण कर णमो अरहताण इत्यादि दण्डक पढकर ९ बार णमोकार मत्र पढ़े। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढकर "विधाय रक्षा" इत्यादि शान्ति कीर्तना और चतुर्विंशति तीर्थंकर की कीर्तना पढकर अञ्चलिका पढे।

शान्ति कीर्तना

विधाय रक्षां परतः प्रजानाम्, राजा चिरं योऽप्रति-मप्रतापः ।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शान्ति-र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघशान्तिम् ।।१।।

अन्वयार्थ—(य) जो शान्तिनाथ भगवान् (प्रजाना) प्रजा की (परत) शत्रुओ से (रक्षा-विधाय) रक्षा करके (चिर) चिरकाल तक (अप्रतिम प्रताप) अतुल प्रतापी (राजा) राजा हुए (पुरस्तात्) पश्चात् (स्वत एव) स्वय ही बिना किसी के सबोधन या उपदेश को पा, स्वयभू भगवान् (मुनि शान्ति) शान्ति को प्राप्त कर मुनि हो जिन्होने (दयामूर्ति इव) दया की मूर्ति की तरह (अघशान्ति) घातिया कर्मरूप पापो की शान्ति (व्यधात्) की।

चक्रेण यः शत्रुभयकरेण, जित्वा नृपः सर्वनरेन्द्रचक्रम् ।
समाधिचक्रेण पुनर्जिगाय, महोदयो दुर्जय-मोह चक्रम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(महोदय) गर्भावतरण आदि पचकल्याणक रूप अभ्युदयो से सहित होने से महोदय थे ऐसे (य) जो शान्तिनाथ स्वामी गृहस्थावस्था मे (शत्रुभयकरेण) शत्रु वर्ग मे भय को उत्पन्न करने वाले (चक्रेण) चक्र के द्वारा (सर्वनरेन्द्र चक्र) समस्त राजाओ के समूह को (जित्वा) जीतकर (नृप) पचम चक्रवर्ती हुए। (पुन) पश्चात् मुनि अवस्था मे वीतराग अवस्था को प्राप्त होकर (समाधिचक्रेण) शुक्लध्यानरूपी चक्र के द्वारा जिन्होने (दुर्जयमोहचक्र) अत्यत कठिनाई से जीतने योग्य ऐसे दर्शनमोह व चारित्र मोह की मूल उत्तरप्रकृतियो के समूह को (जिगाय) जीता था। [ऐसे घातिया कर्मो के क्षय करने वाले शान्तिनाथ जिनेन्द्र की स्तुति की गई है]

राजश्रिया राजसु राजसिहो, रराज यो राजसु भोगतन्त्रः ।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुन-रात्मतन्त्रो, देवासुरोदार-सभे रराज ।।३।।

अन्वयार्थ—(राजसिह) राजाओ मे श्रेष्ठ चक्रवर्ती (राजसुभोग तन्त्र) राजाओ के उत्तम भोग के अधीन (य) जो शान्तिनाथ जिनेन्द्र (गृहस्थावस्था मे) (राजसु राजश्रिया) अनेक राजाओ के मध्य चक्रवर्ती की सम्पदा नौ निधि चौदह रत्न आदि से (रराज) सुशोभित थे (पुन) पश्चात् वीतरागी सयम अवस्था मे (आत्मतन्त्र) आत्मा के अधीन होते हुए (देव असुर उदार सभे) देव, असुर आदि की विशाल सभा मे अर्थात् समवशरण सभा मे (आर्हन्त्यलक्ष्म्या) अर्हन्त पद के योग्य समवशरण, अष्ट प्रातिहार्य आदि बहिरग तथा अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरग विभूति से (रराज) सुशोभित हुए थे।

यस्मिन्नभूद्राजनि राजचक्रं, मुनौ दया-दीधिति-धर्म-चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देवचक्रं, ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम् ।।४।।

अन्वयार्थ—(यस्मिन्) जिन शान्तिनाथ जिनेन्द्र के (राजनि) चक्रवर्ती पद पर आसीन होने पर (राजचक्र) राजाओ का समूह (प्राञ्जलि अभूत्) अञ्जलीबद्ध हुआ था, (मुनौ) उन्ही शान्तिनाथ भगवान् के मुनि होने पर (दयादीधितिधर्मचक्रम्) दयारूपी किरणो से युक्त उत्तम क्षमादि दस धर्मो अथवा रत्नत्रय धर्मो का समूह (प्राञ्जलि) उनके आधीन हुआ

(पूज्ये) उन्ही शान्तिनाथ भगवान् अर्हन्तदेव रूप मे पूज्य होने पर समवशरण मे विराजमान हो भव्यात्माओ के लिये हितोपदेश देने पर (देवचक्र) देव समूह अर्थात् भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी व कल्पवासी चतुर्निकाय देवो का समूह (मुहु) बार-बार (प्राञ्जलि) अञ्जलिबद्ध हुआ था तथा (ध्यानोन्मुखे) शुक्लध्यान के सम्मुख होने पर (ध्वसि कृतान्तचक्र) क्षय को प्राप्त हुआ कर्मो का समूह (प्राञ्जलि) अञ्जलिबद्ध था मानो शरण की भिक्षा माँग रहा था।

स्वदोष-शान्त्या-विहितात्म-शान्तिः शान्ते-र्विधाता शरण गतानाम् ।
भूयाद् भव-क्लेशभयोपशान्त्यै, शान्ति-र्जिनो मे भगवान् शरण्यः ।।५।।

अन्वयार्थ—(स्वदोषशान्त्या) अपने घातिया कर्म दोषो की शान्ति अर्थात् क्षय से (विहितात्मशान्ति) प्राप्त किया है आत्मशान्ति को जिन्होने, जो (शरण गताना) शरण मे आये हुए भव्य जीवो को (शान्तेर्विधाता) शान्ति को करने वाले है, जो (जिन) घातियाकर्म रूप शत्रुओ को जीतने से जिन है जो (भगवान्) भग=ज्ञान वान् युक्त अर्थात् जो केवल-ज्ञान से युक्त है (शरण्य) ससार के दु खो से अरक्षित जीवो को शरण देने मे निपुण है वे (शान्ति) शान्तिनाथ/तीर्थकर जिनेन्द्र (मे) मेरे (भवक्लेशभयोपशान्त्यै) ससार के परिभ्रमण, जन्म-मरण रूप क्लेशो और भयो की पूर्ण शान्ति के लिये (भूयात्) होवे।

चतुर्विंशति स्तुति

[1]चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे ।
सव्वे सगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमसामि ।।१।।

ये लोकेऽष्टसहस्र-लक्षण-धरा, ज्ञेयार्णवान्तर्गता,
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः ।
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणूतार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।

नाभेय देवपूज्यं जिनवर-मजितं, सर्व-लोक-प्रदीपम्,
सर्वज्ञ सभवाख्यं मुनि-गण-वृषभ, नन्दनं देव-देवम् ।

---

१ क्रियाकलाप पृष्ठ ११२ के अनुसार।

कर्मारिघ्नं सुबुद्धिं वर-कमल-निभ, पद्म-पुष्पाभि-गन्धम्,
क्षान्त दान्तं सुपार्श्वं सकल-शशि-निभ, चद्रनामान-मीडे ।।३।।
विख्यातं पुष्पदन्तं भव-भय-मथन, शीतल लोक-नाथम्,
श्रेयांसं शील-कोशं प्रवर-नर-गुरु, वासुपूज्यं सुपूज्यम् ।
मुक्त दान्तेन्द्रियाश्व विमल-मृषि-पति, सैहसेन्य मुनीन्द्रम्,
धर्मंसद्धर्म-केतु शम-दम-निलय, स्तौमि शान्तिं शरण्यम् ।।४।।
कुन्थु सिद्धालयस्थ श्रमण-पति-मरं त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लि विख्यात-गोत्र खचर-गण-नुत सुव्रत सौख्य-राशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेन्द्र-वंद्य शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउ पच-महा-कल्लाण-सपण्णाण, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाति-सयविसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देविंद-मणि-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइअणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मगल-महा पुरिसाण, णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि-मरण जिण-गुण-सपत्ति होदु मज्झं ।

वद-समि-दिदिय रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाण ।
खिदि-सयण-मदंतवणं ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तो ह ।।२।।

छेदोवट्ठावण होदु मज्झ

विशेष— [इनका अर्थ दैवसिक प्रतिक्रमण मे देखिये]

चारित्रालोचना सहिता वृहदाचार्य भक्ति

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं चारित्रा-लोचनाचार्य-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

णमो अरहंताणं .... सव्वसाहूणं ।।१।।

चत्तारि मंगलं .. .. धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।।

अड्ढाइज्जीव .. .. वोस्सरामि ।

[कायोत्सर्ग ९ बार णमोकार मंत्र का जाप करे]

थोस्सामि .... मम दिसतु ।।८।।

आचार्य भक्ति

सिद्ध-गुण-स्तुति-निरता-नुद्धूत-
रुषाग्नि-जाल बहुल-विशेषान् ।
गुप्तिभि-रभिसम्पूर्णान् मुक्ति-युतः,
सत्य-वचन-लक्षित-भावान् ।।१।।
मुनि-माहात्म्य-विशेषान् जिन-
शासन-सत्प्रदीप-भासुर-मूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित् सुमनसो बद्ध-रजो-
विपुल-मूल-घातन-कुशलान् ।।२।।
गुण-मणि-विरचित-वपुषः षड्-
द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन् सततम् ।
रहित-प्रमाद-चर्यान् दर्शन-शुद्धान्,
गणस्य संतुष्टि-करान् ।।३।।
मोह-च्छिदुग्र-तपसः प्रशस्त-
परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान् ।
प्रासुक-निलया-ननघा-नाशा-
विध्वंसि-चेतसो-हत-कुपथान् ।।४।।
धारित-विलसन् मुण्डान् वर्जित-
बहुदण्ड-पिण्ड-मण्डल-निकरान् ।
सकल-परीषह-जयिनः क्रियाभि-
रनिशं प्रमादतः परिरहितान् ।।५।।
अचलान् व्यपेत-निद्रान् स्थान-
युतान् कष्ट-दुष्ट-लेश्या-हीनान् ।

विधि-नानाश्रित-वासा-नलिप्त-
देहान् विनिर्जितेन्द्रिय-करिणः।।६।।
अतुला-नुत्कुटिकासान् विविक्त-
चित्ता-नखण्डित स्वाध्यायान्।
दक्षिण-भाव-समग्रान् व्यपगत-
मद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्।।७।।
भिन्नार्त-रौद्र-पक्षान् सम्भावित-
धर्म-शुक्ल-निर्मल-हृदयान्।
नित्यं पिनद्ध-कुगतीन् पुण्यान्,
गण्योदयान् विलीन-गारव-चर्यान्।।८।।
तरु-मूल-योग-युक्ता-नवकाशा-
ताप-योग-राग-सनाथान्।
बहुजन-हितकर-चर्या-नभया-
ननघान् महानुभाव-विधानान।।९।।
ईदृश-गुण-सम्पन्नान् युष्मान्,
भक्त्या विशालया स्थिर-योगान्।
विधि-नानारत-मग्रयान् मुकुली-कृत
हस्त-कमल-शोभित-शिरसा।।१०।।
अभिनौमि सकल-कलुष-प्रभवोदय-
जन्म-जरा-मरण-बंधन-मुक्तान्।
शिव-मचल-मनघ-मक्षय-मव्याहत-
मुक्ति-सौख्य-मस्त्विति-सततम्।।११।।

[विशेष—अर्थ आगे आचार्य भक्ति मे पृ० ३४० पर देखिये]

लघु चारित्रालोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पंचमहव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, आऊ-काइया-जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा-तेऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असंखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणंताणंता, हरिया, बीआ, अंकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं,

विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

बे-इदिया जीवा असंखेज्जासखेज्जा, कुक्खि-किमिसख-खुल्लय-वराडय-अक्खरिट्ठय-गण्डवाल, सबुक्क सिप्पि, पुलविकाइया एदेसि उद्दावण, परिदावण, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

ते-इदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा कुन्थूदेहियविच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावण, परिदावणं, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

चउरिंदिया-जीवा असखेज्जासखेज्जा दसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावण, परिदावण, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

पचिदिया-जीवा असंखेज्जासखेज्जा अडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदसि, उद्दावण, परिदावणं, विराहणं, उवघाददो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! आइरिय भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउ, सम्मणाण, सम्म-दसण-सम्म-चरित्त-जुत्ताण, पंच-विहाचाराणं, आइरियाणं, आयारादि-सुद-णाणो-वदेसयाणं, उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पाल ण रयाणं, सव्व-साहूणं णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरण, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवण ठिदि-भोयण-मेय भत्तं च ।।१।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोह ।।२।।

छेदोवट्ठावणं होदु मज्झ

[इन सबका अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

वृहद आलोचना सहित मध्यम आचार्य भक्ति

अर्थ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थ वृहदालोचनाचार्य-भक्ति-कायोत्सर्ग करोम्यहम्-

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये बृहद् आलोचना और आचार्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ—

विशेष— [इस प्रकार उच्चारण करके "णमो अरहताण" इत्यादि दडक पढकर कायोत्सर्ग करे और थोस्सामि इत्यादि स्तव पढकर देसकुलजाइ-सुद्धा इत्यादि रूप से मध्यम आचार्यभक्ति का पाठ करे]

देस-कुल-जाइ-सुद्धा-विसुद्ध-मण-वयण-काय-संजुत्ता ।
तुम्ह पाय-पयोरुह-मिह मगल-मत्थु मे णिच्चं ।।१।।

अर्थ—(देसकुलजाइसुद्धा) जो देश-कुल-जाति से शुद्ध हैं अर्थात् आर्य देश मे उत्पन्न होने से देश शुद्ध है व पिता के वश से कुल, माता के वश से जाति इन तीनो से जो शुद्ध है (विसुद्धमणवयणकायसजुत्ता) विशुद्ध मन, विशुद्ध वचन, विशुद्ध काय से सयुक्त है ऐसे (तुम्ह पायपयोरुह इह) आप आचार्य परमेष्ठी के चरण-कमल यहाँ (मे) मेरे लिये (णिच्च) नित्य ही (मगलमत्थु) मगल के लिये अर्थात् मगल रूप हो।

सग पर-समय-विदण्हू आगम-हेदूहिं चावि जाणित्ता ।
सुसमत्था जिण-वयणे विणये सत्ताणु-रूवेण ।।२।।

(आगमहेदूहि चावि जाणित्ता) जो अरहत देव द्वारा प्रतिपादित आगम और हेतुओ से छ द्रव्य, सात तत्त्व, नौ पदार्थो को जानकर (सगपरसमयविदण्हू) स्वमत्त और परमत के ज्ञाता, उनके विचारक है (जिणवयणे सुसमत्था) जिनेन्द्रकथित वचनो के अर्थो के सम्यक् समर्थन मे और (सत्ताणुरूवेण) सत्त्वानुरूप से (विणये) विनय करने मे (सुसमत्था) अच्छी तरह से समर्थ है ।

बाल-गुरु-बुड्ढ सेक्खग्-गिलाण-थेरे य खमण-सजुत्ता ।
वट्टावयगा अण्णे दुस्सीले चावि जाणित्ता ।।३।।

अर्थ—जो आचार्य (बालगुरुबुड्ढसेक्खग) बाल, बड़े, वृद्ध, शिक्षक, साधुओ (गिलाणथेरे) रोगी व स्थविर साधुओ (य) तथा (खमण) क्षपक (च) और (अण्णे) अन्य भी (दुस्सीले) दु शील मे (सजुत्ता) स्थित साधुओ को (जाणित्ता) जानकर (वट्टावयगा) योग्यतानुसार सन्मार्ग मे प्रवर्ताने/लगाने वाले है ।

वद-समिदि-गुत्ति-जुत्ता-मुत्ति-पहे ठाविया पुणो अण्णे ।
अज्झावय-गुण-णिलया साहु-गुणेणावि संजुत्ता ।।४।।

अर्थ—जो आचार्य भगवन्त (वयसमिदिगुत्तिजुत्ता) पॉच महाव्रत, पॉच समिति और तीन गुप्ति से युक्त है (पुणो) और (अण्णे) अन्य भव्यजीवो को (मुत्तिपहे ठाविया) मुक्तिमार्ग मे स्थापित करने वाले हैं (अज्झावयगुणणिलया) अध्यापक अर्थात् उपाध्याय परमेष्ठी के पठन-पाठन तथा २५ गुणो के स्थान है तथा (साहुगुणेणावि) साधु परमेष्ठी के २८ मूलगुणो से भी (सजुत्ता) सयुक्त हैं ।

उत्तम-खमाए पुढवी पसण्ण-भावेण अच्छ-जल-सरिसा ।
कम्मिंधण-दहणादो अगणी वाऊ असंगादो ।।५।।

अर्थ—जो आचार्य परमेष्ठी (उत्तमखमाए पुढवी) उत्तम क्षमा मे पृथ्वी के समान है (पसण्णभावेण अच्छजलसरिसा) निर्मल भावो से स्वच्छ जल के समान है (कम्मिधणदहणादो अगणी) कर्मरूपी ईंधन को जलाने के लिए अग्नि समान हैं तथा (असगादो वाऊ) निष्परिग्रही होने से वायु के समान है ।

गयण-मिव णिरुवलेवा अक्खोहा सायरुव्व मुणि-वसहा ।
एरिस-गुण-णिलयाणं पाय पणमामि-सुद्ध-मणो ।।६।।

अर्थ—(मुणिवसहा) मुनियो मे श्रेष्ठ आचार्य परमेष्ठी (गयणमिव णिरुवलेवा) आकाश के समान निरुपलेप है (सायरुव्व अक्खोहा) सागर के समान क्षोभरहित हैं (एरिस गुणणिलयाण) ऐसे उत्तमोत्तम गुणो के स्थान आचार्य परमेष्ठी के (पाय) चरणो को (सुद्धमणो) शुद्ध मन होकर (पणमामि) मैं प्रणाम करता हूँ ।

संसार-काणणे पुण बंभम-माणेहिं भव्व-जीवेहि ।
णिव्वाणस्स हु मग्गो लद्धो तुम्ह पसाएण ।।७।।

अर्थ—(तुम्हं पसाएण) हे आचार्य परमेष्ठिन् ! आपके प्रसाद से (संसार काणणे पुण बंभम-माणेहिं) ससाररूपी वन मे पुन -पुन भ्रमण करने वाले (भव्वजीवेहिं) भव्य जीवा ने (हु) निश्चय से (णिव्वाणस्स मग्गो लद्धो) मोक्ष का मार्ग पाया है ।

अविसुद्ध-लेस्स-रहिया-विसुद्ध-लेस्साहि परिणदा सुद्धा ।
रुद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य सजुत्ता ।।८।।

अर्थ—(अविसुद्धलेस्स रहिया) जो आचार्य परमेष्ठी कृष्ण, नील, कापोत अशुभ लेश्या से रहित है, (विसुद्धलेस्साहि परिणदा सुद्धा) पीत पद्म और शुक्ल इन तीन शुभ लेश्याओ मे परिणत होने से शुद्ध है । पुन (रूद्दट्टे पुण चत्ता धम्मे सुक्के य सजुत्ता) आर्त्त और रौद्र दो अशुभ ध्यानो का त्याग करके मोक्ष हेतु धर्म्य और शुक्ल ऐसे शुभ व शुद्ध ध्यान से सयुक्त है ।

उग्गह-ईहावाया-धारण-गुण-संपदेहिं संजुत्ता ।
सुत्तत्थ-भावणाए भाविय-माणेहिं वंदामि ।।९।।

अर्थ—(उग्गहईहावाया, धारणगुणसंपदेहि संजुत्ता) जो अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा गुण रूप सम्पत्ति से सयुक्त हैं (सुत्तत्थ-भावणाए) श्रुतार्थ की भावना से युक्त हैं (भावियमाणेहिं) भव्य जीवो के द्वारा पूज्यनीय ऐसे आचार्यों की (वंदामि) मैं वन्दना करता हूँ ।

तुम्हं गुण-गण-संथुदि अजाण-माणेण जो मया वुत्तो ।
देउ मम बोहिलाहं गुरुभत्ति-जुदत्थओ णिच्चं ।।१०।।

अर्थ—हे आचार्य परमेष्ठिन् ! (अजाणमाणेण मया) अज्ञानता से मेरे द्वारा (जो) जो (तुम्ह गुणगणसथुदि) आपके गुणो के समूह की स्तुति (वुत्तो) कही गई है (गुरुभत्तिजुदत्थओ) गुरुभक्ति से युक्त वह स्तुति (मम) मुझे (णिच्च) प्रतिदिन (बोहिलाह) बोधि अर्थात् रत्नत्रय का लाभ (देउ) देवे । अर्थात् गुरुभक्ति के फलस्वरूप मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो ।

वृहदालोचना

इच्छामि भंते ! पक्खियम्मि आलोचेउं पण्णरसण्ह दिवसाणं, पण्णरसण्ह राइणं, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! चउमासियम्मि आलोचेउ, चउण्ह मासाणं, अट्ठण्हं पक्खाण, वीसुत्तर-सय-दिवसाण, वीसुत्तर-सय-राइण, अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।

इच्छामि भंते ! संवच्छरियम्मि आलोचेउ, बारसण्हं मासाण, चउवीसण्ह पक्खाण, तिण्णिछावट्ठि सय-दिवसाणं, तिण्णि-छावट्ठि-सय-राइणं अब्भंतरदो, पंचविहो आयारो, णाणायारो, दंसणायारो, तवायारो, वीरियायारो, चरित्तायारो चेदि ।

तत्थ णाणायरो अट्ठविहो काले, विणए, उवहाणे, बहुमाणे, तहेव अणिण्हवणे, विंजण-अत्थ-तदुभये चेदि । णाणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, से अक्खर-हीण वा, सर-हीण वा, विंजण-हीण वा, पद हीण वा, अत्थ-हीणं वा, गंथ-हीण वा, थएसु वा, थुइसु वा, अत्थक्खाणेसु वा, अणियोगेसु वा, अणियोगद्दारेसु वा, अकाले-सज्झाओ, कदो, वा कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, काले वा, परिहाविदो, अच्छा-कारिद वा, मिच्छा-मेलिद वा, आ-मेलिद, वा-मेलिदं, अण्णहा-दिण्ह, अण्णहा-पडिच्छिद, आवासएसु-परिहीणदाए तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

णिस्संकिय णिकंक्खिय णिव्विदिगिच्छा अमूढदिट्ठीय ।
उवगूहण ठिदि-करण वच्छल्ल-पहावणा चेदि ।।१।।

दंसणायारो अट्ठविहो परिहाविदो, संकाए, कंखाए, विदिगिंछाए, अण्ण-दिट्ठी-पसंसणाए, पर-पाखंड-पसंसणाए, अणायदण-सेवणाए, अवच्छल्लदाए, अपहावणाए, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

तवायारो बारसविहो अब्भंतरो-छव्विहो, बाहिरो-छव्विहो चेदि । तत्थ बाहिरो अणसण, आमोदरिय, वित्ति-परिसंखा, रस-परिच्चाओ, सरीर-परिच्चाओ, विवित्त-सयणासण चेदि । तत्थ अब्भंतरो पायच्छित्तं,

विणओ, वेज्जावच्चं, सज्झाओ, झाण, विउस्सग्गओ चेदि । अब्भतर बाहिरं बारसविहं-तवोकम्म, ण कद, णिसण्णेण पडिक्कत तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

वीरियायारो पंचविहो परिहाविदो वर-वीरिय-परिक्कमेण, जहुत्त-माणेण, बलेण, वीरिएण, परिक्कमेण णिगूहिय तवो कम्म, ण कंदं, णिसण्णेण पडिक्कत तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

इच्छामि भंते ! चरित्तायारो, तेरसविहो, परिहाविदो, पचमहव्वदाणि, पंच-समिदीओ, ति-गुत्तीओ चेदि । तत्थ पढमे महव्वदे पाणादिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा असखेज्जासखेज्जा, आऊ-काइया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा-तेऊ-काइया जीवा असखेज्जासंखेज्जा, वाऊ-काइया जीवा असखेज्जासंखेज्जा, वणप्फदि-काइया जीवा अणताणता, हरिया, बीआ, अकुरा, छिण्णा, भिण्णा, एदेसि उद्दावण, परिदावण, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

बे-इंदियाजीवा असखेज्जासखेज्जा, कुक्खिकिमि-संख, खुल्लय-वराडय-अक्खरिट्ठय-गण्डवाल, सबुक्कसिप्पि, पुलविकाइया एदेसि उद्दावणं, परिदावणं, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

ते-इंदिया-जीवा असखेज्जासंखेज्जा कुन्थुद्देहियविंच्छिय-गोभिद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया, एदेसिं, उद्दावण, परिदावणं, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

चउरिंदिया-जीवा असखेज्जासंखेज्जा दंसमसय-मक्खि-पयग-कीड-भमर-महुयर-गोमच्छियाइया, एदेसि उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

पंचिंदिया-जीवा असंखेज्जासंखेज्जा अंडाइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अवि-चउरासीदि-

जोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु एदेसि, उद्दावणं, परिदावण, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

वद-समि-दिदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाणं ।
खिदि-सयण-मदंतवण ठिदि-भोयण-मेय-भत्तं च ।।१।।
एदे खलु मूल-गुणा समणाण जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोह ।।२।।
छेदोवट्ठावण होदु मज्झ

विशेष— [इन सब का अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

क्षुल्लकालोचना सहित क्षुल्लकाचार्य भक्तिः

अर्थ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थं क्षुल्लकालोचनाचार्य-भक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्—

अर्थ—अब सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये क्षुल्लक आलोचना आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग मै करता हूँ। [९ बार णमोकार मत्र का जाप करे]

(यहाँ पूर्ववत् "णमो अरहंताण" इत्यादि दण्डक बोलकर कायोत्सर्ग करे, पश्चात् थोस्सामि ह जिणवरे" इत्यादि स्तव बोलकर नीचे लिखी लघु आचार्य भक्ति पढे)

लघु आचार्य-भक्ति

प्राज्ञः प्राप्त-समस्त-शास्त्र-हृदयः प्रव्यक्त-लोक-स्थितिः,
प्रास्ताशः प्रतिभा-परः प्रशमवान् प्रागेवदृष्टोत्तरः ।
प्रायः प्रश्न-सहः प्रभुः पर-मनोहारी परानिन्दया,
ब्रूयाद् धर्म-कथां गणी-गुण-निधिः प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः ।।१।।

(प्राज्ञ) जो बुद्धिमान हैं (प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय) जान लिया है समस्त शास्त्रो के हार्द को जिनने (प्रव्यक्त लोकस्थिति) लोक की स्थिति जिनके ज्ञान मे पूर्ण स्पष्ट है (प्रास्ताश) जिनकी सासारिक आशा-इच्छा समाप्त हो गई है तथा (प्रतिभापर) जो प्रतिभासम्पन्न हैं (प्रशमवान्) समताभावी/श्रेष्ठ उपशम भाव से सहित है (प्रागेव दृष्टोत्तर) प्रश्नकर्ता के प्रश्न करने से पूर्व ही उसके उत्तर को जानने वाले हैं (प्राय प्रश्न

सह) बहुत प्रश्न किये जाने पर भी जो सहन करने वाले है (प्रभु) समर्थ है (परमनोहारी) दूसरो के मन को हरण करने वाले है (पर अनिन्दया) दूसरो की अथवा पराई निन्दा से रहित है (गुणनिधि) गुणो के स्वामी/गुणनिधि है (प्रस्पष्ट मिष्ट अक्षर) जिनके वचन स्पष्ट और मधुर है (गणी) ऐसे सघनायक आचार्य परमेष्ठी (ब्रूयाद् धर्मकथा) धर्म कथा को कहे।

श्रुत-मविकल, शुद्धा वृत्तिः, पर-प्रति-बोधने,
परिणति-रुरूद्योगो मार्ग-प्रवर्तन-सद्-विधौ ।
बुध-नुति-रनुत्सेको लोकज्ञता मृदुता-स्पृहा,
यति-पति-गुणा यस्मिन् नन्ये च सोऽस्तु गुरुः सताम् ।।२।।

(अविकल श्रुतम्) जिनका श्रुतज्ञान अथवा शास्त्रज्ञान पूर्ण है (वृत्ति शुद्धा) जिनका चारित्र निर्दोष है (परप्रतिबोधने परिणति) भव्यजीवो को संबोधन करने मे जिनकी परिणति है (मार्ग प्रवत्तनसद्विधौ उरु उद्योग मोक्षमार्ग या सन्मार्ग की प्रवृत्ति कराने की समीचीन विधि मे जिनका बहुत भारी उद्योग है (बुधनुति) जो पूज्य पुरुषो के प्रति नम्रीभूत है (अनुत्सेक) अहकार से रहित है (लोकज्ञता) जिनमे लोकज्ञता अर्थात् व्यावहारिकता है (मृदुता) कोमलता है (अस्पृहा) जो स्पृहा/(होड़-प्रतिस्पर्धा) इच्छा से रहित है (च) और (यस्मिन्) जिनमे (अन्ये) अन्य (यतिपति) आचार्यो के (गुणा) गुण है (स) वह (सताम्) भव्य जीवो का (गुरु) गुरु (अस्तु) होता है।

श्रुत-जलधि-पारगेभ्यः स्व-पर-
मत-विभावना-पटु-मतिभ्यः ।
सुचरित-तपो-निधिभ्यो,
नमो गुरुभ्यो गुण-गुरुभ्यः ।।१।।

छत्तीस-गुण-समग्गे पंच-विहाचार-करण-संदरिसे ।
सिस्साणुग्गह-कुसले धम्माइरिए सदा वन्दे ।।२।।
गुरु-भत्ति-संजमेण य तरंति संसार-सायरं घोरं ।
छिण्णंति अट्ठ-कम्मं जम्मण-मरणं ण पावेंति ।।३।।
ये नित्यं व्रत-मन्त्र-होम-निरता ध्यानाग्नि-होत्रा-कुलाः
षट्-कर्माभिरता-स्तपो-धन-धनाः साधु क्रियाः साधवः ।

शील-प्रावरणा गुण-प्रहरणा-श्चन्द्रार्क-तेजोधिका ।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः प्रीणतु मा साधवः ।।४।।
गुरवः पान्तु नो नित्य ज्ञान-दर्शन-नायकाः ।
चारित्रार्णव-गभीरा मोक्ष-मार्गोपदेशका. ।।५।।

अञ्जलिका

इच्छामि भंते ! आइरिय-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, सम्म-णाण-सम्म-दंसण-सम्मचरित्त-जुत्ताण, पच-विहाचाराण, आयरियाणं, आयारादि-सुद-णाणोवदेसयाण, उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाण, सव्व-साहूण णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरण, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झ ।

वद-समि-दिंदिय-रोधो लोचावासय-मचेल-मण्हाण ।
खिदि-सयण-मदतवण ठिदि-भोयण-मेय भत्त च ।।१।।
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता ।
एत्थ पमाद-कदादो अइचारादो णियत्तोह ।।२।।

छेदोवट्ठावण होदु मज्झ

विशेष—[इन सबका अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

अथ सर्वातिचार-विशुद्ध्यर्थ (पाक्षिक) (चातुर्मासिक) (वार्षिक) प्रतिक्रमण-क्रियायां कृत-दोष-निराकरणार्थं, पूर्वाचार्यानुक्रमेण, सकल-कर्म-क्षयार्थं, भाव-पूजा-वदना-स्तव-समेतं सिद्ध-चारित्र-प्रतिक्रमण-निष्ठित करण-चन्द्रवीर-शान्ति-चतुर्विंशति-तीर्थंकर-चारित्रालोचानाचार्य वृहदालोचनाचार्य - मध्यमालोचनाचार्य, क्षुल्लकालोचनाचार्य भक्तीः कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष-विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्री-करणार्थं, समाधिभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम्–

अर्थ—अब अपने व्रतो मे लगे सब अतिचारो की विशुद्धि के लिये पाक्षिक अर्थात् १५ दिन मे (चातुर्मास मे, एक वर्ष मे) प्रतिक्रमण क्रिया मे किये दोषो का निराकरण करने के लिये पूर्व आचार्यों के अनुक्रम से सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिये, भावपूजा, वन्दना, स्तव सहित सिद्धभक्ति, चारित्रभक्ति, प्रतिक्रमणभक्ति, निष्ठितंकरण

चन्द्र वीरभक्ति, शान्ति चौबीस तीर्थंकरभक्ति, चारित्र आलोचना आचार्य, वृहद् आलोचना आचार्य, क्षुल्लक आलोचना आचार्यभक्ति को करके उनमे हीनाधिकत्व आदि दोषो की विशुद्धि के लिये समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ ।।१।।

विशेष— [इस प्रकार प्रज्ञापन कर ९ बार णमोकार मन्त्र का जाप करे]

समाधि भक्ति

अथेष्ट प्रार्थना—

" प्रथम करण चरण द्रव्यं नम: "

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुति:सङ्गति सर्वदार्यै:,
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्ग ।।१।।
तव पादौ मम हृदये मम हृदय तव पदद्वये लीनम् ।
तिष्ठतु जिनेन्द्र ! तावद् यावन् निर्वाण-सम्प्राप्ति. ।।२।।
अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीण च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेवय ! मज्झवि दुक्खक्खयं कुणउ ।।३।।

अचलिका

इच्छामि भते ! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, रयण-त्तय-सरूव परमप्प-ज्झाण लक्खणं समाहि-भत्तीए णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वन्दामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होदु मज्झं ।

(पश्चात् आचार्यदेव की सिद्धश्रुत-आचार्य भक्तिपूर्वक वदना करे)

पाक्षिक प्रतिक्रमण समाप्त

श्रावक प्रतिक्रमण

संकल्प

जीवे प्रमाद-जनिता: प्रचुरा: प्रदोषा,
यस्मात्प्रतिक्रमणत: प्रलयं प्रयान्ति ।

तस्मात्तदर्थममलं गृहि-बोधनार्थं,
वक्ष्ये विचित्र-भव-कर्म-विशोधनार्थम् ।।१।।

जीव मे प्रमाद जनित अनेक दोष पाये जाते है। वे दोष प्रतिक्रमण करने से क्षय को प्राप्त होते है। इसलिये अनेक भवो मे सचित हुए विचित्र कर्मरूप दोषो की विशुद्धि के लिये गृहस्थो को समझने के लिये मै प्रतिक्रमण को कहूँगा।

पापिष्ठेन दुरात्मना जड़धिया मायाविना लोभिना,
रागद्वेष-मलीमसेन मनसा दुष्कर्म यन्निर्मितम् ।
त्रैलोक्याधिपते ! जिनेन्द्र ! भवतः श्रीपादमूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमह जहामि सतत वर्वर्तिषुः सत्पथे ।।२।।

हे तीन लोक के अधिपति जिनेन्द्रदेव ! अत्यन्त पापी, दुरात्मा, मूर्खबुद्धि, मायावी, लोभी, राग-द्वेष से मलीन मेरे मन ने जो दुष्कर्म उपार्जन किया है उसका सतत/निरतर समीचीन मार्ग मे चलने का इच्छुक मैं आप जिनेन्द्र के चरण-कमलो मे अब निन्दा अर्थात् स्वसाक्षी से अपने दुष्कृत्यो की निन्दा करता हुआ, त्याग करता हूँ।

खम्मामि सव्वजीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मेत्ती मे सव्वभूदेसु, वेरं मज्झं ण केण वि ।।३।।

सब जीवो को मै क्षमा करता हूँ, सब जीव मुझे क्षमा करे, सब जीवो मे मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी के भी साथ वैरभाव नही है।

रागबंधपदोसं च, हरिसं दीणभावयं ।
उस्सुगत्तं भयं सोगं रदिमरदिं च वोस्सरे ।।४।।

राग परिणाम से होने वाले कर्मबध और द्वेष, हर्ष, दीनभाव, उत्सुकता, भय, शोक, रति और अरति का परित्याग करता हूँ।

राग–इष्ट प्राप्ति मे होने वाले परिणाम। **द्वेष**–अनिष्ट सयोग, इष्ट वियोग जनित परिणाम। **दीनता**–विषय प्राप्ति के परिणाम। **हर्ष**–मदोन्मत्तता अर्थात् अभिमान से उत्पन्न परिणाम। **भय**– इहलोक-परलोक सम्बन्धी भय। **शोक**–इष्ट वियोग जनित परिणाम। **रति**–पर वस्तु की आकांक्षा रूप मनोविकार। **अरति**–परवस्तु की अनाकांक्षा रूप परिणाम।

हा दुट्ठ-कयं हा दुट्ठ-चिंतिय भासिय च हा दुट्ठं ।
अतो अतो डज्झमि पच्छत्तावेण वेयतो ।।५।।

हाय ! हाय मैने दुष्टकर्म किये, हाय ! हाय मैने दुष्ट कर्मो का चितन किया और हाय ! हाय ! मैने दुष्ट मर्मभेदी वचन कहे, अब मुझे अपने द्वारा किये कुत्सित कर्मो से बहुत पश्चात्ताप होता है, मेरा अन्त करण अत्यन्त क्लेशित हो रहा है। अर्थात् मै मन-वचन-काय से किये कुकृत कर्मो का पश्चात्ताप करता हूँ, भीतर ही भीतर खेद का अनुभव करता हूँ।

दव्वे खेत्ते काले भावे य कदाऽवराह-सोहणयं ।
णिंदण-गरहण-जुत्तो मण-वय-कायेण पडिक्कमणं ।।६।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के निमित्त से की गई किसी जीव की विराधना या प्राणपीडा का आत्मनिन्दा या गर्हापूर्वक (दोषो के चिन्तन-पूर्वक ग्लानि का होना) मन, वचन, काय की शुद्धि से परित्याग करना पडिक्कमण अर्थात् प्रतिक्रमण है।

एइंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पचिंदिया पुढविकाइया आउकाइया तेउकाइया वाउकाइया-वणप्फदिकाइया तसकाइया एदेसिं उद्दावण परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, तेजकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक इन जीवो को स्वय वियोग रूप मारण किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्ही जीवो का परितापन अर्थात् सताप किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो। इन्ही जीवो का विराधन अर्थात् पीड़ा दी हो, दुखी किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो तथा उपघात अर्थात् जीवो को एकदेश या सर्वदेश प्राणरहित किया हो, कराया हो, अनुमोदना की हो वह सब मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो, निरर्थक हो।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य ।
बंभाऽरंभ-परिग्गह-अणुमणुमुद्दिट्ठ-देसविरदे य ।।

१ दर्शन २ व्रत ३ सामायिक ४ प्रोषध ५ सचित्तत्याग ६

रात्रिभुक्तित्याग ७ ब्रह्मचर्य ८ आरभत्याग ९ परिग्रहत्याग और १० अनुमतित्याग और ११ उद्दिष्टत्याग ये नैष्टिक श्रावक की ११ प्रतिमा होती है।

एयासु जहाकहिद-पडिमासु पमादाइकयाइचारसोहणट्ठं छेदोवट्ठावणं, होउ मज्झ ।

इन यथाकथित प्रतिमाओ मे प्रमाद से अतिचार, अनाचार रूप दोष लगे हो उसकी शुद्धि के लिये मै उपस्थापना करता हूँ।

अरहत सिद्ध .... मे भवदु ।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु इन पॉच परमेष्ठी की साक्षी से सम्यक्त्व, उत्तम व्रतो की दृढता मुझे हो, मुझे हो, मुझे हो।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचारविसोहि-णिमित्तं पुव्वाइरिय कमेण आलोयण-सिद्ध- भत्ति-काउस्सग्ग करोमि ।

अथ (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण मे व्रतो मे मन-वचन-काय से लगे सर्व अतिचारो की शुद्धि के लिये पूर्व आचार्यो के क्रम से आलोचना सिद्धभक्ति सबधी कायोत्सर्ग को मै करता हूँ।

णमो अरहताण णमो सिद्धाण णमो आइरियाण ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूण ।।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोकवर्ती सर्व वीतरागी निरारभी साधु परमेष्ठियो को मेरा नमस्कार हो।

चत्तारि मगलं-अरहंता मंगलं, सिद्धा मगलं, साहू मगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मगलं । चत्तारि लोगुत्तमा-अरहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा । चत्तारि सरण पव्वज्जामि, अरहते सरण पव्वज्जामि, सिद्धे सरण पव्वज्जामि, साहु सरण पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्त धम्मं सरणं पव्वज्जामि ।

लोक मे चार मगल है—अरहत जी, सिद्ध जी, "आचार्य, उपाध्याय साधु" अर्थात् साधु गण और केवली भगवान् के द्वारा कहा गया अहिसामयी धर्म मगल है। लोक मे अरहत, सिद्ध, साधु और केवलीप्रणीत धर्म ही उत्तम है, तथा ये ही चारो शरण हैं।

अड्ढाइज्ज-दीव-दो-समुद्देसु पण्णारस-कम्म-भूमिसु, जाव-अरहताणं, भयवताण, आदियराण, तित्थयराणं, जिणाण, जिणोत्तमाण, केवलियाण, सिद्धाण, बुद्धाण, परिणिव्वुदाण, अतयडाण पारगयाण, धम्माइरियाण, धम्मदेसयाण, धम्मणायगाण धम्म-वर-चाउरग-चक्कवट्टीण, देवाहि-देवाण, णाणाण, दसणाण, चरित्ताण सदा करेमि किरियम्म ।

जम्बूद्वीप, धातकीखंड और अर्द्धपुष्कर द्वीप इन ढाई द्वीपो मे तथा लवण और कालोदधि समुद्रो मे पॉच भरत, पाँच ऐरावत व पॉच विदेह—१५ कर्मभूमियो मे होने वाले जितने अरहत आदि तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर, जिनदेव, जिनो मे श्रेष्ठ तीर्थंकर केवली, सिद्ध, बुद्ध, मुक्तिप्राप्त सिद्ध, अन्त कृतकेवली, धर्माचार्य, उपाध्याय, साधु धर्मानुष्ठान करने धर्मनायक उत्कृष्ट धर्मरूपी चतुरग सेना के अधिपति देवाधिदेव अरहत देव व ज्ञान-दर्शन-चारित्र सबधी मैं सदा कृतिकर्म करता हूँ ।

करेमि भते ! सामायिय सव्व-सावज्ज-जोग पच्चक्खामि जावज्जीव तिविहेण मणसा वचसा काएण, ण करेमि, ण कारेमि, ण अण्णं करत पि समणुमणामि तस्स भंते ! अइचार पडिक्कमामि, णिदामि, गरहामि अप्पाण, जाव अरहताण भयवताण, पज्जुवास करेमि तावकाल पावकम्मं दुच्चरिय वोस्सरामि ।

हे भगवन् ! मै सामायिक काल पर्यन्त सब सावद्य योग का त्याग करता हूँ। जीवन पर्यन्त मन-वचन-काय से सावद्य योग का कृत-कारित-अनुमोदना से त्याग करता हूँ। हे भगवन् ! अपने व्रत मे लगे अतिचारो का प्रतिक्रमण निदा करता हूँ, गर्हा करता हूँ। जितने काल मै अरहत भगवन्तो की उपासना करता हूँ उतने कालपर्यन्त पापकर्मो व दुच्चेष्टाओ का त्याग करता हूँ।

[इस प्रकार दण्डक पढकर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके, ९ बार णमोकार मत्र, २७ श्वासोच्छ्वास मे जपे, कायोत्सर्ग करे पश्चात् तीन आवर्त और एक शिरोनति करके चतुर्विंशति स्तव पढे ।]

थोस्सामि ह जिणवरे तित्थयरे केवली अणंत जिणे ।
णर-पवर-लोय-महिए, विहुय-रय-मले महप्पण्णे ।।१।।

लोयस्सुज्जोय-यरे धम्म तित्थंकरे जिणे वदे।
अरहते कित्तिस्से चौबीस चेव केवलिणो।।२।।
उसह-मजिय च वन्दे सभव-मभिणंदण च सुमइ च।
पउमप्पह सुपास जिण च चदप्पह वन्दे।।३।।
सुविहि पुप्फयत सीयल सेय च वासुपुज्ज च।
विमल-मणत भयव धम्म सति च वदामि।।४।।
कुथु च जिण वरिंद अर च मल्लि च सुव्वय च णमि।
वदामिरिट्ठ-णेमि तह पास वड्ढमाण च।।५।।
एव मए अभित्थुआ विहुय-रय-मला-पहीण-जर-मरणा।
चउवीस पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयतु।।६।।
कित्तिय वदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्य-णाण-लाह दितु समाहिं च मे बोहिं।।७।।
चदेहिं णिम्मल-यरा आइच्चेहिं अहिय-पया-सता।
सायर-मिव गभीरा सिद्धा सिद्धि मम दिसतु।।८।।

मै जिनेन्द्र, तीर्थकर, केवली, अनन्तजिन, मनुष्यो मे श्रेष्ठ, लोक-पूज्य, कर्ममल से रहित महान् आत्माओ की स्तुति करता हूँ।

लोक को प्रकाशित करने वाले, धर्मतीर्थ को करने वाले जिनदेव की मै वन्दना करता हूँ। अरहत परमेष्ठी, चौबीस भगवान् और केवली जिनो का कीर्तन करता हूँ।

मै आदिनाथ, अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दनाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जिनो की वन्दना करता हूँ।

सुविधिनाथ/पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयासनाथ, वासुपुज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ भगवान की मै वन्दना करता हूँ।

कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर/वर्धमान जिनो की मै वन्दना करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति किये गये चौबीस जिनेन्द्र, चौबीस तीर्थंकर जो कर्ममल से रहित है तथा जन्म-जरा-मरण से रहित हैं, मुझ पर प्रसन्न हो।

कीर्तन, वदन, पूजन किये गये ये लोक मे उत्तम अरहत, सिद्ध

परमेष्ठी मुझे निर्मल केवलज्ञान का लाभ, बोधि/रत्नत्रय की प्राप्ति और समाधि अर्थात् ध्यान की सिद्धि प्रदान करे।

चन्द्रमा के समान निर्मल, सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान, सागर के समान गभीर ऐसे सिद्ध परमेष्ठी मेरे लिये सिद्धि को प्रदान करे।

श्रीमते वर्धमानाय नमो नमित-विद्विषे।
यज्ज्ञानाऽन्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदाऽयते ।।१।।

जिनके ज्ञान मे तीन लोक के समस्त पदार्थ गोखुर (गया के खुर) के समान झलकते है, जिनके चरणो मे उपसर्ग करने वाले शत्रु का सिर झुक गया है ऐसे बाह्य समवशरण लक्ष्मी और अन्तरग अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के धारक श्री वर्धमान जिन के लिये नमस्कार हो।

लघु सिद्ध भक्ति

तव-सिद्धे णय-सिद्धे, संजम-सिद्धे चरित्त-सिद्धे य।
णाणम्मि दसणम्मि य, सिद्धे सिरसाणमस्सामि ।।२।।

तप सिद्ध, नय सिद्ध, सयम सिद्ध, चरित्र सिद्ध, ज्ञान और दर्शन से सिद्ध पद को प्राप्त हुए सभी सिद्ध परमात्माओ को नमस्कार हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भते! सिद्ध-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, सम्मणाण-सम्म-दसण-सम्म-चरित्त-जुत्ताण, अट्ठ-विह-कम्म-विप्प-मुक्काण, अट्ठ-गुण-सपण्णाण, उड्ढ-लोए-मत्थयम्मि पयट्ठियाण, तव सिद्धाण, णय-सिद्धाण, सजम-सिद्धाण, चरित्त-सिद्धाणं, अतीदाणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाण णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिण-गुण-सपत्ति होदु मज्झ।

हे भगवन्! मैने सिद्धिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से युक्त आठ प्रकार के कर्मो से रहित, सम्यक्त्व आदि आठ गुणो से सम्पन्न ऊर्ध्वलोक के मस्तक प्रतिष्ठित तपसिद्ध, नयसिद्ध, सयमसिद्ध, चारित्रसिद्ध, भूत-भविष्यत्-वर्तमान काल त्रयकालसिद्ध सब सिद्धो की मै सदा नित्यकाल/

प्रतिसमय अर्चना करता हूँ, पूजता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, बोधि अर्थात् रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो और जिनेन्द्र गुण रूप सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

इच्छामि भते! देवसिय (राइय) आलोचेउ तत्थ—

हे भगवन्! मै (रात्रिक) दैवसिक सम्बन्धी दोषो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ जैसे—

दर्शन प्रतिमा

पंचुम्बर सहियाइ, सत्तवि वसणाइं जो विवज्जेइ।
सम्मत्तविशुद्ध मई, सो दसण सावओ भणिओ ।।१।।

जो पाँच उदुम्बर फल—बड़फल, पीपलफल, कठूमर, पाकर और ऊमर सहित सात—१ जुआ खेलना, २ मास खाना ३ सुरा याने शराब पीना, ४ शिकार करना ५ वेश्यागमन ६ चोरी करना और ७ परस्त्री सेवन करना इनका त्यागी है और सम्यक्त्व से विशुद्धिमति है जिसकी वह प्रथम दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक कहलाता है।

सम्यक्त्व—सच्चेदेव-शास्त्र-गुरु पर दृढ़ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

व्रत प्रतिमा

पच य अणुव्वयाइं, गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि।
सिक्खावयाइं चत्तारि, जाणं विदियम्मि ठाणम्मि ।।२।।

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत को पालन करना द्वितीय स्थान व्रत प्रतिमा है।

सामायिक प्रतिमा

जिणवयण धम्मचेइय, परमेट्ठि जिणयालयाण णिच्चंपि।
ज वदण तिआल, कीरइ सामाइयं तं खु ।।३।।

जिनवचन, जिनधर्म, जिन चैत्य, पाँच परमेष्ठी–अरहत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय और साधु तथा जिन चैत्यालय इन नव देवताओ की प्रतिदिन तीनो कालो मे वन्दना करना वह निश्चय से सामायिक प्रतिमा है। बाह्य-आभ्यतर शुद्धि को धारण कर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की तरफ मुख कर,

एकान्त निर्भय स्थान मे १२ आवर्त्त को करता हुआ चार प्रमाण चारो दिशा मे करे और स्थिर मन-वचन-काय से समतापूर्वक सामायिक करे।

प्रोषध प्रतिमा

उत्तम मज्झ जहण्ण, तिविहं पोसहविहाण मुद्दिट्ठ ।
सगसत्तीएमासम्मि, चउसु पव्वेसु कायव्व ।।४।।

उत्तम, मध्यम और जघन्य तीन प्रकार से प्रोषध विधान कहा गया है। अपनी शक्ति के अनुसार एक माह मे चार पर्वो [दो अष्टमी, दो चतुर्दशी] मे करना चाहिये।

सचित्तत्याग प्रतिमा

ज वज्जिजदि हरिदं, तय पत्त पवाल कंदफल वीय ।
अपसुग च सलिल, सचित्तणिव्वत्तिम ठाण ।।५।।

सचित्त वस्तु, हरित अकुर पत्र, प्रवाल, कद, फल-बीज और अप्रासुक जलादि का सेवन नही करना सो पञ्चम प्रतिमा है।

दिवामैथुनत्याग या रात्रिभोजनत्याग प्रतिमा

मण वयण काय कद, कारिदाणुमोदेहिमेहुण णवधा ।
दिवसम्मि जो विवज्जदि, गुणम्मि जो सावओ छट्ठो ।।६।।

मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से नवकोटिपूर्वक मैथुन का दिन मे त्याग करना सो वह गुणी श्रावक की छठवी प्रतिमा है।

ब्रह्मचर्य प्रतिमा

पुव्वुत्तणव विहाणं पि, मेहुणं सव्वदा विवज्जंतो ।
इत्थिकहादि णिवित्ती, सत्तमगुण बंभचारी सो ।।७।।

मन, वचन, काय कृत, कारित, अनुमोदना रूप नव कोटि से हमेशा के लिये स्त्री मात्र का त्याग तथा स्त्री-कथा आदि का भी नवकोटि से त्याग करना सो सप्तम ब्रह्मचर्य प्रतिमा है ।।७।।

आरंभत्याग प्रतिमा

जं किं पि गिहारंभं, बहुथोवं वा सया विवज्जेदि ।
आरंभणिवितमदी, सो अट्ठम सावओ भणिओ ।।८।।

जो कुछ भी थोड़ा या बहुत सम्पूर्ण गृहारभ/घर सम्बन्धी आरभ का सदा के लिये त्याग करना सो आठवी आरम्भ त्याग प्रतिमा है।

परिग्रहत्याग प्रतिमा

मोत्तूण वत्थमित्त, परिग्गह जो विवज्जदेसेस ।
तत्थवि मुच्छण करेदि, वियाण सो सावओ णवमो ।।९।।

वस्त्र मात्र को छोडकर शेष सभी परिग्रहो का जो त्यागी है तथा उन वस्त्रो मे भी जो मूर्च्छा को नही करता है, वह नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक है।

अनुमतित्याग प्रतिमा

पुट्ठो वाऽपुट्ठो वा, णियगेहिं परेहि सग्गिह कज्जे ।
अणुमणण जो ण कुणदि, वियाण सो सावओ दसमो ।।१०।।

जो अपने या दूसरो के गृहकार्य सबधी आरम्भ मे पूछने पर या नही भी पूछने पर जो अनुमति नही करता है वह दसमी अनुमति त्याग प्रतिमाधारी श्रावक है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा

णवकोडीसु विशुद्धं, भिक्खायरणेण भुजदे भुज ।
जायणरहियं जोग्ग, एयारस सावओ सो दु ।।११।।

नवकोटि से शुद्ध, भिक्षा के आचरणपूर्वक दीनतारहित जो भोजन करता है वह, ग्यारहवी प्रतिमाधारी श्रावक है।

एयारसम्मि ठाणे, उक्किट्ठो सावओ हवई दुविहो ।
वत्थेय धरो पढमो, कोवीण परिग्गहो विदिओ ।।१२।।

ग्यारहवी उद्दिष्टत्याग प्रतिमा स्थान मे श्रावक दो प्रकार के है प्रथम खड वस्त्रधारक (चद्दर, लगोटधारी) दूसरे कोपीन (लगोट) मात्र परिग्रह धारक।

तव वय णियमावासय, लोच कारेदि पिच्छगिण्हेदि ।
अणुवेहा धम्मझाणं, करपत्ते एय-ठाणम्मि ।।१३।।

उत्कृष्ट श्रावक तप, व्रत, नियम, आवश्यको का पालन करते हुए बारह अनुप्रेक्षा और धर्म्यध्यान मे समय व्यतीत करते है। लोच करते हैं,

पिच्छि ग्रहण करते है तथा करपात्र अर्थात् हाथ मे एक बार भोजन करते है। [क्षुल्लक थाली, कटोरा आदि मे आहार करते है तथा ऐलक कर-पात्र मे ही आहार करते है, क्षुल्लक केशलोच करे या कैची से बालो को निकाल सकते है पर ऐलक के लिये केशलोच का ही विधान है]

एत्थ मे जो कोई देवसिओ (राइओ) अइचारो अणाचारो तस्स भते ! पडिक्कमामि पडिक्कमतस्स मे सम्मत्तमरण, समाहिमरण, पडियमरण, वीरियमरणं, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण, जिणगुणसपत्ति होउ मज्झ ।

हे भगवन् ! इस प्रकार एक से ग्यारह प्रतिमा पर्यन्त मेरे व्रतो मे रात्रि या दिन मे जो कोई अतिचार या अनाचार लगा हो उस दोष की शुद्धि के लिये मै प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रतिक्रमण करने वाले मेरा सम्यक्त्वपूर्वक मरण हो, समाधिमरण हो, पडितमरण हो, वीरमरण हो, दु खो का क्षय हो, बोधि/रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दसण वय सामाइय, पोसह सचित्त रायभत्तेय ।
बभारभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदोय ।। १ ।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहण छेदोवट्ठावण होदु मज्झ । अरहत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खिय, सम्मत्तपुव्वग, सुव्वदं दिढव्वद समारोहिय मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु ।

[अर्थ पूर्व मे आ चुका है]

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाए, सव्वाइचार विसोहिणिमित्त, पुव्वाइरियकमेण पडिक्कमण भत्ति कायोत्सर्गं करोमि ।

अब (रात्रिक) दैवसिक प्रतिक्रमण मे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यो के क्रम से मै प्रतिक्रमण का कायोत्सर्ग करता हूँ।

[चत्तारि दण्डक पढकर नौ बार णमोकार मत्र का जाप करके, थोस्सामि स्तव पढ़े]

णमो अरहताण णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाण णमो लोए सव्वसाहूण ।। ३ ।।

णमोजिणाण णमोजिणाण णमोजिणाण णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमो णिस्सिहीए णमोत्थुदे णमोत्थुदे णमोत्थुदे अरहत ! सिद्ध ! बुद्ध ! णीरय ! णिम्मल ! सममण ! सुभमण ! सुसमत्थ ! समजोग ! समभाव ! सल्लघट्टाण ! सल्लघत्ताण ! णिब्भय ! णिराय ! णिद्दोस ! णिम्मोह ! णिम्मम ! णिस्सग ! णिसल्ल ! माणमाय-मोसमूरण, तवप्पहावण, गुणरयण, सीलसायर, अणत, अप्पमेय, महदि महावीर वड्ढमाण, बुद्धिरिसिणो चेदि णमोत्थु दे णमोत्थु दे णमोत्थु दे ।

जिनेन्द्रदेव को तीन बार नमस्कार हो, १७ प्रकार के निषिद्धिका स्थानो को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। चार घाति कर्म के क्षयकारक अरहत, नि शेष कर्म क्षय कारक सिद्ध, केवलज्ञानी, कर्म ज्ञानावरण-दर्शनावरण की रज से रहित, समताधारक, शुभमन, शुभध्यानधारी परीषह उपसर्गो के सहन मे समर्थ, उपशम योग वाले, समभाव वाले अरहतादि को नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

हे-माया-मिथ्या-निदान शल्य के नाशक, ससारी जीवो के शल्य नाशक, निर्भय, रागरहित, निर्दोष, निर्मोह, निर्मम, निष्परिग्रह, माया-मिथ्या-निदान शल्य रहित, मान, माया और झूठ का मर्दन करने वाले हे तप प्रभावक, हे गुणो के स्वामी गुणरत्न, हे शीलसागर, हे अनन्त चतुष्टय धारक, हे अनन्त, हे अप्रमेय, हे पूजनीय महावीर, हे वर्द्धमान, हे बुद्धर्षिन् ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो।

गद्य—मम मगल अरहता य, सिद्धा य, बुद्धा य, जिणा य, केवलिणो, ओहिणाणिणो, मणपज्जयणाणिणो, चउदस-पुव्वगामिणो, सुदसमिदिसमिद्धाय, तवोय, वारह विहो तवसी, गुणाय गुणवतोय, महरिसी तित्थ तित्थकराय, पवयणं पवयणी य, णाण णाणी य, दसणं दसणी य, संजमो संजदा य, विणओ विणदा ए, बभचेरवासो, बभचारी य, गुत्तीओ, चेव गुत्तिमतो य, मुत्तिओचेव मुत्तिमतो य, समिदीओ, चेव समिदि मतो य, सुसमय परसमय विदु, खंति खंतिवतो य, खवगा य, खीणमोहा य, खीणवंतो य, बोहिय बुद्धाय, बुद्धिमतो य, चेइयरुक्खाय चेईयाणि ।

अरहत, सिद्ध, बुद्ध, जिन, केवलज्ञानी, अवधिज्ञानी, मन पर्ययज्ञानी,

चौदह पूर्व के ज्ञाता, श्रुत समूह से युक्त, बारह प्रकार का तप और तपस्वी, ८४ लाख गुण और गुणवान, ऋद्धिधारी मुनि, तीर्थ और तीर्थंकर, प्रवचन व प्रवचन के धारी ज्ञान और ज्ञानी, सम्यग्दर्शन और सम्यग्दृष्टि जीव, संयम और संयमी, विनय और विनयवान, ब्रह्मचारी आश्रम और ब्रह्मचारी, गुप्ति और गुप्ति के धारक, बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह त्याग और त्यागी, समिति और समिति के धारक, स्वसमय-परसमय के ज्ञाता, क्षमा और क्षमागुण के धारक, क्षपक-श्रेणी और श्रेणी पर चढ़ने वाले बोधित बुद्धव कोष्ठबुद्धि के धारक तथा चैत्यवृक्ष और चैत्यालय (कृत्रिम-अकृत्रिम) आदि ये सब मेरे लिये मंगलदायक हो ।

उड्ढ-मह-तिरियलोए, सिद्धायदणाणि णमस्सामि, सिद्धणिसीहियाहो, अट्ठावय पव्वये, सम्मेदे, उज्जते, चपाए, पावाए, मज्झिमाए, हत्थिवालियसहाय, जाओ अण्णाओ काओवि णिसीहीयाओ जीवलोयम्मि इसिपब्भारतलगयाण सिद्धाण बुद्धाणं कम्मचक्कमुक्काण णीरयाण णिम्मलाण गुरु आइरिय उवज्झायाण पव्वतित्थेर कुलयराणं चउवण्णोय समण-सघोय, दससु भरहेरावएसु पचसु महाविदेहेसु जो लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगल पवित्त एदेह मगल करेमि भावदो विसुद्धोसिरसा अहिवदिऊण सिद्धेकाऊण अजलिं मत्थयम्मि तिविहं तियरण सुद्धो ।

ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक, सिद्धायतनो को नमस्कार है, निर्वाण-स्थलो को, अष्टापद कैलाश पर्वत, सम्मेद-शिखर, गिरनार, चम्पापुरी, पावापुरी, मध्यमा नगरी हस्तिपालक राजा की सभा मे और भी जो कोई निषिद्धिका स्थान है, अढाईद्वीप और दो समुद्रो मे, ईषत्प्रागभार मोक्षशिला पर स्थित सिद्धो को, बुद्धो को, अष्टकर्मो से रहित, पापरहित, भाव कर्म मल से रहित निर्मल गुरु, आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और कुलकर तथा चार प्रकार के श्रमण सघ, ऋषि, यति, मुनि व अनगार, भरत ऐरावत दस क्षेत्रो मे, पाँच विदेह क्षेत्रो मे और मनुष्य लोक मे जो साधु सयमी तपस्वी है ये सब मेरा पवित्र मगल करे, इनको मै विशुद्ध भाव से मस्तक झुकाकर सिद्धो को नमस्कार करके मस्तक पर अजुली रखकर त्रिविध मन-वचन-काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ इस प्रकार मैं मगल करता हूँ ।

पडिक्कमामि भते ! दसण पडिमाए, सकाए, कखाए विदिगिच्छाए, परपासडपससणाए, पसथुए, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा म दुक्कड ।।१।।

हे भगवन् ! मै व्रतो मे लगे दोषो का पश्चात्तापपूर्वक प्रतिक्रमण करता हूँ। दर्शन प्रतिमा मे शका—जिनेन्द्रकथित मार्ग मे शका, काक्षा—शुभाचरण पालन कर ससार शरीर भोगो की इच्छा रूप निदान, जुगुप्सा—धर्मात्माओ के मलिन शरीर को देखकर ग्लानि करना परपाखडियो की प्रशसा-मिथ्या मार्ग व उनके सेवन करने वालो की प्रशसा की हो, स्तुति की हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि सम्बधी अतिचार, अनाचार मन से, वचन से, काय से स्वय किये हो, कराये हो, करते हुए की अनुमोदना की हो तो तत्सबधी मेरे समस्त दुष्कृत्य निरर्थक हो, मिथ्या हो। मै समस्त दोषो की आलोचना करता हूँ, पश्चात्ताप करता हूँ।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाए पढमे थूलयडे हिसाविरदिवदे — वहेण वा, बधेण वा, छेएण वा, अइभारारोहणेण वा, अण्णपाणणिरोहणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-१।।

हे भगवन् ! मै अपने कृत दोषो की आलोचना करता हुआ प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरी व्रत प्रतिमा मे स्थूल हिसा त्याग व्रत मे वध से, या बध से, छेदन या अतिभारारोपण या अन्नपाननिरोध करने से अर्थात् जीवो को मैने बाँधा हो, मारा हो, अगोपाग का छेदन किया हो, शक्ति से अधिक बोझा लादा हो और अन्न-पान निरोध किया हो। मेरे द्वारा रात्रि या दिन मे व्रतो मे अतिचार, अनाचार, मन-वचन-काय से किये गये हो, कराये गये हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो वे सब दुष्कृत्य मेरे निरर्थक हो, मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते ! वदपडिमाए विदिये थूलयडे असच्चविरदिवदे:- मिच्छोपदेसेण वा, रहो अब्भक्खाणेण वा, कूडलेह करणेण वा, णायापहारेण

वा, सायारमंतभेएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।। २-२।।

हे भगवन् ! दूसरी प्रतिमा मे स्थूल असत्य विरति त्याग व्रत मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। मिथ्या उपदेश देने से, एकान्त मे कही गई बात को प्रकट कर देने से, झूठे दस्तावेज आदि लिखने से, दूसरो की धरोहर हरण करने से, किसी के द्वारा इगित चेष्टा से उसके अभिप्राय को प्रकट कर देने से इत्यादि प्रकार से स्थूलसत्याणुव्रत मे दिन या रात मे अतिचार-अनाचार मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हो वे सभी व्रत सबधी मेरे दुष्कृत निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए तिदिये थूलयडे थेणविरदिवदे थेणपओगेण वा थेणहरियादाणेण वा, विरुद्धरज्जा-इक्कमणेण वा, हीणाहियमाणुम्माणेण वा, पडिरूवय ववहारेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो मणसा, वचसा, कायेण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।। २-३।।

हे भगवन् ! मैं कृतकर्मो का प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् पश्चात्ताप पूर्वक अपने व्रतो मे लगे दोषो की आलोचना करता हूँ। दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत अचौर्याणुव्रत मे दिन या रात्रि मे मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से चोरी करने के प्रयोग को बतलाया हो [अर्थात् स्वय तो चोरी नही की परन्तु दूसरो को ऐसा व्यापार बताना जिससे वह चोरी करे] चोर से अपहरण किये द्रव्य को ग्रहण किया हो, राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो अर्थात् राज्य के विरुद्ध वस्तु, टिकिट आदि दिया हो, टेक्स-चुराना आदि किया हो, राजा की आज्ञा का भग किया हो, तोलने के बाट आदि कम या ज्यादा रखे हो और अधिक मूल्य की वस्तु मे कम मूल्य की वस्तु मिलाकर दी हो, इस प्रकार व्रतसबधी मेरे सब अतिचार-अनाचार रूप दोष निरर्थक हो, मेरे व्रत सबधी पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे थूलयडे अबंभविरदिवदे:-परविवाहकरणेण वा, इत्तरियागमणेण वा, परिग्गहिदा परिग्गहिदागमणेण

वा, अणगकीडणेण वा, कामतिव्वाभिणिवसेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-४।।

हे भगवन् ! द्वितीय प्रतिमा के अब्रह्मविरति व्रत मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय प्रतिमा के अन्तर्गत स्थूल ब्रह्मचर्य व्रत मे मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से दिन या रात मे दूसरो का विवाह किया हो, इत्वरिका (व्यभिचारिणी स्त्री) के घर आना-जाना रूप व्यवहार रखा हो, अपरिग्रहीत कुमारिका और परिग्रहीत वेश्या, सधवा-विधवा स्त्रियो के साथ व्यवहार रखा हो, इनके साथ कामवासना से व्यवहार किया हो, काम-सेवन के अगो को छोडकर अन्य अगो से काम चेष्टा की हो, काम के तीव्र विकार से लोलुपता की हो अथवा घृणित परिणाम किये हो, कराये हो, अनुमोदना की हो इत्यादि व्रत सबधी दोषो की मै आलोचना करता हूँ मेरे व्रत सम्बधी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाए पचमे थूलयडे परिग्गहपरिमाणवदे:- खेत्तवत्थूणं परिमाणाइक्कमणेण वा, धणधण्णाण परिमाणाइक्कमणेण वा, हरिण्णसुवण्णाण परिमाणाइक्कमणेण वा, दासीदासाण परिमाणाइक्कमणेण वा, कुप्पभाडपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो अणाचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-५।।

हे भगवन् ! मै दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत परिग्रहपरिमाण अणुव्रत मे लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रत प्रतिमा मे स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत मे क्षेत्र, मकान आदि के परिमाण का अतिक्रमण करने से, धन–गाय, बैल आदि धान्य, गेहूँ, चना आदि परिमाण का अतिक्रमण करने से चॉदी-सोना के परिमाण का अतिक्रमण करने से या दासी-दास के परिमाण का अतिक्रमण करने से या कुप्य-वस्त्र, बर्तन आदि समस्त परिग्रह का अतिक्रमण करने से जो भी मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से व्रत सम्बन्धी अतिचार-अनाचार हुआ, वह सब मेरा पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाए पढमे गुणव्वदे:-उड्ढवइक्कमणेण वा, अहोवइक्कमणेण वा, तिरियवइक्कमणेण वा, खेत्तवड्ढिएण वा, अंतराधाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-६-१।।

हे भगवन् ! मै द्वितीय प्रतिमा के मध्य प्रथम गुणव्रत-दिग्व्रत मे लगे अतिचार-अनाचार आदि दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। दूसरा व्रत प्रतिमा मे प्रथम गुणव्रत मे ऊर्ध्वदिशा मे गमन की सीमा उल्लघन किया हो, अधोदिशा मे गमन की सीमा का उल्लघन किया हो, तिर्यक् दिशा मे गमन की सीमा का उल्लघन किया हो, सीमित क्षेत्र मे वृद्धि की हो या दशोदिशा सबधी का गई मर्यादा को भूल गया हो इस प्रकार दिन या रात्रि मे व्रतसबधी दोष अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से किया हो, कराया हो, या करने वालो की अनुमोदना की हो तो मेरा व्रत सबधी दोष/पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाएविदिए गुणव्वदे:-आणयणेण वा, विणिजोगेण वा, सद्दाणुवाएण वा, रूवाणुवाएण वा, पुग्गलखेवेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।२-७-२।।

हे भगवन् ! द्वितीय व्रत प्रतिमा मे दूसरे गुणव्रत-देशव्रत मे लगे दोषो की विशुद्धि के लिये मै प्रतिक्रमण करता हूँ। द्वितीय व्रतप्रतिमा गुणव्रत के भेद देशव्रत मे मर्यादा के बाहर से वस्तु मँगाई हो, बॉधी गई सीमा से बाहर वस्तु भेजी हो, शब्दो के इशारे से मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, रूप दिखाकर मर्यादा के बाहर से अपना कार्य सिद्ध किया हो, ककर, पत्थर आदि फेककर मर्यादा के बाहर अपना कार्य किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि मे मन से, वचन से, काय से कृत, कारित, अनुमोदना से व्रतसबध अतिचार, अनाचार हुआ हो तो वह मेरा व्रत सबधी पाप मिथ्या हो, निरर्थक हो।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाएतिदिए गुणव्वदेः- कदप्पेण वा, कुकुवेएण वा, मोक्खरिएण वा, असमक्खिया हिकरणेण वा, भोगोपभोगाणत्थकेण वा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।। २-८-३।।

हे भगवन् ! मै द्वितीय प्रतिमा तीसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड मे लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। अनर्थदण्डविरति व्रत मे कदर्प से अर्थात् राग के उदय स्मित से हँसी से, ठट्ठा से, कौतकुच्य अर्थात् कुत्सित भाषण किया हो, शरीर की खोटी चेष्टा की हो, मौखर्य याने बिना प्रयोजन बकवाद किया हो, व्यर्थ सभाषण किया हो, असमीक्ष्याधिकरण याने बिना सोच-विचार के कार्य किया हो, भोगोपभोग की सामग्री का अनर्थ बिना प्रयोजन अधिक सग्रह किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन मे या रात्रि मे व्रत सबधी मे जो भी अतिचार मन-वचन-काय-कृत-कारित-अनुमोदना से हुए हो तत्सबधी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हो ?

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाए पढमे सिक्खावदे:—फासिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदियपरिभोगपरि-माणाइक्कमणेण वा घाणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, चक्खिंदियभोगपरिमाणाइक्क-मणेण वा, सवणिंदिय भोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।। २-९-१।।

हे भगवन् ! द्वितीय व्रतप्रतिमा मे प्रथम शिक्षाव्रत मे लगे अतिचार आदि दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रथम शिक्षाव्रत मे स्पर्शेन्द्रिय सबधी भोगपरिमाण के अतिक्रमण से, रसना इन्द्रिय सबधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, घ्राण इन्द्रिय सबधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय सबधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से, श्रोत्रेन्द्रिय सबधी भोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे जो भी व्रत सबधी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुआ तत्सबधी मेरा दुक्ष्कृत्य मिथ्या हो। जो एक बार भोगा जाता है वह भोग कहलाता है

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाए विदियसिक्खावदे:—फासिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, रसणिंदिय परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, घाणिंदिय-परिभोगपरिमाणाइक्कमणेण वा, चक्खिंदियपरिभोग-परिमाणाइक्कमणेण वा, सवणिदिय परिभोगपरिमाणा-इक्कमणेण वा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-१०-२।।

हे भगवन् ! द्वितीय व्रतप्रतिमा मे द्वितीय शिक्षाव्रत परिभोगपरिमाण व्रत मे लगे अतिचार आदि दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। स्पर्शेन्द्रिय सबध परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से, रसनेन्द्रिय सबधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से, घ्राणेन्द्रिय सबधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से, चक्षु इन्द्रिय सबधी परिभोगपरिमाण के अतिक्रमण से या श्रोत्र (कर्ण) इन्द्रिय सबधी परिभोग परिमाण के अतिक्रमण से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि मे अतिचार मन से, वचन से, काय से, स्वय किया हो, दूसरो से कराया हो तो परिभोगपरिमाणव्रत सबधी मेरे दुष्कृत/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते ! वद पडिमाएतिदिए सिक्खावदे.— सचित्तणिक्खेवेण वा, सचित्तपिहाणेण वा, परउवएसेण वा, कालाइक्कमणेण वा, मच्छरिएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-११-३।।

हे भगवन् ! व्रत प्रतिमा मे तीसरा शिक्षाव्रत है अतिथिसविभाग उसमे सचित्त [योनिभूत] वस्तु मे प्रासुक पदार्थ को रखा हो, सचित्त से ढका हो, पर के उपदेश से या अन्य का द्रव्य अपना कहकर दिया हो, दान देने के समय का उल्लघन किया हो, दान देते समय अन्य दाताओ से मात्सर्य किया हो इत्यादि अनेक प्रकार से मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से, कृत, कारित, अनुमोदना से हुए हो तो व्रत सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! वद पडिमाए चउत्थे सिक्खावदे: —

जीविदाससणेण वा, मरणाससणेण वा, मित्ताणुराएण वा, सुहाणुबधेण वा, णिदाणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।२-१२-४।।

हे भगवन् ! व्रत प्रतिमा मे चौथे शिक्षाव्रत समाधिमरण व्रत पालन मे जीवित रहने की आशा से, शीघ्र मरण की आशा या मरण का भय करना या मै मर जाऊँगाँ क्या ? आदि परिणामो से सक्लेश रखना, इष्ट- मित्रजनो से प्रेम रखना, सुखानुबन्ध अर्थात् पूर्व मे भोगे हुए भोगो का स्मरण करना और व्रतादि का पालनकर सासारिक सुखो की इच्छा करना रूप निदान से जो भी मेरे द्वारा दिन मे या रात्रि मे अतिचार मन से, वचन से स्वय किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो समाधिमरण व्रत सम्बन्धी मेरे दोष/पाप मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भते ! सामाइय पडिमाए:—मणुदुप्पणिधाणेण वा, वयदुप्पणिधाणेण वा, कायदुप्पणि-धाणेण वा, अणादरेण वा, सदि अणुव्वट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।३।।

हे भगवन् ! सामायिक प्रतिमा व्रत पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। सामायिक प्रतिमा (तीसरी) के पालने मे मन के दुष्प्रणिधान अर्थात् मन की अस्थिरता, वचन दुष्प्रणिधान अर्थात् वचनो के उच्चारण मे शीघ्रता या मदता या अशुद्धि की हो, काय दुष्प्रणिधान अर्थात् काय की चचलता की हो–एक आसन से निश्चलतापूर्वक बैठकर निर्विकार सामायिक न कर काय की दुष्प्रवृत्ति की हो, शरीर के अग-उपागो को चलायमान किया हो, सामायिक अनादर से की हो, सामायिक पाठ का विस्मरण किया हो इत्यादि मेरे द्वारा जो भी कोई दिन या रात्रि मे अतिचार मन से, वचन से, काय से स्वय किया गया हो, कराया गया हो या करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो सामायिक व्रत प्रतिमा सबधी मेरा दुष्कृत/पाप मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भंते ! पोसह पडिमाए.—अप्पडि-वेक्खियापमज्जियो-सग्गेण वा, अप्पडिवेक्खियापमज्जिया-दाणेण वा, अप्पडिवेक्खियापज्जिया-संथारोवक्कमणेण वा, आवस्सयाणदरेण वा, सदिअणुवट्ठावणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।४।।

हे भगवन् ! चतुर्थ प्रोषध प्रतिमा के पालन करने मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। प्रोषध प्रतिमा को पालते हुए जीव-जन्तुओ को बिना देखे ही अथवा भूमि प्रदेश का जीव-जन्तु रहित है या नही शोधन किये बिना ही मल-मूत्र का क्षेपण किया हो अथवा पूजा के उपकरण आदि बिना शोधे उपयोग किये हो, बिना देखे शोधी भूमि मे ही वस्तु धरी हो और बिना शोधे उपकरण, पुस्तक, पीछी (कोमल वस्त्र की पीछी), कमडलु आदि उपयोगी वस्तुएँ ग्रहण की हो, बिना देखे, बिना शोधे सस्तर, चटाई-पाटा आदि बिछाये हो, देव-पूजा गुरुपास्ति आदि षट् आवश्यक कर्तव्यो मे हानि या अनादर किया हो, सामायिक, पूजन, स्तव आदि का विस्मरण किया हो इत्यादि, जो भी दोष मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे स्वय किये गये हो, कराये गये हो या अनुमोदना की गई हो, सामायिक प्रतिमा व्रत संबधी मेरे पाप मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भते ! सचित्तविरदिपडिमाए.—पुढविकाइया जीवा असंखेज्जासखेज्जा, आउकाइया जीवा असखेज्जासंखेज्जा, तेउकाइया जीवा असखेज्जासखेज्जा, वाउकाइया जीवा असखेज्जासखेज्जा, वणप्फदिकाइआ जीवा अणंताणता, हरिया, बीया, अंकुरा, छिण्णाभिण्णा, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहण, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।५।।

हे भगवन् ! सचित्तत्याग नामक पचम प्रतिमा मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। सचित्तविरति त्याग प्रतिमा को पालने मे मेरे द्वारा असख्यातासख्यात पृथ्वीकायिक जीवो का, असख्यातासख्यात जलकायिक जीवो का, असख्यातासख्यात तेजस्कायिक (अग्निकायिक) जीवो का, असख्यातासख्यात वायुकायिक जीवो का और अनन्तानत वनस्पतिकायिक जीवो मे हरित, बीज, अकुर का छेदन-भेदन किया हो, इन जीवो को उत्तापन/त्रास दिया हो, पीडित किया हो, विराधन किया हो या उपघात

किया हो, कराया हो या करते हुए की अनुमोदना की हो तो हे भगवन्! व्रत सबधी मेरे दोष/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते! राइभत्तपडिमाए:—णवविह-बंभचरियस्स दिवा जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।६।।

हे भगवन्! मै रात्रिभुक्ति नामक षष्ठम/छठी प्रतिमा लगे दोषो का प्रतिक्रमण करता हूँ। रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा व्रत मे दिन मे नव प्रकार के ब्रह्मचर्य मे मेरे द्वारा अतिचार मन से, वचन से, काय से किया गया हो, कराया गया हो अथवा करते हुए की अनुमोदना की गई हो तो रात्रि-भुक्ति त्याग या दिवामैथुन त्याग प्रतिमा सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते! बभपडिमाए:—इत्थि-कहायत्तणेण वा, इत्थिमणोहरागनिरिक्खिणेण वा, पुव्वरयाणुस्सरणेण वा, कामकोवणर-सासेवणेण वा, शरीर-मडणेण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) अइचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।७।।

हे भगवन्! ब्रह्मचर्य प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। ब्रह्मचर्य प्रतिमा व्रत मे स्त्रियो मे राग बढाने वाली कथाओ को कहा हो, स्त्रियो के मनोहर अगो का निरीक्षण किया हो, पूर्व मे भोगे हुए भोगो का स्मरण किया हो या कामोत्पादक गरिष्ठ रसो का सेवन किया हो या शरीर का शृगार किया हो इस प्रकार मेरे द्वारा दिन या रात्रि मे जो भी अतिचार मन से, वचन से, काय से किया हो, करवाया या करते हुए की अनुमोदना की हो तो ब्रह्मचर्य प्रतिमा के व्रतसबधी मेरे दोष/पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते! आरंभविरदिपडिमाए:—कसायवसगएण वा, जो मए देवसिओ (राइयो) आरम्भो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।८।।

हे भगवन्! आरभत्याग नामक आठवी प्रतिमा के व्रत पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। आरभत्याग प्रतिमा मे कषाय के वश से

मेरे द्वारा जो भी आरभ दिन या रात्रि मे मन-वचन-काय या कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो उस आरभत्याग व्रत सबधी मेरे पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भंते ! परिग्गहविरदिपडिमाए:—वत्थमेत्त परिग्गहादो अवरम्मि परिग्गहे मुच्छापरिणामे जो मे देवसिओ (राइयो) अइचारो, अणाचारो, मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।।९।।

हे भगवन् ! परिग्रहत्याग प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। परिग्रहत्याग प्रतिमा व्रत मे वस्त्रमात्र परिग्रह से भिन्न दूसरे परिग्रह मे मूर्च्छापरिणाम होने से मेरे द्वारा जो भी दिन या रात्रि मे अतिचार-अनाचार मन से, वचन से, काय से, कृत-कारित-अनुमोदना से हुआ हो तो व्रत सबधी मेरा दोष मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भते ! अणुमणविरदिपडिमाए ज कि पि अणुमणण पुट्ठापुट्ठेण कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।१०।।

हे भगवन् ! अनुमतिविरत दसवी प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। अनुमतित्याग प्रतिमा मे जो अन्य के द्वारा पूछने या नही पूछने पर भी जो कुछ भी मेरे द्वारा अनुमति दी गई हो, दिलाई गई हो या अनुमोदना की गई हो तो मेरे सभी पाप मिथ्या हो।

पडिक्कमामि भते ! उद्दिट्ठविरदिपडिमाए उद्दिट्ठदोस-बहुल अहोरदिय आहारय वा आहाराविय वा आहारिज्जत वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।।११।।

हे भगवन् ! मै उद्दिष्टत्याग ग्यारहवी प्रतिमा के पालन मे लगे दोषो का मै प्रतिक्रमण करता हूँ। उद्दिष्टत्याग प्रतिमा व्रत मे उद्दिष्ट दोष से युक्त आहार को मैने किया हो, उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार दूसरो को कराया हो या उद्दिष्ट दोष से दूषित आहार को करने की अनुमति दी हो तो उस व्रत सबंधी मेरा पाप मिथ्या हो ।।११।।

निर्ग्रन्थ पद की वांछा

इच्छामि भते ! इम णिग्गथ पवयण अणुत्तर केवलिय, पडिपुण्ण, णेगाइय, सामाइय, ससुद्धं, सल्लघट्टाण, सल्लघत्ताणं, सिद्धिमग्ग, सेढिमग्ग, खतिमग्ग, मुत्तिमग्ग, पमुत्तिमग्ग, मोक्खमग्ग, पमोक्खमग्ग, णिज्जाणमग्ग, णिव्वाणमग्ग, सव्वदु·खपरिहाणिमग्गं, सुचरियपरि-णिव्वाणमग्ग, अवितह, अविसति-पवयण, उत्तम त सद्दहामि, त पत्तियामि, त रोचेमि, त फासेमि, इदोत्तर अण्ण णत्थि, ण भूद, ण भविस्सदि, णाणेण वा, दंसणेण वा, चरित्तेण वा, सुत्तेण वा, इदो जीवा सिज्झंति, बुज्झति, मुच्चति, परि-णिव्वाण-यंति, सव्व-दुक्खाण-मतकरेंति, पडि-वियाणति, समणोमि, सजदोमि, उवरदोमि, उवसतोमि, उवधि-णियडि-माण-माया-मोसमूरण-मिच्छाणाण-मिच्छा-दसण-मिच्छाचरित्त च पडिविरदोमि, सम्मणाण-सम्मदसण-सम्मचरित्तं च रोचेमि, ज जिणवरेहि पण्णत्तो, इत्थ मे जो कोई (राइओ) देवसिओ अइचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कड ।

हे भगवन् ! इस निर्ग्रथ लिग की मै इच्छा करता हूँ। यह निर्ग्रथ लिग मोक्षप्राप्ति का उपाय साक्षात् कारण है। यह अनुत्तर है अर्थात् इस निर्ग्रथ लिग से भिन्न दूसरा कोई उत्कृष्ट मोक्षमार्ग नही है। केवली सबधी अर्थात् केवली कथित है। सम्पूर्ण कर्मो का क्षय करने मे समर्थ है नैकायिक अर्थात् रत्नत्रय के निकाय से सबध रखने वाला है, सामायिक रूप है, परम उदासीनता रूप तथा सर्वसावद्य योग का अभाव होने से यह ही सामायिक ह। शुद्ध है। माया-मिथ्या-निदान शल्यो से दुखी जीवो के शल्य का नाश करने वाला है। सिद्धि का मार्ग है, श्रेणी का मार्ग है, शान्ति आर क्षमा का मार्ग है, उत्कृष्ट मार्ग है, मोक्ष का मार्ग, अरहत-सिद्ध अवस्था की प्राप्ति का उपाय है, चतुर्गति भ्रमण के अभाव का मार्ग है निर्वाण का मार्ग है, सर्व दुखो के नाश का मार्ग है, सुचारित्र के द्वारा निर्वाण-प्राप्ति का मार्ग है, निर्विवाद रूप से निर्ग्रथ लिग से मुक्ति होती है, मोक्षार्थी इसी लिग का आश्रय लेते है यह लिग सर्वज्ञप्रणीत है उस उत्तम लिग की मै श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ, उसी को प्राप्त होता हूँ। इससे भिन्न अन्य कोई मोक्ष का हेतु नही है, न भूत मे था और न भविष्य मे

होगा। ज्ञान-दर्शन-चारित्र व श्रुत का ज्ञापक होने से इस निर्ग्रंथ लिग से जीव सिद्ध अवस्था को प्राप्त करते है, केवलज्ञान को प्राप्त कर मुक्त हो, कर्मो से रहित होते है। कृतकृत्य हो जाते है, सब दुखो का अन्त करते है। निर्ग्रथ लिग के द्वारा ही समस्त पदार्थो को जानते है। 'मै श्रमण होता हूँ, सयत होता हूँ, विषय भोगो से उपरत होता हूँ, उपशात होता हूँ। परिग्रह, निकृति/वचना मान, माया, कुटिलता, असत्य भाषण, मिथ्याज्ञान, मिथ्यादर्शन, मिथ्याचारित्र इनसे विरत होता हूँ। सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र मे श्रद्धा करता हूँ। जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये जो तत्त्व है उन्ही की मै श्रद्धा करता हूँ इस प्रकार मेरे द्वारा दिन-रात्रि की क्रियाओ मे जो कोई अतिचार-अनाचार हुए हो तत्सबधी मेरे समस्त पाप मिथ्या हो।

इच्छामि भते। पडिकमणाइचारमालोचेउ जो मए देवसिओ (राइओ) अइचारो, अणाचारो, अभोगो, अणाभोगो, काइओ, वाइओ, माणसिओ, दुच्चरिओ, दुच्चारिओ, दुब्भासिओ, दुप्परिणामिओ, णाणे, दसणे, चरित्ते, सुत्ते, सामाइए, एयारसण्ह-पडिमाण विराहणाए, अट्ठ-विहस्स कम्मस्स-णिग्घादणाए, अण्णहा उस्सासिदेण वा, णिस्सासिदेण वा, उम्मिस्सिदेण वा, णिम्मिस्सिदेण वा, खासिदेण वा, छिकिदेण वा, जभाइदेण वा, सुहुमेहिं-अग-चलाचलेहि, दिट्ठिचलाचलेहि, एदेहिं सव्वेहि, अ-समाहिं-पत्तेहिं, आयरेहिं, जाव अरहताण, भयवताण, पज्जुवास करेमि, ताव काय पाव कम्म दुच्चरिय वोस्सरामि।

हे भगवन्। मैं प्रतिक्रमण मे लगे अतिचारो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। मेरे द्वारा दिन या रात्रि की क्रियाओ मे अतिचार-अनाचार आभोग-अनोभोग कायिक, वाचिक, मानसिक दुश्चितन हुआ हो, दुश्चिरित्र हुआ हो। दुर्वचनो का उच्चारण हुआ हो, खोटे परिणाम हुए हो, ज्ञान मे, दर्शन मे, चारित्र मे, सूत्र मे, सामायिक मे, ग्यारह प्रतिमाओ की विराधना की हो, आठ कर्मो का नाश करने वाली क्रियाओ के प्रयत्न करने मे, श्वासोच्छ्‌वास मे नेत्रो की टमकार से, खॉसने से, छीकने से, जभाई लेने से, सूक्ष्म अगो के हलन-चलन करने से, दृष्टि को चलायमान करने से इत्यादि अशुभ क्रियाओ से सूत्रपाठ आदि क्रियाओ का विस्मरण किया हो, अन्यथा प्ररूपणा की हो, असमाधि को प्राप्त कराने वाली क्रियाओ के आचरण से जो दोष लगा

हो तो मै इस प्रतिक्रमण सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूँ और जब तक अरहंत भगवन्तो की पर्य्युपासना मैं करता हूँ तब तक पाप कर्म रूप दुश्चरित्र का त्याग करता हूँ ।

दंसण वय सामाइय, पोसह सचित्त राइभत्तेय ।
बभारभ परिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेस विरदेदे ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठ छेदोवट्ठावण होदु मज्झ । अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खिय सम्मत्तपुव्वग, सुव्वदं दिढव्वद समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु ।

अथ देवसिओ (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसोहिणिमित्त, पुव्वाइरियकमेण निष्ठितकरण वीरभक्ति कायोत्सर्गं करेमि ।

अब दैवसिक (रात्रिक) प्रतिक्रमण सर्व अतिचार की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यो के क्रम से निष्ठितकरण वीरभक्ति के कायोत्सर्ग को मै करता हूँ ।

(इति विज्ञाप्य-णमो अरहताण इत्यादि दण्डक पठित्वा कायोत्सर्ग कुर्यात् । थोस्सामीत्यादि स्तव पठेत्)

[इति विज्ञाप्प पठेत् ।]

इस प्रकार विज्ञापन करके णमो अरहताण इत्यादि दडक को पढकर कायोत्सर्ग करे । पश्चात् थोस्सामि इत्यादि स्तव को पढे ।

य· सर्वाणि चराचराणि विधिवद् द्रव्याणि तेषा गुणान्,
पर्यायानपि भूत-भावि-भवित: सर्वान् सदा सर्वदा ।
जानीते युगपत् प्रतिक्षण-मत: सर्वज्ञइत्युच्यते,
सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते वीराय तस्मै नम: ।।१।।
वीर. सर्व-सुराऽसुरेन्द्र-महितो वीर बुधा: संश्रिता·,
वीरेणाभिहत: स्व-कर्म-निचयो वीराय भक्त्या नम: ।
वीरात् तीर्थ-मिद-प्रवृत्त-मतुलं वीरस्य घोर तपो,
वीरे श्री-द्युति-कान्ति-कीर्ति-धृतयो हे वीर ! भद्र-त्वयि ।।२।।
ये वीर-पादौ प्रणमन्ति नित्य,
ध्यान-स्थिता: संयम-योग-युक्ता: ।

ते वीत-शोका हि भवन्ति लोके,
संसार-दुर्गं विषम तरन्ति ।।३।।
व्रत-समुदय-मूलः सयम-स्कन्ध-बन्धो,
यम नियम-पयोभि-वर्धितःशील-शाखः ।
समिति-कलिक-भारो गुप्ति-गुप्त-प्रवालो,
गुण-कुसुम सुगन्धिःसत्-तपश्चित्र-पत्र· ।।४।।
शिव-सुख-फलदायी यो दया-छाययोद्धः,
शुभजन-पथिकाना खेदनो दे समर्थ ।
दुरित-रविज-तापं प्रापयन्नन्तभाव,
स भव-विभव-हान्यै नोऽस्तुचारित्र-वृक्षः ।।५।।
चारित्रं सर्व-जिनैश्चरित प्रोक्त च सर्व-शिष्येभ्यः ।
प्रणमामि पञ्च-भेदं पञ्चम-चारित्र-लाभाय ।।६।।
धर्मः सर्व-सुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते,
धर्मेणैव समाप्यते शिव-सुख धर्माय तस्मै नमः ।
धर्मान्नास्त्यपरः सुहृद् भव-भृता धर्मस्य मूल दया,
धर्मे चित्तमह दधे प्रतिदिनं हे धर्म मां पालय ।।७।।
धम्मो मंगल-मुक्किट्ठ अहिंसा सयमो तवो ।
देवा वि तस्स पणमंति जस्स धम्मे सया मणो ।।८।।

जो सम्पूर्ण चेतन-अचेतन विधिवत् द्रव्यो को और उनके गुणो को भूत-भावी-वर्तमान सम्पूर्ण पर्यायो मे सदा सर्वकाल प्रतिसमय मे एक-साथ जानता है अत वह सर्वज्ञ कहे जाते है, उन सर्वज्ञ जिनेश्वर भगवान् महावीर के लिये नमस्कार हो ॥१॥

वीर भगवान् सभी सुर-असुरो तथा इन्द्रो से पूजित हैं, ज्ञानीजन वीर प्रभु का आश्रय लेते है, वीर भगवान् ने कर्मसमूह को नष्ट कर दिया है, वीर प्रभु को भक्ति से नमस्कार हो, वीरप्रभु से ही यह अनुपम तीर्थ प्रवृत्त हुआ है वीर भगवान् का तप उत्कृष्ट है, वीर भगवान् मे अन्तरग-अनत चतुष्टय और बाह्य मे समवशरण आदि लक्ष्मी, तेज, कान्ति, यश और धैर्यता गुण विद्यमान है। हे वीर भगवान् - आप ही कल्याणकारी है ॥२॥

जो भव्य पुरुष ध्यान मे स्थित होकर सयम व योग से सहित होते

हुए प्रतिदिन वीर भगवान् के दोनो चरण-कमलो को नमस्कार करते है वे ससार मे निश्चित रूप से शोक-मुक्त होते है तथा विषम ससार अटवी से तिरकर मुक्त हो जाते है ।।३।।

व्रतो का समूह जिसकी जड है, सयम जिसका स्कन्ध बध है, यम-नियम रूपी जल के द्वारा जो वृद्धि को प्राप्त है, १८ हजार शील जिसकी शाखा है, पॉच समिति रूपी कलिकाएँ भार है, तीन गुप्तियॉ जिसमे गुप्त प्रवाल है, मूल और उत्तरगुण श्रावक अपेक्षा ८ मूलगुण, १२ उत्तरगुण जिसके पुष्पो की सुगधी है, समीचीन तप चित्र-विचित्र पत्ते है जो मोक्षरूपी फल को देने वाला है, दयारूपी छाया समूह से युक्त है, शुभोपयोग मे दत्तचित्त पथिको के खेद को दूर करने मे समर्थ है, पापरूपी सूर्य से उत्पन्न ताप को नाश करने वाला है वह चारित्ररूपी वृक्ष हमारे ससार रूप वैभव के नाश के लिये हो ।।४-५।।

सब तीर्थकरो के द्वारा जिस चारित्र का आचरण किया गया तथा समस्त शिष्यो के लिये जिस चारित्र का उपदेश दिया गया उस सामायिक छेदोपस्थापना आदि पॉच भेद युक्त चारित्र को मै पचम यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति के लिए नमस्कार करता हूँ ।।६।।

सब सुखो की खानि, हित को करने वाला धर्म है। बुद्धिमान लोग धर्म का सचय करते है। धर्म के द्वारा ही मोक्ष-सुख प्राप्त होता है। इसलिये उस धर्म को नमस्कार हो। ससारी प्राणियो का धर्म से भिन्न अन्य कोई दूसरा मित्र नही है। धर्म की जड दया है। मै प्रतिदिन धर्म मे मन को लगाता हूँ। हे धर्म, मेरी रक्षा करो ।।७।।

अहिसा सयम तप रूप धर्म मगल कहा गया है जिसका मन सदा धर्म मे लगा रहता है उसे देव भी नमस्कार करते है ।।८।।

इच्छामि भते! वीरभत्ति काउस्सग्ग करेमि तत्थ देसासिआ, असणासिआ ठाणासिआ कालासिआ मुद्दासिआ, काउसग्गासिआ पणमासिआ आवत्तासिआ पडिक्कमणाए तत्थसु आवासएसु परिहीणदा जो मए अच्चासणा मणसा, वचसा, काएण, कदो वा, कारिदो वा, कीरतो वा, समणुमण्णिदो तस्समिच्छा मे दुक्कड ।।९।।

हे भगवन् ! मैं वीरभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करने की इच्छा करता हूँ। उसमे देश के आश्रय से, आसन के आश्रय से, स्थान के आश्रय से, काल के आश्रय से, मुद्रा के आश्रय से, कायोत्सर्ग के आश्रय से, नमस्कारादि विधि के आश्रय से, आवर्त्त आदि, से प्रतिक्रमण मे, उनमे आवश्यक कर्मो के करने मे मेरे द्वारा हीनता, अत्यासादना मन से, वचन से, काय से, की गई हो, कराई गई हो अथवा करने वाले की अनुमोदना की गई हो तो वीर भक्ति सम्बन्धी मेरे पाप मिथ्या हो।

दंसण-वय-सामाइय-पोसह-सचित्त-राइभत्ते य।
बंभाऽऽरंभ-परिग्गह-अणुमणमुद्दिट्ठ-देसविरदेदे ।।१।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइ कयाइचार सोहणट्ठं छेदोवट्ठावण होदु मज्झं। अरहंत सिद्ध आयरिय उवज्झाय सव्वसाहुसक्खियं, सम्मत्तपुव्वगं, सव्वदं दिढव्वदं समारोहियं मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिओ (राइय) पडिक्कमणाए सव्वाइचार विसेहिणिमित्तं, पुव्वाइरियकमेण चउवीस तित्थयर भक्ति कायोत्सर्गं करोमि।

अब मैं दैवसिक-रात्रिक प्रतिक्रमण मे लगे सब अतिचार रूप दोषो की विशुद्धि के निमित्त पूर्वाचार्यों के क्रम से चतुर्विशति तीर्थंकर भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

[णमो अरहंताण इत्यादि दडक पढ़कर ९ बार णमोकार मत्र पढ़े। पश्चात् थोस्सामि स्तव पढ़कर चौबीस तीर्थंकर भगवान् की भक्ति पढ़े।]

चउवीसं तित्थयरे उसहाइ-वीर-पच्छिमे वन्दे।
सव्वेसगण-गण-हरे सिद्धे सिरसा णमस्सामि ।।१।।

वृषभदेव को आदि लेकर अन्तिम तीर्थंकर महावीरपर्यन्त चौबीस तीर्थंकरो को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त मुनिराज, गणधर और सिद्ध परमात्माओ को सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

ये लोकेऽष्ट-सहस्र-लक्षण-धरा; ज्ञेयार्णवान्तर्गता;
ये सम्यग्-भव-जाल-हेतु-मथना-श्चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः ।
ये साध्विन्द्र-सुराप्सरो-गण-शतै-र्गीत-प्रणुत्यार्चिता-
स्तान् देवान् वृषभादि-वीर-चरमान्, भक्त्या नमस्याम्यहम् ।।२।।

जो लोक मे १००८ लक्षणो के धारक है, जो समीचीन कारण है, ससाररूपी जाल स्वरूप मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र के नाशक है, चन्द्र और सूर्य से भी अधिक तेजस्वी है, गणधर, मुनिवर इन्द्र, देव तथा सैकड़ो अप्सराओ के समूह से जिनकी स्तुति की गई है, पूजा की गई है उन वृषभनाथजी को आदि ले अन्तिम महावीरपर्यन्त २४ तीर्थकर देवो को मै भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

नाभेय देवपूज्यं जिनवर-मजित सर्व-लोक-प्रदीपम्,
सर्वज्ञं सम्भवाख्य मुनि-गण-वृषभं नन्दन देव-देवम् ।
कर्मारिघ्नं सुबुद्धि वर-कमल-निभ पद्म-पुष्पाभि-गन्धम्,
क्षान्तं दान्त सुपार्श्वं सकल शशि-निभं चद्रनामान-मीडे ।।३।।
विख्यात पुष्पदन्त भव-भय-मथनं शीतलं लोक-नाथम्,
श्रेयासं शील-कोशं प्रवर-नर-गुरुं वासुपूज्य सुपूज्यम् ।
मुक्तं दान्तेन्द्रियाश्व विमल-मृषि-पतिं सिंहसैन्यं मुनीन्द्रम्,
धर्म सद्धर्म-केतु शम-दम-निलय स्तौमि शान्ति शरण्यम् ।।४।।
कुन्थुं सिद्धालयस्थ श्रमण-पतिमर त्यक्त-भोगेषु चक्रम्,
मल्लिं विख्यात-गोत्रं खचर-गण नुतं सुव्रत सौख्य-राशिम् ।
देवेन्द्रार्च्यं नमीशं हरि-कुल-तिलकं नेमिचन्द्रं भवान्तम्,
पार्श्वं नागेन्द्र-वन्द्यं शरणमहमितो वर्धमानं च भक्त्या ।।५।।

जिनो मे श्रेष्ठ, देवो से पूज्य, नाभिराजा के पुत्र आदिनाथजी की, उत्कृष्ट दीप सम, त्रैलोक्यप्रकाशक अजितनाथ जिनेन्द्र की, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों, उनके गुण व पर्यायो को युगपत् जानने वाले सभव जिनेन्द्र की, मुनियो के समूह मे श्रेष्ठ देवाधिदेव अभिनन्दन की, कर्मशत्रुनाशक सुमति जिनेन्द्र की, कमलसम आभा व सुगधित शरीर के धारक पद्मप्रभ

जिनेन्द्र क्षमायुक्त, सहिष्णु जितेन्द्रिय सुपार्श्व जिनेन्द्र की और पूर्णचन्द्रमा के समान काति के धारक चन्द्रप्रभ भगवान् की मै स्तुति करता हूँ। प्रसिद्धिप्राप्त पुष्पदन्त जी की ससार के भय के नाशक शीतल जिनेन्द्र क, शील के समुद्र श्रेयासनाथ जी की सौ इन्द्रो से पूज्य श्रेष्ठ जनो के गुरु वासुपूज्य भगवान् की, घातिया कर्मो से रहित, इन्द्रियविजेता विमलनाथ भगवान् ऋद्धिधारी मुनियो के स्वामी अनन्तनाथ भगवान् की, रत्नत्रय की ध्वजा-स्वरूप धर्मनाथ जी की और साम्यभाव के खजाने, ससार-दु खो से पीड़ित, जीवो के शरणभूत शान्तिनाथ भगवान् की मै स्तुति करता हूँ।

सिद्धालय मे स्थित कुन्थुनाथ भगवान् की, हस्तगत चक्ररत्न के त्यागी "अर" जिनेन्द्र की, प्रसिद्ध इक्ष्वाकुवशोत्पन्न मल्लिजिनेन्द्र, विद्याधरो के समूह से नमस्कृत सुख की राशि मुनि सुव्रतनाथ जी की, देवो से पूज्य नमि जिनेन्द्र की, भव का अन्त करने वाले हरिवश के तिलकस्वरूप नेमिनाथजी, धरणेन्द्रवदित पार्श्वनाथजी और वर्धमान जिनेन्द्र की मै भक्ति से शरण को प्राप्त होता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चउवीस-तित्थयर-भत्ति-काउस्सगो कओ, तस्सालोचेउ, पंच-महाकल्लाण-संपण्णाणं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-सहियाणं, चउतीसाऽतिसयविसेस-सजुत्ताण, बत्तीस-देविंद-मणिमय-मउड-मत्थय-महिदाणं, बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जइ-अणगारोवगूढाणं, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मंगल-महा-पुरिसाणं, सया णिच्चकालं अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होउ मज्झं ।

भते। हे भगवन्। चौबीस तीर्थकर भक्ति का कायोत्सर्ग मैंने किया। मैं तत्सबधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। पञ्चकल्याणक से सम्पन्न, आठ प्रातिहार्यो से युक्त, बत्तीस देवेन्द्रो के मणिमय मुकुटो से सुशोभित, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि व अनगार से पूजित लाखो स्तुतियो के खजाने श्री वृषभदेव से लेकर महावीरपर्यन्त मगलमय महापुरुषो की मैं हमेशा अर्चना, पूजा, वन्दना करता हूँ, नमस्कार

करता हूँ। मेरे दुखो का, कर्मो का क्षय हो, मुझे बोधि की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधि-मरण हो, जिनेन्द्र गुणो की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

दसण वय सामाइय पोसह सचित्तराइ भत्तेय।
बंभारंभ परिग्गह अणुमणमुद्दिट्ठ देसविरदेदे।।

एयासु जधा कहिद पडिमासु पमादाइकदादिचार सोहणट्ठ छेदोवट्ठावण होउ मज्झ अरहंत सिद्ध आइरिय उवज्झाय सव्वसाहु सक्खिय सम्मत्तपुव्वग सुव्वद दिढव्वद समारोहिय मे भवदु, मे भवदु, मे भवदु।

अथ देवसिय (राइय) पडिक्कमणाएसव्वादिचार विसोहिणिमित्त पुव्वायरिय कमेण आलोयण श्री सिद्धभत्ति पडिक्कमणभत्ति णिट्ठिदकरण वीरभत्ति चउवीस-तित्थयर भत्ति कृत्वा तद्धीनाधिकत्वादिदोष परिहारार्थं सकल दोष निराकरणार्थं सर्वमलातिचार विशुद्ध्यर्थं आत्मपवित्रीकरणार्थ समाधिभक्ति कार्योत्सर्गं करोमि।

मै अब दिन या रात्रि मे प्रतिक्रमण मे लगे सर्व अतिचारो की विशुद्धि के निमित्त पूर्व आचार्यो के क्रम से आलोचना सिद्ध भक्ति, प्रतिक्रमण भक्ति, निष्ठितकरण वीर भक्ति, चतुर्विशति भक्ति, करके उनमे हीनाधिक दोषो के परिहार के लिये, सकल दोषो का निराकरण करने के लिये सर्व मल व अतिचारो की शुद्धि के लिये, आत्मा को पवित्र करने के लिये समाधि भक्ति सबधी कायोत्सर्ग को करता हूँ।

[९ बार णमोकार मत्र का जाप करे]

अथेष्ट प्रार्थना

प्रथम करणं चरण द्रव्य नमः।

अर्थ— प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिन-पति-नुतिःसङ्गतिः सर्वदार्यैः,
सद्वृत्ताना गुण-गण-कथा दोष-वादो च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्म-तत्त्वे,
सम्पद्यन्ता मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः।।१।।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद् यावन्निर्वाण-सम्प्राप्ति. ।।२।।
अक्खर-पयत्थ-हीण मत्ता-हीण च जं मए भणिय।
त खमउ णाणदेवय! मज्झवि दुक्खक्खय कुणउ ।।३।।

हे भगवन्! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न होवे तब तक भव-भव मे शास्त्रो का पठन-मनन-चितन, जिन-चरणो को नमन, सज्जनो की सगति, सच्चारित्रवानो के गुणो की कथा, परदोष-कथन मे मौन, विवाद मे मौन, सब जीवो के साथ प्रिय व हितकर वचन, अपने आत्मस्वरूप की भावना इन सबकी मुझे प्राप्ति हो।

हे जिनेन्द्र, मुझे जब तक मुक्ति प्राप्त न हो तब तक आपके दोनो चरण-कमल मेरे हृदय मे विराजमान रहे, मेरा हृदय आपके चरण-कमलो मे लीन रहे।

हे कैवल्यज्योतिमयी ज्ञानदेव! मेरे द्वारा जो भी अक्षर मात्रा-पद-अर्थ मे हीनाधिक कहा गया हो उसे क्षमा कीजिये और मेरे दुखो का क्षय कीजिये।

आलोचना

इच्छामि भंते! समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, रयणत्तय-सरूव-परमप्प-ज्झाण-लक्खण-समाहि-भत्तीए सया णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-संपत्ति होदु मज्झं।

हे भगवन्! मैने समाधिभक्ति का कायोत्सर्ग किया, तत्सबधी आलोचना करने की मै इच्छा करता हूँ। मै रत्नत्रयस्वरूप परमात्मा का ध्यान है लक्षण जिसका ऐसी समाधिभक्ति की सदा अर्चना, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय का लाभ हो, सुगति मे गमन हो, सम्यक् प्रकार आधिव्याधि-उपाधिरहित समाधिपूर्वक मरण हो मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूप सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

[इति श्रावक प्रतिक्रमण समाप्त]

ईर्यापथ भक्ति

स्रग्धरा

नि:संगोऽहं जिनानां सदन- मनुपमं त्रि·परीत्येत्य भक्त्या।
स्थित्वा नत्वा[1]निषद्यो-च्चरण-परिणतोऽन्तः शनै-र्हस्त-युग्मम्॥
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम, दुरित-हरं कीर्तये शक्र-वन्द्यम्।
निन्दा-दूरं सदाप्तं क्षय-रहित-ममुं ज्ञान-भानुं जिनेन्द्रम्॥१॥

अन्वयार्थ—(अह) मै (नि सग) मन-वचन-काय से शुद्ध होकर अथवा ससार सबन्धी सुखो की अभिलाषा/इच्छा से रहित, निस्पृह हुआ (भक्त्या) भक्ति से (जिनाना अनुपम सदन) जिनेन्द्र देव के उपमा रहित जिनालय (एत्य) आकर (त्रि परीत्य) तीन प्रदक्षिणा देकर (स्थित्वा) खड़ा होकर। पश्चात् (नत्वा) नमस्कार करके (निषद्य) बैठकर (अन्त शनै उच्चरण परिणत) मन मे धीरे/मन्द स्वर से उच्चारण करता हूँ (हस्तयुग्मम्) दोनो हाथो को (भाले सस्थाप्य) ललाट पर रखकर (बुद्ध्या) बुद्धिपूर्वक (मम) मेरे (दुरितहर) पाप को हरने वाले (शक्रवन्द्य) इन्द्रो से वन्दनीय (निन्दादूर) निन्दा से दूर/निर्दोष (क्षयरहित) अविनाशी (ज्ञानभानु) ज्ञानसूर्य (आप्त) वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी ऐसे (अमु) इन जिनेश्वर की (सदा) सर्वदा/हमेशा (कीर्तये) स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—मैं त्रियोगो की शुद्धिपूर्वक, निस्पृह व नि शक होकर भक्ति से तीन लोक के स्वामी के उपमा रहित जिनालय मे आकर तीन प्रदक्षिणा देकर खड़ा होता हूँ। फिर गवासन, पचाग आसन या अष्टाग से नमस्कार करके बैठकर मन मे मन्द-मन्द स्वर से उच्चारण करता हूँ। दोनो हाथो को कमलाकार से जोड़कर भक्ति से मस्तक पर रखता हूँ, तथा बुद्धिपूर्वक मेरे पापहर्ता, सौ इन्द्रो से वन्दनीय, १८ दोषो से रहित अविनाशी, केवलज्ञानसूर्य से प्रतापित, वीतरागी, सर्वज्ञ हितोपदेशी ऐसे इन जिनेश्वर की सदा स्तुति करता हूँ।

वसन्ततिलका

श्रीमत् पवित्र-मकलंक-मनन्त-कल्पम्,
स्वायंभुवं सकल-मगलमादि-तीर्थम्।

---

१ "गत्वा" पाठ भी है।

नित्योत्सवं मणिमयं निलयं जिनानाम्,
त्रैलोक्य-भूषणमहं शरणं प्रपद्ये ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) शोभायुक्त, परम ऐश्वर्य सहित (पवित्रम्) पवित्र (अकलङ्कम्) निर्दोष, कलक रहित (अनन्त कल्पम्) अनन्त काल से जिनकी रचना चली आ रही है (सकल मगलम्) समस्त जीवो के लिये मगल रूप (आदितीर्थं) अद्वितीय तीर्थ स्वरूप (नित्योत्सव) निरन्तर होने वाले उत्सवो युक्त (मणिमय) मणियो से निर्मित (त्रैलोक्यभूषण) तीन लोको के आभूषण रूप (जिनानाम्) जिनेन्द्रदेव के (स्वायभुव निलय) अकृत्रिम आलय-"जिनालयो" की (शरण प्रपद्ये) शरण को प्राप्त होता हूँ ।

भावार्थ—जो चैत्यालय समवशरण की शोभा रूप ऐश्वर्य से सहित हैं, जिनेन्द्रदेव के सबध से पवित्र है, कलक से रहित हैं, जिनकी विविध प्रकार के मगल होते रहते है, जो अद्वितीय तीर्थ रूप हैं, अष्टाह्निका, दसलक्षण, पूजा-विधान महाभिषेक, महायज्ञ आदि उत्सव जहाँ निरन्तर होते रहते है जो विविध मणियो से मडित है तीनो लोको का आभूषण रूप है ऐसे अकृत्रिम चैत्यालयो की शरण को मै प्राप्त होता हूँ ।

अनुष्टुप

श्रीमत्परम-गम्भीर, स्याद्वादामोघ-लाञ्छनम् ।
जीयात्-त्रैलोक्यनाथस्य, शासनं जिनशासनम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) अन्तरग-बहिरग लक्ष्मी से पूर्ण (परम-गभीर) अत्यन्त गभीर (स्याद्वाद-अमोघ-लाञ्छनम्) स्याद्वाद जिसका सार्थक/सफल चिह्न है एव (त्रैलोक्यनाथस्य शासनम्) तीन लोक के स्वामी-चक्रवर्ती आदि पर जो शासन करने वाला है ऐसा (जिनशासन) जिनशासन (जीयात्) जयवन्त रहे ।

भावार्थ—जो अनेक प्रकार की अन्तरग लक्ष्मियो से भरपूर है, अत्यत गभीर "स्याद्वाद" ही जिसका सफल निर्विवाद चिह्न है, तथा तीन लोको के अधिपति-अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र, मध्यलोक के स्वामी चक्रवर्ती व ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र आदि पर जो शासन करने वाला है ऐसा वीतराग अर्हन्तदेव का "जिनशासन" सदा जयवन्त रहे ।

श्री-मुखालोकनादेव, श्री-मुखालोकन भवेत् ।
आलोकन-विहीनस्य, तत् सुखावाप्तयः कुतः ।।४।।

अन्वयार्थ—(श्रीमुखालोकनात् एव) वीतरागता रूप लक्ष्मी से युक्त जिनेन्द्रदेव के मुख के देखने से ही (श्रीमुख अलोकन) मुक्तिलक्ष्मी के मुख का दर्शन/अवलोकन (भवेत्) होता है । (आलोकनविहीनस्य) जिनेन्द्र देव के दर्शन से रहित जीव को (तत्सुख) वह सुख (कुत) कैसे (अवाप्तय) प्राप्त हो सकता है ?

भावार्थ—वीतराग रूप लक्ष्मी से अलकृत जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने से ही साक्षात् मुक्ति-लक्ष्मी का दर्शन हो जाता है किन्तु जो मनुष्य जिनेन्द्रदेव का दर्शन ही नही करते है, उन्हे वह सुख कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् नही हो सकता ।

वसन्ततिलका

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,
देव ! त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन ।
अद्य-त्रिलोक-तिलक ! प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधि-रयं चुलुक-प्रमाणः ।।५।।

अन्वयार्थ—(देव !) हे वीतराग देव ! (अद्य) आज (त्वदीय-चरणाम्बुज-वीक्षणेन) आपके चरण-कमलो को देखने से/दर्शन से (मे) मेरे (नयनद्वयस्य) दोनो नयनो की (सफलता) सार्थकता (अभवत्) हो गई (त्रिलोकतिलक) हे तीन लोको के तिलक स्वरूप भगवन् ! (अद्य) आज (मे) मुझे (अय ससार-वारिधि) यह ससार सागर (चुलुक प्रमाण) (प्रतिभासते) जान पड़ता है ।

भावार्थ—हे वीतराग भगवान् ! आपके पावन चरण-कमलो के दर्शन से आज मेरे दोनो नयन सफल हो गये है। हे तीन लोको के तिलक भगवन् ! आज आपके दर्शन से मुझे यह अगाध ससार भी मात्र चुल्लूभर पानी सम प्रतीत होता है। जो अल्प समय मे ही बूँद बूँद कर रिक्त होने वाला है ।

अनुष्टुप

अद्य मे क्षालित गात्र नेत्रे च विमलीकृते ।
स्नातोऽह धर्म-तीर्थेषु जिनेन्द्र ! तव दर्शनात् ।।६।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र भगवान् ! (तव दर्शनात्) आपके दर्शन से (अद्य मे गात्र क्षालित) आज मेरा शरीर प्रक्षालित हो गया (नेत्रे विमलीकृते) दोनो नेत्र निर्मल हो गये (च) और (अह) मैने (धर्मतीर्थेषु) धर्मतीर्थो मे (स्नात) स्नान कर लिया ।

भावार्थ—हे जिनेन्द्र भगवान् ! आपके पावन दर्शनो से आज मेरा शरीर पवित्र हो गया, मेरे दोनो नेत्र निर्मल हो गये तथा मैने आज जिनदर्शन कर मानो धर्मतीर्थो मे ही स्नान कर लिया है। ऐसी विशुद्ध अनुभूति मुझे हो रही है।

उपजाति

नमो नमः सत्त्व-हितंकराय, वीराय भव्याम्बुज-भास्कराय ।
अनन्त-लोकाय सुरार्चिताय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय ।।७।।

अन्वयार्थ—(सत्वाहितकराय) प्राणीमात्र का हित करने वाले (भव्य-अम्बुज-भास्कराय) भव्य रूपी कमलो को सूर्य रूप (वीराय) वीर जिन के लिये (नम नम) बार-बार नमस्कार हो। (अनन्त लोकाय) अनन्त पदार्थो को देखने वाले (सुर अर्चिताय) देवो के द्वारा पूजित (देवाधिदेवाय) देवो के भी देव (जिनाय) जिनेन्द्र भगवान् के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समस्त प्राणियो के हितकारी, भव्य रूपी कमलो को विकसित करने के लिये सूर्यरूप ऐसे भगवान महावीर को बारम्बार नमस्कार है तथा जिनके पूर्ण ज्ञान मे त्रिलोक के अनन्त पदार्थ युगपत् दिखाई देते है, जो देवो के द्वारा पूजा को प्राप्त है ऐसे देवो के भी देव जिनेन्द्रदेव को मेरा नमस्कार हो।

नमो जिनाय त्रिदशार्चिताय, विनष्ट-दोषाय गुणार्णवाय ।
विमुक्ति-मार्ग-प्रतिबोधनाय, देवाधि-देवाय नमो जिनाय ।।८।।

अन्वयार्थ—(त्रिदश अर्चिताय) देवो से पूजित (विनष्ट दोषाय) नष्ट हो गए है दोष जिनके जो (गुण-अर्णवाय) गुणो के सागर है ऐसे

(जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो। (विमुक्तिमार्गप्रतिबोधकाय) जो विशेष रूप से मुक्ति मार्ग के उपदेश को देने वाले हैं ऐसे (देवाधिदेवाय) देवो के भी देव (जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—जो चतुर्णिकाय देवो से पूज्य है, जिनके १८ दोष क्षय हो गये है तथा जो अनन्त गुणो के सागर है, ऐसे वीतराग जिनेन्द्र को नमस्कार है। जो मुमुक्षु जीवो को मुक्ति मार्ग का उपेदश देते हैं ऐसे देवो के भी देव अरहत देव/जिनेन्द्र देव को मेरा नमस्कार हो।

वसन्ततिलका

देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग !
सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! सिद्ध ! महानुभाव !
त्रैलोक्यनाथ ! जिन-पुगव ! वर्धमान !
स्वामिन्! गतोऽस्मि शरण चरण-द्वयं ते ।।९।।

अन्वयार्थ—(देवाधिदेव ! परमेश्वर ! वीतराग ! सर्वज्ञ ! तीर्थंकर ! सिद्ध ! महानुभाव ! त्रैलोक्यनाथ ! जिनपुङ्गव ! वर्धमान ! स्वामिन् !) हे देवाधिदेव ! हे परमेश्वर ! हे वीतराग ! हे सर्वज्ञ ! हे तीर्थंकर ! हे सिद्ध ! हे महानुभाव ! हे त्रैलोक्यनाथ ! हे जिन श्रेष्ठ ! हे वर्धमान ! हे स्वामिन् ! मै (ते) आपके (चरणद्वय) दोनो चरणयुगल की (शरण) शरण को (गत अस्मि) प्राप्त होता हूँ।

भावार्थ—जो वीतरागी, परमदेव, सर्वज्ञ, तीर्थंकर, सिद्ध, महानुभाव, त्रैलोक्यनाथ, जिनश्रेष्ठ, वर्धमान स्वामी आदि विविध नामो से पुकारे जाते है ऐसे वीतराग देव ! मै आपके पूज्य, वन्दनीय चरण-युग की शरण मे आया हूँ।

आर्या

जित-मद-हर्ष-द्वेषाजित-मोह-परीषहाः जित-कषायाः ।
जित-जन्म-मरण-रोगाजित-मात्सर्या जयन्तु जिनाः ।।१०।।

अन्वयार्थ— जिन्होने (जितमद-हर्ष-द्वेषा) जीता है मद-हर्ष-द्वेष को (जित-मोह-परीषहा) जीता है मोह और परीषहो को (जितकषाया)

जीता है कषायो को (जित-जन्म-मरण-रोगा) जीता है जन्म-मरण रूप रोगो को (जितमात्सर्या) जीता है ईर्ष्या भावो को ऐसे (जिना) जिनेन्द्रदेव (जयन्तु) जयवन्त हो।

भावार्थ—जिन्होने मद-हर्ष-द्वेष-मोह-परीषह-कषाय-जन्म-मरणरूपी रोग तथा ईर्ष्या आदि विभावपरिणामो को जीत लिया है, वे जिनदेव/वीतराग प्रभु सदा जयवन्त हो।

जयतु जिन वर्धमानस्त्रिभुवन-हित-धर्म-चक्र-नीरज-बन्धुः ।
त्रिदशपति-मुकुट-भासुर, चूडामणि-रश्मि-रञ्जितारुण-चरणः ।।११।।

अन्वयार्थ—जो (त्रिभुवनहित-धर्मचक्र-नीरजबन्धु) तीन लोको के जीवो का हितकारक धर्मचक्र रूपी सूर्य है, जिनके (अरुण-चरण) लाल-लाल चरण (त्रिदश-पति-मुकुट-भासुर-चूडामणि-रश्मि-रञ्जित) इन्द्र के मुकुट मे दीप्तिमान चूडामणि की किरणो से अत्यधिक शेभायमान है, ऐसे (जिनवर्धमान) महावीर जिनेन्द्र (जयतु) जयवन्त हो।

भावार्थ—जिस प्रकार सूर्य, पद्म को विकसित करता है उसी प्रकार जिनका धर्मचक्ररूपी सूर्य तीनो लोको के भव्यजीवरूपी कमलो का हित करने वाला है। जिनके लाल-लाल चरण १०० इन्द्रो के मुकुटो मे देदीप्यमान चूडामणि की किरणो से अत्यधिक शोभायमान है, ऐसे महावीर भगवान सदा जयवन्त हो।

हरिणी

जय जय जय त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे ,
नुद नुद नुद स्वान्तं-ध्वान्त जगत्-कमलार्क नः ।
नय नय नय स्वामिन् ! शान्तिं नितान्त-मनन्तिमाम्,
नहि नहि नहि त्राता, लोकैक-मित्र-भवत्-परः ।।१२।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य-काण्ड-शोभि-शिखामणे !) तीनो लोको के समूह पर शोभायमान शिखामणि/चूडामणि स्वरूप हे भगवान् ! (जय-जय-जय) आपकी जय हो, जय हो, जय हो। (जगत्कमलार्क) तीन जगत् के ससारी प्राणियो रूपी कमलो को विकसित करने के लिये सूर्य स्वरूप हे भगवान् ! (न स्वान्तध्वान्तं) हमारे हृदय के अन्धकार को

(नुद-नुद-नुद) नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये स्वामिन् ! हे स्वामी (अनन्तिमा शान्ति) अविनाशी/शाश्वत शान्ति को (नितान्त) अवश्य ही (नय-नय-नय) प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये (लोकैकमित्र !) हे लोक के एकमात्र मित्र ! (भवत्पर) आपसे भिन्न/ आपको छोडकर दूसरा कोई (त्राता) रक्षक (नहि-नहि-नहि) नही है, नही है, नही है।

भावार्थ—हे अधो-मध्य-ऊर्ध्व तीनो लोको के समूह पर सुशोभित, चूडामणि रूप त्रिलोकीनाथ ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे सूर्यसम त्रिजगत् के भव्यरूपी कमलो को विकसित करने वाले "सूर्यस्वरूप भगवन्" ! हमारे हृदय मे वासित मिथ्यात्व व अज्ञान रूपी अन्धकार को नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये, नष्ट कीजिये। हे स्वामिन् ! कभी भी नष्ट नही होने वाली शाश्वत शान्ति को मुझे/ हमारे लिये प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये, प्राप्त कराइये। हे तीन लोक के अद्वितीय मित्र ! भगवान् ! आपको छोडकर इस गहन ससार मे मेरा अन्य कोई रक्षक नही है, नही है। नही है, अत हे नाथ मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। मुझे ससार के दु खो से बचाइये।

बसन्ततिलका

चित्ते मुखे शिरसि पाणि-पयोज-युग्मे,
भक्ति स्तुतिं विनति-मञ्जलि-मञ्जसैव ।
चेक्रीयते चरिकरीति चरीकरीति,
यश्चर्करीति तव देव ! स एव धन्यः ।।१३।।

अन्वयार्थ—(देव) हे स्वामिन् ! (य) जो (अञ्जसा एव) यथार्थ रूप से (चित्ते) मन मे (तव) आपकी (भक्ति) भक्ति को (चेक्रीयते) करता है। (मुखे तव स्तुति) मुख मे आपकी स्तुति को (चरिकरीति) करता है (शिरसि तव विनति) शिर पर आपकी विनती को (चरीकरीति) करता है (पाणिपयोजयुग्मे) हस्तकमल युगल मे (तव अञ्जलि चर्करीति) आपके लिये अञ्जलिबद्ध करता है (स एव धन्य) वही धन्य है।

भावार्थ—हे त्रिलोकीनाथ स्वामिन् ! जो भव्यात्मा अपने दोनो हस्तकमलो अञ्जलि बाँधकर अर्थात् दोना हाथो को कमलाकर रूप से जोड़कर मन से

श्रद्धापूर्वक आपकी भक्ति करता है, वचनो से आपकी स्तुति करता है तथा काय से आपके चरणो मे नत-मस्तक होता है/शिर झुकाता है, आपको प्रणाम करता है यथार्थ मे वही धन्य है।

मन्दाक्रान्ता

जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पाद-पद्मं न लभ्यम्,
तच्चेत्-स्वैरं चरतु न च दुर्देवता सेवतां स ।
अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधास्ते,
क्षुद्-व्यावृत्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ।।१४।।

अन्वयार्थ—यदि किसी जीव को (जन्म-उन्मार्ज्य) अपने ससार भ्रमण से छूटना है/जन्म का माजर्न-निवारण करना है तो (स) वह (भवत पाद पद्म भजतु) आपके चरण-कमलो की सेवा करे। (चेत् तत् न लभ्य) यदि आपके चरण-कमल प्राप्त न हो सके तो (स्वैर चरतु) अपनी इच्छानुसार आचरण करे परन्तु (दुर्देवता न सेवताम्) कुदेवो की उपासना न करे। (बुभुक्षु) भूखा मनुष्य (इह यत् सुलभ) यहॉ जो सुलभ है उस (अन्न अश्नाति) अन्न को खाता है (चेत्) यदि (दुर्लभ) अन्न दुर्लभ (आस्ते) है तो (मुधा क्षुद् व्यावृत्यै) व्यर्थ ही भूख को दूर करने के लिये (कालकूट क) कालकूट-विष को कौन (कवलयति बुभुक्षु) भूखा खाता है ? कोई नही।

भावार्थ—जो कोई भव्यात्मा ससार के जन्म-मरण के दु खो से छूटना चाहता है वह सर्वप्रथम आप जिनदेव के चरण-कमलो की सेवा करे। यदि जिनदेव चरण-कमल प्राप्त न हो सके तो अपनी इच्छानुसार आचरण करे, उससे हमे कोई हानि नही। परन्तु कभी भूलकर भी कुदेवो की उपासना न करे। सत्य ही है कि भूखा मनुष्य जो भी उसे सुलभ है उस अन्न को खाता है, परन्तु अपनी क्षुधा को दूर करने के लिये कालकूट विष को कोई नही खाता।

हे भव्यात्माओ ! यहॉ पूज्यपाद स्वामी का यह तात्पर्य है कि कुदेवो की उपासना विषवत् है। विषमिश्रित लड्डू देखने मे अच्छे हो, पर खाते ही जान ले लेते हैं ठीक वैसे ही कुदेवो की उपासना अनन्त ससार मे परिभ्रमण कराने वाली है अत इसका कभी सेवन न करो।

"देव की वन्दना आवश्यक है" ऐसा मानकर कुदेव की आराधना नही करना चाहिये। किसी क्षेत्र या काल मे सुदेव का सुयोग न मिल पावे तो हृदय मे सुदेव स्मरण करते हुए नियम का पालन करे परन्तु कुदेव-कुगुरु/रागी-द्वेषी देव-गुरुओ की आराधना न करे।

शार्दूलविक्रीडितम्

रूपं ते निरुपाधि-सुन्दर-मिद, पश्यन् सहस्रेक्षणः,
प्रेक्षा-कौतुक-कारिकोऽत्र भगवन् नोपैत्यवस्थान्तरम्।
वाणी गद्गद्यन् वपुः पुलकयन्, नेत्र-द्वयं स्रावयन्,
मूर्द्धान नमयन् करौ मुकुलयंश्चेतोऽपि निर्वापयन्।।१५।।

अन्वयार्थ—[भगवन् !] हे नाथ ! (सहस्र-ईक्षण प्रेक्षा कौतुककारि) हजारो नेत्रो से देखने का कुतूहल/उत्कठा/उत्सुकता करने वाले (निरुपाधिसुन्दर ते इद रूप) उपाधि अर्थात् वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही सुन्दर आपके इस रूप को (पश्यन्) देखने वाला (क अत्र) कौन मानव इस जगत् मे (वाणी गद्गद्यन्) वाणी को गद्गद् करता हुआ, (वपु पुलकयन्) शरीर को रोमाञ्चित करता हुआ (नेत्रद्वय स्रावयन्) दोनो नेत्रो से हर्षाश्रु झराता हुआ (मूर्धान नमयन्) मस्तक को नमाता हुआ (करौ मुकुलयन्) दोनो हाथो को जोडता हुआ और (चेत अपि निर्वापयन्) चित्त को सतुष्ट करता हुआ (अवस्थान्तर न उपैति) दूसरी अवस्था को प्राप्त नही होता ? अर्थात् आपके इस रूप को देखकर कौन पुरुष अपनी अवस्था को नही बदल लेता ?

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! आपका रूप वस्त्र, आभूषण आदि के बिना ही अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है तथा दर्शको को कौतुक उत्पन्न करने वाला है। ससार मे ऐसा कौन पुरुष है जो आपके सुन्दर रूप को देखकर अपनी अवस्था को न बदल ले। अर्थात् आपके सुन्दर रूप को देखकर सब जीवो की अवस्था मे परिवर्तन हो जाता है। हजारो नेत्रो को धारण करने वाला इन्द्र भी आपके सुन्दर प्रशान्तमयी रूप को देखकर अपनी गद्गद्मयी वाणी से सहस्रनामो से आपकी स्तुति करते हुए ऐसा रोम-रोम मे पुलकित होता है जिससे ललित ताडव नृत्य करता है। जो जीव हर्षाश्रुओ से रोमांचित होता हुआ दोनो

हाथो को जोडता हुआ आपके चरणो मे नतमस्तक होता है, वह आपके दर्शन से अत्यन्त सतुष्ट होता है।

त्रस्तारातिरिति त्रिकालविदिति त्राता त्रिलोक्या इति,
श्रेयः सूति-रितिश्रियां निधिरिति, श्रेष्ठः सुराणामिति।
प्राप्तोऽहं शरणं शरण्य-मगतिस्त्वा तत्-त्यजोपेक्षणम्,
रक्ष क्षेमपदं प्रसीद जिन! किं, विज्ञापितैर्गोपितैः ।।१६।।

अन्वयार्थ—हे भगवान्! (त्रस्त आराति इति) आप शत्रुओ को नष्ट करने वाले हैं, इसलिये (त्रिकालविद् इति) आप तीनो लोको के ज्ञाता है, इसलिये (त्रिलोक्या त्राता इति) आप तीन लोको के रक्षक है इसलिये (श्रेय सूतिरिति) आप कल्याण की उत्पत्ति करने वाले है इसलिये (श्रिया निधिरिति) लक्ष्मी की निधि हैं इसलिये और (सुराणा श्रेष्ठ) देवो मे श्रेष्ठ है इसलिये (अगति अह) अन्य उपाय से रहित ऐसा मै (शरण्य) शरण देने मे निपुण (क्षेमपद) कल्याण/कुशल-मगल के स्थानभूत (त्वा शरण) आपकी शरण को (प्राप्त) प्राप्त हुआ हूँ (तत्) इसलिये (जिन!) हे जिनदेव (उपेक्षण त्यज) उपेक्षा को छोडिये (रक्ष) मेरी रक्षा कीजिये (प्रसीद) प्रसन्न होइये (विज्ञपितै गोपितै किम्) मेरी इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या प्रयोजन? अर्थात् इस प्रार्थना को गुप्त रखने से क्या लाभ? आप सर्वज्ञ सभी जानते हैं।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो! आप घातिया कर्मरूप शत्रुओ का क्षयकर त्रिकालज्ञ हुए इसलिये आप तीनो लोको के रक्षक है। हे नाथ आप तीनो लोको के जीवो का कल्याण करने वाले बहिरग समवशरणादि व अन्तरग मे अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी के स्वामी है। लोक के देवो मे श्रेष्ठ देवाधिदेव आप ही है। अन्य कोई देव मेरा रक्षक नही हो सकता है। इस जगत् मे एक अद्वितीय शरण देने मे निपुण, कल्याण-मगल-सर्वकुशल के स्थानभूत हे प्रभो! मै आज आपकी शरण मे आ चुका हूँ। हे जिनदेव! मेरे प्रति अब उपेक्षा को छोड़ियो। मेरी रक्षा कीजिये। मुझ पर प्रसन्न होइये। मै आपनी वेदना को प्रार्थना को, गुप्त रखूँ यह भी ठीक नही। आप सर्वज्ञ प्रभो! मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिये। मेरा कल्याण कीजिये।

उपजाति

त्रिलोक-राजेन्द्र-किरीट-कोटि-प्रभाभि-रालीढ-पदार-विन्दम् ।
निर्मूल-मुन्मूलित-कर्म-वृक्ष,जिनेन्द्र-चन्द्र प्रणमामि भक्त्या ।।१७।।

अन्वयार्थ—(त्रिलोक-राजेन्द्र-किरीट-कोटि-प्रभाभि -आलीढ-पदारविन्दम्) तीनो लोको के अधिपति, राजा, महाराजा और इन्द्रो के करोड़ो मुकुटो की प्रभा से जिनके चरण-कमल सुशोभित हो रहे हैं (निर्मूलम् उन्मूलित कर्मवृक्षम्) जिन्होने कर्मरूपी वृक्ष को जड़ से उखाड़ दिया है या निर्मूल कर उखाड दिया है, ऐसे (जिनेन्द्रचन्द्र) चन्द्रमा के समान शीतलता/शान्ति देने वाले जिनेन्द्र देव को अथवा चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को (भक्त्या प्रणमामि) मैं भक्ति से प्रणाम करता हूँ ।

भावार्थ—जो तीनो लोको के स्वामी है, मुकुटधारी राजा महाराजा चक्रवर्ती व इन्द्र आदि जिनके चरणो मे नतमस्तक है, जिन्होने कर्मवृक्ष को जड से उखाड दिया है, ऐसे चन्द्रसम शीतलता/शान्तिदायक श्री जिनदेव या चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को मै भक्ति से प्रणाम करता हूँ।

आर्या

करचरणतनुविघाता, दटतो निहितः प्रमादत. प्राणी ।
ईर्यापथमिति भीत्या, मुञ्चे तद्दोषहान्यर्थम् ।।१८।।

अन्वयार्थ—(प्रमादत अटत) प्रमाद से गमन करते हुए मेरे (कर-चरण-तनु-विघातात्) हाथ-पैर अथवा शरीर के आघात मे (प्राणी निहत) प्राणी का घात हुआ है (इति) इस प्रकार (भीत्या) भय से (तद्दोषहान्यर्थम्) उस प्राणीघात से उत्पन्न दोषो की हानि के लिए (ईर्यापथ) ईर्यापथ को अर्थात् गमन को (मुञ्चे) छोड़ता हूँ ।

भावार्थ—हे स्वामिन् । गमन करते हुए प्रमाद से अपने हाथ-पैर या शरीर के द्वारा किसी प्राणी का हनन/घात हुआ है, इस भय से मै अब गमन की क्रिया मे लगे दोषो का नाश करने के लिये गमन का त्याग करता हूँ। गमन काल मे लगे दोषो का पश्चात्ताप करता हूँ।

ईर्यापथे प्रचलताऽद्य मया प्रमादा-देकेन्द्रिय प्रमुख जीव निकायबाधा ।
निर्वर्तिता यदि भवेदयुगान्तरेक्षा, मिथ्या-तदस्तु दुरितं गुरुभक्तितो मे ।।१९।।

अन्वयार्थ—(यदि) यदि (अद्य) आज (ईर्यापथे) मार्ग मे (प्रचलता) चलते हुए (मया) मेरे द्वारा (प्रमादत) प्रमाद से (एकेन्द्रिय प्रमुख) एकेन्द्रिय आदि (जीव निकायबाधा) जीवो के समूह को पीडा (निर्वतिता भवेत्) की गई हो (अयुगान्तरेक्षा) चार हाथ भूमि के अन्तराल को न देखा हो—चार हाथ भूमि देखकर गमन नही किया हो तो (मे तद्दुरित) मेरा वह पाप (गुरुभक्तित) गुरु भक्ति से (मिथ्या) मिथ्या (अस्तु) हो ।

भावार्थ—हे भगवन् ! मार्ग मे चलते हुए मेरे द्वारा एकेन्द्रिय आदि जीवो के समूह को पीडा दी गई हो, ईर्यासमिति का पालन नही किया गया हो तो मेरा वह पाप गुरुभक्ति के प्रसाद से मिथ्या हो ।

पडिक्कमामि भंते ! इरिया-वहियाए, विराहणाए, अणागुत्ते, अइग्गमणे, णिग्गमणे, ठाणे, गमणे, चंकमणे, पाणुग्गमणे, बीजुग्गमणे, हरिदुग्गमणे, उच्चारपस्सवणखेल-सिहाण-वियडियपइट्ठावणियाए, जे जीवा एइंदिया वा, बेइंदिया वा, तेइंदिया वा, चउरिंदिया वा, पंचिंदिया वा, णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, सघट्टिदा वा, सघादिदा वा, उद्दाविदा वा, परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेस्सिदा वा, छिदिदा वा, भिंदिदा वा, ठाणदो वा, ठाण-चकमणदो वा, तस्स उत्तरगुणं, तस्स पायच्छित्त-करण, तस्स विसोहि-करण, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, णमोक्कार, पज्जुवास करेमि, ताव काल, पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन ! (इरियावहियाए) ईर्यापथ मे (अणागुत्ते) मन-वचन-काय की गुप्ति रहित होकर (विराहणाए) जो कुछ जीवो की विराधना की है (पडिक्कमामि) उसका मै प्रतिक्रमण करता हूँ ! (अइगमणे) शीघ्र गमन करने मे (णिग्गमणे) चलने की प्रथम क्रिया प्रारभ करने मे (ठाणे) जहाँ कही ठहरने मे (गमणे) गमन मे (चकमणे) हाथ-पैर फैलाने या सकोच करने मे (पाणुग्गमणे) प्राणियो पर गमन करने मे (बीजुग्गमणे) बीज पर गमन करने मे (हरिदुग्गमणे) हरितकाय पर गमन करने मे (उच्चार पस्सवण-खेल-सिहाण-वियडियपइ-ट्ठावणियाए) मल-मूत्र क्षेपण करने मे, थूकने मे, कफ डालने मे, इत्यादि विकृतियो के क्षेपण मे । (जे) जो (एइदिया वा, बेइदिया वा, तेइंदिया

वा, चउरिंदिया वा, पचिदिया वा) एकेद्रिय, द्वीन्द्रिय, तीन्द्रिय, चौइन्द्रिय, पचेन्द्रिय (जीवा) जीव (णोल्लिदा वा, पेल्लिदा वा, सघट्टिदा वा सघादिदा वा परिदाविदा वा, किरिंच्छिदा वा, लेम्सिदा वा, छिदिदा वा भिरिदा वा हाणदो वा ठाण, चकमणदो वा) रोके गये हो, स्वस्थान से दूसरे स्थान रखे गये हो, एक दूसरे की रगड से पीड़ित हुए हो, समस्त जीव इकट्ठे एक जगह रखे गये हो, सतापित किये गये हो, चूर्ण कर दिये हो, मूर्छित किये गये हो, टुकडे-टुकडे कर दिये हो, विदीर्ण किये हो, अपने ही स्थान पर स्थित हो, गमन कर रहे हो ऐसे जीवो की मुझ से (विराहणाए) जो कुछ विराधना हुई हो (तस्स पायच्छिसकरण) उसका प्रायश्चित करने के लिये (तस्स विसोहिकरण) उसकी विशुद्धि करने के लिये (पडिक्कमामि) मै प्रतिक्रमण करता हूँ।

(जाव) जब तक मै (अरहताण भयवताण णमोक्कार) अरहत भगवन्तो को नमस्कार करता हूँ, (पज्जुवास करेमि) उनकी उपासना करता हूँ (ताव काल) उतने काल तक (पावकम्म) अशुभ कर्मो/पाप कर्मो को (दुच्चरिय) अशुभ-चेष्टाओ को (वोस्सरामि) छोडता हूँ।

भावार्थ—हे भगवन्! ईर्यापथ से गमन मे त्रिगुप्ति रहित होकर गमन करने से मेरे द्वारा अतिशीघ्र गमन करने से, सबसे पहले गमने करने मे, यत्र-तत्र कही भी ठहरने, गमन मे, हाथ पैर फैलाने या सकोचने मे, प्रमादवश सूक्ष्म प्राणियो पर गमन मे, बीज पर चलने मे, हरितकाय/घास/अकुर आदि पर चलने मे, प्रमाद वश बिना देखे/शोधे स्थान पर मल-मूत्र-क्षेपण करने मे, थूकने मे, कफ डालने आदि विकृतियो के क्षेपण मे एकन्द्रियादि जीवो की विराधना हुई हो, उनको इष्टस्थान पर जाने से रोका हो, इष्टस्थान से दूसरे स्थान मे रखा हो, घर्षण से वे पीड़ित हो, सब जीव एक स्थान पर रखे गये हो, सतप्त किये हो, चूर्ण किये हो, चूर्ण, मूर्च्छित किये हो, टुकड़े-टुकड़े हुए हो या भेदे गये हो इस प्रकार स्वस्थान मे ठहरे हुए या चलते हुए जीवो की मुझसे प्रमादवश किसी भी प्रकार विराधना हुई हो, उसके प्रायश्चित रूप, शुद्धिकरणरूप प्रतिक्रमण को मैं करता हूँ। अरहत भगवान की आराधना से सभी पाप क्षय को प्राप्त होते हैं अत मैं जब तक अरहत भगवान का स्तवन-वन्दन करता हूँ तब तक समस्त पापो का दुश्चेष्टाओ का त्याग करता हूँ।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।।

ॐ नमः परमात्मने नमोऽनेकान्ताय शान्तये ।

मै परमात्मा के लिये नमस्कार करता हूँ, तथा अनेकान्त स्वरूप तत्त्वो का निरूपण करने वाले और अत्यत शान्त वीतराग परमदेव के लिये मै नमस्कार करता हूँ।

इच्छामि भंते ! इरियावहियस्स आलोचेउं पुव्वुत्तरदक्खिणपच्छिम चउदिसु विदिसासु विहरमाणेण, जुगंतर दिट्ठिणा, भव्वेण, दट्ठव्वा । पमाददोसेण डवडवचरियाए पाण-भूद-जीव-सत्ताणं उवघादो कदो वा कारिदो वा कीरंतो वा समणुमण्णिदो, तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! (इरियावहियस्स आलोचेउ) ईर्यापथ के दोषो की आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (पुव्वु-तरदक्खिण-पच्छिम चउदिसुविदिसासु) पूर्व-उत्तर-दक्षिण-पश्चिम चारो दिशाओ व विदिशाओ [आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य, ऐशान] मे (विहरमाणेण) विहार करते हुए (जुगतर दिट्ठिणा भव्वेणदट्ठव्वा) भव्य जीव के द्वारा चार हाथ प्रमाण भूमि को दृष्टि से देखकर चलते हुए (पमाद दोसेण) प्रमाद के वश से (डवडवचरियाए) जल्दी-जल्दी ऊपर को मुख कर चलने से (पाण-भूद-जीव-सत्ताण) विकलेन्द्रिय, वनस्पतिकायिक, पचेन्द्रिय व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक जीवो का (उवघादो) उपघात (कदो वा) स्वय किया हो, (कारिदो वा) कराया हो या (कीरतो व समणुमण्णिदो) करते हुए की अनुमोदना की हो तो (तस्स) तत्सबधी (मे) मेरे (दुक्कड) दुष्कृत्य (मिच्छा) मिथ्या हो।

भावार्थ—चार दिशा व विदिशाओ मे गमन करते हुए प्रमाद वश जीवो की हिंसा की हो, कराई हो अनुमोदना भी की हो तो मैं तत्सबधी दोषो की आलोचना करता हूँ। मेरा दुष्कृत्य मिथ्या हो।

आलोचना—निन्दा व गर्हा को आलोचना कहते हैं।

निन्दा—दुष्कार्य के प्रति हृदय मे पश्चात्ताप का होना।

गर्हा—गुरु के समीप जाकर दोषों का प्रायश्चित करना गर्हा है।

पाण—दो-तीन-चतुरीन्द्रिय जीव/विकलेन्द्रिय जीव।

भूत—वनस्पतिकायिक।

जीव—पञ्चेन्द्रिय और।

सत्व—पृथ्वी, जल, अग्नि और वायुकायिक।

द्वित्रिचतुरिन्द्रिया प्राणा भूतास्ते तरव स्मृता ।
जीवा पचेन्द्रिया ज्ञेया शेषा सत्वा प्रकीर्तिता ।।

शार्दूलविक्रीडितम्

पापिष्ठेन दुरात्मना जडधिया, मायाविना लोभिना,
रागद्वेषमलीमसेन मनसा, दुष्कर्म यन्निर्मितम्।
त्रैलोक्याधिपते! जिनेन्द्र! भवतः श्रीपाद मूलेऽधुना,
निन्दापूर्वमह जहामि सततं, निर्वर्तये कर्मणाम्।।१।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्याधिपते!) हे तीन लोक के अधिपति (जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र देव (पापिष्ठेन, दुरात्मना, जडधिया) मुझ पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि ने (मायाविना, लोभिना) मायाचारी लोभी ने (रागद्वेषमलीमसेन मनसा) राग-द्वेष की मलीनता से मलीन मनसे (यत्) जो (दुष्कर्म) पाप कर्म (निर्मितम्) किये है (अधुना) अब (भवत श्री पादमूले) आप श्री जिनदेव के चरण मूल मे (अह) मै (कर्मणाम् निर्वर्तये) कर्मो का क्षय करने के लिये (सतत) हमेशा के लिये (निन्दापूर्वम्) निन्दा पूर्वक/पश्चात्ताप करता हुआ (जहामि) छोड़ता हूँ।

भावार्थ—हे तीन लोक के स्वामी! हे जिनेन्द्र देव! मुझ पापी, दुष्ट, मन्दबुद्धि, मायावी, लोभी राग-द्वेष की मलीनता से मलीन मन ने जो भी पाप उपार्जन किये है, आप श्री के चरण कमलो मे पापकर्मो का मै मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा के लिये त्याग करता हूँ।

जिनेन्द्रमुन्मूलित कर्मबन्ध, प्रणम्य सन्मार्गकृत स्वरूपम्।
अनन्तबोधादि भवगुणौघ, क्रियाकलापं प्रकटं प्रवक्ष्ये ।।२।।

अन्वयार्थ—जिन्होने (कर्मबन्ध उन्मूलित) चार घातिया कर्म को जड़ से क्षय कर दिया (सन्मार्गकृतस्वरूपम्) समीचीन मुक्ति मार्ग अनुसार अपने स्वरूप को प्रकट किया है (अनन्तबोधादि भव गुणौघ)

अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख-वीर्य को धारण करने वाले (जिनेन्द्रम्) जिनेन्द्र देव को (प्रणम्य) नमस्कार करके मै (क्रियाकलाप प्रगट प्रवक्ष्ये) क्रिया-कलाप को प्रकट रूप कहूँगा।

भावार्थ—चार घातिया कर्मो रहित, अनन्त चतुष्टय के स्वामी जिनेन्द्र/ अरहत देव को मै नमस्कार करता हूँ।

।। इति श्री ईर्यापथ भक्ति ।।

सिद्धभक्ति

स्रग्धरा

सिद्धा - नुद्धूत - कर्म - प्रकृति-
समुदयान् साधितात्मस्वभावान्,
वन्दे सिद्धि-प्रसिद्ध्यै तदनुपम-
गुण - प्रग्रहाकृष्टि - तुष्टः।
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिः,
प्रगुण-गुण-गणोच्छादि-दोषापहाराद्,
योग्योपादान - युक्त्या दृषद्,
इह यथा हेम - भावोपलब्धिः ।।१।।

अन्वयार्थ—(तत्-अनुपम-गुण-प्रग्रह-आकृष्टि-तुष्ट) सिद्ध भगवान् के उन प्रसिद्ध उपमातीत गुण रूपी रस्सी के आकर्षण से सतुष्ट हुआ मैं-पूज्यपाद आचार्य (उद्धूत-कर्मप्रकृति-समुदयान्) नष्ट कर दिया है अष्ट कर्मों की प्रकृतियो के समूह को जिन्होने तथा (साधित-आत्मस्वभावन्) प्राप्त कर लिया है आत्मा के ज्ञान-दर्शन आदि स्वभाव को जिन्होने ऐसे (सिद्धान्) सिद्ध भगवानो को (सिद्धि-प्रसिद्धयै) स्व आत्मा की सिद्धि/मुक्ति की प्राप्ति के लिये (वन्दे) वन्दना/नमस्कार करता हूँ। (इह) इस लोक मे (यथा) जिस प्रकार (योग्य-उपादान-युक्त्या) योग्य उपादान व निमित्त अथवा अन्तरग-बहिरग कारणो की सयोजना से (दृषद) स्वर्णपाषाण (हेमभाव-उपलब्धि) स्वर्ण पर्याय को प्राप्त होता है, उसी प्रकार (प्रगुणगुणगणो च्छादि-दोष-अपहारात्) श्रेष्ठतम ज्ञानादि गुणो के समूह को आवृत करने वाले ज्ञानावरणादि कर्मों अथवा राग-द्वेष-मोह आदि दोषो के क्षय हो जाने से (स्व-आत्मा उपलब्धि) अपने शुद्ध आत्मस्वरूप-वीतराग, सर्वज्ञ, अविनाशी, अनन्त, आत्मतत्त्व की प्राप्ति हो जाना (सिद्धि) मुक्त अवस्था कही गयी है।

भावार्थ—जिस प्रकार स्वर्णपाषाण मे शुद्धस्वर्ण पर्याय प्राप्त करने की योग्यता है किन्तु किट्ट-कालिमा आदि से युक्त होने से वह शुद्धपर्याय प्रकट नही हो पाती। जब बुद्धिमान व्यक्ति १६ ताव देकर उसे अग्नि से

सतप्त कर किट्टकालिमा को दूर कर देता है तब स्वर्ण पाषाण अपने वास्तविक रूप को प्राप्त हो शुद्धता से युक्त स्वर्ण पर्याय को प्राप्त हो । जाता है। उसी प्रकार "सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया" शुद्धनय से प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध भगवन्तो के समान शुद्ध है। प्रत्येक भव्यात्मा सिद्ध-अवस्था/सिद्ध पर्याय को प्राप्त करने की योग्यता रखता है, परन्तु ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मो से आवृत हुआ, कर्मकीट्टिका से मलीन होता हुआ शुद्ध मुक्त पर्याय को प्रकट नही कर पाता है। जब भव्यात्मा "१२ तप और ४ आराधना रूप १६ ताव" रूप तपश्चरणादि करणो/निमित्तो की सयोजना करता है तब विकारी भाव नष्ट होते ही कर्म-कीट से रहित हो आत्मा सिद्ध/मुक्त पर्याय को प्राप्त होता है। जिन भव्य जीवो ने अष्टकर्मो का क्षय कर दिया है आत्मा के सत्यस्वरूप को प्राप्त कर लिया है वे सिद्ध कहलाते है।

यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये, उनके गुणो का स्मरण करते हुए, पूर्ण विशुद्ध अवस्था को प्राप्त सिद्ध भगवन्तो की वन्दना की है। यहाँ स्तुतिकर्ता आचार्य ने "गुणप्रग्रहाकृष्टितुष्ट" पद दिया यह अपने आपमे विचारणीय है—जैसे कूप/बावड़ी आदि मे गिरी वस्तु को रस्सी के माध्यम से ऊपर खीचा जाता है, वैसे ही ससार रूपी गहन कूप मे गिरे भव्य जीवो को सिद्ध परमेष्ठियो के श्रेष्ठ/महानतम गुणो मे की जाने वाली भक्ति रूपी रस्सी ही तिराने मे/ऊपर लाने मे समर्थ हो सकती है।

नाभावः सिद्धि-रिष्टा न,
निज-गुण-हतिस्तत् तपोभिर्न युक्तेः,
अस्त्यात्मानादि - बद्धः,
स्व-कृतज-फल-भुक्-तत्-क्षयान् मोक्षभागी ।
ज्ञाता दृष्टा स्वदेह-प्रमिति-
रुपसमाहार - विस्तार - धर्मा,
ध्रौव्योत्पत्ति - व्ययात्मा,
स्व-गुण-युत-इतो नान्यथा साध्य-सिद्धिः ।।२।।

अन्वयार्थ—(अभाव सिद्धि इष्टा न) आत्मा का अभाव हो जाना

सिद्धि इष्ट नही है (निजगुणहति न) ज्ञान-दर्शन आदि स्व गुणो का नष्ट हो जाना सिद्धि नही है। (तत्) क्योकि आत्मा का अभाव और गुणो का नाश सिद्धि मानने वालो के यहाँ (तपोभि न युक्ते) तपश्चरण आदि की योजना नही बंनती (आत्मा अस्ति) आत्मा है, (अनादि बद्ध) अनादि-काल से कर्मो से बद्ध है/कर्म सहित है (स्वकृतज फलभुक्) अपने द्वारा किये शुभ-अशुभ कर्मो के फल का भोक्ता है (तत्क्षयात्) कर्मो के क्षय हो जाने से (मोक्षमार्गी) मुक्ति को प्राप्त होता है, (ज्ञाता-दृष्टा) जानने-देखने स्वभाव वाला है (स्वदेह-प्रमिति) अपने शरीर प्रमाण है (उपसमाहार विस्तार धर्मा) सकोच विस्तार स्वभाव वाला है (ध्रौव्योत्पत्तिव्ययात्मा) उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रूप है तथा (स्वगुण युत) अपने आत्मीय गुणो से सहित है। (इत अन्यथा) इससे भिन्न मान्यता वालो के (साध्यसिद्धि न) साध्य की सिद्धि नही हो सकती, मुक्ति की प्राप्ति नही हो सकती।

भावार्थ—यहाँ सिद्धभक्ति मे पूज्यपाद स्वामी ने अन्य दर्शनो की मान्यताओ का निराकरण करते हुए सिद्ध भगवान् के गुणो का सुन्दर चित्रण किया है—

बौद्ध दर्शन वालो का मत है कि तैल के क्षय हो जाने पर दीपक की लौ ऊपर नीचे इधर-उधर कही न जाकर वही समाप्त हो जाती है, वैसे ही कर्मो का क्षय/क्लेश का नाश हो जाने से आत्मा वही समाप्त हो होता है यही सिद्धि है। इस कथन का निराकरण करने के लिये आचार्य देव ने लिखा है "नाभाव सिद्धिरिष्टा"।

वैशेषिक व योग दर्शनो की मान्यता मे बुद्धि, ज्ञान, सुख, इच्छा आदि विशेष गुणो का नाश सिद्धि है। इस कथन का निराकरण करते हुए आचार्य देव लिखते हैं—

तत्तपोभिर्न युक्ते । क्योकि कोई भी बुद्धिमान अपने आप का सर्वथा नाश करने के लिये अथवा अपने विशिष्ट गुणो का घात करने के लिये तपश्चरण आदि को नही करता।

आत्मा के अस्तित्व के सबध मे विविध दर्शनो की विभिन्न मान्यताएँ हैं—चार्वाक आत्मा को पृथ्वी आदि से उत्पन्न मानते हैं। वे शरीर से

अतिरिक्त आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार नही करते। उसके निराकरणार्थ आचार्य देव ने स्तुति मे "अस्त्यात्मा" आत्मा है, पद रखा है।

ईश्वरवादी दर्शन आत्मा को "सदा-अकर्मा" मानते है उसके निराकरण के लिये भक्ति मे "अनादि बद्ध" पद दिया गया है। जिसका भाव है प्रत्येक आत्मा अनादिकाल से कनकोपलवत् कर्मबद्ध है। अपनी विशुद्धि, साधना, तपश्चरणादि से कर्म रहित होता है।

वेदान्त दर्शन जीव को लोकव्यापी मानता है, उसका खडन करने के लिये आचार्य देव ने "स्वदेह-प्रमिति " यह पद दिया है। जिसका भाव है—आत्मा नामकर्म के उदय से प्राप्त अपने शरीर प्रमाण है।

आत्मा सकोच विस्तार स्वभाव वाला होने से चीटी के शरीर मे सकोच को हाथी के शरीर मे विस्तार को प्राप्त होता है। अर्थात् जैसा शरीर प्राप्त होता है, उसमे रहता है। तथापि केवल समुद्घात के समय यह आत्मा समस्त लोक मे फैल जाता है।

साख्य दर्शन की मान्यता है कि कर्म का कर्ता पुरुष/आत्मा नही, प्रकृति है तथा कर्म फल का भोक्ता भी आत्मा नही है। इस मान्यता का निराकरण करने के लिये यहाँ "स्वकृतजफलभुक्" पद दिया है। इसका भाव है–आत्मा अपने द्वारा किये कर्मो के फल को स्वय भोगता है।

वैशेषिक और योग दर्शन मे मान्यता है कि आत्मा के सिद्धि अवस्था को प्राप्त होने पर गुणो का नाश हो जाता है, उसके निराकरण मे "ज्ञाता-दृष्टा" पद की यहाँ सयोजना की है अर्थात् मुक्ति अवस्था मे जीव ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, अनत गुणो का स्वामी रहता है।

नैयायिक दर्शन गुण और गुणी मे सर्वथा भेद मानता है, उनकी इस मान्यता का खडन करते हुए "स्वगुणयुत" पद दिया गया है। जिसका भाव है–आत्मा सदैव अपने आत्मीय गुणो से तन्मय रहता है। तथा

साख्य दर्शन की मान्यता है आत्मा कूटस्थ नित्य है और बौद्ध दर्शन की मान्यता है कि आत्मा क्षण-क्षण मे नष्ट हो रहा है, इन दोनो मतो के निराकरणार्थ आचार्य देव ने यहाँ —"ध्रौव्योत्पत्ति व्ययात्मा" पद

दिया है। जिसका भाव है कि आत्मा साख्य दर्शन की तरह सर्वथा कूटस्थ नही है अपितु द्रव्यदृष्टि से नित्य है तथा बौद्धमत की तरह सर्वथा क्षणिक भी नही है किन्तु पर्याय दृष्टि से अनित्य/ उत्पाद-व्यय स्वभाव वाला है। अत आत्मा नित्यानित्यात्मक है।

आचार्य श्री के इस स्तुति पद मे द्रव्यसग्रह की गाथा न०२ का सजीव चित्रण ही मानो लिपिबद्ध हो उठा है—

जीवो उवओगमओ अमुत्तिकत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई।

स त्वन्तर्बाह्य-हेतु-प्रभव-विमल-सद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-संपद्धेति-प्रघात-क्षत दुरित-तया व्यञ्जिताचिन्त्य-सारैः। कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर-सुख-महावीर्य सम्यक्त्व-लब्धि-ज्योति - र्वातायनादि - स्थिर- परम-गुणै-रद्भुतै-र्भासमानः ।।३।।

अन्वयार्थ—(तु) और (स) वह सिद्धात्मा (अन्तर्बाह्यहेतु-प्रभव-विमलसद्दर्शन-ज्ञान-चर्या-सपद्धेति-प्रघात-क्षत-दुरिततया) अन्तरग-बहिरग कारणा से उन्पन्न निर्मल सम्यक्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति रूप शस्त्र के प्रबल प्रहार से पाप कर्मो के पूर्ण क्षय हो जाने से (व्यञ्जिता अचिन्त्यसारै) प्रकट हुए अचिन्त्य सार से युक्त (कैवल्यज्ञान-दृष्टि-प्रवर सुख-महावीर्य-सम्यक्त्व-लब्धि ज्योतिर्वातायन आदि स्थिर परमगुणै अद्भुते) केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य, क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक दान, लाभ, भोग, उपभोग रूप नवलब्धियो, भामण्डल, चँवर, सिहासन, छत्र आदि आश्चर्यकारी श्रेष्ठ गुणो से [भासमान] शोभायमान ह।

भावार्थ—जीवात्मा अनादिकाल से कर्मो से बद्ध है। कर्मों से मुक्त हो सिद्ध अवस्था की प्राप्ति मे रत्नत्रय की एकता सर्वोपरि है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनो के अन्तरग-बहिरग कारणो के मिलने पर ही रत्नत्रय की प्राप्ति होती है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मे दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय, क्षयोपशम अन्तरग कारण है, तथा जिनबिब दर्शन, पचकल्याण पूजा, वेदना, जातिस्मरण व सद्गुरु की देशना आदि बहिरग कारण हैं। सम्यग्ज्ञान

की प्राप्ति मे अन्तरग कारण ज्ञानावरणकर्म का क्षय व क्षयोपशम है तथा बहिरग कारण स्वाध्याय, गुरु उपदेश आदि हैं। इसी प्रकार सम्यक्चारित्र का अन्तरग कारण चारित्रमोहनीय का उपशम-क्षय-क्षयोपशम अन्तरग कारण है और हिसा आदि पाच पापो का त्याग रूप व २८ मूलगुणो के पालने रूप निग्रथ मुद्रा बहिरग कारण है।

इन रत्नत्रय की विशुद्धता के प्रभाव से ससारी आत्मा क्रमश बढते हुए १२वे गुणस्थान के चरम समय मे चार घातिया कर्मो का क्षय करके अरहत अवस्था को प्राप्त करता है। १३वे गुणस्थान मे अरहत अवस्था को प्राप्त यह आत्मा अनन्त-चतुष्टय रूप अन्तरग/आत्मिक गुणो को व अष्ट प्रातिहार्य व समवसरण आदि बहिरग आश्चर्यकारी विभूति को प्राप्त होता है।

चौदहवे गुणस्थान मे चतुर्थ शुक्लध्यान व्यपुरतक्रियानिवर्ती के बल चार अघातिया कर्मो का क्षय करके परम परमेष्ठी रूप सिद्ध पर्याय को प्राप्त होता है। सिद्ध पर्याय की प्रकटता होती बहिरग विभूति अष्टप्रातिहार्य व दान-लाभ-भोग-उपभोग आदि का नाश हो जाता है मात्र केवलज्ञान केवलदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य आदि आत्मिक गुण शाश्वत विद्यमान रहते हैं। शाश्वत आत्मीय गुणो से शोभायमान वे सिद्ध परमेष्ठी सदा अनन्तकाल के लिये ऊपर लोकाग्र मे विराजमान रहते है।

जानन् पश्यन् समस्तं, सम-मनुपरतं संप्रतृप्यन् वितन्वन्,
धुन्वन् ध्वान्तं नितान्तं, निचित-मनुसभं[1] प्रीणयन्नीशभावम्।
कुर्वन् सर्व-प्रजाना-मपर-मभिभवन् ज्योति-रात्मानमात्मा,
आत्मन्येवात्मनासौ क्षण-मुपजनयन्-सत्-स्वयंभूः प्रवृत्तः ॥४॥

अन्वयार्थ—(असौ स्वयभू आत्मा) वे स्वयभू अरहत परमात्मा (समस्त) सम्पूर्ण लोक-अलोक को (सम) युगपत् (जानन् पश्यन्) जानते देखते हुए (अन् उपरत) सतत/बाधारहित (सम्प्रतृत्यन्) आत्मीक सुख से अच्छी तरह तृप्त होते हुए (वितन्वन्) आत्म ज्ञान को सर्वलोक मे विस्तृत करते हुए नितान्तं निचित) अनादिकाल से सचित (ध्वान्तं) मोहरूपी अन्धकार का (धुन्वन्) नष्ट करते हुए (अनुसभ, समवशरण) सभा मे (प्रीणयन्) सबको सन्तुष्ट करते हुए (सर्वप्राणिना) तीन लोक

१ "अनुपम' पाठ भी है।

के समस्त प्राणियो के (ईश भाव) ईश्वरत्व/स्वामीपने को (कुर्वन्) करते हुए (अपर ज्योति अभिभवन्) सूर्य-चन्द्र-नक्षत्रादि की अन्य ज्योति को अपनी ज्योति से पराभूत करते हुए और (आत्मानम्) अपनी आत्मा का (क्षण) प्रतिक्षण (आत्मनि) अपनी आत्मा मे (एव) ही (आत्मना) आत्मा के द्वारा (उपजनयन्) निमग्न करते हुए (सत् प्रवृत) समीचीन रूप मे प्रवृत हुए थे।

भावार्थ—शुद्ध आत्मा परके उपदेश आदि की अपेक्षा के बिना ही स्वय मोक्षमार्ग को जानकर तथा उस मोक्षमार्ग का अनुष्ठान कर अनन्तज्ञान स्वरूप हो जाता है, उस समय उस परम शुद्ध आत्मा को स्वयभू कहते है। अथवा जो स्वय हो वे स्वयभू कहलाते है। यह आत्मा अपने रत्नत्रय गुणो की पूर्णता से अनतज्ञानी होता हुआ अरहत पद पर प्रतिष्ठित होता है। इसीलिये भगवान् अरहत देव को स्वयभू कहते है।

स्वयभू भगवान् अरहत अवस्था को प्राप्त कर समस्त लोक व अलोक को एक साथ जानते-देखते है। कृतकृत्य हो जाने के कारण पूर्ण तृप्ति को प्राप्त हो जाते हैं। अनन्तकाल तक अपने आत्मा मे लीन रहते हे अथवा वे अरहत देव केवलज्ञान के द्वारा अनन्त काल तक समस्त लोकालोक को जानते देखते रहते है।

मोह रूप महाधकार का नाश करते ही केवलज्ञान सूर्य को प्राप्त कर वे अरहत देव अपनी समवसरण सभा मे या गधकुटी रूप सभा मे अमृतसम सप्ततत्त्वमयी दिव्यध्वनि रूपी वचनामृत से कल्याणकारी उपदेश देकर सभासदो को अत्यत सतुष्ट करते हैं। तीनो लोको का प्रभुत्व प्राप्त कर वे अरहत देव बारह सभा मे समस्त प्रजा के मध्य विराजित होकर अपनी केवलज्ञान ज्योति से अपने आप को असर्वज्ञ अवस्था मे ही ईश्वर मानने वाले अथवा अन्य के द्वारा असर्वज्ञता मे ही ईश्वरत्व माने हुए ईश्वर के ज्ञानरूप तुच्छ ज्योति को भी तिरस्कृत करते हुए तथा अपनी अनुपम काति से चन्द्रसूर्य आदि को छविहीन करते हैं। मात्र ज्ञाता-दृष्टा बनकर आत्मस्वभाव की सिद्धि करने वाले वे अरहत प्रभु अपने आत्मा को अन्य किसी के पदार्थ मे न लगाकर शुद्ध आत्मा को शुद्ध आत्मा मे ही प्रतिक्षण निमग्न करते हैं।

छिन्दन् शेषा-नशेषान्-निगल-बल-कली-स्तैरनन्त-स्वभावैः,
सूक्ष्मत्वाग्र्यावगाहागुरु-लघुक-गुणैः क्षायिकैः शोभमानः ।
अन्यै-श्चान्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-संप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै-
रूर्ध्वं-व्रज्या स्वभावात्, समय-मुपगतो धाम्नि संतिष्ठतेऽग्र्ये ।।५।।

अन्वयार्थ—वे अरहत देव (शेषान्) बारहवे गुणस्थान मे क्षय की गई घातिया कर्मो की प्रकृतियो से बची हुई (अशेषान्) समस्त अघातिया कर्मों की प्रकृतियो को जो (निगलबलकलीन्) बेड़ी के समान बलवान है (छिन्दन्) नष्ट करते हुए/क्षय करके (तै अनन्तस्वभावै) उन अनन्त/अविनाशी स्वभाव को धारण करने वाले सम्यग्दर्शन आदि गुणो से (शोभमान) शोभायमान होते है । (च) और (अन्यै) इसके (क्षायिकै) कर्मो के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न होने वाले (सूक्ष्मत्वाग्रयावगाहा-गुरुलघुगुणै) सूक्ष्मत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व आदि गुणो से (शोभायमान) सुशोभित होते है एव (अन्य-व्यपोह-प्रवण-विषय-सप्राप्ति-लब्धि-प्रभावै) अन्य कर्म प्रकृतियो के क्षय से प्रकट शुद्ध आत्मस्वरूप की प्राप्ति रूप लब्धि के प्रभाव से (शोभमान) शोभायमान होते है । पश्चात् (उर्ध्वव्रज्यास्वभावात्) उर्ध्वगमन स्वभाव से (समयम् उपगत) एक समय मे ही (अग्रये धाम्नि) लोक के अग्र भाग/सिद्धालय मे (सतिष्ठते) सम्यक् प्रकार से स्थित हो जाते है ।

भावार्थ–अरहत पद की प्राप्ति पूर्वक ही सिद्ध अवस्था होती है अत आचार्य देव सिद्ध भगवान की क्रमिक उन्नत अवस्था का वर्णन/स्तवन करते हुए स्तुति करते हैं—वे अरहंत भगवान बारहवे क्षीणमोह गुणस्थान के चरम समय तक ६३ प्रकृतियो –' घातिया कर्मो की ४७ नामकर्म की १३ और आयु कर्म की ३ प्रकृतियो को क्षय कर चुकते है। फिर भी अघातिया कर्मो की ८५ प्रकृतियो की सत्ता बनी रहती है । उनमे आयु कर्म बेड़ी के समान कष्टप्रद है ससार मे रोकने वाला है । चौदहवे अयोगकेवली गुणस्थान मे व्युपरतक्रियानिवर्ती शुक्लध्यान रूपी तीक्ष्ण तलवार के बल से अयोगी जिन उपान्त्य समय मे ७२ और अन्त समय मे १३ प्रकृतियो क्षय कर कर्मों की सत्ता को जड़ से उखाड़ देते है । वे परमात्मा नामककर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, आयु कर्म के क्षय से अवगाहनत्व, गोत्र कर्म के अभाव

से अगुरुलघुत्व और वेदनीय कर्म के नाश से अव्याबाधत्व इन चार गुणो से और ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय के क्षय से प्रकट हुए क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक वीर्य/ अनन्त चतुष्टय इन आठ गुणो से शोभायमान होते है। समस्त घाति-अघाति कर्मो का क्षय होते होते ही उर्ध्वगमन स्वभाव होने से एक समय मे ही ७ राजू ऊपर लोकाग्र पर स्थित तनुवातवलय मे ४५ लाख योजन सिद्धालय मे जा सदा के लिये विराजमान हो जाते है।

विशेष—सिद्धक्षेत्र पर समस्त सिद्धपरमेष्ठियो के शिर लोक से स्पृष्ट रहते हैं और शेष भाग अपनी अवगाहना के अनुसार नीचे रहता है।

अन्याकाराप्ति-हेतु-र्न च, भवति परो येन तेनाल्प-हीनः।
प्रागात्मोपात्त-देह-प्रति- कृति-रुचिराकार एव ह्यमूर्तः।
क्षुत्-तृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरानिष्ट-योग-प्रमोह-
व्यापत्त्याद्युग्र-दुःख-प्रभव-भव-हतेः कोऽस्य सौख्यस्य माता।।६।।

अन्वयार्थ—(च) और (येन) जिस कारण से उन सिद्ध भगवन्तो के (पर) दूसरा कोई (अन्य-आकार-आप्ति हेतु न) अन्य आकार की प्राप्ति का कारण नही है (तेन) इस कारण से (अल्पहीन) किंचित् कम (प्राक्-आत्मा-उपात्त-देह-प्रतिकृति-रुचिर-आकार एव भवति) पूर्व मे आत्मा के द्वारा ग्रहण किये शरीर के प्रतिबिब समान सुन्दर आकार ही होता है। तथा वह (हि अमूर्ति) निश्चय से अमूर्तिक होता है। और (क्षुतृष्णा-श्वास-कास-ज्वर-मरण-जरा-अनिष्ट-योग-प्रमोह-व्यापत्त्यादि-उग्र) दु ख-प्रभव-भवहते) भूख, प्यास, श्वास, खासी, बुखार, मरण, बुढ़ापा, अनिष्ट सयोग, प्रकृष्टमूर्च्छा, विशेष आपत्ति आदि भयकर दु खो की उत्पत्ति का कारणभूत ससार का अभाव होने से (अस्य) इन सिद्ध परमेष्ठी के (सौख्यस्य) सुख का (माता) जानने वाला अथवा परिमाण (क) कौन हो सकता है अर्थात् उनके सुख को कोई नही जान सकता, वह सुख अपरिमेय है।

भावार्थ—मनुष्य जिस शरीर से मुक्त होता है, वह उसका अन्तिम

शरीर चरम शरीर कहलाता है। सिद्ध अवस्था मे मुक्त जीवो का शरीर चरम शरीर से कुछ कम आकार वाला होता है। ससार अवस्था मे एक भव से दूसरे भव को जाते हुए इस जीव का आकार कर्मो के उदय से बदलता था। अब सम्पूर्ण कर्मो का क्षय हो जाने मुक्त अवस्था मे जीव का आकार चरम शरीर/पूर्व शरीर के आकार ही रहता है, तथा उसका परिमाण अन्तिम शरीर से कुछ कम रहता है क्योकि शरीर के जिन भागो मे आत्मा के प्रदेश नही उतना परिमाण घट जाता है। यह कमी आकार की अपेक्षा नही किन्तु घनफल की अपेक्षा से है। टकोत्कीर्ण रूप उनकी अविनाशी, अचिन्त्य अवस्था है।

मुक्त अवस्था मे आत्मा स्पर्श-रस-गध-वर्ण से रहित अमूर्तिक ही रहता है। इसके सिवाय वे भगवान क्षुधा, तृषा, श्वास, खासी, दमा, ज्वर आदि तथा घोर, दुख जिससे उत्पन्न होते है ऐसे ससार वर्द्धक दुखो के क्षय से अनत सुखो को प्राप्त हो गये है। सिद्धो के अनन्त सुखो का परिमाण कौन कर सकता है अर्थात् कोई नही कर सकता है।

आत्मोपादान-सिद्ध स्वयं-मतिशय-वद्-वीत-बाधं विशालम्।
वृद्धि - ह्रास - व्यपेतं,विषय-विरहितं निःप्रतिद्वन्द्व-भावम्।
अन्य - द्रव्यानपेक्षं,निरुपममितं शाश्वतं सर्व-कालम्।
उत्कृष्टानन्त - सार, परम-सुखमतस्तस्य सिद्धस्य जातम्।।७।।

अन्वयार्थ—(अत) क्षुधा आदि भयकर दु खो के अभाव से (तस्य सिद्धस्य) उन सिद्धपरमेष्ठी के (परम सुख) श्रेष्ठ अनन्त सुख (जातम्) उत्पन्न हुआ है वह (आत्मा-उपादान-सिद्ध) आत्मा की उपादान शक्ति से अथवा आत्मा से ही उत्पन्न है। वह सुख (स्वयम्-अतिशयवत्) सहज/स्वाभाविक अतिशयवान् है, (वीतबाध) बाधा रहित है, (विशाल) अत्यन्त विस्तीर्ण होता है अर्थात् आत्मा के असख्यात प्रदेशो मे व्याप्त होकर रहता है (वृद्धि-ह्रास-व्यपेत) वह सुख हीनाधिकता से रहित है, (विषय-विरहित) पचेन्द्रिय विषयो से रहित है, (नि प्रतिद्वन्द-भाव) प्रतिपक्षी भाव से रहित है, (अन्य-द्रव्यानपेक्ष) अन्य द्रव्य/पदार्थो की अपेक्षा से रहित है (निरुपम) उपमातीत है (अमित) सीमातीत है प्रमाणातीत है (शाश्वत) अचल है, अविनाशी है, (सर्वकाल) सदा बना रहने वाला

है और (उत्कृष्ट-अनन्त-सार) उत्कृष्ट, अनन्त काल तक रहने वाला व सारपूर्ण है।

भावार्थ—ससागी जीवो का सुख पुण्य कर्म रूप अन्तरग कारण वह बाह्य मे भोग-उपभोग की सामग्री की अपेक्षा रखता है। उनका यह सुख अन्तराय कर्म का क्षयोपशम या साता वेदनीय के आदि की अपेक्षा से उत्पन्न होता है इसलिये क्षणिक होता है वह सुख नही सुखाभास मात्र है पर सिद्ध परमेष्ठी का सुख मात्र आत्मा के उपादान से उत्पन्न होने से स्वाभाविक है, शाश्वत है। इन्द्रिय सुखो मे निरन्तर बाधा रहती है पर सिद्धो का सुख निर्बाध/अव्याबाध है। आत्मा के समस्त प्रदेशो मे वह अतीन्द्रिय सुख व्याप्त होकर रहता है। सिद्धो का सुख इच्छा रहित होने से न कभी घटता है और न कभी बढता है। ससारी जीवो का सुख स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण-शब्द रूप पचेन्द्रियो की अनुकूलता चाहता है पर सिद्ध भगवन्तो का सुख इन्द्रिय विषयो से रहित/स्वाभाविक है ससारी जीवो के सुख का विपक्षी दुख सदा लगा रहता है पर सिद्धो का सुख सदा सुख रूप ही उसका कोई विपक्षी नही है। ससारी जीवो का सुख सातावेदनीय कर्म के उदय से प्राप्त भोजन, पानी, पुष्प माला, चन्दन, सुगधित द्रव्य आदि से होता है परसापेक्ष है, सिद्ध भगवन्तो के वह सुख सहज है, अन्य द्रव्यो से रहित है। उपमा से रहित, प्रमाण से रहित, चिरकाल स्थायी, सदा काल पाया जाने वाला, इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि के सुखो से भी विशेष उत्कृष्ट, सिद्ध परमेष्ठी का सुख वास्तव मे ससारी जीवो के क्षणिक सुख से अत्यत विलक्षण आत्मसापेक्ष है।

नार्थः क्षुत्-तृड्-विनाशाद्, विविध-रस-युतै-रन्न-पानै-रशुच्या।
नास्पृष्टे-र्गन्ध-माल्यै-र्नहि-मृदु-शयनै-र्ग्लानि-निद्राद्यभावात्।
आतंकार्ते रभावे, तदुपशमन-सद्भेषजानर्थतावद्।
दीपा-नर्थक्य-वद् वा, व्यपगत-तिमिरे दृश्यमाने समस्ते।।८।।

अन्वयार्थ—(आतङ्क-आर्ते अभावे) रोग-जनित पीड़ा का अभाव होने पर (तत् उपशमन सत्-भेषज-अनर्थ तावत्) उस रोग को शमन करने वाली समीचीन/उत्तम औषधि की अप्रयोजनीयता के समान (वा) अथवा (व्यपगत-तिमिरे) अन्धकार रहित स्थान मे (समस्ते दृश्यमाने)

समस्त पदार्थो के दिखाई देने पर (दीप-अनर्थक्यवत्) दीप की निरर्थकता के समान सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो के (क्षुतृट्-विनाशात्) क्षुधा/भूख,प्यास का विनाश हो जाने से (विविध-रसयुतै अन्नपानै) षट् रस मिश्रित **भोजन व पानी** आदि से (न अर्थ) कोई प्रयोजन नही है। (अशुच्या अस्पृष्टे) अशुचिता/अपवित्रता से स्पर्श नही होने से (गन्धमाल्यै न) सुगधित चन्दन, इत्र, फुलेल आदि व पुष्प मालाओ आदि से कोई प्रयोजन नही है तथा (ग्लानि-निद्रादि-अभावात्) थकावट, निद्रा आदि का सर्वथा अभाव होने से (मृदुशयनै न हि अर्थ) निश्चय से कोमल शय्या से भी कोई प्रयोजन नही है।

भावार्थ—सिद्ध परमात्मा की सिद्धपर्याय पूर्ण स्वातन्त्र्य की प्रतीक है। उस पर्याय मे पर की अपेक्षा ही नही है। ससारी जीवो के असाता-वेदनीय के उदय से क्षुधा, पिपासा आदि पीड़ाएँ उत्पन्न होती है अत षट्रस युत विविध व्यञ्जन व पेय पदार्थो से व शरीर की रक्षा करते है। सिद्ध परमेष्ठी जिनो के क्षुधा, तृषा आदि दोषो का पूर्ण अभाव हो गया है अत उन्हे विविध प्रकार के भोजन व पानी आदि से कोई प्रयोजन नही रहता, , वे सदा स्वरूप मे लीन रहते है। ससारी जीवो का शरीर सात कुधातुओ से भरा अशुचि है, अशुचिता के सबध होने से ससारी जीव उसे दूर करने के लिये नाना प्रकार के सुगधित पदार्थो का उपयोग करते है परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के शरीर के अभाव होने अशुचिता का स्पर्श नही देखा जाता। अत सुगधित द्रव्य तथा मालाओ से उन्हे कोई प्रयोजन ही नही है। ससारी जीव निरन्तर मोहाभिभूत हो श्रम करता रहता है। थकावट होने पर कोमल शय्या आदि पर शयन करता है परन्तु सिद्ध परमेष्ठी जिनो के पास अनन्त वीर्य एक ऐसी अद्भुत शक्ति है कि "त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो को देखते-जानते रहने पर भी वे कभी थकते नही। जहॉ थकान नही है ऐस सिद्धो के कोमल शय्या आदि से भी कोई प्रयोजन नही रहता।

सत्य ही है जैसे रोग के अभाव मे औषधि का कोई प्रयोजन नही, अधकार के अभाव मे दीपक का कोई उपयोग नही, ठीक उसी प्रकार पूर्ण स्वावलबी आत्मा के सिद्धपर्याय मे पूर्ण स्वाधीनता हो जाने पर द्रव्य/पर पदार्थ का कोई प्रयोजन नही रहता। वास्तव मे पूर्ण स्वतत्रता प्राप्त सिद्ध परमात्मा ही है।

तादृक् - सम्पत्-समेता, विविध-नय-तपः-संयम-ज्ञान-दृष्टि-
चर्या-सिद्धाः समन्तात, प्रवितत्-यशसो विश्व-देवाधि-देवाः ।
भूता भव्या भवन्तः, सकल-जगति ये स्तूयमाना विशिष्टै-
स्तान् सर्वान् नौम्यनन्तान्, निजिग-मिषु-रर तत्स्वरूप त्रिसन्ध्यम् ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—(ये) जो सिद्ध भगवान् (तादृक सम्पत समेता) अनत दर्शन, अनत ज्ञान, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि अनन्त गुणो रूपी निधी के स्वामी है। (विविधनय तप सयम-ज्ञानदृष्टि-चर्या सिद्धा) अनेक प्रकार के नय, तप, सयम, ज्ञान, दर्शन/सम्यक्त्व व चारित्र से सिद्ध हुए है (समन्तात् प्रवितत यशस) जिनका यश चारो दिशओ मे फैला हुआ है (विश्व देवाधिदेवा) विश्व मे जितने देव है उन सबके जो अधिदेव देवाधिदेव/सब दोवो के स्वामी है, (सकल जगति) सारे विश्व मे/समस्त ससार मे (विशिष्टै स्तुयमानै) तीर्थकर जैसे विशिष्ट महापुरुषो के द्वारा जो स्तुति को प्राप्त है, ऐसे जो (भूता भव्या भवन्त) भूतकाल मे हो चुके, भविष्यकाल मे होगे और वर्तमान मे हो रहे है (तान् सर्वान् अनन्तान्) उन सभी अनन्त सिद्ध परमेष्ठियो को (अर) शीघ्र ही (तत्स्वरूप) उस सिद्ध स्वरूप को (निजिगिमिषु) प्राप्त करने की इच्छा करने वाला मै (त्रिसध्यम्) प्रात -मध्याह्न-साय तीनो कालो मे (नौमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो सिद्ध भगवान अष्ट कर्मो के क्षय से सम्यक्त्व, ज्ञान आदि अनन्त गुणरूपी सम्पत्ति के स्वामी हो लोकाग्र मे शोभायमान है, नैगम-सग्रह आदि विविध नय व्यवहार-निश्चयनय, अन्तरग-बहिरग तप, सामायिक, छेदोपस्थापना आदि सात सयम, केवलज्ञान, केवलदर्शन और यथाख्यातचारित्र से सिद्ध अवस्था को प्राप्त हुए है। जिनका यश समस्त दिक्-दिगन्तराल मे व्याप्त है, जो सब देवो मे प्रधान है देवाधिदेव है, दीक्षा ग्रहण करते समय तीर्थकर भी जिनकी जिनकी वन्दना करते है, ऐसे भूतकाल मे जो हो गये, भावीकाल मे जो होगे और वर्तमान मे जो हो रहे है उन समस्त सिद्धो को मै सिद्ध पद का इच्छुक, शीघ्र सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ। जो जिस गुण का इच्छुक है वह उन गुणो से युक्त महापुरुषो की आराधना करता है। आचार्यदेव कहते है—मै पूज्यपाद

आप सम बनने का इच्छुक, शीघ्र सिद्ध पद की प्राप्ति के लिये आपकी प्रात मध्याह्न, सायकाल तीनो सन्ध्याओ वन्दना करता हूँ।

"क्षेपक श्लोक"

कृत्वा कायोत्सर्गं, चतु-रष्टदोष विरहितं सु परिशुद्ध ।
अतिभक्ति सप्रयुक्तो, यो वन्दते सो लघु लभते परम सुखम् ।।

अन्वयार्थ—(य) जो जीव (अतिभक्ति सप्रयुक्त) अत्यत भक्ति से युक्त होकर (चतुरष्टदोष विरहित) ३२ दोषो से रहित हो (सुपरिशुद्ध) अत्यन्त निर्मल, अत्यत विशुद्ध (कायोत्सर्ग कृत्वा) कायोत्सर्ग करके (वदते) वन्दना करता है (स लघु लभते परमसुख) वह शीघ्र ही अतीन्द्रिय/मुक्ति सुख को प्राप्त करता है ।

भावार्थ—जो भव्यजीव अत्यत भक्ति श्रद्धा से प्रेरित हो निर्मल शुद्ध परिणामो से बत्तीस दोष रहित कायोत्सर्ग करके सिद्ध परमेष्ठी को नमस्कार करता है, उनकी वन्दना करता वह परम मुक्ति स्थान को प्राप्त हो उत्तम सुखो का भोक्ता होता है।

इच्छामि भते ! सिद्धभक्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ सम्मणाण-सम्मदसण सम्मचरित्तजुत्ताणं, अट्ठ-विह-कम्म-विप्प-मुक्काण, अट्ठ-गुण-सम्पण्णाण, उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाण, तव-सिद्धाणं, णय-सिद्धाण, सजम-सिद्धाणं, चरित्त-सिद्धाण-अतीताणागद-वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाणं, सव्व-सिद्धाण, सया णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो, सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झ ।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन ! (सिद्धभक्ति काउस्सग्गो कओ) सिद्धभक्ति करके जो कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ इच्छामि) उसमे लगे दोषो की आलोचना करने की मै इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण-सम्मदसण-सम्मचरित्त जुत्ताण) जो सिद्ध भगवान सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त है (अट्ठविह-कम्म-मुक्काण) आठ प्रकार के कर्मो से रहित है (अट्ठगुणसपण्णाण) आठ गुणो से सम्पन्न है (उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाण) ऊर्ध्वलोक के मस्तक पर जाकर विराजमान हैं

(तव सिद्धाण) तप सिद्धो को (णय सिद्धाण) नय सिद्धो को (सजमसिद्धाण) सयम सिद्धो को (चरित्तसिद्धाण) चारित्र सिद्धो को (अतीत-अणागद वट्टमाण-कालत्तय-सिद्धाण) भूत-भविष्य व वर्तमान तीनो कालो मे होने वाले सिद्धो को (सव्वसिद्धाण) समस्त सिद्ध परमात्माओ को (सया णिच्चकाल) सदा काल/हर समय (अचेमि) मैं अर्चा करता हूँ, (पूजेमि) पूजा करता हूँ, (वदामि) वन्दन करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु खो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिनगुणसम्पत्ति) जिनेन्द्र देव के गुणो की सम्पति (मज्झ होऊ) मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मै सिद्धभक्ति सबधी कायोत्सर्ग को करके उसमे लगे दोषो की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो सिद्ध परमात्मा रत्नत्रय से मडित है, अष्टकर्मो से रहित है सम्यक्त्व दर्शन, ज्ञान सुख, अव्याबाध, अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सूक्ष्मत्व आदि आठ गुणो से शोभायमान है लोकाग्र मे विराजमान है, ऐसे तप से सिद्ध नयो से सिद्ध, सयम से सिद्ध, चारित्र से सिद्ध होने वाले त्रिकाल सिद्धो को समस्त सिद्धो की मै प्रत्येक समय अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ मेरे समस्त दु खो को क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तम देवादि मोक्षगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। हे भगवन् ! हे जिनदेव ! आपके समान अनन्त गुण रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो। मै भी आप के समान अनन्त गुणो का स्वामी बन परमपद को प्राप्त होऊ।

।। इति श्री सिद्धभक्ति ।।

चैत्यभक्तिः

स्रग्धरा

श्री गौतमादिपद - मद्भुतपुण्यबन्ध मुद्योतिता - खिल - ममौघ - मघप्रणाशम् ।
वक्ष्ये जिनेश्वरमहं प्रणिपत्य तथ्यं निर्वाणकारण - मशेषजगद्धितार्थम् ।।

अन्वयार्थ—(श्री गौतमादिपद-मद्भुतपुण्यबन्धं) श्री गौतम आदि गणधरो के द्वारा की गई महावीर भगवान् की "जयति भगवान्" इस श्लोक से की गई स्तुति अद्भुत पुण्यबन्ध को करने वाली है (अखिलं अमौघम् अघ प्रणाशम्) सम्पूर्ण पाप समूह को नाश करने वाली है (तथ्य उद्योतिता) सत्य को प्रकाशन करने वाली है (अह) मै सस्कृत टीकाकार (निर्वाणकारणम्) मुक्ति के कारण (अशेष जगत् हितार्थम्) सम्पूर्ण जगत् / ससारी जीवो के हितकारक (जिनेश्वर प्रणिपत्य) जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके (वक्ष्ये) उस स्तुति की टीका करूँगा ।

भावार्थ—यह श्लोक सस्कृत टीकाकार कृत है। टीकाकार यहाँ प्रतिज्ञा करते हुए कह रहे है—मैं सत्यस्वरूपी, मोक्षप्राप्ति मे कारण, सम्पूर्ण जगत् हितकारक ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके श्री गौतम स्वामी के द्वारा की गई महावीर भगवान की स्तुति करने का प्रयास कर रहा हूँ। गौतम स्वामी के द्वारा की गई यह स्तुति भव्य जीवो को पुण्य प्राप्ति कराने वाली है। सत्य का प्रकाशन करने वाली है। अत्यत महत्त्वपूर्ण है। पाप समूह का नाश करने वाली है। अर्थात् गौतम गणधर ने महावीर स्वामी भगवान को प्रत्यक्ष देखकर "जयति भगवान इस श्लोक से जिस स्तुति का प्रारभ किया है ऐसी पुण्यानुबन्धी स्तुति की है, उसके स्पष्टीकरण रूप टीका को मैं करता हूँ।

जयति भगवान स्तोत्रम्

देव-धर्म-वचन ज्ञान स्तुति

जयति भगवान हेमाम्भोज-प्रचार-विजृम्भिता-
वमर - मुकुटच्छायोद्गीर्ण - प्रभा - परिचुम्बितौ ।
कलुष-हृदया मानोद्भ्रांताः परस्पर-वैरिणः,
विगत-कलुषाः पादौ यस्य प्रपद्य विशश्वसुः ।।१।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन अरहत देव के (हेम-अम्भोज-प्रचार-विजृम्भितौ) स्वर्णमयी कमलो पर अन्तरीक्ष गमन/चलने से शोभायमान तथा (अमर-मुकुटच्छाया-उद्गीर्ण प्रभा-परिचुम्बितौ) देवो के मुकुटो की कान्ति से निकली हुई प्रभा से सुशोभित हुए (पादौ) चरण-युगल को (प्रपद्य) प्राप्त करके (कलुष हृदया) कलुषित-मलिन हृदय वाले अर्थात् कलुषित परिणामो वाले जीव, (मान-उद्भ्रान्ता) अहकार से भ्रान्ति को प्राप्त जीव और (परस्पर-वैरिण) आपस मे वैरभाव रखने वाले जीव (विगत-कलुषा) कलुषता/मलिन परिणामो से रहित होते हुए (विशश्वसु) परस्पर मे विश्वास को प्राप्त होते है (स) वे (भगवान) केवलज्ञानयुक्त, परम अन्तरग बहिरग लक्ष्मी के स्वामी अरहत परमेष्ठी (जयति) जयवत रहते है।

भावार्थ—अरहत परमेष्ठी का गमन/विहार सामान्य पुरुषो की तरह नही होता। वे सामान्य जीवो की तरह पीछे, आगे पैर रखकर नही चलते है। वे दोनो चरणो को कमल समान रखते हुए विहार करते है। वे सदा अन्तरीक्ष मे विहार करते है। विहार के समय देवगण चरण-कमलो के नीचे २२५ कमलो की सुन्दर रचना करते है। एक आचार्य के मत से केवली भगवान डगभरकर चलते है। विहार करते है उस समय देवो के मुकुटो की मणियो से निकलती हुई किरणो के सयोग से जिनदेव के चरण-कमल विशेष शोभा को प्राप्त होते है। जिनदेव के ऐसे परम-पुनीत शोभायमान चरण-कमलो का आश्रय पाकर अर्थात् दर्शन पाकर जीवो के परिणामो मे निर्मलता आती है, अहकार गल जाता है, भ्रातियाँ दूर हो जाती है। इतना ही नही, जिनदेव के आश्रय को पाकर जातिविरोधी जीव सर्प-नेवला, चूहा, बिल्ली आदि भी आपस मे प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं। शान्ति का अनुभव करते है, ऐसे देवो से वन्दनीय त्रिलोकीनाथ, वीतराग, अरहत देव सदा जयवत रहते हैं।

भक्तामर स्तोत्र मे आचार्य देव लिखते है—

रखते जहाँ वही रचते है, स्वर्ण कमल सम दिव्य ललाम।
अभिनन्दन के योग्य चरण तव, भक्ति रहे उनमे अभिराम ।।

तदनु जयति श्रेयान्-धर्मः प्रवृद्ध-महोदयः,
कुगति-विपथ-क्लेशा-द्योसौ विपाशयति प्रजा· ।
परिणत-नयस्यागी-भावाद्-विविक्त-विकल्पितम्,
भवतु भवतस्त्रातृ त्रेधा जिनेन्द्र-वचोऽमृतम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(तदनु) अरहत देव के जयघोष के बाद (य) जो (प्रजा) जीवो को (कुगति-विपथ-क्लेशात्) नरक-तिर्यञ्च आदि अशुभ गतियो के खोटे मार्ग सम्बधी कष्टो से/ दु खो से (विपाशयति) बन्धन मुक्त करता है (प्रवृद्ध महोदय) स्वर्ग-मोक्ष रूप अभ्युदय को देने वाला (श्रेयान्) कल्याणकारी है ऐसा (असौ धर्म) यह धर्म/वीतराग अहिसामयी यह जिनधर्म (जयति) जयवत रहता है। जिनधर्म के पश्चात् (परिणतनयस्य) विविक्षित नय अर्थात् द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक के (अगीभावात्) स्वीकृत करने से (विविक्त विकल्पित) अग व पूर्व के भेदो युक्त अथवा द्रव्य-पर्याय के भेद से युक्त (त्रेधा) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक अर्थात् तीन प्रकार के वस्तु स्वरूप का निरूपण करने वाले अथवा ११ अग, १४ पूर्व और अग बाह्य के भेद से तीन प्रकार अथवा शब्द-अर्थ-ज्ञान के भेद से तीन प्रकार के (जिनेन्द्र-वच अमृतम्) जिनेन्द्र भगवान के अमृत तुल्य वचन (भवत) ससार से (त्रातृ) रक्षा करने वाले (भवतु) हो।

भावार्थ—जो जीवो को ससार के दु खो से छुडाकर उत्तम सुखो को प्राप्त करावे वह धर्म है। धर्म के प्रभाव से जीव बलदेव, चक्रवर्ती, तीर्थकर, मडलीक, महामडलीक, स्वर्ग और मुक्ति को प्राप्त करता है। जिस धर्म के प्रभाव से जीवो के हिसादि पाप मिथ्यात्व, कषाय आदि कुभावो/ दुर्भावो का अभाव होता है तथा नरकादि गतियो मे जाने का मार्ग बन्द हो जाता है ऐसा अहिसामयी जैनधर्म सदा जयशील हो।

जिनधर्म की प्राप्ति जिनेन्द्रकथित वाणी–जिनवाणी से होती है। जिसप्रकार अमृत-पान करने वाले जीव का शरीर पुष्ट होता है उसी प्रकार जिन वचन रूपी अमृत का पान करने वाले भव्यात्मा ज्ञानामृत से पुष्ट हो नरकादि के दुखो से बच जाते है। जो जिनेन्द्रवाणी सप्तभगमयी, सप्तनयो अथवा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नयो से पुष्ट है। द्रव्य-गुण-पर्याय का विवेचन करने वाली, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक वस्तु स्वरूप का निरूपण करने

वाली है, अमृतमयी है, ऐसी माँ जिनवाणी ससार-सागर मे डूबते भव्यजीवो की रक्षा करे।

इस श्लोक मे आचार्यदेव ने जिनधर्म व जिनागम के जयवन्त रहने की भक्तिपूर्ण भावना का उद्घोष किया है।

तदनु जयताज्जैनी वित्ति. प्रभग-तरगिणी,
प्रभव-विगम ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी।
निरुपम-सुखस्येद द्वार विघट्य निरर्गलम्,
विगत-रजस मोक्ष देयान् निरत्यय-मव्ययम्।।३।।

अन्वयार्थ—(तदनु) जिनधर्म, जिनागम की स्तुति के बाद (प्रभङ्ग तरङ्गिणी) स्यात् अस्ति, नास्ति आदि सप्त भग रूप तरगो से युक्त तथा (प्रभव-विगम-ध्रौव्य-द्रव्य-स्वभाव-विभाविनी) उत्पाद-व्यय, ध्रौव्य रूप द्रव्य के स्वभाव को प्रगट करने वाली (जैनी वित्ति) जिनेन्द्र भगवान् की केवलज्ञानमयी प्रवृत्ति (जयतात्) जयवन्त प्रवर्ते। इस प्रकार (इद) ये जिनदेव, जिनधर्म, जिनवाणी और जिनेन्द्र का केवलज्ञान रूप चतुष्टय (निरुपमसुखस्य) उपमातीत सुख के (द्वार विघट्य) द्वार को खोलकर (निरर्गल) अर्गल रहित करे व (निरत्ययम्) व्याधि रहित (अव्ययम्) अविनाशी (विगत रजस) कर्म रहित (मोक्ष) मोक्ष को (दैयात्) देवे।

भावार्थ—यहाँ आचार्य देव ने केवलज्ञान को नदी की उपमा दी है। यथा नदी लहरो से भरपूर है, उसी प्रकार यह केवलज्ञान रूपी नदी भी सप्तभगमय वस्तु तत्त्व का ज्ञाता है अत सप्तभगरूप है।

"भङ्ग" शब्द के भाग लहर, प्रकार, विघ्न आदि अनेक अर्थ होते हैं, उनमे से यहाँ पर प्रकार वाचक "भङ्ग" शब्द लिया है। तदनुसार वचन के भङ्ग सात प्रकार के हो सकते है, उससे अधिक नही क्योकि आठवी तरह का कोई वचनभङ्ग होता नही। सात से कम मानने से कोई न कोई वचनभङ्ग छूट जायेगा।

इसका कारण यह है कि किसी भी पदार्थ के विषय मे कोई भी बात कही जाती है वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है, १ "है" (अस्ति) के रूप मे, २ "नही" (नास्ति) के रूप मे, ३. न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप मे।

इन मूल तीन भगो के परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि सयोगी) रूप होते है १ है और नही (अस्ति नास्ति) रूप, २ है और न कह सकने योग्य (अस्ति अवक्तव्य), ३ नही और न कह सकने योग्य (नास्ति अवक्तव्य) रूप।

एक भग तीनो का मिला हुआ (त्रिसयोगी) होता है—है, नही और न कह सकने योग्य (अस्ति नास्ति अवक्तव्य)।

इस तरह वचनभग सात प्रकार के है, इन सातो भगो के समुदाय को (सप्ताना भगाना समुदाय सप्तभगी) "सप्तभगी" कहते है। इस तरह स्यात् पद लगाकर उन सात भगो के नाम यो हुए—१ स्यात् अस्ति, २ स्यात् नास्ति, ३ स्यात् अस्ति नास्ति, ४ स्यात् अवक्तव्य, ५ स्यात् अस्ति अवक्तव्य, ६ स्यात् नास्ति अवक्तव्य ७ स्यात् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य।

१ प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिये इष्ट) दृष्टिकोण (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा) अस्तित्व रूप होती है।

२ प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तु या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणो की अपेक्षा अभाव नास्तित्व रूप होती है जैसे- राम राजा जनक की अपेक्षा से पुत्र नही है। (३) दोनो दृष्टिकोणो को क्रम से कहने पर अस्तित्व तथा अभाव (अस्ति-नास्ति) रूप होती है। जैसे-राम दशरथ के पुत्र हैं, जनक के पुत्र नही हैं। (४) परस्पर विरोधी [हैं तथा नही रूप] दोनो दृष्टिकोणो से एकसाथ वस्तु वचन द्वारा कही नही जा सकती क्योकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नही है। अत उस अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य होती है। जैसे-राम राजा दशरथ तथा जनक की युगपत् [एक साथ एक शब्द द्वारा] अपेक्षा कुछ नही कहे जा सकते। ५ वस्तु न कह सकने योग्य [युगपत् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य] होते हुए भी अपने दृष्टिकोण से होती तो है [स्यात् अस्ति अवक्तव्य] जैसे राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य [न कहे जा सकने योग्य] है फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र है। [स्यात् अस्ति अवक्तव्य] (६) वस्तु अवक्तव्य [युगपत् कहने की अपेक्षा] होत हुए

भी अन्य दृष्टिकोण से नही रूप है [स्यात् नास्ति अवक्तव्य] जैसे राम युगपत् दशरथ तथा जनक की अपेक्षा अवक्तव्य होते हुए भी राजा जनक की अपेक्षा पुत्र नही है। [स्यात् नास्ति अवक्तव्य] (७) परस्पर विरोधी [है और नही रूप] दृष्टिकोणो से युगपत् [है और नही रूप] दृष्टिकोणो से युगपत् [एकसाथ एक ही शब्द द्वारा] अवक्तव्य [न कह सकने योग्य] होते हुए भी वस्तु क्रमश उन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणो से है, नही रूप होती है। [अस्ति नास्ति अवक्तव्य] जैसे–राम राजा तथा जनक की अपेक्षा युगपत् रूप से कुछ भी नही कहे अवक्तव्य है किन्तु युगपत् की अपेक्षा अवक्तव्य होकर भी क्रमश राम राजा दशरथ के पुत्र है, राजा जनक के पुत्र नही है।

इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रत्येक पदार्थ मे लागू होती है। सप्तभगी के लागू होने के विषय मे मूल बात यह है कि प्रत्येक पदार्थ मे अनुयोगी [अस्तित्व रूप] और प्रतियोगी [अभाव रूप-नास्तित्व रूप] धर्म पाये जाते हैं तथा अनुयोगी प्रतियोगी धर्मो को युगपत् [एकसाथ] किसी भी शब्द द्वारा न कह सकने योग्य रूप अवक्तव्य धर्म भी प्रत्येक पदार्थ विद्यमान है। अनुयोगी, प्रतियोगी और अवक्तव्य इन तीनो धर्मो के एक सयोगी [अकेले-अकेले] तीन भग होते है, द्विसयोगी [युगल रूप] तीन भग होते हैं तथा तीनो का मिलकर त्रिसयोगी भग एक होता है। इस तरह सब मिलकर सात भग हो जाते है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक पदार्थ के स्वरूप का प्रकाशक केवलज्ञान सदा जयवन हो। जिस सुख के पीछे कोई दुख नही है, जो जन्म-जरा-मृत्यु व अनेक व्याधियो से रहित सुख है वही वास्तव मे निरुपम सुख है, वह सुख मुक्त अवस्था मे है। यहाँ आचार्य देव जिनदेव, जिनधर्म, जिनागम व जिनज्ञान/केवलज्ञान रूप चतुष्टय महानिधियो से प्रार्थना करते है कि हे प्रभो! अनुपम सुखरूपी मुक्तिद्वार पर मोहरूपी सॉकल व अन्तराय रूपी अर्गल/बेड़ा लगा हुआ है। अत मोहरूपी द्वार खोलकर अन्तराय रूपी अर्गल को भी दूर कीजिये तथा रज रहित कीजिये अर्थात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्म को दूर कीजिये। तात्पर्य हे प्रभो! मुझे चार घातिया कर्मो से अथवा अष्ट कर्मो के रज से दूर कर मुक्ति प्रदान कीजिये।

यहाँ आचार्य देव का तात्पर्य है—इस ससार मे अष्टकर्मरूपी रज से मलीन जीव, जन्म-जरा-मृत्यु से पीडित हो निरन्तर दुखी है, यदि यह शाश्वत अनुपम सुख की प्राप्ति करना चाहता है तो जिनदेव, जिनधर्म, जिनागम व केवलज्ञान की भक्ति, स्तुति, आराधना करे, इनकी आराधना से भिन्न कोई मुक्ति-मार्ग नही है।

२. दश-पद-स्तोत्रम्

पञ्च परमेष्ठियों को नमस्कार

आर्या छन्द

अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः ।
सर्व-जगद्-वन्द्येभ्यो नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः ।।४।।

अन्वयार्थ—(सर्व-जगत्-वन्देभ्य) तीन लोक के समस्त प्राणियो से वन्दनीय (सर्वेभ्य) समस्त (अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्यायेभ्य) अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (तथा च) और (साधुभ्य) साधुओ के लिये (सर्वत्र) जहाँ-जहाँ विराजमान हैं (नम अस्तु) मेरा नमस्कार हो।

भावार्थ—तीन लोको के समस्त प्राणियो से वन्दनीय अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय व साधु पच परमेष्ठी भगवान ढाई द्वीप मे जहाँ-जहाँ विराजमान है, सबको मेरा नमस्कार है।

अरहंतों को नमस्कार

मोहादि-सर्व-दोषारि-घातकेभ्यः सदा हत-रजोभ्यः,
विरहित-रहस्-कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः ।।५।।

अन्वयार्थ—(मोह-आदि-सर्व-दोष-अरि-घातकेभ्य) मोह आदि अर्थात् राग-द्वेष-क्रोधादि अथवा दर्शनमोह व चारित्रमोह आदि व सर्व दोष-१८ दोषो रूपी शत्रुओ का क्षय करने वाले/नाश करने वाले (हत-रजोभ्य) ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मरज को नष्ट करने वाले व (विरहित-रहस्कृतेभ्य) नष्ट कर दिया है अन्तराय कर्म को जिन्होने ऐसे (पूजा अर्हेभ्य) पूजा के योग्य (अर्हद्भ्य) अरहत परमेष्ठी के लिये (सदा नम) सर्वकाल नमस्कार हो।

भावार्थ—"अरि-रज-रहस-विहीन" जो अरहत परमेष्ठी मोहरूपी शत्रु व १८ दोषो से रहित है ज्ञानावरण-दर्शनावरण कर्मरूपी रज से रहित है, तथा अन्तराय कर्म से रहित है अर्थात् चार घातिया कर्मो के क्षय से चार अनन्त चतुष्टय को प्राप्त होने से पूज्य अरहन्त भगवन्तो को मेरा नमस्कार हो।

धर्म को नमस्कार

क्षात्यार्जवादि-गुण गण-सुसाधन सकल-लोक-हित-हेतुम्।
शुभ-धामनि धातार वन्दे धर्म जिनेन्द्रोक्तम्।।६।।

अन्वयार्थ—(क्षान्ति-आर्जव-आदि गुण-गण-सु साधन) जो उत्तम क्षमा, सरलता आदि गुण समूह की प्राप्ति का उत्तम साधन है (सकल-लोक-हित-हेतुम्) सम्पूर्ण लोक के जीवो के हित का कारण है (शुभ-धामनि) स्वर्ग-मोक्ष रूप उत्तम स्थानो मे (धातार) धरने वाला है उस (जिनेन्द्र-उक्तम्) जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये (धर्म) धर्म को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के द्वारा प्रतिपादित उस धर्म की मै वन्दना करता हूँ जो उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, अथवा शाति, कोमलता, सरलता, सतोष आदि गुणो के समूह की प्राप्ति कराने के लिये अमोघ साधन है, तीन लोक के समस्त प्राणियो का हितकारी है तथा ससार के दु खो से छुडाकर स्वर्ग-मोक्ष रूप उत्तम स्थानो मे पहुँचाने वाला है।

जिनवाणी की स्तुति

मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोकैक-ज्योति-रमित-गमयोगि।
सागोपाग-मजेय जैन वचन सदा वन्दे।।७।।

अन्वयार्थ—(मिथ्याज्ञान-तमोवृत-लोक-एकज्योति) मिथ्या ज्ञान रूप अन्धकार मे डूबे लोक मे जो अद्वितीय ज्योतिरूप है (अमित-गम-योगि) अपरिमित श्रुत ज्ञान से जो सहित है (अजेय) अजेय है/किसी परवादी के द्वारा जीतने योग्य नही है ऐसे (साङ्ग-उपाङ्ग) अग और उपाङ्गो से युक्त (जैन वचन) जिनेन्द्र वचन-जिनवाणी को (सदा वन्दे) मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ग्यारह अग-चोदह पूर्व अथवा अग प्रविष्ट व अगबाह्य

रूप से जिनेन्द्र कथित अपरिमित श्रुतज्ञान जिनवाणी को, जो मिथ्यात्व मे डूबे, अज्ञान अन्धकार से घिरे जीवो के लिये एक अनुपम, अद्वितीय ज्योतिरूप प्रकाशपुजिका है, प्रतिवादियो के द्वारा अपराजित है ऐसी माँ जिनवाणी के लिये मै सदा नमस्कार करता हूँ।

जिन प्रतिमाओं को नमस्कार

भवन-विमान-ज्योति-र्व्यन्तर-नरलोक विश्व-चैत्यानि।
त्रिजग-दभिवन्दितानां त्रेधा वन्दे जिनेन्द्राणाम्॥८॥

अन्वयार्थ—(त्रिजगत् अभिवन्दिताना) तीनो लोको के जीवो के द्वारा अभिवन्दनीय (जिनेन्द्राणाम्) अरहत/जिनेन्द्रदेव की (भवन-विमान-ज्योति -व्यन्तर, नरलोक, विश्व चैत्यानि) भवनवासी, वैमानिक, ज्योतिषी, व्यन्तर देवो के विमानो मे, समस्त निवास स्थानो मे विराजमान तथा ढाई दीप/मनुष्यलोक मे, सर्व लोक मे विराजमान समस्त जिनबिम्बो की मै (त्रेधा वन्दे) मन-वचन-काय से वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक सर्व विश्व मे विराजमान कृत्रिमाकृत्रिम जिनेन्द्रदेव की वीतराग प्रतिमाएँ जो समस्त जीवो के द्वारा अभिवन्दनीय है उनको मै मन-वचन-काय से सदा वन्दना करता हूँ।

चैत्यालय की स्तुति

भुवनत्रयेऽपि भुवनत्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थ-कर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्नि-शान्त्यै विभवाना-मालयालीस्ताः॥९॥

अन्वयार्थ—(विभवानाम्) ससार रहित (भुवनत्रय-अधिप-अभ्यर्च्य) तीन लोको के पतियो के द्वारा पूज्य (तीर्थकर्तृणाम्) तीर्थकरो के (भुवनत्रयेऽपि) तीनो लोको मे (आलय-अली) जो मन्दिरो की पक्तियाँ है (ता) उनको (भव-अग्नि-शान्त्यै) ससाररूपी अग्नि को शान्त करने के लिये (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो जन्म-जरा-मरणरूप ससार से रहित है, इन्द्र, नरेन्द्र, धरणेन्द्र आदि तीन लोक के अधिपतियो से वन्दनीय है/पूज्य है, ऐसे तीर्थंकर परमदेव के जिनालयो की पक्तियाँ जहाँ-जहाँ भी शोभायमान है, उनको मै ससाररूपी अग्नि को शान्त करने के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति करने का फल

इति पञ्च-महापुरुषाः प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि ।
चैत्यालयाश्च विमलां दिशन्तु बोधिं बुध-जनेष्टाम् ।।१०।।

अन्वयार्थ—(इति प्रणुता) इस प्रकार स्तुति किये गये ये (पच-महापुरुषा) पच-परमेष्ठी भगवन्त (जिनधर्म-वचन-चैत्यानि-चैत्यालया) जिनधर्म, जिनागम, चैत्य और चैत्यालय (बुधजन-इष्टा) ज्ञानी जनो/ गणधरो को इष्ट (विमला) निर्मल (बोधि) ज्ञान (दिशन्तु) देवे।

भावार्थ—इस प्रकार मैने अरहत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु-जिनधर्म-जिनागम, जिन-प्रतिमा और जिनालयो की वन्दना की। ये सब मेरे लिये अत्यन्त निर्मल, बुद्धिमानो को भी इष्ट ऐसी रत्नत्रय निधि प्रदान करे।

३. जिन-प्रतिमा-स्तवनम्

कृत्रिम अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं की स्तुति
वियोगिनी छन्दः

अकृतानि कृतानि-चाप्रमेय-द्युतिमन्ति द्युतिमत्सु मन्दिरेषु ।
मनुजामर-पूजितानि वन्दे, प्रतिबिम्बानि जगत्त्रये जिनानाम् ।।११।।

अन्वयार्थ—(जगत्त्रये) तीनो लोको मे (मनुज अमर-पूजितानि) मनुष्य व देवो से पूज्य (अप्रमेय द्युतिमत्सु मन्दिरेषु) अप्रमित कान्ति से युक्त जिनालयो मे (जिनाना) जिनेन्द्रदेवो की (अकृतानि-कृतानि) अकृत्रिम व कृत्रिम (अप्रमेयद्युतिमन्ति) अपरिमित कान्ति से युक्त (प्रतिबिम्बानि) प्रतिमाओ को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—तीनो लोको मे-अधोलोक मे ७ करोड़ ७२ लाख, मध्यलोक मे ४५८ व ऊर्ध्वलोक मे ८४ लाख ९७ हजार २३ इतने प्रमाणातीत कान्ति से युक्त अकृत्रिम जिनालय है तथा असख्यात कृत्रिम जिनालय हैं तथा उनमे अप्रमित कान्ति से युक्त वीतराग जिनबिम्ब विराजमान हैं, ये जिनालय व जिनबिम्ब मनुष्यो व देवो से भी पूज्य हैं। इनकी मैं पूज्यपाद आचार्य वन्दना करता हूँ।

द्युति-मण्डल-भासुरांग-यष्टीः, प्रतिमाऽप्रतिमा जिनोत्तमानाम् ।
भुवनेषु विभूतये प्रवृत्ता, वपुषा प्राञ्जलिरस्मि वन्दमानः ।।१२।।

अन्वयार्थ—(भुवनेषु) तीनो लोको मे (प्रवृत्ता) विराजमान/वर्तमान (द्युतिमण्डल-भासुर-अङ्ग-यष्टी) कान्ति-मण्डल से देदीप्यमान शरीर यष्टि अर्थात् शरीररूपी लकड़ी से युक्त (वपुषा अप्रतिमा) स्वरूप या तेज से उपमातीत (जिनोत्तमाना) जिनेन्द्रदेव की (प्रतिमा) प्रतिमाओ को (विभूतये) अनन्त चतुष्टय आदि रूप अर्हन्त देव की सम्पदा की प्राप्ति के लिये अथवा स्वर्ग, मुक्तिरूपी पुण्य सम्पदा की प्राप्ति के लिये (वपुषा वन्दमान) शरीर से नमस्कार करता हुआ (प्राञ्जलि अस्मि) मैं अञ्जलिबद्ध हूँ।

भावार्थ—यहाँ आचार्य देव ने जिनेन्द्रदेव के शरीर को लकड़ी की उपमा दी है–''अङ्गयष्टी'' । क्योकि जिस प्रकार लकड़ी समुद्र से पार कर देती है, उमी प्रकार भगवान का शरीर भी ससारी प्राणियो को ससार-समुद्र से पार कर देता है। अत भगवान का शरीर एक लकड़ी के समान है।

जिनकी शरीररूपी लकडी प्रभामडल से अत्यत दीप्ति को प्राप्त हो रही है अर्थात् जिनेन्द्र प्रतिमाएँ प्रभामडल से शोभा को प्राप्त हो रही है, ससार मे जिनके तेज की कोई उपमा नही है, ऐसी जिन-प्रतिमाओ को मैं अर्हन्त पद की विभूति के लिये अथवा स्वर्ग मोक्ष रूप अतुल सम्पदा की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हुआ अञ्जलिबद्ध हूँ। अर्थात् उन सब प्रतिमाओ को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ।

विगतायुध-विक्रिया-विभूषाः, प्रकृतिस्थाः कृतिनां जिनेश्वराणाम् ।
प्रतिमाः प्रतिमा-गृहेषु कान्त्याऽ-प्रतिमाः कल्मष-शान्तयेऽभिवन्दे ।।१३।।

अन्वयार्थ—(प्रतिमागृहेषु) कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालयो मे विराजमान/विद्यमान (कृतिना) कृतकृत्य (जिनेश्वराणाम्) जिनेन्द्र भगवान् की (विगत-आयुध-विक्रिया-विभूषा.) अस्त्र रहित, विकार रहित और आभूषण से रहित (प्रकृतिस्था) स्वाभाविक वीतराग मुद्रा मे स्थित (कान्त्या अप्रतिमा) दीप्ति से अनुपम (प्रतिमा) जिनेन्द्र प्रतिमाओ को, मैं (कल्मष-शान्तये) पापों की शान्ति के लिये (अभिवन्दे) सन्मुख होकर अच्छी तरह से मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो कृतकृत्य हैं अर्थात् जिन्होने चार घातिया कर्मो का क्षय कर दिया है, केवल शुभ कर्म जिनके शेष रह गये है ऐसे अरहत देव की अनुपम तेज-कान्ति से देदीप्यमान प्रतिमाएँ है। कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयो मे, तलवार, बर्छी, दड, भाला आदि आयुधो/ अस्त्रो से रहित, विकार, रहित व केयूर, हार, कुण्डल आदि आभूषणो से रहित वीतराग स्वभाव मे स्थित/विराजमान समस्त जिनप्रतिमाओ को मै समस्त पापो की शान्ति के लिये उनके सन्मुख होकर नमस्कार करता हूँ। उनकी स्तुति करता हूँ। आचार्य वादिराज स्वामी एकीभाव स्तोत्र मे भी लिखते है—

जो कुदेव छवि हीन वसन भूषण अभिलाखै,
बैरी सो भयभीत होय सो आयुध राखै।
तुम सुन्दर सर्वंग शत्रु समरथ नहि कोई,
भूषण वसन गदादि ग्रहण काहे को होई।।१९।।

कथयन्ति कषाय-मुक्ति-लक्ष्मी, परया शान्ततया भवान्तकानाम्।
प्रणमाम्यभिरूप-मूर्तिमन्ति, प्रतिरूपाणि विशुद्धये जिनानाम्।।१४।।

अन्वयार्थ—(भवान्तकानाम्) ससार का अन्त करने वाले (जिनानाम्) जिनेन्द्रदेवो की (अभिरूप-मूर्तिमति) चारो ओर से अत्यत सुन्दरता को धारण करने वाली (कषाय-मुक्ति-लक्ष्मी) कषायो के त्याग से अन्तरग-बहिरग लक्ष्मी की युक्तता को (परया शान्ततया) अत्यत शान्तता के द्वारा (कथयन्ति) सूचित करती है ऐसी उन (प्रतिरूपाणि) जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओ को मै (विशुद्धये) विशुद्धि के लिये (प्रणमामि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जन्म-मरणरूप ससार का अन्त करने वाले वीतरागी-सर्वज्ञ-हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवन्तो की चारो ओर से अत्यधिक सुन्दरता को धारण करने वाली कषायो के अभाव से अन्तरङ्ग अनन्त-चतुष्टय व बहिरङ्ग समवशरण लक्ष्मी की प्राप्ति की दशा को अत्यन्त शान्तता के द्वारा सूचित करने वाली समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम प्रतिमाओ को मैं आत्मा की विशुद्धि के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति करने का फल

यदिदं मम सिद्धभक्ति-नीतं, सुकृतं दुष्कृत-वर्त्म-रोधि तेन।
पटुना जिनधर्म एव भक्ति-र्भव-ताज्जन्मनि जन्मनि स्थिरा मे ।।१५।।

अन्वयार्थ—(सिद्धभक्ति-नीत) तीन जगत् मे प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्ति से प्राप्त और (दुष्कृतवर्त्मरोधि) खोटे मार्ग को रोकने वाला (मम) मेरा (यत् इद सुकृत) जो यह पुण्य है (तेन पटुना) उस प्रबल पुण्य से (मे भक्ति) मेरी भक्ति (जन्मनि-जन्मनि) जन्म-जन्म मे (जिनधर्मे) जिनधर्म मे (एव) ही (स्थिरा भवतात्) स्थिर हो।

भावार्थ—हे प्रभो! मैने पाप-मार्ग को रोकने वाली जगत् प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्ति से जो पुण्य प्राप्त किया है, उसके फल से मेरी जन्म-जन्म मे मुक्ति प्राप्ति न हो तब तक जिनेन्द्र कथित धर्म मे ही स्थिरता बनी रहे। मुझे निर्वाणपर्यन्त जैनधर्म की ही प्राप्ति हो।

४. बिम्ब-चैत्य-चैत्यालय-कीर्तन

अनुष्टुप

अर्हता सर्वभावानां दर्शन-ज्ञान-सम्पदाम्।
कीर्तयिष्यामि चैत्यानि यथाबुद्धि विशुद्धये ।।१६।।

अन्वयार्थ—(सर्वभावानाम्) सर्व पदार्थो की समस्त पर्यायो को युगपत् जानने वाले-सर्वज्ञ (ज्ञान-दर्शन-सम्पदाम्) ज्ञान दर्शन रूप सम्पत्ति से सहित (अर्हता चैत्यानि) अरहन्त भगवन्तो के प्रतिबिम्बो की (यथाबुद्धि) अपनी बुद्धि के अनुसार (विशुद्धये) विशुद्धि प्राप्त करने के लिये (कीर्तयिष्यामि) स्तुति करूँगा।

भावार्थ—त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थो की त्रैकालिक पर्यायो को युगपत् विषय करने वाले सर्वज्ञदेव, जो अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन रूप सम्पत्ति से सुशोभित हैं, उन अरहन्त-देव की समस्त त्रिलोक स्थित प्रतिमाओ की मैं अपनी बुद्धि के अनुसार स्तुति करूँगा।

श्रीमद्-भवन-वासस्था स्वयं भासुर-मूर्तयः।
वन्दिता नो विधेयासुः प्रतिमाः परमां गतिम् ।।१७।।

अन्वयार्थ—(स्वय-भासुर-मूर्तय) स्वभाव से देदीप्यमान शरीर को धारण करने वाली (श्रीमत् भवनवासस्था) बड़ी विभूति को धारण करने वाले भवनवासी देवो के भवनो मे स्थित (प्रतिमा) जिनप्रतिमाएँ (वन्दिता) वन्दना को प्राप्त होती हुई (न) हम सब की (परमा गति) उत्कृष्ट गति (विधेयासु) करे अर्थात् उनकी वन्दना से हम सबको उत्कृष्ट गति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—बड़ी विभूति के धारक भवनवासी देवो के सुन्दर-सुन्दर विमानो मे विराजित अनादि-निधन, स्वभाव से ही देदीप्यमान शरीर को धारण करने वाली, देवो के द्वारा सदा पूज्य/वन्दित जिन प्रतिमाओ की वन्दना से हम सब भक्तजनो को उत्तम मोक्ष गति की प्राप्ति हो। अर्थात् जो वीतराग देव की स्तुति, आराधना करता है वह जीव मुक्ति का पात्र बनता है।

यावन्ति सन्ति लोकेऽस्मिन्नकृतानि कृतानि च।
तानि सर्वाणि चैत्यानि वन्दे भूयांसि भूतये ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अस्मिन् लोके) इस मध्य लोक/तिर्यक् लोक मे (यावन्ति) जितनी (अकृतानि) अकृत्रिम (च) और (कृत्रिम) कृत्रिम (चैत्यानि) प्रतिमाएँ (सन्ति) है (तानि सर्वाणि) उन सबको (भूयासि भूतये) अन्तरग-बहिरग महा विभूति के लिये (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मध्य लोक मे ४५८ अकृत्रिम चैत्यालयो के जिनबिम्ब व कृत्रिम चैत्यालयो मे जितने भी जिनबिम्ब हैं, उन समस्त जिनबिम्बो/जिनप्रतिमाओ को मै अनन्त चतुष्टय रूप अन्तरग व समवसरणादि बहिरग परम विभूति की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

ये व्यन्तर-विमानेषु स्थेयांसः प्रतिमागृहाः।
ते च संख्या-मतिक्रान्ताः सन्तु नो दोष-विच्छिदे ॥१९॥

अन्वयार्थ—(व्यन्तरविमानेषु) व्यन्तर देवो के विमानो मे (ये) जो (स्थेयास) सदा स्थिर रहने वाले (प्रतिमागृहा) चैत्यालय हैं (च) और (सख्याम् अतिक्रान्ता) असख्यात है (ते) वे (न) हमारे (दोष-विच्छिदे सन्तु) दोषो को नाश करने के लिये होवे।

भावार्थ—व्यन्तर देवो के विमानो मे शाश्वत असख्यात चैत्यालय है वे हमारे राग-द्वेष-मोह आदि सर्व दोषो के नाशक हो। अर्थात् व्यन्तर देवो के विमानो मे विराजित जिनप्रतिमाओ की भक्ति/वन्दना से हमारे सर्व दोषो का क्षय हो।

ज्योतिषा-मथ लोकस्य भूतयेऽद्भुत-सम्पदः।
गृहाः स्वयम्भुवः सन्ति विमानेषु नमामि तान्।।२०।।

अन्वयार्थ—(अथ) अब (ज्योतिषा लोकस्य विमानेषु) ज्योतिर्लोक के विमानो मे (स्वयभुव) अर्हन्त भगवान् की (अद्भुत-सम्पद) आश्चर्यकारी सम्पदा से सहित जो (गृहा) चैत्यालय (सन्ति) है (भूतये) अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग विभूति की प्राप्ति के लिये (तान्) उनको (नमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ज्योतिषी देवो के विमानो मे स्थित चैत्यालयो को जो अर्हन्त देव की लोक आश्चर्यकारक सम्पदा सहित शोभायमान है, मै अपनी शाश्वत आत्मनिधि की प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

वन्दे सुर-किरीटाग्र-मणिच्छायाभिषेचनम्।
याः क्रमेणैव सेवन्ते तदर्च्चाः सिद्धि-लब्धये।।२१।।

अन्वयार्थ—(या) जो प्रतिमाएँ (सुर किरीटाग्रमणिच्छाया-अभिषेचनम्) वैमानिक देवो के मुकुटो के अग्रभाग मे लगी मणियो की कान्ति द्वारा होने वाले अभिषेक को (क्रमेण एव) चरणो से ही (सेवन्ते) प्राप्त करती है (तत् अर्च्चा) पूज्यनीय उन प्रतिमाओ को मै (सिद्धि-लब्धये) मुक्ति की प्राप्ति के लिये (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—वैमानिक देव अपने विमानो स्थित प्रतिमाओ के चरणो मे मस्तक झुकाकर जिस समय नमस्कार करते है तब उनके मुकुटो के अग्र-भाग मे लगी मणियो की कान्ति जिन प्रतिमाओ के चरणो मे ऐसी गिरती है मानो देव मुकुटो के अग्रभाग मे लगी मणियो से जिनेन्द्रदेव के चरणो का अभिषेक ही कर रहे हैं। ऐसी जिनेन्द्र प्रतिमाओ को मैं मुक्ति प्राप्ति के लिये नमस्कार करता हूँ।

स्तुति के फल की प्रार्थना

इति स्तुति पथातीत-श्रीभृता-मर्हतां मम ।
चैत्यानामस्तु सकीर्तिः सर्वास्त्रव-निरोधिनी ।। २२ ।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (स्तुति-पथ-अतीत) स्तुति मार्ग से अतीत (श्रीभृता) शोभा अथवा अन्तरग बहिरग लक्ष्मी को धारण करने वाले (अर्हता) अरहन्त भगवान की (चैत्याना) प्रतिमाओ की (सकीर्ति) सम्यक् स्तुति (मम) मेरे (सर्व-आस्त्रव-निरोधिनी) समस्त आस्त्रवो को रोकने वाली (अस्तु) हो।

भावार्थ—जिन अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरङ्ग व समवशरणादि रूप बहिरङ्ग लक्ष्मी को धारण करने वाले अरहन्त भगवान की स्तुति साक्षात् इन्द्र भी करने मे समर्थ नही है, उन अरहत भगवान की प्रतिमाओ की मैने जो स्तुति की है, गुणानुवादन किया है वह मेरे समस्त कर्मो के आस्त्रवो को रोकने मे समर्थ हो। अर्थात् आस्त्रव निरोध से सवर पूर्वक निर्जरा हो, अन्त मे मुक्ति की प्राप्ति हो।

५. अहन्-महानद-स्तवन

अर्हन्-महा-नदस्य-त्रिभुवन-भव्यजन-तीर्थ-यात्रिक-दुरित-
प्रक्षालनैक-कारणमति-लौकिक-कुहक-तीर्थ-मुत्तम-तीर्थम् ।। २३ ।।

अन्वयार्थ—(अर्हत् महानदस्य) अर्हन्त रूप महानद का (उत्तमतीर्थ) उत्कृष्ट तीर्थ-घाट (त्रिभुवन-भव्य-जन-तीर्थ-यात्रिकदुरित-प्रक्षालन-एककारणम्) तीन लोक के भव्यजीव रूप तीर्थयात्रियो के पापो का प्रक्षालन करने, पापो का क्षय करने के लिये एक मुख्य कारण है। (अति-लौकिक कुहक तीर्थम्) जो लौकिक जनो के दम्भपूर्ण तीर्थो का अतिक्रान्त करने वाला है।

भावार्थ—नदी का प्रवाह पूर्व दिशा की ओर होता है किन्तु जिनका प्रवाह पश्चिम दिशा की ओर हो उनको नद कहते है। ससाररूपी नदी का प्रवाह अनादि काल से चला आ रहा है भगवान अरहत का उससे सर्वथा विपरीत है। ससारी जीवो का प्रवाह ससार की ओर जा रहा है और अरहन्त भगवान का प्रवाह मोक्ष की ओर जा रहा है अत यहाँ आचार्य-

देव ने अरहन्तदेव को नद की उपमा दी है। अरहन्तरूपी नद विशाल होने से इसे महानद कहा है।

जिस प्रकार महानद मे तीर्थ होते है उसी प्रकार इस महानद मे भी ग्यारह अङ्ग, चौदह पूर्व रूपी उत्तम तीर्थ है, जिनमे डुबकी लगाने वाला भव्य जीव ससार-सागर से पार हो जाता है। अथवा जिससे ससार-समुद्र तिरा जाय उसे तीर्थ कहते है। इस द्वादशाग का आश्रय लेने वाले ससारी जीव ससार से तिर जाते है अत अर्हत् भगवान का मत उत्तम तीर्थ है।

लौकिक नदो के तीर्थ मे स्नान से शरीर-मल दूर होता है किन्तु अरहन्तदेवरूपी महानद के उत्तम तीर्थ मे स्नान करने से पाप पक का प्रक्षालन होता है। भव्य जीव इस नद के उत्तम तीर्थ मे समस्त पापो का क्षय कर मुक्ति को प्राप्त होते है। यह एक असाधारण तीर्थ है, सर्वश्रेष्ठ है। तीनो लोको की यात्रा करने वाले भव्यजीवो के पापो का नाश करने मे अद्वितीय कारण है। यह अलौकिक महानद का महातीर्थ मेरे समस्त पापो का नाश करने वाला हो।

लोकालोक - सुतत्त्व - प्रत्यब - बोधन - समर्थ - दिव्यज्ञान-
प्रत्यह-वहत्प्रवाहं व्रत-शीलामल-विशाल-कूल-द्वितयम् ।। २४।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-सुतत्त्व-प्रति-अवबोधन-समर्थ-दिव्यज्ञान-प्रत्यह-वहत्-प्रवाह) लोक और अलोक के समीचीन तत्त्वो का ज्ञान कराने मे समर्थ दिव्यज्ञान का प्रवाह जिसमे निरन्तर बह रहा है (व्रत-शील-अमल-विशाल-कूल-द्वितय) व्रत और शील जिसके दो निर्मल विशाल तट हैं।

भावार्थ—जिस प्रकार तीर्थ से पानी का प्रवाह बहता रहता है उसी प्रकार अरहन्तदेवरूप महानद से लोक और अलोक का जो स्वरूप है, जीवादिक पदार्थों का जो यथार्थ स्वरूप है उसको पूर्ण रूप से जानने मे समर्थ ऐसे केवलज्ञानरूप दिव्य ज्ञान का प्रवाह प्रतिदिन बहता रहता है। उस महानद के ५ महाव्रत और १८ हजार प्रकार का शील ये दो तट हैं।

शुक्लध्यान-स्तिमित स्थित-राज-द्राजहंस-राजित-सकृत् ।
स्वाध्याय-मन्द्रघोषं नाना-गुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम् ।। २५।।

अन्वयार्थ—(शुक्ल-ध्यानस्तिमित-स्थित-राजत्-राजहस-राजितम्) जो जिनदेव/अरहन्तदेवरूपी महानद शुक्लध्यान मे निश्चल होकर स्थित रहने वाले शोभायमान श्रेष्ठ मुनिराजरूपी राजहस पक्षियो से सुशोभित है (असकृत् स्वाध्याय-मन्द्रघोष) जिसमे बार-बार होने वाले स्वाध्याय का गंभीर शब्द गुजन कर रहा है। (नानागुण-समिति-गुप्ति-सिकता-सुभगम्) जो अनेक गुणो के समूह रूप समिति और गुप्ति रूप बालू से सुन्दर है।

भावार्थ—जैसे महानद के किनारे राजहस पक्षियो से सुन्दर दिखाई देते है, वैसे ही अरहन्तदेवरूपी महानद के किनारे शुक्लध्यान मे निश्चल रहने वाले श्रेष्ठ दिगम्बर सन्तो रूपी राजहसो से शोभायमान है तथा जैसे महानद के किनारे पर पक्षियो का कलरव/गुजन होता है वैसे ही अरहन्त रूपी महानद मे बार-बार होने वाले जिनेन्द्र कथित गभीर आगम के मधुर शब्दो के स्वाध्याय का घोष/गुजन होता रहता है। महानद के किनारे बालू से मनोहर दिखते है, इसी प्रकार अरहतदेवरूपी महानद भी ८४ लाख उत्तरगुण, पॉच समिति, तीन गुप्ति रूपी बालू से अपूर्व शोभा को धारण करता हुआ भव्यो का मनोहारी बना हुआ है। ऐसा यह अरहत देव रूपी महानद मेरे समस्त पापो का प्रक्षालन करने वाला हो।

क्षान्त्यावर्त-सहस्रं सर्व-दया-विकच-कुसुम-विलसल्लतिकम्।
दुःसह - परीषहाख्य - द्रुततर - रंग - त्तरंग - भङ्गुर - निकरम्॥२६॥

अन्वयार्थ—(क्षान्ति-आवर्त-सहस्र) उत्तम क्षमारूपी हजारो भॅवरे जहॉ उठ रही है (सर्वदया-विकच-कुसुम-विल-सल्लतिकम्) जहॉ अच्छी-अच्छी लताऍ सब जीवो पर दयारूपी खिले हुए पुष्पो से विशेष सुशोभित है (दु सह-परीषहाख्य-द्रुततररङ्गतरगभङ्गुर-निकरम्) जहाँ अत्यन्त कठिन परीषह नामक अतिशीघ्र चलती हुई तरङ्गो का क्षणभंगुर/विनश्वर समूह है।

भावार्थ—जैसे महानद मे भॅवर उठा करती है, उसी प्रकार अरहत देवरूपी महानद मे उत्तम क्षमारूपी भँवर सदा उठते रहते हैं। महानद मे लताओ पर फूल खिलते सुन्दर लगते है वैसे ही अरहंतदेवरूपी महानद मे सुन्दर लताऍ सर्व जीवो पर दयारूपी खिले हुए पुष्पो से शोभायमान हो रही है। जैसे महानद मे विनाशी लहरे/तरगे उठती रहती हैं वैसे ही अरहतदेवरूपी जिस महानद मे अत्यन्त कठोर परीषह अतिशीघ्र चलने

वाली तरङ्गो का विनाशीक समूह है। ऐसा अरहत महानद पापरूपी कर्दम से हमारी रक्षा करे।

व्यपगत-कषाय-फेनं राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहितम्।
अत्यस्त-मोह-कर्दम-मतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्।। २७।।

अन्वयार्थ—(व्यपगत-कषाय-फेन) जहाँ कषायरूपी फेन/झाग बिल्कुल क्षपित हो गया है। (राग-द्वेषादि-दोष-शैवल-रहित) जो राग-द्वेष आदि दोषरूपी काई से रहित है (अति-अस्त-मोह-कर्दम) जिसमे मोहरूपी कीचड़ अत्यन्त रूप से नष्ट हो चुकी है और (अतिदूर-निरस्त-मरण-मकर-प्रकरम्) जिससे मरणरूपी मगर-मच्छरो का समूह अत्यन्त दूर हटा दिया गया है।

भावार्थ—प्रकृति का नियम है फेन पानी को मलिन कर देता है। जैसे महानद के तीर्थ मे फेन नही होते वैसे ही अरहतदेवरूपी महानद मे आत्मा का कलुषित करने वाले कषायरूपी फेन नही होते है।

जिस प्रकार महानद के तीर्थ मे शैवाल याने काई नही होती, क्योकि शैवाल चिकना होता है यहाँ मनुष्य पैर फिसलने से गिर पड़ता है। उसी प्रकार अरहतदेवरूपी महानद मे राग-द्वेषरूपी शैवाल नही होते। रागद्वेष-रूपी काई/दोष भी व्रतियो को अपने पद से/व्रत से गिरा देते हैं। अरहन्त रूपी महानद मे राग-द्वेष की शैवाल कभी नही होती अत वे अत्यन्त निर्मल, शुद्ध परम वीतरागी है।

जिस प्रकार महानद मे कीचड़ नही होती अत पानी स्वच्छ व निर्मल बना रहता है उसी प्रकार अरहन्तदेवरूपी महानद मोहरूपी कीचड़ से सर्वथा रहित है। मोह के अभाव मे शुद्ध आत्मा १८ दोषो रूपी कर्दम से रहित सर्वज्ञ हो, समस्त पदार्थो को युगपत् जानने वाला केवलज्ञानी बनता है।

जिस प्रकार महानद मगरमच्छो से रहित होता है क्योकि यदि मगरमच्छ हो तो स्नान करने वालो को पीड़ा उत्पन्न होगी उसी प्रकार भगवान अरहत देवरूपी महानद मे मरणरूपी मगरमच्छो का समूह नही होता, अरहंत देवरूपी महानद साक्षात् मुक्ति का कारण है। इस प्रकार अत्यन्त निर्मल अरहंतदेवरूपी महानद मेरे पापो को दूर करे।

ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द्रोद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम् ।
विविध-तपोनिधि-पुलिनसास्रव-सवरण - निर्जरा - निःस्रवणम् ।। २८ ।।

अन्वयार्थ—(ऋषि-वृषभ-स्तुति-मन्द-उद्रेकित-निर्घोष-विविध-विहग-ध्वानम्) ऋषियो मे श्रेष्ठ गणधरो की स्तुतियो का गभीर तथा सबल शब्द ही जिसमे नाना प्रकार के पक्षियो का शब्द है। (विविध-तपोनिधि-पुलिन) अनेक प्रकार मुनिराज ही जिसमे पुलिन अर्थात् ससार-सागर से पार करने वाला पुल है और जो (सास्रव-सवरण-निर्जरा-नि स्रवणम्) आस्रव का सवरण अर्थात् सवर व निर्जरारूपी नि स्रवण/ निर्झरणो अर्थात् जल के निकलने के स्थानो से सहित है।

भावार्थ—जैसे महानद मे पक्षियो का शब्द गूँजता रहता है वैसे ही गणधरादि देव जो भगवान की स्तुति करते हुए गभीर, मनोज्ञ, मनोहर, मधुर शब्दो का उच्चारण करते है, वह मधुर पाठ ही अरहन्तदेवरूपी महानद के पक्षियो का गान है।

जैसे महानद मे ऊँचे किनारे होते है, जिससे तिरने वाले जीव किनारे पर पहुँच जाते है वैसे ही अरहन्तरूपी महानद के किनारे अनेक प्रकारेण तप करने वाले महा मुनिराज है। ये मुनिराज ससार-सागर मे पड़े जीवो को भेद-विज्ञान की नाव मे बैठा, किनारे लगाने वाले है।

जिस प्रकार नद मे पानी अधिक होने पर रोक दिया जाता है और भरा हुआ पानी निकाल दिया जाता है, यह सारी सुविधा वहाँ होती है। उसी प्रकार अर्हन्तदेवरूपी महानद मे आस्रव का द्वार तो बन्द हो चुका है, मात्र सवर व निर्जरा से ही यह महानद सदा सुशोभित है। ऐसा यह महानद मेरी आत्मा के आस्रव के द्वार का निरोध कर सवर निर्जरा का मार्ग प्रशस्त करे।

गणधर-चक्र-धरेन्द्र-प्रभृति-महा-भव्य-पुण्डरीकैः पुरुषैः ।
बहुभिः स्नातं भक्त्या कलि-कलुष-मलापकर्षणार्थ-ममेयम् ।। २९ ।।

अन्वयार्थ—(गणधर-चक्र-धरेन्द्र-प्रभृति-महा-भव्य-पुण्डरीकै) गणधरदेव, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि निकट भव्य पुरुषो मे श्रेष्ठ (बहुभि पुरुषै) अनेको पुरुषो ने (कलि-कलुष मल-अपकर्षणार्थं) पञ्चमकाल के

पापरूप मैल को दूर करने के लिये जिसमे (भक्त्या स्नात) भक्तिपूर्वक स्नान किया है तथा जो (अमेय) अति विशाल है।

भावार्थ—जो अरहतरूपी महानद अत्यन्त विशाल है, जिसमे इस कलिकाल के पापमल को दूर करने के लिए गणधर, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि अनेक निकट भव्य श्रेष्ठ पुरुष भक्ति से स्नान किया करते है और अपनी आत्मा को निर्मल बनाते है। ऐसा यह अरहतदेवरूपी महानद मेरे भी कर्ममल को/पापरूपी मैल को दूर करने वाला हो/मेरे भी पाप मैल को दूर करे।

अवतीर्णवतः स्नातुं ममापि, दुस्तर-समस्त-दुरितं दूरम्।
व्यपहरतु परम-पावन-मनन्य, जय्य-स्वभाव-भाव-गम्भीरम्॥३०॥

अन्वयार्थ—जो (परम-पावनम्) अत्यन्त पवित्र है तथा (अनन्यजय्य-स्वभाव-भाव-गम्भीर) अन्य परवादियो से अजेय स्वभाव वाले पदार्थों से गभीर है ऐसे अरहन्तदेवरूपी महानद के उत्तम तीर्थ मे (स्नातु) स्नान करने के लिये (अवतीर्णवत) उतरे हुए (मम अपि) मेरे भी (दुस्तर-समस्त-दुरित) बड़े भारी समस्त पाप (दूर व्यपहरतु) दूर से ही नष्ट करो।

भावार्थ—अरहन्तदेवरूपी महानद सर्व तीर्थो मे श्रेष्ठ है, किसी भी परवादी के द्वारा वह खडन नही किया जा सकता। जीवादिक ९ पदार्थों से अत्यन्त गभीर है अर्थात ९ पदार्थों का जैसा यथार्थ स्वरूप, उनके अनन्त गुणो का चित्रण जैसा अरहतदेव के शासन मे है वैसा किसी भी अन्य मत मे नही पाया जाता है। ऐसे महानद मे मै भी कर्ममल को धोने के लिये उतर पड़ा हूँ। हे प्रभो! मेरे अनन्त भवो के अति दुस्तर समस्त पाप दूर कीजिये। मेरे सब पापो/कर्मो का क्षय कर दीजिये।

यहाँ श्लोक नं० २३ से ३० तक ८ श्लोको मे आचार्य देव ने रूपक अलकार के चित्रण से अर्हन्तदेवरूपी महानद का सुन्दर चित्रण-चित्रित किया है। लोक मे मान्यता है कि गंगा आदि महानदियो के तीर्थ-घाट पर स्नान करने वाले लोगो के पाप क्षय कर देते है, इसी विशेषता को लेकर यहाँ उपर्युक्त श्लोको मे अरहन्तदेवरूपी महानद उसके किनारे, पक्षीगण मधुर शब्द गुजन आदि का मनोरम दृश्य उपस्थित करते हुए, उत्तम

महानद के उत्तम तीर्थ मे अवगाहन करने वाले, डुबकी लगाने वाले अपने पापो को क्षय करने की प्रार्थना आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने की है।

जिनरूप स्तवन

पृथ्वी-छन्द

अताम्र-नयनोत्पल　सकल-कोप-वह्ने-र्जयात्,
कटाक्ष - शर - मोक्ष - हीन -मविकारतोद्रेकतः ।
विषाद-मद-हानितः　प्रहसितायमानं सदा,
मुखं कथयतीव ते हृदय-शुद्धि-मात्यन्तिकीम् ।।३१।।

अन्वयार्थ—हे प्रभो (सकल-कोप-वह्ने -जयात्) सम्पूर्ण क्रोधरूपी अग्नि को जीत लेने से (अताम्र-नयन-उत्पल) जिनके नेत्र रूप कमल लाल नही है (अविकारत -उद्रेकत) विकारी भावो का उद्रेक नही होने से (कटाक्ष-शर-मोक्षविहीन) जो कटाक्ष रूप बाणो के छोड़ने से रहित हैं तथा (विषाद-मद-हानित) खेद व अहकार का अभाव होने से जो (सदा-प्रहसितायमान मुख) सदा हॅसता हुआ-सा ज्ञात होता है ऐसा आपका मुख (ते) आपकी (आत्यन्तिकी हृदय शुद्धिम्) अत्यत/सर्वोत्कृष्ट/अविनाशी हृदय की शुद्धि को ही (कथयति इव) मानो कह रहा है।

भावार्थ—हे प्रभो। ससारी जीवो के नेत्रो मे लालिमा क्रोध के कारण आती है, उस क्रोध का आपके पूर्ण अभाव होने से आपके नयन-कमल लाल नजर नही आते है। ससारी जीव विकारी भावो से पीडित हो कटाक्ष रूप बाण छोडते हैं, आपके विकार का पूर्ण अभाव है अत· आप कभी भी कटाक्ष रूप बाणो को नही छोड़ते हैं तथा ससारी जीवो के मुख पर मलिनता, खेद या मद से ही होती है परन्तु आपके हर्ष-विषाद या खेद-मद आदि १८ दोषो का ही अभाव हो चुका है अत आपका सदा हँसता हुआ प्रसन्न मुख ही मानो आपकी अन्तरंग अत्यन्त/अविनाशी शुद्धि का कथन करता है। अर्थात् हे प्रभो। आप क्रोध-मान-विकारी भाव आदि विभाव परिणतियो से रहित अन्तरंग मे व बाह्य मे आत्यन्तिक शुद्धता को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसी विशुद्धता की सूचना आपकी मुखाकृति कर रही है।

निराभरण-भासुरं विगत-राग-वेगोदयात्,
निरम्बर-मनोहरं प्रकृति-रूप-निर्दोषतः ।
निरायुध-सुनिर्भयं विगत-हिंस्य-हिंसा-क्रमात्,
निरामिष-सुतृप्ति-मद्-विविध-वेदनानां क्षयात् ।।३२।।

अन्वयार्थ—(विगत-राग-वेग-उदयात्) राग के उदय का वेग समाप्त हो जाने से जो (निराभरण-भासुर) आभूषण रहित होकर भी देदीप्यमान है (प्रकृतिरूपनिर्दोषत·) प्रकृति रूप स्वाभाविक/यथाजात नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण करने से (निरम्बर-मनोहर) वस्त्र के बिना ही मनोहर है (विगत-हिंस्य-हिंसा क्रमात्) हिस्य और हिसा का क्रम दूर हो जाने से जो (निरायुध-सुनिर्भय) अस्त्र-शस्त्र रहित निर्भय है और (विविध-वेदनाना-क्षयात्) विविध प्रकार की वेदनाओ–क्षुधा, तृषा आदि के क्षय हो जाने से जो (निरामिष-सुतृप्तिमद्)आहार रहित होकर भी उत्तम तृप्ति को प्राप्त हैं ।

भावार्थ—हे प्रभो ! ससारी राग के वश हो अनेक प्रकार आभूषणो से शरीर को सजाता है उस रागभाव का पूर्ण अभाव हो जाने से आपको कभी आभूषणो को धारण करने की भी इच्छा नही रहती है, तथापि आपका शरीर आभूषणो के बिना भी अत्यन्त सुन्दर दिखाई देता है ।

हे प्रभो ! ससारी जीवो का शरीर स्वभाव से सुन्दर नही होता है अत वे विविध प्रकार के वस्त्रों से ढककर इसे सुन्दर बनाने की चेष्टा करते हैं तथा मन की वासना को ढकने के लिये, विकारो को शमन करने के लिये वस्त्र पहनते हैं, परन्तु आपका शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है और राग-द्वेष-विषय-वासनाओ की कालिमा आपमे लेशमात्र भी नही है अत आपको वस्त्रो की आवश्यकता ही नही है ।

इसी प्रकार हे प्रभो ! आपने हिंस्य और हिसा [मारने योग्य और मारना] भाव की परिपाटी को ही समाप्त कर दिया है, अत आप दयालु न किसी की हिंसा करते हैं और न कोई आपकी हिसा करता है । इसी कारण आप अस्त्र-शस्त्र से रहित होकर भी निर्भय हैं ।

हे नाथ ! भूख, प्यास आदि वेदनाओ का आपने पूर्ण क्षय कर दिया

है अत आप आहार नही करते हुए भी सदा तृप्त रहते हैं। जिसे भूख आदि की वेदना सताती है वही भोजन-पान करता है। परन्तु, हे अरहन्त प्रभो! आप कवलाहार न करते हुए भी अन्य किसी मे नही पाई जाने वाली ऐसी अनन्त तृप्ति को धारण करते है। हे देव! आपका यह महास्वरूप मुझे भी पवित्र करे।

मितस्थित-नखांगजं गत-रजोमल-स्पर्शनम्,
नवाम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्धोदयम् ।
रवीन्दु-कुलिशादि-दिव्य-बहु लक्षणालङ्कृतम्,
दिवाकर-सहस्र-भासुर-मपीक्षणानां प्रियम् ।।३३।।

अन्वयार्थ—(मित-स्थित-नखाङ्गज) जिनके शरीर के नख और केश प्रमाण मे स्थित है अर्थात् अब केवलज्ञान होने के बाद वृद्धि को प्राप्त नही होते है (गत-रजो-मल-स्पर्शन) जो रज और मल के स्पर्श से रहित है (नव-अम्बुरुह-चन्दन-प्रतिम-दिव्य-गन्ध-उदयम्) जिनके नवीन कमल और चन्दन की गन्ध के समान दिव्य गन्ध का उदय है। (रवि-इन्दु-कुलिश-आदि-दिव्य-बहुलक्षण-अलकृत) जो सूर्य, चन्द्रमा तथा वज्र आदि दिव्य लक्षणो से सुशोभत है और (दिवाकर-सहस्र-भासुरम्-अपि ईक्षणाना प्रियम्) जो सहस्रो/हजारो सूर्यो के समान देदीप्यमान होने पर भी नेत्रो के लिये प्रिय है।

भावार्थ—हे भगवान! केवलज्ञान की उत्पत्ति के पश्चात् आपका शरीर समस्त धातु-उपधातुओ से रहित परमौदारिक अवस्था को प्राप्त हो जाता है। परमौदारिक शरीर मे आपके नख और केश पूर्ववत् ही रहते हैं अर्थात् बढते नही हैं। आपके दिव्य शरीर से नवीन विकसित कमल व चन्दन की दिव्य सुगन्ध सदा निकलती रहती है। आपका दिव्य परमशरीर इन्दु/चन्द्र, सूर्य, वज्र, वस्त्र आदि १००८ शुभ लक्षणो से अलकृत है तथा हजारो सूर्यो की दीप्ति को एक समय मे ही प्राप्त होकर भी भव्यजनो के नेत्रो को अति प्रिय हैं। जहाँ ससारी जीव एक सूर्य के तेज को भी देखने मे असह्य है, अप्रियता का अनुभव करता है वहाँ उसे आपकी हजारो सूर्यो की कान्ति भी निर्निमेष दृष्टि से देखने को बाध्य करती है। ऐसे महादिव्यरूप के धारक हे विभो! मुझे पवित्र कीजिये।

हितार्थ-परिपन्थिभि: प्रबल-राग-मोहादिभि.,
कलंकितमना जनो यदभवीक्ष्य शोशुद्धयते।
सदाभिमुख-मेव यज्जगति पश्यता सर्वत:,
शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डल-मिवोत्थित दृश्यते ।।३४।।

अन्वयार्थ—(हितार्थ-परि-पन्थिभि) प्राणियो का सर्वोत्कृष्ट हित मोक्ष है, उसका विरोधी (प्रबल-राग-मोहादिभि) प्रबल शत्रु राग-द्वेष मोह आदि से (कलङ्कितमना जन) कलुषित हृदय वाले मानव भी (यत्) जिनको (अभिवीक्ष्य) देखकर (शोशुद्धयते) अत्यन्त निर्मलता को प्राप्त होते है (जगति) ससार मे (सर्वत पश्यताम्) चारो ओर से देखने वालो को, (यत् सदाभिमुखमेव) जो सदा सामने ही (उत्थित) उदय को प्राप्त (शरद्-विमल-चन्द्र-मण्डलम्-इव) शरद ऋतु के चन्द्रमण्डल के समान (दृश्यते) दिखाई देता है।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! प्राणियो का उत्तम हित मोक्ष की प्राप्ति है। उस मुक्ति की प्राप्ति के प्रबल विरोधी शत्रु राग-द्वेष-मोह आदि है। राग-द्वेष-मोह से कलुषित हृदय वाले जीव भी आपके मुख की अपूर्व वीतरागता को देखकर अत्यन्त शुद्धि को प्राप्त हो जाते है। हे प्रभो ! समवशरण मे आपका वह प्रशान्त रूप चारो दिशाओ मे दिखाई पड़ता है। अत वह रूप ससार के जो भव्यजीव आपके दर्शन के इच्छुक है उन्हे अपने सामने ही दिखाई पड़ता है। तथा आपका दिव्य शरीर शरद् ऋतु मे मेघ-पटल से रहित निर्मल आकाश मे उदय को प्राप्त निर्मल चन्द्रमडल की तरह अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होता है। ऐसा दिव्य अनुपम जिनेन्द्रमुख मुझे सदा पवित्र करे।

तदेत - दमरेश्वर - प्रचल - मौलि - माला - मणि,
स्फुरत् - किरण - चुम्बनीय - चरणारविन्द - द्वयम्।
पुनातु भगवज्जिनेन्द्र तव रूप-मन्धीकृतम्,
जगत् - सकल - मन्यतीर्थ - गुरु - रूप - दोषोदयै: ।।३५।।

अन्वयार्थ—(भगवत्-जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव ! (अमर-ईश्वर-प्रचल मौलिमाला मणि-स्फुरत्-किरण-चुम्बनीय-चरणारविन्द-द्वयम्) देवो के स्वामी इन्द्रो के चलायमान/नम्रीभूत मुकुटो की मालाओ मे लगी मणियो

की स्फुरायमान/चमकती हुई किरणो से जिनके दोनो चरण-कमल चुम्बित हो रहे है / स्पर्शित किये गये है (एतत्-तद तव रूपम्) ऐसा यह आपका रूप (अन्यतीर्थ-गुरुरूप-दोष-उदयै) मिथ्या/अन्यतीर्थ-कुगुरु-कुदेव आदि उपदेशो के दोषो के उदय से (अन्धीकृत) अन्ध किये गये (सकलम् जगत्) पूर्ण ससार को (पुनातु) पवित्र करे ।

भावार्थ—हे भगवन् ! हे जिनेन्द्रदेव १०० इन्द्रो से वन्दनीय आपके पावन चरण-कमलो का दर्शन प्राप्त कर ससार के समस्त प्राणी मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व को प्राप्त करे । पञ्चमकाल मे साक्षात् अरहत-देव का दर्शन दुर्लभ है, ऐसे समय मे एकमात्र स्थापना निक्षेप ही हमारे परिणामो की निर्मलता का सम्बल है अत यहाँ आचार्यदेव साक्षात् अरहन्त के अभाव मे स्थापना निक्षेप से युक्त वीतराग प्रतिमाओ को ही साक्षात् जिनेन्द्र मानकर सुन्दर स्तवन किया है ।

क्षेपक श्लोका:

मानस्तम्भा: सरांसि प्रविमलजल, सत्खातिका पुष्पवाटी ,
प्राकारो नाट्यशाला द्वितयमुपवनं, वेदिकांत र्ध्वजाद्या: ।
शाल: कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवन, स्तूपहर्म्यावली च ,
प्राकार· स्फाटिकोन्तनृसुरमुनिसभा, पीठिकाग्रे स्वयंभू: ।।१।।

अन्वयार्थ—तीर्थकर प्रभु की समवशरण सभा मे (मानस्तम्भा) मानस्तम्भ (सरासि) सरोवर (प्रविमल जल सत्खातिका) निर्मल स्वच्छन्द जल से भरी हुई खातिका भूमि (पुष्पवाटी) उद्यानभूमि (प्राकारो-नाट्यशाला) कोट, नाटकशाला (द्वितीयमुपवन) दूसरा उपवन (वेदिका-अन्तर्ध्वजाद्या) वेदिका के मध्य ध्वजा व पताकाएँ (शाल) कोट (कल्पद्रुमाणा) कल्पवृक्ष (सुपरिवृत्तवन) चारो ओर से वनो से घिरा हुआ ऐसा कोट (स्तूप-हर्म्यावली च) स्तूप और प्रासादो की पक्ति (प्राकार स्फाटिक अन्त-नृसुर-मुनिसभा) स्फटिक की दीवालो के मध्य मनुष्य-देव व मुनियो की इस प्रकार बारह सभाएँ तथा (पीठिका-अग्रे-स्वयभू) सिंहासन पर अधर स्वयभू-साक्षात् तीर्थकर भगवान् विराजमान हैं ।

भावार्थ—तीर्थकर भगवान केवलज्ञानोत्पत्ति के बाद १३वे गुणस्थान मे अन्तरङ्ग मे अनन्त-चतुष्टय व बहिरग मे समवशरण लक्ष्मी से शोभायमान

होते है। यहाँ इस श्लोक मे समवशरण की शोभा का सुन्दर चित्रण किया गया है—समवशरण सभा मे सबसे पहले मान गलित करने वाला मानस्तभ है, उसके बाद तालाब, खातिका, प्रथम भूमि कोट, उद्यान भूमि द्वितीय कोट, नाट्यशाला, उपवन, वेदिका, ध्वजाभूमि, कोट, कल्पवृक्ष भूमि, कोट, स्तूप और प्रासादो की पक्तियाँ इस प्रकार स्तूप-कोट व सातभूमियाँ है। पश्चात् स्फटिक की दीवालो से सुशोभित बारह सभाएँ है उनमे—मुनि, कल्पवासी देवियाँ, आर्यिकाएँ, भवनवासी देवियाँ, व्यन्तरवासी देवियाँ, ज्योतिषी देवियाँ, ज्योतिषी देव, भवनवासी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य व तिर्यञ्च विराजमान हो शोभा को प्राप्त होते है। उसके भी आगे मेखला है जिसमे भी तीन कटनियाँ है। तीसरी कटनी पर सिहासन है। उस सिहासन पर चार अगुल ऊपर साक्षात् केवलज्ञानी तीर्थकर प्रकृति से विशिष्ट साक्षात् अरहन्त जिनेन्द्र विराजमान रहते है।

लघु चैत्य भक्तिः

इन्द्रवज्रा

वर्षेषु वर्षान्तर पर्वतेषु, नन्दीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके, सर्वाणि वन्दे जिनपुंगवानाम्।।२।।

अन्वयार्थ—(लोके) तीनो लोक-ऊर्ध्व, मध्य और अधोलोक मे (जिनपुङ्गवाना) जिनेन्द्र भगवन्तो के (वर्षेषु) भरत-ऐरावत आदि क्षेत्रो मे (वर्षान्तर-पर्वतेषु) भरत आदि क्षेत्रो के मध्य स्थित कुलाचल/पर्वतो पर (नन्दीश्वरे) नन्दीश्वरद्वीप मे और (मन्दरेषु) पॉच मेरु पर्वतो पर (यावन्ति) जितने (च) और (यानि) जो (चैत्य-आयतनानि) चैत्यालय हैं (तानि सर्वाणि) उन सब को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—तीनो लोको मे—ऊर्ध्वलोक मे सौधर्म स्वर्ग मे ३२ लाख, ईशान स्वर्ग मे २८ लाख, सनतकुमार स्वर्ग मे १२ लाख, महेन्द्र स्वर्ग मे ८ लाख, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर स्वर्ग मे ४ लाख, लान्तव, कापिष्ठ स्वर्ग मे ५० हजार शुक्र-महाशुक्र स्वर्ग मे ४० हजार, शतार-सहस्रार स्वर्ग मे ६ हजार, आनत-प्राणत-आरण-अच्युत स्वर्गो मे ७००, अधोग्रैवेयक मे १११, मध्य ग्रैवेयक मे १०७, ऊर्ध्व ग्रैवेयक मे ९१, नव अनुदिश मे ९

तथा पॉच अनुत्तर मे ५ इस प्रकार कुल ८४९७०२३ जिनालय है उनको मै नमस्कार करता हूँ।

मध्यलोक मे पॉच मेरु सबधी ८० जिनालय है, तीस कुलाचलो पर ३० जिनालय है, वक्षारगिरि के ८०, गजदन्त के २०, चार इष्वाकार पर ४, मानुषोत्तर पर ४, एक सौ सत्तर विजयार्द्धो पर १७०, ५, जम्बूवृक्षो पर ५ और पॉच शाल्मलि वृक्षो पर ५ जिनमन्दिर स्थित है। इस प्रकार नरलोक मे कुल (८०+३०+८०+२०+४+४+१७०+५+५=) ३९८ जिन-मन्दिर है। तथा नरलोक के बाहर नन्दीश्वर द्वीप मे ५२, रुचकगिरि पर ४, कुण्डलगिरि पर ४=३९८+५२+४+४=४५८ चैत्यालयो की मै वन्दना करता हूँ।

अधोलोक मे भवनवासी के भवनो मे ७ करोड ७२ लाख चैत्यालय है उनमे असुरकुमार के ६४ लाख, नागकुमार के भवनो मे ८४ लाख, सुपर्णकुमार के ७२ लाख, द्वीप कुमार के भवनो के ७६ लाख, तथा दिक्-कुमार, उदधिकुमार, स्तनितकुमार विद्युत्कुमार, अग्निकुमार इन पॉचो के भवनो मे ७६-७६ लाख तथा वायुकुमार के भवनो मे ९६ लाख चैत्यालय है। उन सबकी मै वन्दना करता हूँ।

अर्थात् तीन लोक स्थित सर्व चैत्यालयो को मै नमस्कार करता हूँ।

मालिनी

अवनितलगतानां कृत्रिमाऽकृत्रिमाणाम्,
वनभवनगतानां दिव्य वैमानिकानाम्।
इह मनुज-कृताना देव राजार्चितानाम्,
जिनवर-निलयाना भावतोऽह स्मरामि ।।३।।

अन्वयार्थ—(अवनितल-गताना) पृथ्वी तल पर स्थित (कृत्रिम-अकृत्रिमाणा) कृत्रिम और अकृत्रिम (वनभवनगताना) व्यन्तर और भवनवासियो के स्थानो पर स्थित (दिव्य वैमानिकाना) स्वर्ग के निवासी वैमानिक देवो के विमानो मे स्थित तथा (इह) यहाँ इस लोक मे (मनुज कृताना) मनुष्यो के द्वारा बनवाये गये (देवराज-अर्चिताना) इन्द्रो के द्वारा पूजित (जिनवर-निलयाना) जिनमन्दिरो का (अह) मैं (भावत स्मरामि) भावपूर्वक स्मरण करता हूँ।

भावार्थ—लोक मे पृथ्वी पर स्थित कृत्रिम, अकृत्रिम चैत्यालयो, अधोभाग मे भवनवासी व व्यन्तरो के निवासो मे स्थित चैत्यालयो, ऊर्ध्वभाग मे देव-विमानो मे स्थित चैत्यालयो तथा यहाँ मनुष्य लोक मे मनुष्यो द्वारा बनाये गये, इन्द्र-धरणेन्द्र आदि से पूजित जिनेन्द्र देव के पावन, वन्दनीय जिनालयो को मैं भावपूर्वक स्मरण करता हूँ।

शार्दूल-विक्रीडितम्

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा-
श्चंद्राम्भोज शिखण्डि कण्ठ-कनक-प्रावृंघनाभाजिनाः।
सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा दग्धाष्ट-कर्मेन्धनाः।
भूतानागत-वर्तमान-समये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः॥४॥

अन्वयार्थ—(जम्बूधातकि-पुष्करार्द्ध-वसुधा-क्षेत्रत्रये ये भवा) जम्बूद्वीप, धातकीखड और पुष्करार्द्ध द्वीप इन तीन क्षेत्रो मे वसुधा तल पर जो उत्पन्न हुये है (चन्द्र-अम्भोज-शिखण्डि-कण्ठकनकप्रावृड्घनाभा) चन्द्रमा, कमल, मयूरकण्ठ, स्वर्ण और वर्षा ऋतु के मेघ के समान कान्ति वाले (सम्यग्ज्ञान-चरित्र-लक्षणधरा) सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप लक्षण के धारक (दग्धार्ध-कर्म-ईन्धना) चार घातिया कर्मरूपी ईंधन को जलाने वाले (भूत अनागत-वर्तमान समये) भूत-भविष्य वर्तमान काल मे होने वाले जो (जिना) जिनेन्द्र है (तेभ्यो जिनेभ्यो नम) उन सब जिनेन्द्रो के नमस्कार हो।

भावार्थ—इस वसुन्धरा पर जम्बूद्वीप, धातकीखड और अर्ध पुष्कर-द्वीप इन ढाई द्वीपो मे भरत ऐरावत विदेह तीन क्षेत्रो मे चन्द्रसम, कमलसम, मयूरकण्ठसम, स्वर्णसम व वर्षाऋतु के मेघ सम कान्ति के धारक, रत्नत्रय मण्डित, चार घातिया कर्मो को नष्ट करने वाले जितने अरहत केवली भूतकाल मे हो चुके हैं, जितने भावी काल मे होगे व जितने वर्तमान मे हो रहे है, उन सबको मेरा नमस्कार हो—

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मली जम्बुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-रुचके कुण्डले मानुषांके।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले, यानि चैत्यालयानि॥५॥

अन्वयार्थ—(श्रीमत् मेरौ) श्री-शोभा सम्पन्न मेरु पर्वतो पर (कुलाद्रौ) कुलाचलो पर (रजतगिरि वरे) विजयार्द्ध पर्वतो पर (शाल्मलौ) शाल्मलि वृक्षो पर (जम्बूवृक्षे) जम्बू वृक्ष पर (वक्षारे) वक्षारगिरियो पर (चैत्यवृक्षे) चैत्यवृक्षो पर (रतिकर रुचके) रतिकर और रुचकगिरि पर (कुण्डले मानुषाङ्के) कुण्डलगिरि और मानुषोत्तर पर (इष्वाकारे) इष्वाकार पर्वतो पर (अञ्जनाद्रौ) अञ्जनगिरियो पर (दधिमुखशिखरे) दधिमुख पर्वतो के शिखरो पर (व्यन्तरे) व्यन्तरो के आवासो पर (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक मे (ज्योतिर्लोके) ज्योतिष्क देवो के लोक मे तथा (भुवनमहितले) भवनवासियो के भवनो मे (यानि चैत्यालयानि) जितने चैत्यालय है (तानि अभिवन्दे) उन्हे मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—श्रीमडप की शोभा से सम्पन्न मेरु के ८०, कुलाचलो के ३०, विजयार्द्ध के १७०, शाल्मलि वृक्षो के ५, जम्बूवृक्ष पर ५, वक्षार गिरियो के ८०, रुचकगिरि के ४, कुण्डलगिरि के ४, मानुषोत्तर के ४, इष्वाकार के ४, रतिकर पर्वत, अञ्जनगिरियो व दधिमुख शिखरो पर ५२ चैत्यालयो, व्यन्तरो के असख्यात जिनालयो, स्वर्गलोक के ८४९७०२३ जिनालयो, भवनवासियो के ७ करोड ७२ लाख जिनालयो तथा ज्योतिष्क देवो के आवासो मे शोभायुक्त जिनालयो को मै अच्छी तरह से मनसा-वचसा-कर्मणा नमस्कार करता हूँ।

देवासुरेन्द्र नर-नाग-समर्चितेभ्यः, पापप्रणाशकर भव्य मनोहरेभ्यः ।
घंटाध्वजादि परिवार विभूषितेभ्यो, नित्य नमो जगति सर्व जिनालयेभ्यः ।।६।।

अन्वयार्थ—(देव-असुरेन्द्र-नर-नाग-समर्चितेभ्य) देवेन्द्र, असुरेन्द्र, चक्रवर्ती, धरणेन्द्र ने जिनकी सम्यक् प्रकार से पूजा की है जो (पापप्रणाशकर) पापो का नाश करने वाले है (भव्य मनोहरेभ्य) भव्य जीवो के मन को आकर्षित करते है (घटाध्वजा-आदि परिवार विभूषितेभ्यो) घटा-ध्वजा-माला-धूपघट, अष्टमगल, अष्टप्रातिहार्य आदि मगल वस्तुओ के समूह से सुसज्जित है/अलकृत है ऐसे (जगति) तीन लोक मे स्थित (सर्वजिनालयेभ्य) सभी जिनमन्दिरो के लिये (नित्य) प्रतिदिन/प्रत्येक काल याने सदा सर्वदा (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—देवो के इन्द्र, असुरो के इन्द्र, मनुष्यो के इन्द्र, धरणेन्द्र रूप १०० इन्द्रो से जिनकी अर्चा वन्दना सम्यक् प्रकार की गई है, जो पाप प्रणाशक है, भव्य मनहारी है, उत्तमोत्तम मगलवस्तुओ से अलकृत हैं ऐसे तीन लोक मे स्थित सर्व जिनालयो के लिये मेरा नमस्कार हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! चेइय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ । अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि, किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गंधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकालं अंचंति, पूजंति वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ संताइं सया णिच्चकाल अच्चेमि, पुज्जेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ-गमणं, समाहि-मरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ-मज्झं ।

अर्थ—(भते !) हे भगवन् ! मैने (चेइयभत्ति काउस्सगो कओ) चैत्यभक्ति सबधी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउ) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (अहलोय-तिरियलोय-उड्ढलोयम्मि) अधोलोक, मध्यलोक व ऊर्ध्व लोक मे (जाणि) जितने (किट्टिमाकिट्टिमाणि) कृत्रिम-अकृत्रिम (जिण चेइयाणि) जिन चैत्यालय हैं (ताणि सव्वाणि) उन सबकी (तीसु वि लोएसु) तीनो लोको मे रहने वाले (भवणवासिय-वाणवितर-जोइसिय-कप्पवासियत्ति) भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिषी, कल्पवासी इस प्रकार (चउविहा देवा सपरिवारा) चार प्रकार के देव अपने परिवार के साथ (दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण) दिव्य जल, दिव्य गध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलो से (णिच्चकालं) सदा काल (अच्चंति, पुज्जंति, वदति, णमस्सति) अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, वन्दना करते हैं, नमस्कार करते है (अहमवि) मैं भी (इह सतो) यहाँ ही रहकर (तत्थ सताइ) उन समस्त चैत्यालयो की (णिच्चकालं) सदाकाल (अंचेमि

पूजेमि वदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण समाहिमरण) मेरे दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो तथा (जिणगुण सपत्ति होउ मज्झ) जिनेन्द्रदेव के गुणो की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैने चैत्यभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। अधोलोक सम्बन्धी ७ करोड ७२ लाख, मध्य लोक सम्बन्धी ४५८ व ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी ८४ लाख ९७ ह २३ जिनालय इस प्रकार तीनो लोको मे जितने भी कृत्रिम, अकृत्रिम जिनालय है उन सबकी तीनो लोको मे रहने वाले भवनवासी, व्यन्तरवासी, ज्योतिषी व कल्पवासी इस प्रकार चारो प्रकार के देव दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलादि अष्ट द्रव्यो से सदा, त्रिसन्ध्याओ मे अर्चा, पूजा वन्दना करते है, मै भी सभी कृत्रिम-अकृत्रिम जिनालयो की साक्षात् अर्चा करने मे असमर्थ हुआ यहाँ रहकर ही उन सबकी सदा अर्चा, पूजा, वन्दना, नमन करता हूँ। इस अर्चा, पूजा के फलस्वरूप मेरे सब दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के अनुपम गुणसम्पत्ति प्राप्त हो।

।। इति चैत्य भक्ति ।।

श्री श्रुतभक्ति

आर्या

स्तोष्ये सज्ज्ञानानि परोक्ष-प्रत्यक्ष-भेद-भिन्नानि ।
लोकालोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि सदा ।।१।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-विलोकन-लोलित-सल्लोक-लोचनानि) लोक और अलोक को देखने मे उत्सुक/लालायित सत्पुरुषो के नेत्रस्वरूप ऐसे (परोक्ष-प्रत्यक्ष-भेद-भिन्नानि) परोक्ष और प्रत्यक्ष के भेद से युक्त (सज्ज्ञानानि) सम्यक् ज्ञानो की [मै पूज्यपाद आचार्य] (सदा) हमेशा (स्तोष्ये) स्तुति करूँगा। अथवा

भावार्थ—सम्यक्ज्ञान के प्रत्यक्ष और परोक्ष ऐसे दो भेद है। जैसे जीव को नेत्रो के द्वारा घट-पट आदि पदार्थो का ज्ञान होता है, वैसे ही भव्यजीवो को मतिज्ञान-श्रुतज्ञान-अवधि-ज्ञान, मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान इन पॉच समीचीन ज्ञानो से लोक व अलोक का पूर्ण ज्ञान होता है अत आचार्य देव पूज्यपाद स्वामी यहाँ प्रतिज्ञा वाक्य मे कहते हैं-ऐसे समीचीन ज्ञानो की मै सदा स्तुति करता हूँ/उन्ही का स्तवन करूँगा।

मतिज्ञान की स्तुति

अभिमुख-नियमित-बोधन-माभिनिबोधिक-मनिन्द्रियेन्द्रियजम् ।
बह्वाद्यवग्रहादिक - कृत - षट्त्रिंशत् - त्रिशत - भेदम् ।।२।।
विविधर्द्धि-बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज - पदानुसारि - बुद्ध्यधिकम् ।
संभिन्न - श्रोतृ - तया, सार्धं श्रुतभाजनं वन्दे ।।३।।

अन्वयार्थ—जो (अभिमुख-नियमित-बोधन) योग्य क्षेत्र मे स्थित स्पर्श आदि नियमित पदार्थो को जानता है (अनिन्द्रिय-इन्द्रियज) मन व इन्द्रियो से उत्पन्न होता है व (बहु-आदि-अवग्रह-आदिक कृत-षट्त्रिशत त्रिशतभेदम्) बहु आदि १२ व अवग्रह आदि ४ की अपेक्षा से ३३६ भेदो से सहित हैं। (विविध-ऋद्धि-बुद्धि-कोष्ठ-स्फुट-बीज-पदानुसारि-बुद्धि-अधिकम्) जो अनेक प्रकार की ऋद्धि से सम्पन्न तथा कोष्ठबुद्धि, स्फुटबीजबुद्धि और पदानुसारिणी बुद्धि से अधिक परिपूर्ण है तथा (सभिन्न श्रोतृतया साधं) सभिन्न श्रोतृऋद्धि से सहित है (श्रुत-भाजन) श्रुत ज्ञान की उत्पत्ति

का कारण होने से श्रुतज्ञान का भाजन/पात्र है, उस (आभिनिबोधिक) आभिनिबोधिक/मतिज्ञान को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मतिज्ञान को आभिनिबोधिक ज्ञान भी कहते है। तत्त्वार्थ-सूत्र ग्रथ मे उमास्वामि आचार्य ने लिख भी है—"मति स्मृति सज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्" [त सू अ १/सू १३] मतिज्ञान की आभिनिबोधिक यह सार्थक सज्ञा है। अभि का अर्थ है—ज्ञान के योग्य देश-काल और ग्रहण करने योग्य सामग्री को "अभि" कहते है। "नि" शब्द का अर्थ है नियम। जैसे चक्षु आदि के द्वारा रूप आदि का ज्ञान। पञ्चेन्द्रियो से जो नियमित रीति से ज्ञान होता है वह "निबोध" कहलाता है। इस प्रकार योग्य क्षेत्र पर योगय काल मे निर्दोष इन्द्रियो से होने वाला पदार्थो का ज्ञान "आभिनिबोधिक" ज्ञान है।

मतिज्ञान सम्यग्ज्ञान का प्रथम भेद है। इसके ३३६ भेद है। बहु-बहुविध आदि १२ पदार्थ, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये ४ ज्ञान = १२×४=४८। यह ज्ञान अर्थावग्रह-व्यञ्जनावग्रह की अपेक्षा दो प्रकार का है। उनमे अर्थावग्रह ५ इद्रियो मन से उत्पन्न होता है अत ४८×६=२८८ भेद हुए। व्यञ्जनावग्रह मे मात्र अवग्रह हो होता है तथा यह ४ इन्द्रियो से ही होता चक्षु इन्द्रिय व मन से नही होता है अत १२×४=४८। २८८+४८=३३६ मतिज्ञान के भेद है।

मतिज्ञान अनेक ऋद्धियो से शोभायमान है। दिगम्बर साधुओ के तपश्चरण के फल स्वरूप विविध ऋद्धियाँ उत्पन्न हो जाती है। यथा—

कोष्ठबुद्धि ऋद्धि—जिस प्रकार भडारी एक ही कोठे मे अनेक प्रकार के धान्य आदि वस्तुएँ रखता है उसी प्रकार इस बुद्धि के धारक ऋषिगण अपनी बुद्धि मे अनेक प्रकार के ग्रन्थो को धारण कर रखते है। धारणा को कभी नष्ट नही होने देते है। कोष्ठ सम बुद्धि की प्राप्ति को 'कोष्ठबुद्धि' कहते है।

बीज बुद्धि ऋद्धि—खेत मे बोया एक बीज ही बहुत से धान्य को उत्पन्न कर देता है वैसे ही एक पद के ग्रहण से अनेक पदो का ज्ञान हो जाय उसे बीज बुद्धि ऋद्धि कहते है।

पदानुसारि बुद्धि ऋद्धि—जिस बुद्धि मे ग्रन्थ का प्रथम या अन्तिम पद ग्रहण करने से ही पूर्ण ग्रन्थ का ज्ञान हो जावे उसे पदानुसारि बुद्धि ऋद्धि कहते हैं।

संभिन्नश्रोतृत्वऋद्धि—एक ही समय मे होने वाले अनेक शब्दो को एक साथ अलग-अलग जिस बुद्धि विशेष से जाना जाता है उसे सभिन्नश्रोतृ-बुद्धि ऋद्धि कहते है। चक्रवर्ती के १२ योजन लम्बे और नौ योजन चौड़े सैन्य मे रहने वाले मानव, पशु, पक्षी आदि सभी की अक्षरात्मक अनक्षरात्मक भाषा को एक साथ अलग-अलग जान लेना इस ऋद्धि का कार्य है।

इन सबके साथ ही मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है। क्योकि उमास्वामि आचार्य ने लिखा है—"श्रुतमतिपूर्व" मतिज्ञान पूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है। इस प्रकार अनेक भेदो से शोभायमान, ऋद्धियो से युक्त ऐसे इस मतिज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ।

श्रुतज्ञान की स्तुति

श्रुतमपि-जिनवर-विहितं गणधर-रचित द्व्यनेक-भेदस्थम्।
अंगांगबाह्य-भावित-मनन्त-विषयं नमस्यामि ।।४।।

अन्वयार्थ—जो (जिनवर विहित) जिनेन्द्र देव के द्वारा अर्थरूप जाना गया है (गणधररचित) गणधरो के द्वारा जिसकी रचना की गई है, (द्वि-अनेक-भेद-स्थम्) जो दो और अनेक भेदो मे स्थित है, (अङ्ग-अङ्ग बाह्य भावित) जो अङ्ग और अङ्ग बाह्य के भेद से प्रसिद्ध है तथा (अनन्त-विषय) अनन्त पदार्थो को विषय करने वाला है (श्रुतम् अपि) उस श्रुत-ज्ञान को भी (नमस्यामि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो श्रुतज्ञान अर्थरूप से जिनेन्द्रदेव के द्वारा निरूपित है, अर्थ व पद रूप से जिसकी अग रूप मे रचना गणधर देवो ने की है तथा जो अङ्ग प्रविष्ट व अङ्ग बाह्य रूप दो व अनेक भेद वाला है अनन्त पदार्थों को विषय करने वाले उस श्रुतज्ञान को मैं नमस्कार करता हुआ। इनमे अर्थ रूप ज्ञान "भावश्रुत" है और शब्दरूप ज्ञान द्रव्यश्रुत है।

द्रव्यश्रुत की अग प्रविष्ट व अङ्ग बाह्य सज्ञा का हेतु क्या है ? अङ्ग-बाह्य द्वादशांग मे गर्भित है या नही ? ऐसी शका होने पर आचार्य देव उत्तर देते हुए कहते है—

द्वादशाग के समस्त अपुनरुक्त अक्षरो का प्रमाण १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५ कुल बीस अग प्रमाण है। मध्यम पद के अक्षरो का प्रमाण सौलह सौ चौतीस करोड तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी है। मध्यमपद के अक्षरो का जो प्रमाण है उसका समस्त द्वादशाग के अक्षरो के प्रमाण मे भाग देने पर जितना लब्ध आवे उतने अग प्रविष्ट अक्षर होते है और शेष जितने अक्षर रहे उतना अगबाह्य अक्षरो या श्रुत का प्रमाण होता है। वास्तव मे यहाँ अङ्ग बाह्य या अग-प्रविष्ट का भेद मध्यमपदो की अपेक्षा है अत अग बाह्य या अग प्रविष्ट दोनो द्वादशाग के ही भेद है। अर्थात् ये सब द्वादशाग मे ही गर्भित है।

ऐसा यह श्रुतज्ञान परोक्षरूप से अनन्त पदार्थो को जानता है अत उस श्रुतज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ।

भावश्रुतज्ञान

पर्यायाक्षर-पद-सघात-प्रतिपत्तिकानुयोग-विधीन्।
प्राभृतक-प्राभृतकं प्राभृतक वस्तु पूर्वं च ।।५।।
तेषा समासतोऽपि च विशति-भेदान् समश्नुवान तत्।
वन्दे द्वादशधोक्तं गम्भीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या ।।६।।

अन्वयार्थ—(पर्याय-अक्षर-पद-सघात-प्रतिपत्तिक-अनुयोग विधीन्) पर्याय, अक्षर, पद सघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग विधि को (च) और (प्राभृतक प्राभृतक प्राभृतक वस्तु पूर्व) प्राभृतक-प्राभृतक, प्राभृतक, वस्तु तथा पूर्व को व (तेषा समासत अपि च) उनके भी समास से होने वाले पर्याय समास, अक्षर समास, पद समास, सघात समास, प्रतिपत्तिक समास, अनुयोग समास, प्राभृतक प्राभृतक समास, प्राभृतक समास, वस्तु समास और पूर्व समास इन (विशतिभेदान्) बीस भेदो को (समश्नुवान) व्याप्त करने वाले तथा (गभीर-वर-शास्त्र-पद्धत्या) गभीर उत्कृष्ट शास्त्र पद्धति से (द्वादशधा उक्त) बारह प्रकार के कहे गये (तत्) उस (श्रुत वन्दे) श्रुतज्ञान को (वन्दे) मै वन्दन करता हूँ/नमन करता हूँ।

भावार्थ—श्रुतज्ञान के पर्याय आदि २० भेद है। इनमे पर्यायज्ञान सबमे जघन्य ज्ञान है। इस ज्ञान का दूसरा नाम लब्ध्यक्षर ज्ञान भी है।

श्रुतज्ञान के क्षयोपशम को लब्धि कहते है। जिस ज्ञान का कभी नाश नही होता उसको अक्षर कहते है। यह ज्ञान अक्षर का अनन्तवाँ भाग है, इसका कभी नाश नही होता। यह ज्ञान सक्ष्मनिगोदिया लब्ध्य-पर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के पहले समय होता है। यह ज्ञान अक्षर का अनन्तवाँ भाग होकर सदा निरावरण होता है। इसका जीव के कभी अभाव नही होता। यदि इसका अभाव हो जाय तो जीव का ही अभाव हो जाय।

पर्याय ज्ञान के ऊपर और अक्षर श्रुतज्ञान से पहले तक पर्यायसमास ज्ञान कहलाता है। अकार, आकार आदि श्रुतज्ञान को अक्षर श्रुतज्ञान कहते है। यह अक्षर श्रुतज्ञान सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के अनन्तानन्त लब्ध्यक्षरो के बराबर होता है [ध पु १३, पृ २६४] । अक्षरज्ञान के ऊपर पद श्रुतज्ञान से नीचे श्रुतज्ञान के समस्त भेद अक्षर समास है।

जिससे अर्थ का बोध हो सो पद है—१ अर्थपद २ मध्यमपद व प्रमाणपद। अक्षर समास के ऊपर एक अक्षरज्ञान के बढने पर यह पद ज्ञान होता है। पद नामक श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर-प्रमित श्रुतज्ञान के बढने पर पदसमास नामक श्रुतज्ञान होता है।

एक गति का निरूपण करने वाला सघात नामक श्रुतज्ञान है। एक मध्यमपद के ऊपर भी एक-एक अक्षर की वृद्धि होते हुए सख्यात हजार पदो की वृद्धि जिसमे हो वह सघात नामक श्रुतज्ञान है। सघात श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान की वृद्धि होने पर सघात समास नामक ज्ञान होता है।

सख्यात सघात श्रुतज्ञानो का आश्रयकर एक प्रतिपत्ति श्रुतज्ञान होता है। अथवा जितने पदो के द्वारा चार गति, मार्गणा का प्ररूपण हो वह प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान है। इसमे एक अक्षर प्रमाण वृद्धि होने पर प्रतिपत्तिक समास श्रुतज्ञान होता है संख्यात प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान का एक अनुयोग श्रुतज्ञान होता है अथवा चौदह मार्गणाओ से प्रतिबद्ध जितने पदो के द्वारा अर्थ जाना जाता है उतने पदो से उत्पन्न श्रुतज्ञान को अनुयोग कहते है। अनुयोग के ऊपर अक्षर की वृद्धि होने पर अनुयोग समास श्रुतज्ञान होता है। अनुयोग के ऊपर क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते हुए चतुरादि

अनुयोगो की वृद्धि होने पर प्राभृत-प्राभृत श्रुतज्ञान होता है। इस ज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण श्रुतज्ञान की वृद्धि होने पर प्राभृत-प्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है।

चौबीस प्राभृत-प्राभृत का एक प्राभृत श्रुतज्ञान होता है। प्राभृत श्रुतज्ञान के ऊपर एक अक्षर प्रमाण वृद्धि होने पर प्राभृत समास श्रुतज्ञान होता है। तथा १-१ वस्तु मे २०-२० प्राभृत होते है। १४ पूर्वो मे १९५ वस्तुएँ है और प्राभृतो का प्रमाण ३९०० है।

सक्षेप मे–कम से कम श्रुतज्ञान को पर्यायज्ञान, इन्द्रियो से ग्रहण मे आवे सो अक्षरज्ञान, जिससे अर्थ का बोध हो वह पद ज्ञान, एक गति स्वरूप को प्रकट करने वाला सघात ज्ञान, ४ गतियो के स्वरूप को जानने वाला प्रतिपत्तिक ज्ञान, १४ मार्गणाओ का निरूपक अनुयोग ज्ञान ४ निक्षेप, सत् सख्यादि का कथन करनेवाला प्राभृत-प्राभृत ज्ञान। प्राभृतक-प्राभृतक का अधिकार प्राभृत ज्ञान, पूर्व का अधिकार वस्तु और शास्त्र के अर्थ का पोषक पूर्व तथा हर एक के भेदो को समास कहते है, इस प्रकार भावश्रुतज्ञान के क्रमिक विकास अपेक्षा २० भेद है।

श्रुतज्ञान के बारह भेद

आचार सूत्रकृत स्थानं समवाय-नामधेयं च।
व्याख्या-प्रज्ञप्ति च ज्ञातृकथोपासकाध्ययने।।७।।
वन्देऽन्तकृद्दश-मनुत्तरोपपादिकदश दशावस्थम्।
प्रश्नव्याकरण हि विपाकसूत्र च विनमामि।।८।।

अन्वयार्थ—(आचार सूत्रकृत स्थान समवायनामधेय) आचाराङ्ग, सूत्रकृताङ्ग, स्थानाङ्ग, समवायाङ्ग (व्याख्याप्रज्ञप्ति च) और व्याख्या-प्रज्ञप्ति (ज्ञातृकथा - उपासकाध्ययने) ज्ञातृकथा और उपासकाध्ययन को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ (अन्तकृद्दशम्-अनुत्तरोप-पादिकदश दशावस्थ प्रश्नव्याकरण हि विपाक सूत्र च) अन्तकृद्दशाग, अनुत्तरोपपादिक दशाग, प्रश्नव्याकरणाङ्ग, विपाकसूत्र (च) दृष्टिवाद इन १२ अगो को (विनमामि) मै विशेष रूप से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मुनियो के आचार का वर्णन करने वाला **आचाराङ्ग** है,

५ प्रकार का विनय, अध्ययन व व्यवहार धर्म क्रिया का वर्णन करने वाला **सूत्रकृताङ्ग** है, सम्पूर्ण द्रव्यो के क्रमश एक से लेकर अनेक स्थानो का वर्णन करने वाला **स्थानाङ्ग** है, समस्त द्रव्य मे द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की अपेक्षा समानता का वर्णन करने वाला **समवायाङ्ग** है, जीव द्रव्य के सम्बन्ध मे ६००० प्रश्नो का समाधान करने वाला **व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग** है, तीर्थकरादि महापुरुषो के वैभव व गुणो का वर्णन करने वाला **ज्ञातृकथाङ्ग** है, श्रावको के आचार का कथन करने वाला **उपासकाध्ययनाङ्ग** है, प्रत्येक तीर्थकर के तीर्थकाल मे १०-१० मुनि उपसर्ग केवली हो मुक्त हुए इनका वर्णन करने वाला **अन्तकृद्दशाङ्ग** है, महोपसर्ग सहन कर विजयादि विमानो मे उत्पन्न हुए उनका वर्णन करने वाला **अनुत्तरोपपादिक दशाङ्ग** है, तीन काल मे लाभ-अलाभ व चार प्रकार की कथाओ का वर्णन करने वाला **प्रश्नव्याकरण अङ्ग** है तथा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार कर्मफलो का वर्णन करने वाला **विपाकसूत्राङ्ग** है। इन **अङ्गो मे ४ करोड़ १५ लाख २ हजार पद** है। ग्यारह अङ्ग रूप पूर्ण श्रुतज्ञान को मै नमस्कार करता हूँ।

दृष्टिवाद (बारहवें) अंग की स्तुति

परिकर्म च सूत्रं च स्तौमि प्रथमानुयोग-पूर्वगते ।
सार्द्धं चूलिकयापि च पंचविधं दृष्टिवादं च ।।१।।

अन्वयार्थ—(परिकर्म च सूत्र च प्रथमानुयोग पूर्वगते सार्द्ध चूलिकयापि च) परिकर्म सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका सहित (पञ्चविध दृष्टिवाद) पॉच प्रकार के दृष्टिवाद अङ्ग की (स्तौमि) मैं स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—दृष्टिवाद नामक बारहवॉ अङ्ग है, इसके पॉच भेद है १ परिकर्म २ सूत्र ३ प्रथमानुयोग ४ पूर्वगत और ५ चूलिका इन सबकी मैं स्तुति/वन्दना करता हूँ।

परिकर्म—जिसमे गणित की व्याख्या कर उसका पूर्ण विचार किया हो उसको परिकर्म कहते है। इसके पॉच भेद है—१ चन्द्रप्रज्ञप्ति २ सूर्यप्रज्ञप्ति ३ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ४ द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और ५ व्याख्या प्रज्ञप्ति।

जिसमे चन्द्रमा की आयु, गति, विभूति आदि का वर्णन हो वह

चन्द्रप्रज्ञप्ति है। जिसमे सूर्य की आयु, गति, परिवार आदि का वर्णन हो वह **सूर्यप्रज्ञप्ति** है। जिसमे जम्बूद्वीप सबधी सात क्षेत्र कुलाचल आदि का वर्णन है वह **जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति** है। जिसमे असख्यात व समुद्रो का वर्णन है वह **द्वीपसागरप्रज्ञप्ति** है। और जिसमे जीव, अजीव आदि द्रव्यो के स्वरूप का वर्णन है वह **व्याख्याप्रज्ञप्ति** है।

सूत्र—जिसमे जीव का विस्तृत विवेचन-कर्ता भोक्ता आदि रूप है वह सूत्र है।

प्रथमानुयोग—जिसमे ६३ शलाका पुरुषो का निरूपण है वह प्रथमानुयोग है।

पूर्वगत—इसके उत्पाद आदि १४ भेद है।

चूलिका—इसके पाँच भेद है—जलगता, स्थलगता, मायागता, रूपगता और आकाशगता।

जलगता—इसमे जल मे गमन, जल का स्तभन करने के लिये जो मत्र-तत्र आदि कारण है उनका वर्णन है। **स्थलगता**—पृथ्वी पर गमन करने के कारण मत्र-तत्र और तपश्चरण आदि का वर्णन इसमे है। **मायागता**—इसमे इन्द्रजाल सबधी मत्र-तत्रो का वर्णन है। **रूपगता**—इसमे सिह, व्याघ्र आदि के रूप धारण करने के मत्र-तत्रो का वर्णन है तथा **आकाशगता**—इसमे आकाश मे गमन करने के कारण मन्त्र-तन्त्र और तपश्चरण आदि का वर्णन है।

पूर्वगत तु चतुर्दशधोदित-मुत्पादपूर्व-माद्यमहम्।
आग्रायणीय-मीडे पुरु-वीर्यानुप्रवादं च॥१०॥
संततमहमभिवन्दे तथास्ति-नास्ति प्रवादपूर्वं च।
ज्ञानप्रवाद-सत्यप्रवाद-मात्मप्रवाद च॥११॥
कर्मप्रवाद-मीडेऽथ प्रत्याख्यान-नामधेय च।
दशम विद्याधार पृथुविद्यानुप्रवादं च॥१२॥
कल्याण-नामधेय प्राणावायं क्रियाविशाल च।
अथ लोकबिदुसार वन्दे लोकाग्रसारपदम्॥१३॥

अन्वयार्थ—(पूर्वगत तु चतुर्दशधा उदितम्) दृष्टिवाद के ५ भेद हैं

उनमे पूर्वगत १४ प्रकार का कहा गया है। (अहम्) मै (आद्यम्) सर्वप्रथम (उत्पादपूर्वम्, आग्रायणीय पुरुवीर्यानुप्रवाद च) उत्पादपूर्व, आग्रायणीय पूर्व और पुरुवीर्यानुप्रवाद पूर्व को (ईडे) नमस्कार करता हूँ। (तथा) उसी तरह (अहम्) मै (अस्ति-नास्ति प्रवादपूर्व, ज्ञानप्रवाद-सत्य प्रवादम्-आत्मप्रवाद च) अस्ति-नास्ति प्रवाद पूर्व, ज्ञानप्रवाद पूर्व, सत्यप्रवाद पूर्व और आत्मप्रवाद पूर्व को भी (सतत) सदा/सतत/निरन्तर (अभिवन्दे) पूर्णरूपेण मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

(अथ) उसके पश्चात् मै (कर्मप्रवादम्, प्रत्याख्यानामधेय च, दशम विद्याधार पृथुविद्यानुप्रवाद च) कर्मप्रवाद पूर्व और प्रत्याख्यान पूर्व तथा जो अनेक विद्याओ का आधार भूत है ऐसे दशवे विद्यानुवाद पूर्व की (ईडे) मै स्तुति करता हूँ।

(अथ) उसके पश्चात् (कल्याण नामधेय) कल्याणवाद नाम पूर्व (प्राणावाय) प्राणावाद (क्रियाविशाल) क्रियाविशाल (च) और (लोक-अग्र-सार-पदम्) मुक्ति-पद की सारभूत क्रियाओ का आधारभूत (लोकबिन्दुसार वन्दे) लोकबिन्दुसार की मै वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—उत्पादपूर्व द्रव्यो मे उत्पाद-व्यय-धौव्यादि धर्मो का वर्णन करता है। आग्रायणीय पूर्व ७०० सुनय-दुर्नयो द्वारा ६ द्रव्य, ७ तत्त्व, ९ पदार्थो का वर्णन करता है। वीर्यानुवाद, आत्मवीर्य व परवीर्य, उभयवीर्य तप, द्रव्य, गुण वीर्य का वर्णन करता है। अस्ति नास्ति पूर्व सप्तभगी का कथन करता है। ज्ञानप्रवाद आठ ज्ञानो का कथन करता है। सत्यप्रवाद अनेक प्रकार के शब्दो का तथा १० प्रकार के सत्य वचनो का वर्णन करता है। आत्मप्रवाद आत्मा के उपयोग आदि का, कर्मप्रवाद मूलोत्तर कर्म प्रकृतियो के बध उदयादि का, प्रत्याख्यान पूर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अपेक्षा त्याग धर्म का, विद्यानुवाद ७०० लघुविद्या, ५०० रोहिणी आदि विद्या तथा महाविद्याओ का, कल्याणवाद तीर्थंकरो के पचकल्याणको का, प्राणवाद पूर्व वैद्य चिकित्सा आदि से प्राणो की रक्षा के उपाय का, क्रिया-विशाल पूर्व सगीत, छन्द, अलकार, आदि ७२ कलाओ का तथा त्रिलोकबिन्दुसार-तीन लोक का वर्णन करता है।

दश च चतुर्दश चाष्टावष्टादश च द्वयो-र्द्विषट्कं च ।
षोडश च विंशतिं च त्रिंशतमपि पञ्चदश च तथा ।।१४।।
वस्तूनि दश दशान्येष्वनुपूर्वं भाषितानि पूर्वाणाम् ।
प्रतिवस्तु प्राभृतकानि विंशतिं विंशतिं नौमि ।।१५।।

अन्वयार्थ—(पूर्वाणाम् एषु अनुपूर्वं) १४ पूर्वो की ये क्रमश (दश च चतुर्दश च अष्टौ-अष्टादश च द्वयोर्द्विषट्क च षोडश च विंशति च त्रिंशतम् अपि पचदश च दश दशानि वस्तूनि) १०, १४, ८, १८, १२, १२, १६, २०, ३०, १५, १०, १०, १०, १० वस्तुएँ (भाषितानि) कही गई है (तथा) तथा (प्रतिवस्तु) प्रत्येक वस्तु मे (विंशति विंशति) २०-२० (प्राभृतकानि) प्राभृतक कहे गये है (नौमि) मै सबको नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उत्पाद आदि १४ पूर्वो मे क्रमश उत्पाद पूर्व मे १०, आग्रायणीय पूर्व मे १४, पुरुवीर्यानुवाद मे ८, अस्तिनास्ति प्रवाद मे १८, ज्ञानप्रवाद मे १२, सत्यप्रवाद मे १२, आत्मप्रवाद मे १६, कर्मप्रवाद मे २०, प्रत्याख्यान पूर्व मे ३०, विद्यानुवाद मे १५, कल्याणवाद मे १०, प्राणवाद मे १०, क्रियाविशाल मे १० तथा लोकबिन्दुसार मे १०, वस्तुएँ कही गई है। एक-एक वस्तु मे २०-२० प्राभृतक है। मैं उत्पाद पूर्व की कुल १९५ वस्तुओ और ३९०० प्राभृतको को नमस्कार करता हूँ।

आग्रायणीय पूर्व के १४ अधिकारों के नाम

पूर्वान्तं ह्यपरान्तं ध्रुव-मध्रुव-च्यवनलब्धि-नामानि ।
अध्रुव-सम्प्रणिधिं चाप्यर्थं भौमावयाद्यं च ।।१६।।
सर्वार्थ-कल्पनीयं ज्ञानमतीतं त्वनागतं कालम् ।
सिद्धि-मुपाध्यं च तथा चतुर्दश-वस्तूनि द्वितीयस्य ।।१७।।

अन्वयार्थ—(द्वितीयस्य) दूसरे आग्रायणीय पूर्व की (पूर्वान्त हि अपरान्त ध्रुवम् अध्रुव च्यवनलब्धि नामानि) पूर्वान्ति, अपरान्त, ध्रुव, अध्रुव, च्यवनलब्धि नाम युक्त (च) और (अध्रुवसप्रणिधि च अपि अर्थं भौमावयाद्य च सर्वार्थ-कल्पनीय ज्ञानम् अतीत तु अनागतकालम् सिद्धिम् उपाध्य च तथा, अध्रुवसप्रणिधिं, च अपि अर्थं भौमावयाद्य च सर्वार्थ कल्पनीयं ज्ञानम अतीत तु अनागत कालम् सिद्धिम् उपाध्य च तथा) व्रतादि, सर्वार्थ

कल्पनीय, ज्ञान अतीत काल, अनागत काल, सिद्धि और उपाध्य इस प्रकार (चतुर्दश वस्तूनि) १४ वस्तुएँ है।

भावार्थ—द्वितीय आग्रायणी पूर्व की १४ वस्तुएँ—१ पूर्वान्त, २ अपरान्त, ३ ध्रुव, ४ अध्रुव, ५ च्यवनलब्धि, ६ अध्रुव सप्रणिधि ७ अर्थ ८ भौम, ९ व्रतादिक, ९ सर्वार्थ-कल्पनीय, १० ज्ञान, ११ अतीत काल १२, अनागत काल १३ सिद्धि और १४ उपाध्य हैं, इन सबको मेरा नमस्कार है।

कर्म प्रकृति के २४ अनुयोगों के नाम

पञ्चमवस्तु - चतुर्थं - प्राभृतकस्यानुयोग - नामानि।
कृतिवेदने तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिमेव ।।१८।।
बन्धन - निबन्धन - प्रक्रमानुपक्रम - मथाभ्युदय - मोक्षौ।
सङ्क्रमलेश्ये च तथा लेश्यायाः कर्म-परिणामौ ।।१९।।
सात-मसातं दीर्घं ह्रस्व भवधारणीय-संज्ञ च।
पुरुपुद्गलात्मनाम च निधत्त-मनिधत्त-मभिनौमि ।।२०।।
सनिकाचित-मनिकाचित-मथ-कर्मस्थितिकपश्चिमस्कंधौ।
अल्पबहुत्व च यजे तद्द्वाराणां चतुर्विंशम् ।।२१।।

अन्वयार्थ—(पञ्चमवस्तु चतुर्थप्राभृतकस्य) पाँचवी वस्तु च्यवनलब्धि के चौथे कर्मप्रभृति प्राभृतक के (अनुयोग नामानि) अनुयोगो के नाम (कृतिवेदने) कृति और वेदना (तथैव स्पर्शन-कर्मप्रकृतिम् एव बन्धन निबन्धन-प्रक्रम-अनुपक्रमम्) स्पर्शन कर्म, प्रकृति, बन्धन, निबन्धन, प्रक्रम, अनुपक्रम (अथ) पश्चात् (अभ्युदयमोक्षौ) अभ्युदय व मोक्ष (च) और (सक्रम लेश्ये) सक्रम व लेश्या (तथा) तथा (लेश्याया कर्म-परिणामौ) लेश्याकर्म व लेश्या परिणाम (च) और (सातमसात दीर्घ-ह्रस्व-भवधारणीय-सज्ञ) सातासात, दीर्घ-ह्रस्व, भवधारणीय नाम वाले (च) तथा (पुरुपुद्गलात्मनाम) पुरुपुद्गलात्म नामक (च) व (निधत्तम् अनिधतम्) निधत्तानिधत्त (अथ) पश्चात् (सनिकाचितम् अनिकाचिम्) निकाचित-अनिकाचित (अथ) इसके बाद (कर्मस्थितिक- पश्चिमस्कन्धौ) कर्मस्थिति व पश्चिम स्कन्ध (च) और (अल्पबहुत्व) अल्पबहुत्व है। (तद्द्वाराणा चतुर्विंशम्) उन

२४ द्वारो को (यजे अभिनौमि) मै भक्तिपूर्वक मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—दूसरे आग्रयणीय पूर्व की पञ्चम वस्तु च्यवनलब्धि है, उसमे २४ अनुयोगद्वार है—१ कृति, २ वेदना, ३ स्पर्शन, ४ कर्म, ५ प्रकृति, ६ बन्ध, ७ निबन्धन, ८ प्रक्रम, ९ अनुपक्रम, १० अभ्युदय, ११ मोक्ष, १२ सक्रम, १३ लेश्या, १४ लेश्याकर्म, १५ लेश्या परिणाम, १६ सातासात, १७ दीर्घह्रस्व, १८ भवधारणीय, १९ पुद्गलात्म, २० निधत्तानिधत्त,, २१ निकाचितानिकाचित, २२ कर्मस्थिति २३ पश्चिमस्कन्ध और २४ अल्पबहुत्व। ये २४ अनुयोग चतुर्थ कर्मप्रभृति प्राभृतक मे प्रवेश करने के लिये द्वार के समान है। इन सबको मेरा भक्तिपूर्वक नमस्कार है।

द्वादशांग श्रुतज्ञान की पद संख्या

कोटीना द्वादशशत-मष्टापञ्चाशत सहस्राणाम्।
लक्षत्र्यशीति-मेव च पञ्च च वन्दे श्रुतपदानि।।२२।।

अन्वयार्थ—(श्रुतपदानि) द्वादशाङ्ग के समस्त पदो (कोटीना द्वादशशतम् अष्टपञ्चाशतम् सहस्राणाम् लक्षत्रि अशीति एव च पञ्च च) एक सौ बारह करोड तेरासी लाख अट्ठावन हजार पॉच पदो को (वन्दे) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—द्वादशाग के ११२८३५८००५ पदो की मै वन्दना करता हूँ।

एक एक पद के अक्षरों की संख्या

षोडशशत चतुस्त्रिंशत् कोटीना त्र्यशीति-लक्षाणि।
शतसंख्याष्टा सप्तति-मष्टाशीतिं च पद-वर्णान्।। २३ ।।

अन्वयार्थ—(षोडशशत चतुस्त्रिशत् कोटीना) सोलह सौ चौतीस करोड़ (त्रि अशीतिलक्षाणि) तेरासी लाख (सप्ततिम्) सात हजार (च) और (शतसख्याष्टा अष्टाशीति) आठ सौ अठासी (पदवर्णनम्) पद के अक्षर है।

जिनागम मे पद के तीन भेद किये गये है। १ अर्थपद २ मध्यमपद

और ३ प्रमाणपद। इनमे जितने अक्षरो से वक्ता का अभिप्राय प्रकट होता हो ऐसे अनियत अक्षरो के समूह या वाक्य को अर्थ पद कहते है, जैसे— अग्नि लाओ, पानी छानकर पीओ, मन्दिर जाओ आदि। आठ, चौदह आदिक अक्षरो के समूह को प्रमाणपद कहते है, जैसे अनुष्टुप श्लोक के एक पाद मे ८ अक्षर होते है, वसन्ततिलका के एक पाद मे १४ अक्षर होते है। इसमे अक्षरो का प्रमाण उस-उस छन्द के अनुसार न्यूनाधिक होता है। परन्तु मध्यम पद मे कहे गये १६३४८३०७८८८ अक्षरो का प्रमाण हमेशा के लिये निश्चित है।

जिनागम मे २७ स्वर, ३३ व्यञ्जन, ४ अयोगवाह इस प्रकार ६४ मूल अक्षर माने गये हैं। इनका विरलन कर, उसके ऊपर दुआ मॉडकर परस्पर गुणा करने पर श्रुतज्ञान का प्रमाण १८४४६७४४०७३ ७०९५५१६१५ बीस अक अथवा एक कम एकट्ठी प्रमाण है। समस्त श्रुत के इन अनुरुक्त अक्षरो मे मध्यमपद का भाग देने पर जो लब्ध आता है वह द्वादशाग का प्रमाण व शेष अग बाह्य/प्रकीर्णक का प्रमाण आता है।

अंगबाह्य के भेदों की स्तुति

सामायिकं चतुर्विंशति-स्तवं वन्दना प्रतिक्रमणम्।
वैनयिकं कृतिकर्म च पृथु-दशवैकालिकं च तथा।।२४।।
वर-मुत्तराध्ययन-मपि कल्पव्यवहार-मेव-मभिवन्दे।
कल्पाकल्पं स्तौमि महाकल्पं पुण्डरीकं च।।२५।।
परिपाट्या प्रणिपतितोऽस्म्यहं महापुण्डरीकनामैव।
निपुणान्यशीतिकं च प्रकीर्णकान्यंग-बाह्यानि।।२६।।

अन्वयार्थ—(प्रणिपतित अहम्) नम्रीभूत हुआ मै (परिपाट्या) परिपाटी क्रम से (सामयिक) सामायिक (चतुर्विंशतिस्तव) चतुर्विशतिस्तव (वन्दना) वन्दना (प्रतिक्रमणम्) प्रतिक्रमण (वैनयिक) वैनयिक (च) और कृतिकर्म (पृथुदशवैकालिकम्) विशाल दशवैकालिक (तथा च) और (वरम्) उत्कृष्ट (उत्तराध्ययनम् अपि) उत्तराध्ययन को भी (एवम्) इसी प्रकार (कल्पव्यवहारम्) कल्प-व्यवहार को (अभिवन्दे) नमस्कार करता हूँ।

(कल्पाकल्प महाकल्प पुण्डरीक च) कल्पाकल्प, महाकल्प और पुण्डरीक की (स्तौमि) मै स्तुति करता हूँ तथा (महापुण्डरीक नामैव अशीतिक च) महापुण्डरीक और निषिद्धिका के प्रति (प्रणिपतित अस्मि) मै नम्रीभूत हूँ (निपुणानि) वस्तु तत्त्व का सूक्ष्म विवेचन करने मे निपुण ये (अङ्ग बाह्यानि) अङ्गबाह्य (प्रकीर्णक) प्रकीर्णक है। अर्थात् अङ्गबाह्य श्रुत को प्रकीर्णक भी कहते है, इनमे वस्तु तत्त्व का सूक्ष्मरीत्या विवेचन पाया जाता है।

भावार्थ—सामायिक की विधि का कथन करने वाला **सामायिक** प्रकीर्णक है। २४ तीर्थकरो की स्तुति जिसमे हो वह **चतुर्विंशति स्तव** प्रकीर्णक है। एक तीर्थकर की मुख्यता स्तुति करने वाला **वन्दना** प्रकीर्णक है। प्रमादजन्य दोषो को दूर करने के उपायो का कथन करने वाला **प्रतिक्रमण** प्रकीर्णक है। विनय के स्वरूप की विवेचना जिसमे हो वह **वैनयिक** प्रकीर्णक है। नित्य-नैमित्तिक क्रियाओ को बताने वाला **कृतिकर्म** प्रकीर्णक है। मुनि की आचार सहिता किस काल मे कैसी हो दिखाने वाला **दशवैकालिक** प्रकीर्णक है। उपसर्ग व परीषहो को सहन की विधि का जिसमे वर्णन है वह **उत्तराध्ययन** प्रकीर्णक है। योग्य आचरण का विधान करने वाला **कल्पव्यवहार** प्रकीर्णक है। योग्य अयोग्य आहार की प्ररूपणा करने वाला **कल्पाकल्प** प्रकीर्णक है। महापुरुषो के आचरण का प्ररूपक **महाकल्प** प्रकीर्णक है। चार प्रकार के देवो मे उत्पत्ति के साधनो को प्रज्ञापक **पुण्डरीक** प्रकीर्णक है। इन्द्रो मे उत्पत्ति के साधनो को दर्शाने वाला **महापुण्डरीक** प्रकीर्णक है तथा प्रमादजन्य सूक्ष्म या स्थूल दोषो के शक्ति अनुसार प्रायश्चित का उपदेष्टा शास्त्र **अशीतिका या निषिद्दिका** प्रकीर्णक कहलाता है। ये सभी १४ प्रकीर्णक अङ्गबाह्य शास्त्र है। द्वादशाग मे ही गर्भित है। मै नम्रीभूत हुआ इनकी स्तुति, पूजा, वन्दना करता हूँ। ये सभी शास्त्र वस्तुस्वरूप की सूक्ष्म प्ररूपणा मे कुशल महाशास्त्र है।

अवधिज्ञान की स्तुति

पुद्गल-मर्यादोक्तं प्रत्यक्षं सप्रभेद-मवधिं च।
देशावधि-परमावधि-सर्वावधि-भेद-मभिवन्दे ।।२७।।

अन्वयार्थ—(पुद्गल-मर्यादा-उक्त) जिसमे विषयभूत पुद्गल की

मर्यादा कही गई है अर्थात् जो द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादारूपी द्रव्य को विषय करता है (प्रत्यक्ष) अक्ष याने इन्द्रिय आदि की अपेक्षा न रखकर जो मात्र अक्ष याने आत्मा से उत्पन्न होने के कारण प्रत्यक्ष है। (च) और जो (सप्रभेद) अवान्तर भेदो से सहित है। (देशावधि-परमावधि-सर्वावधिभेद) देशावधि-परमावधि-सर्वावधि भेदो से सहित (त अविध) उस अवधिज्ञान को (अभिवन्दे) नमस्कार करता हूँ।

प्रत्यक्ष ज्ञान के दो भेद है—१ साव्यवहारिक २ पारमार्थिक। जो ज्ञान इन्द्रिय प्रकाश आदि की सहायता के बिना मात्र आत्मा से ही उत्पन्न होता है वह ज्ञान पारमार्थिक प्रत्यक्ष है। पारमार्थिक प्रत्यक्ष के भी २ भेद है—१ विकलपारमार्थिक २ सकल पारमार्थिक। अवधिज्ञान क्षायोपशमिक ज्ञान होने से व मात्र रूपी पदार्थो को ही ज्ञान का विषय करने से विकलपारमार्थिक है। अवधिज्ञान—"अव=नीचे-धि" ज्ञान अर्थात् जिसका ज्ञान नीचे-नीचे अधिक है वह अवधिज्ञान है। इसके क्षयोपशम की अपेक्षा असख्यात भेद है। क्योकि जघन्य देशावधिज्ञान का क्षेत्र सूक्ष्म निगोदिया जीव की जघन्य अवगाहना प्रमाण है और उत्कृष्ट क्षेत्र-लोक प्रमाण है। तथा इस ज्ञान के देशावधि, परमावधि व सर्वावधि तीन भेद हैं। देशावधि चारो गति के जीवो को होता है। परमावधि व सर्वावधि उत्कृष्ट चारित्रधारक सयमी मुनियो के ही होता है।

देशावधि के गुणप्रत्यय व भवप्रत्यय दो भेद है। गुणप्रत्यय ६ भेद रूप है वर्धमान, हीयमान, अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित व अनवस्थित। भवप्रत्यय मे भी गुणप्रत्यय की छह अवस्थाएँ पाई जाती है। परन्तु यह मात्र देव-नारकियो के ही होता है।

इस विशुद्धि प्राप्त अवधिज्ञान की मैं अभिवन्दना करता हूँ।

मनःपर्ययज्ञान की स्तुति

परमनसि स्थितमर्थं मनसा परिविद्य मन्त्रि-महित-गुणम्।
ऋजु-विपुलमति-विकल्पं स्तौमि मनःपर्ययज्ञानम्॥ २८॥

अन्वयार्थ—(परमनसि) दूसरे के मन मे (स्थितम् अर्थम्) स्थित रूपी पदार्थ को (मनसा परिविद्यमत्रिमहितगुणम्) मन से जानकर

जो महर्षियो से पूजित कृतकृत्य गुण को प्राप्त होता है तथा जो (ऋजु-विपुलमति-विकल्प) ऋजुमति व विपुलमति दो भेद रूप है, उस (मन पर्ययज्ञानम्) मन पर्ययज्ञान की (स्तौमि) मै स्तुति करता हूँ ।

भावार्थ—मन पर्ययज्ञान दूसरे के मन मे स्थित सरल व कुटिल पदार्थो को विषय करता है। यह कर्मभूमिया सयमी मुनियो के ही उत्पन्न होता है। उनमे भी विशेष चारित्र के आराधक छठे से १२ गुणस्थानवर्ती मुनिवर के ही होता है। इस ज्ञान के ऋजुमति व विपुलमति ऐसे भेद जानना चाहिये।

केवलज्ञान की स्तुति

क्षायिक-मनन्त-मेकं त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपदवभासम् ।
सकल-सुख-धाम सततं वन्देऽह केवलज्ञानम् ।। २९ ।।

अन्वयार्थ—(क्षायिकम्-अनन्तम्) जो ज्ञान ज्ञानावरण कर्म के क्षय से प्राप्त होने से क्षायिक है, कभी नाश न होने से अनन्त है जो (एक) एक अद्वितीय है, जिसके साथ कोई क्षायोपशमिक ज्ञान नही रहता (त्रिकाल-सर्वार्थ-युगपत्-अवभासम्) जो तीनो कालो सम्बन्धी समस्त पदार्थो का एक साथ जानता है (सकलसुखधाम) पूर्ण सुखो का स्थान है, ऐसे (केवलज्ञानम्) केवलज्ञान को (अहम्) मै (सततम्) हमेशा (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है। यह ज्ञानावरण के अत्यन्त क्षय से उत्पन्न हुआ निर्मल, विशुद्ध व अनन्त है। यह असहाय ज्ञान है इसे पर- इन्द्रिय आदि की अपेक्षा नही है। यह सकल पारमार्थिक है। त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्य उनके अनन्त गुण और अनन्त पर्यायो को यह ज्ञान हस्तामलकवत् जानता है। आत्मा मे इसके उदय होने पर क्षायोपशमिक ज्ञानो का अभाव हो जाता है।

स्तुति के फल की प्रार्थना

एवमभिष्टुवतो मे ज्ञानानि समस्त-लोक-चक्षूंषि ।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि-र्ज्ञानफलं सौख्य-मच्यवनम् ।।३०।।

अन्वयार्थ—(एवम्) इस प्रकार (समस्त-लोक-चक्षूंषि) तीनो लोको

के नेत्रस्वरूप (ज्ञानानि) मति आदि ज्ञानो की (अभिष्टुवत) स्तुति करने वाले (मे) मुझे (लघु) शीघ्र ही (ज्ञानफल) ज्ञान का फल (ज्ञान-ऋद्धि) ज्ञानरूप ऋद्धि व (अच्यवनम् सौख्यम्) अविनाशी सुख (भवतात्) प्राप्त हो।

भावार्थ—इस प्रकार यद्यपि मैने सामान्य से पाँचो ज्ञानो की व विशेष रूप से श्रुतज्ञान की इस श्रुतभक्ति मे स्तुति की है। इस स्तुति को करने वाले मुझ पूज्यपाद को केवलज्ञान ऋद्धि व अविनाशी सिद्ध पद, जो अनन्त सुखरूप है उसकी प्राप्ति हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भते ! सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउ, अंगोवग-पइण्णए पाहुडय-परियम्म-सुत्त-पढमाणिओग-पुव्वगय-चूलिया चेव सुत्तत्थय-थुइ-धम्मकहाइयं णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइ-गमण, समाहि-मरण, जिण-गुण-सपत्ति होदु मज्झं।

अन्वयार्थ—(भते) हे भगवन् ! मैने (सुदभत्ति-काउस्सग्गो कओ) श्रुतभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। (तस्सालोचेउ इच्छामि) उसकी आलोचना करने की मैं इच्छा करता हूँ। (अगोवगपइण्णए) अङ्ग, उपाङ्ग, प्रकीर्णक (पाहुडय) प्राभृत (परियम्म) परिकर्म (सुत्त) सूत्र (पढमाणिओग) प्रथमानुयोग (पुव्वगय) पूर्वगत (चूलिया) चूलिका (चेव) तथा (सुत्तत्थयथुइ) सूत्र, स्तव, स्तुति व (धम्मकहाइय) धर्मकथा आदि की (णिच्चकाल) नित्यकाल/सदा (अच्चेमि) अर्चा करता हूँ (पुज्जेमि) पूजा करता हूँ, (वदामि) नमस्कार करता हूँ। [इनकी स्तुति, पूजा आदि के फलस्वरूप] मेरे (दुक्खक्खओ) दु खो का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो, (सुगइगमण) सुगति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (मज्झ) मुझे (जिनगुणसपत्ति) जिनेन्द्र देव के गुणो का लाभ हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मै श्रुतभक्ति के माध्यम से अग-उपाग, प्रकीर्णक, प्राभृत, परिकर्म प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका, सूत्र, स्तव, स्तुति व

धर्मकथा आदि की अर्चा, वन्दना आदि करता हूँ। मेरे समस्त दु.खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति हो, समाधिमरण हो तथा अन्त मे मुझे जिनेन्द्र के अनुपम गुणो की प्राप्ति हो।

।। इति श्री श्रुतभक्ति ।।

श्री चारित्र भक्ति

शार्दूलविक्रीडितम्

चारित्र की वन्दना

येनेन्द्रान् भुवन-त्रयस्य विलसत्-केयूर-हारांगदान्,
भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा-प्रविसरोत्-तुगोत्तमागान्नतान् ।
स्वेषां पाद-पयोरुहेषु मुनय-श्चक्रुः प्रकाम सदा,
वन्दे पञ्चतय तमद्य निगदन्-नाचार-मभ्यर्चितम् ।।१।।

अन्वयार्थ—जिनके शरीर (विलसत्-केयूर-हार-अङ्गदान्) केयूर, हार व बाजूबन्द से शोभायमान है, जिनके (उत्तुग उत्तमाङ्गान्) ऊँचे उठे हुए मस्तक (भास्वन्-मौलि-मणिप्रभा प्रवसर) देदीप्यमान मुकुटो की मणियो की कान्ति के विस्तार से, शोभायमान हे/सहित है ऐसे (भुवनत्रयस्य) तीनो लोको के (इन्द्रान्) समस्त इन्द्रो को/स्वामियो को (येन मुनय) जिन मुनियो ने (सदा) हमेशा (प्रकाम) अच्छी तरह (स्वेषा पाद-पयोरुहेषु) अपने चरण-कमलो मे (नतान् चक्रु) नम्रीभूत किया है, ऐसे (अभि अर्चितम्) अत्यन्त पूज्य (पञ्चतय निगदन्) पचाचारो का कथन करता हुआ मै (अद्य) आज (तम्) उस पचभेद वाले (आचार) आचार को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—यहाँ श्री पूज्यपाद स्वामी चारित्र भक्ति के माध्यम से पञ्चाचारो के वर्णन की प्रतिज्ञा करते हुए लिखते है कि जिन पूज्य दिगम्बर मुनिराजो के पचाचारो के आचरण से प्रभावित होकर तीनो लोको के इन्द्रो ने स्वय आकर उन मुनिराजो के चरणो मे मस्तक झुकाया उन दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार को मै नमस्कार करता हूँ ।

ज्ञानाचार का स्वरूप

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वया-विकलता-कालोपधा-प्रश्रयाः,
स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहु-मति-श्चेत्यष्टधा व्याहृतम् ।
श्रीमज्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राऽञ्जसा,
ज्ञानाचार-महं त्रिधा प्रणिपताम्युद्धृतये कर्मणाम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्) अन्तरङ्ग, बहिरंङ्ग लक्ष्मी के स्वामी (ज्ञाति कुल इन्दुना) ज्ञातृवंश के चन्द्रमास्वरूप (तीर्थस्यकर्त्ता) धर्मतीर्थ के

कर्ता (भगवता) भगवान् महावीर स्वामी के द्वारा (अर्थव्यञ्जन-तद्द्वयाविकलता) अर्थ-अविकलता, व्यञ्जन अविकलता, अर्थव्यञ्जन अविकलता (कालोपधा प्रश्रया) कालशुद्धि, उपधान शुद्धि व विनय (स्व-आचार्य-आदि-अनपह्नव) अपने आचार्य आदि का नाम नही छिपाना (च) और (बहुमति) बहुमान (इति) इस प्रकार (अष्टधा व्याहृतम्) आठ प्रकार से कहे गये (ज्ञानाचार) ज्ञानाचार को (अह) मै (कर्मणाम् उद्धूतये) कर्मो के क्षय करने के लिये (त्रिधा) मन-वचन काय से (अञ्जसा प्रणिपतामि) सम्यक् प्रकार से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—अन्तरङ्ग अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख व अनन्त-वीर्य तथा बहिरग समवशरण विभूति से शोभा को प्राप्त श्री ज्ञातृवश के उद्योत करने के लिये चन्द्रमास्वरूप अवसर्पिणी काल मे अन्तिम धर्म तीर्थकर्ता श्री वर्धमान भगवान् ने ज्ञानाचार के आठ अग कहे है—

१. **अर्थाचार**—आगम के अर्थ, पद तथा वाक्यो के शुद्ध अर्थ का अवधारण करना।

२. **व्यञ्जनाचार**—आगम के पद, वाक्यो, अक्षरो का शुद्ध उच्चारण करना।

३. **अर्थव्यञ्जन शुद्धि/उभयाचार**—अर्थ-पद व शब्दो आदि का शुद्ध उच्चारण व निर्दोष अवधारण करना।

४. **कालाचार**—आगम ग्रन्थो को तीन सध्याओ, ग्रहण, उल्कापात, अतिवृष्टि आदि निषिद्ध कालो मे स्वाध्याय न करके योग्य काल मे स्वाध्याय करना।

५. **उपधानाचार**—स्वाध्याय प्रारम्भ होने पर समाप्ति पर्यन्त कोई विशेष नियम लेना, तथा शास्त्रो पर कँवर आदि लगाना, ग्रथ नाभिसे ऊँचा रखकर स्वाध्याय करना स्मरणपूर्वक पढना आदि ये उपधानाचार के स्वरूप है।

६. **विनयाचार**—योग्यक्षेत्र तथा काल मे श्रुतभक्ति-आचार्यभक्ति आदि रूप कृतिकर्म करके विनयपूर्वक स्वाध्याय करना।

७. **अनिह्नवाचार**—जिन गुरु से शिक्षण प्राप्त किया है उसका नाम नही छिपाना। और

८. **बहुमानाचार**—मुझे इस ग्रन्थ का स्वाध्याय करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ, इस विचार से अपना अहोभाग्य समझना, इस तरह आगम के प्रति बहुमान प्रकट करना बहुमानाचार है।

इस प्रकार ८ अगो सहित जो जीव स्वय स्वाध्याय करते है, दूसरे को सुनाते है उनके ज्ञानाचार की सिद्धि होती है। ज्ञानाचार की आराधना से उनके ज्ञानावरण का क्षयोपशम बढता है तथा निकट भविष्य मे ज्ञान के आवरण का पूर्ण अभाव होकर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसे ज्ञानाचार को भी पूज्यपाद स्वामी मन-वचन-काय से नमस्कार करते है।

दर्शनाचार का स्वरूप

शका-दृष्टि-विमोह-काङ्क्षणविधि-व्यावृत्ति-सन्नद्धताम्,
वात्सल्य विचिकित्सना-दुपरति धर्मोपबृह-क्रियाम्।
शक्त्या शासन-दीपन हित-पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनम्,
वन्दे दर्शन-गोचर सुचरितं मूर्ध्ना नमन्नादरात्॥३॥

अन्वयार्थ—(शका व्यावृत्ति-सन्नद्धता) शका का त्याग करने में तत्परता (दृष्टि-विमोह व्यावृत्तिसन्नद्धता) अमूढदृष्टि अथवा दृष्टि विमोह/मूढदृष्टि के त्याग मे तत्परता (काङ्क्षणविधि व्यावृत्ति सन्नद्धता) नि काक्षित अर्थात् भोगाकाक्षा के त्याग मे तत्परता (वात्सल्य) रत्नत्रयधारको मे प्रेम रखना (विचिकित्सात् उपरति) ग्लानि से दूर रहना (धर्म उपबृहक्रियाम्) धर्म की वृद्धि करना (शक्त्या) शक्ति अनुसार (शासन-दीपन) जिन शासन की प्रभावना करना (हितपथात्-भ्रष्टस्य सस्थापन) हितकारी सयम आदि के मार्ग से च्युत व्यक्ति को पुन सम्यक् प्रकार से मार्ग मे स्थिर करना। इस प्रकार (दर्शन-गोचर) सम्यक्दर्शन विषयक (सुचरित) उत्तम आचार को (आदरात्) आदर से (नमन्) नमस्कार करता हुआ मैं (मूर्ध्ना) सिर से (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—दर्शनाचार का पालन अष्ट अगो सहित होता है—१ नि शकित अग २ नि काक्षित ३ निर्विचिकित्सा ४ अमूढदृष्टि ५ उपगूहन

६ स्थितिकरण, ७ वात्सल्य और ८ प्रभावना। यहाँ ८ अगो के क्रम मे छन्द की मर्यादावश व्यतिक्रम हुआ है, परन्तु क्रम को यथाभ्यस्त दृष्टि मे रखते हुए यथायोग्य पालन करना भव्यात्माओ का कर्तव्य है।

यहाँ पूज्यपाद स्वामी आचार्य ने पञ्चम अग का नाम उपबृहण दिया है जिसका अर्थ होता है—अपने रत्नत्रय रूप गुणो को बढाने का पुरुषार्थ/ प्रयत्न करना। इसी पञ्चम अग का नाम रत्नकरड-श्रावकाचार मे श्री समन्तभद्र आचार्यजी ने "उपगूहन" दिया है। जिसका अर्थ है—धर्मात्माओ, रत्नत्रयधारियो के द्वारा कर्मवशात् कोई दोष हो जावे तो उसका गोपन करना। वैसे भी उपगूहन यह प्रचलित नाम है।

ऐसे अष्टअग सहित दर्शनाचार की मै [पूज्यपाद] आदर से नतमस्तक हो वन्दना करता हूँ।

तपाचार (बाह्यतप) का स्वरूप

एकान्ते शयनोपवेशन-कृति. सतापन तानवम्,
सख्या-वृत्ति-निबन्धना-मनशन विष्वाण-मर्द्धोदरम्।
त्यागं चेन्द्रिय-दन्तिनो मदयतः स्वादो रसस्यानिशम्,
षोढ़ा बाह्य-महं स्तुवे शिव गति-प्राप्त्यभ्युपाय तपः ।।४।।

अन्वयार्थ—(शिवगति-प्राप्ति-अभि-उपाय) मोक्षगति की प्राप्ति के उपायभूत (एकान्ते शयन-उपवेशन कृति) एकान्त स्थान मे शयन-आसन करना (तानव सन्तापन) शरीर को सतापित करना अर्थात् कायक्लेश करना (वृत्ति-निबन्धना सख्या) चर्या मे कारण-भूत सख्या को नियमित करना (अनशन) उपवास करना, (अर्द्ध उदरम् विष्वाण) ऊनोदर आहार करना (च) तथा (इन्द्रिय दन्तिन मदयत स्वाद रसस्य अनिश त्याग) इन्द्रियरूपी हाथियो के मद को बढाने वाले स्वादिष्ट रसोका हमेशा त्याग करना, ये (षोढ़ा बाह्य तप) छ प्रकार के बहिरग तप हैं (अहम् स्तुवे) मै इनकी स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—कर्मो के क्षय के लिये जो तपा जाता है वह तप कहलाता है। तप मोक्ष प्राप्ति मे साधकतम करण है। तप के दो भेद है एक बहिरग, दूसरा अन्तरङ्ग। बहिरग तप के छह भेद है—अनशन, ऊनोदर,

वृत्तिपरिसख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश। उमास्वामि आचार्य ने इन तपो की उत्तरोत्तर अधिक गुणाधिक्यता को ध्यान मे रखते हुए यही क्रम दिया है, यहाँ छन्द की मर्यादा/पराधीनता-वश क्रम का व्यतिक्रम हुआ है।

बाह्य तप को बाह्य कहने का प्रथम हेतु है—१ इन तपो की प्रवृत्ति बहिरग मे देखी जाती है तथा २ इन तपो को सयम मार्ग से दूर रहने वाले अन्यमति जीव भी करते देखे जाते है।

स्वामी समन्तभद्रआचार्य ने बहिरग तप को अन्तरङ्ग तप की वृद्धि का हेतु कहा है—"**आभ्यन्तरस्य तपसः परिवृहणार्थं बाह्यं तपः परमदुश्चर माचरस्त्वम्**" अर्थात् हे कुन्थुनाथ प्रभो! आपने अन्तरङ्ग तप की वृद्धि के लिये अत्यन्त कठोर ऐसा बाह्य तप किया था। इन छहो प्रकार के बहिरग तपो की पूज्यपाद आचार्य स्तुति करते है।

अन्तरङ्ग तपों का वर्णन

स्वाध्यायः शुभकर्मणश्च्युतवतः संप्रत्यवस्थापनम्,
ध्यानं व्यापृतिरामयाविनि गुरौ, वृद्धे च बाले यतौ।
कायोत्सर्जन सत्क्रिया विनय-इत्येवं तपः षड्विध,
वंदेऽभ्यन्तरमन्तरंग बलवद्विद्वेषि विध्वंसनम्॥५॥

अन्वयार्थ—(स्वाध्याय) स्वाध्याय करना (शुभकर्मण च्युतवत) शुभ क्रियाओ से च्युत होने वाले अपने आपको (सप्रति-अवस्थापन) पुन सम्यक् प्रकार से स्थिर करना (ध्यान) धर्म्य-शुक्लध्यान करना (आमयाविनि) रोगी (गुरौ) गुरु (वृद्धे च बाले यतौ) वृद्ध और अल्पवय वाले मुनियो के विषय मे (व्यापृति) सेवा/वैय्यावृत्य आदि करना (कायोत्सर्जन सत्क्रिया) शरीर से ममत्व छोड़कर कायोत्सर्ग की क्रिया करना (विनय) विनय (इत्येव) इस प्रकार (अन्तरङ्ग-बलवत्-विद्वेषि-विध्वसन) अन्तरङ्ग के बलवान् काम-क्रोध-मान-माया आदि शत्रुओ को नष्ट करने वाले (षट्-विध) छह प्रकार के (अभ्यन्तर तप) अन्तरङ्ग तप को (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—उमास्वामि आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ मे अन्तरङ्ग तपो

का वर्णन करते हुए सूत्र दिया—प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरम् ।। अर्थात् १ प्रायश्चित्त २ विनय ३ वैयावृत्ति ४ स्वाध्याय ५ कायोत्सर्ग और ६ ध्यान। यह क्रम उत्तरोत्तर अधिकाधिक निर्जरा का हेतु होने के पक्ष की सिद्धि करता है। आगम मे भी अन्तरङ्ग तपो का यही क्रम प्रसिद्ध है। यहाँ पूज्यपाद स्वामी को छन्दकला की रक्षार्थ क्रम का व्यतिक्रम करना पडा है। तप दुधारु गाय की तरह द्विगुणित लाभ का सकेत करता है, जैसा कि कहा भी है—"तपसा निर्जरा च" तप के द्वारा कर्मो का सवर व निर्जरा दोनो ही होते है। पञ्चम काल मे "स्वाध्याय परमो तप" स्वाध्याय परम तप है क्योकि इसके करने से मन-वचन-काय तीनो एकाग्र हो जाते है। इस काल मे शुक्लध्यान का अभाव ही है, पर धर्म्यध्यान के बल से आज भी जीव रत्नत्रय की शुद्धि करके लौकान्तिक, इन्द्र आदि पदो को प्राप्त कर सकता है।

वीर्याचार का स्वरूप

सम्यग्ज्ञान विलोचनस्य दधतः, श्रद्धानमर्हन्मते,
वीर्यस्याविनिगूहनेन तपसि, स्वस्य प्रयत्नाद्यतेः ।
या वृत्तिस्तरणीव नौरविवरा, लघ्वी भवोदन्वतो,
वीर्याचारमहं तमूर्जितगुण, वन्दे सतामर्चितम् ।।६।।

अन्वयार्थ—(सम्यक्ज्ञान विलोचनस्य) सम्यक् ज्ञानरूपी नेत्र से युक्त तथा (अर्हत् मते) अर्हन्त देव के मत मे/जिनशासन मे (श्रद्धानम् दधत) श्रद्धान को रखने वाले (यते) मुनि के (स्वस्य वीर्यस्य) अपनी शक्ति को (अविनिगूहनेन) नही छिपाने से (प्रयत्नात्) प्रयत्न-पूर्वक (तपसि) तप के सबध मे (या वृत्ति) जो प्रवृत्ति है, वह (अविवरा लघ्वी) छिद्र रहित छोटी (नौ इव) नौका के समान (भव उदन्वत तरणी) ससार-सागर से पार करने वाली नौका है, यही वीर्याचार है। (ऊर्जितगुण) प्रबल गुणो से सहित (सताम् अर्चितम्) सज्जनो के पूज्य (त वीर्याचार) उस वीर्याचार को मै (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिस प्रकार लोक व्यवहार मे समुद्र पार करने के लिए छिद्ररहित नौका आवश्यक है उसी प्रकार ससार समुद्र से पार करने के लिये वीर्याचाररूपी नौका आवश्यक है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन सहित

मुनिराज का अपनी शक्ति को न छिपाकर तप मे प्रवृत्ति करना, शक्ति को नही छिपाना यही वीर्याचार है। जिस प्रकार छिद्ररहित नौका समुद्र से पार कर गन्तव्य को पहुँचाती है, उसी प्रकार यह वीर्याचार ससार-सागर से पार करने वाली छिद्ररहित नौका है। इसका आश्रय लेने वाले यति/मुनि गन्तव्य स्थल मुक्ति को प्राप्त होते है। यह वीर्याचार अनेक श्रेष्ठ गुणो से युक्त है, साधु पुरुषो/सज्जनो से पूज्य है। इस वीर्याचार को मै नमस्कार करता हूँ।

चारित्राचार का स्वरूप

तिस्त्रः सत्तमगुप्तयस्तनुमनो, भाषानिमित्तोदयाः,
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पञ्चव्रतानीत्यपि।
चारित्रोपहित त्रयोदशतय, पूर्वं न दृष्ट परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपते, वीर नमामो वयम्॥७॥

अन्वयार्थ—(तनुमनोभाषा निमित्त उदया) शरीर, मन और वचन के निमित्त उदय होने वाली (तिस्त्र) तीन (सत्तमगुप्तय) श्रेष्ठ गुप्तियॉ (ईयादि समाश्रया) ईर्यागमन आदि के आश्रय से होने वाली (पञ्च-समितय) पॉच समितियॉ (अपि) और (पञ्चव्रतानि) अहिसा आदि पॉच महाव्रत (इति) इस प्रकार (त्रयोदशतय चारित्र उपहित) तेरह प्रकार के चारित्र से सहित (आचार) आचार को (वय) हम (नमाम) नमस्कार करते है जो (परमेष्ठिन) परम पद मे स्थित (वीर जिनपते) महावीर तीर्थकर से (परै पूर्व) पूर्व अन्य तीर्थकरो के द्वारा (न दृष्टम्) नही देखा गया अथवा नही कहा गया।

भावार्थ—मन-वचन-काय तीन प्रकार की श्रेष्ठ गुप्तियॉ, ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापना पॉच समितियॉ और अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पॉच महाव्रत ये १३ प्रकार का चारित्राचार है। इन १३ प्रकार के चारित्राचार से पूर्ण, इनसे सहित आचार को हम नमस्कार करते है। यहॉ पूज्यपाद आचार्य के अनुसार इन तेरह प्रकार के चारित्राचार का उपदेश अन्तिम तीर्थकर भगवान् महावीर स्वामी ने ही दिया, उनके पूर्व तेईस तीर्थंकरो ने नही दिया। क्योकि महावीर भगवान् के समय के जीव वक्रपरिणामी हो गये है, जबकि शेष तीर्थंकरो

के समय जीव सरल-परिणामी थे अत एकमात्र सर्वसावद्य निवृत्ति रूप मात्र एक प्रकार के चारित्र का ही उपदेश उन्हे दिया गया।

किन्ही विद्वानो के अनुसार अथवा अन्यत्र प्रसिद्ध गुरु उपदेशानुसार वृषभदेव व महावीर स्वामी ने ही छेदोपस्थापना चारित्र का उपदेश दिया अन्य २२ तीर्थकरो ने नही। क्योकि आदिनाथ तीर्थकर के समय जीव भद्र परिणामी थे अत ग्रहण किये चारित्र मे दोष लग जाते थे और महावीर भगवान् के समय मे जीव वक्र परिणामी है अत ग्रहण किये चारित्र मे दोष लग जाते है। यही वजह रहा कि उन्हे छेदोपस्थापना चारित्र का उपदेश देना पडा। २२ तीर्थकरो के समय जीव सभ्य, समभावी रहे, उनके द्वारा गृहीत सयम मे कभी दोष नही लगता था अत छेदोपस्थापना चारित्र के उपदेश की उन्हे आवश्यकता ही नही रही।

मुक्ति का साक्षात् कारण चारित्राचार है, चारित्राचार की आराधना के बिना तीर्थकर भी मुक्ति को प्राप्त नही कर पाते। क्षायिक सम्यक्त्व की व क्षायिक ज्ञान/केवलज्ञान की पूर्णता हो जाने पर भी क्षायिकचारित्र, यथाख्यात-व्युपरतक्रियानिवृत्ति ध्यान की पूर्णता के बिना मुक्ति की प्राप्ति नही होती। अत तीर्थकरो के द्वारा भी आचरणीय ऐसे चारित्राचार को आचार्य देव नमस्कार करते है।

पञ्चाचार पालने वालों की वन्दना

आचार सह-पञ्चभेदमुदित, तीर्थं पर मगलम्,
निर्ग्रन्थानपि सच्चरित्रमहतो, वदे समग्रान्यतीन्।
आत्माधीन सुखोदया-मनुपमां, लक्ष्मीमविध्वसिनीम्,
इच्छन्केवलदर्शनावगमन, प्राज्य प्रकाशोज्वलाम्।।८।।

अन्वयार्थ—(आत्माधीन सुख-उदया) आत्माश्रित सुख के उदय से सहित (अनुपमा) उपमारहित (केवलदर्शन-अवगमन-प्राज्य-प्रकाश-उज्ज्वला) केवलदर्शन और केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट प्रकाश से उज्ज्वल (अविध्वसिनी) अविनाशी (लक्ष्मी) मोक्षलक्ष्मी की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ मै (पर तीर्थमङ्गलम्) उत्कृष्ट तीर्थ तथा मङ्गलरूप (उदित) कहे गये (सह पञ्चभेद) पॉच भेदो से सहित (आचार) आचार को तथा (सच्चरित्रमहत) सम्यक् चारित्र से महान् (समग्रान्) सम्पूर्ण (निर्ग्रन्थान्) परिग्रहरहित (यतीन् अपि) मुनियो को भी (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—ये दर्शनाचार, ज्ञानाचार, तपाचार, वीर्याचार और चारित्राचार रूप पचाचार ससाररूपी महार्णव से पार होने के लिये घाट सम होने से परमतीर्थ है, अत पचाचार मगलरूप है। जिस प्रकार तीर्थ का आश्रय लेने वाला, तीर्थ की वन्दना करने वाला जीव जन्म-मरण के चक्कर से छूटकर ससार-समुद्र से तिर जाता है, उसी प्रकार पचाचाररूपी तीर्थ का आश्रय लेने वाला भी ससाररूपी तीर को पा जाता है अत पचाचार मगल रूप उत्तम तीर्थ है। इन पचाचारो का सदा उत्साहपूर्वक आचरण करने वाले मुनिराज भी मगलस्वरूप है। मै आत्माश्रित अनन्तसुख केवलज्ञान, केवलदर्शन रूप उत्कृष्ट ज्योति व अविनाशी मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति करने के लिये उस पञ्चाचार को सदा नमस्कार करता हूँ। तथा उसके आराधक मुनियो को भी नमस्कार करता हूँ।

चारित्र पालने में दोषों की आलोचना

अज्ञानाद्यदवीवृतं नियमिनोऽवर्तिष्यह चान्यथा,
तस्मिन्नर्जितमस्यति प्रतिनव, चैनो निराकुर्वति।
वृत्ते सप्ततयी निधिं सुतपसामृद्धिं नयत्यद्भुतं,
तन्मिथ्या गुरुदुष्कृत भवतु मे, स्वंनिदितो निदितम्।।९।।

अन्वयार्थ—मैने (अज्ञानात्) अज्ञान से (नियमिन) मुनियो को (यत्) जो (अन्यथा अवीवृत) आगमानुकूल प्रवृत न करा प्रतिकूल प्रवृतन कराया हो (च) अथवा (अवर्तिषि अह) मैने स्वय आगम के प्रतिकूल वर्तन किया हो (तस्मिन्) उस अन्यथा वर्तन मे (अर्जितम् एन) सचित पापो को (अस्याति) नष्ट करने वाले (च) और (प्रतिनव) प्रतिक्षण नवीन-नवीन बँधने वाले (एन) पापो को (निराकुर्वति) निराकरण करने अर्थात दूर करने वाले (सुतपसा) श्रेष्ठ तपस्वियो की '(अद्भुत निधि सप्ततयी ऋद्धि) आश्चर्यकारी निधिरूप सात प्रकार की ऋद्धियो को प्राप्त कराने वाले (वृत्ते) ग्रहण किये सयम मे जो अन्यथा प्रवृत्ति हुई है (निन्दितम्) निन्दा के पात्र (स्व) अपने आपकी (निन्दित) निन्दा करने वाले (मे) मेरे (तत्) वह (गुरु-दुष्कृत) भारी पाप (मिथ्या भवतु) मिथ्या हो।

भावार्थ—चारित्र की शुद्धि प्रायश्चित, आलोचना, निन्दा गर्हा आदि

से होती है। सयम को निर्दोष पालना उत्तम है, यदि कदाचित् गृहीत-सयम मे कोई दोष हो जावे तो उसे प्रायश्चित, निदा, गर्हा, आलोचना आदि के द्वारा दूर कर निर्दोषव्रताचरण करना चाहिये। यह चारित्र ही उत्तम सप्तर्द्धि—"बुद्धि-विक्रिया-तप-बल-औषधि-रस-क्षिति" को प्राप्त कराता है। हे भगवन्! इस चारित्र के आचरण मे जो कोई बडा भारी घोर अपराध/पाप मुझसे हुआ है वह मेरा दुष्कृत मिथ्या हो। मै पापो को दूर करने के लिये—निदा, गर्हा, आलोचना आदि करता हूँ।

चारित्र धारण करने का उपदेश

ससार-व्यसनाहतिप्रचलिता, नित्योदय प्रार्थिनः,
प्रत्यासन्न विमुक्तय. सुमतय·, शान्तैनसः प्राणिनः।
मोक्षस्यैव कृतं विशालमतुल, सोपानमुच्चैस्तराम्,
आरोहन्तु चरित्र-मुत्तम-मिदं, जैनेन्द्र-मोजस्विनः ।।१०।।

अन्वयार्थ—जो (ससार-व्यसन-आहति-प्रचलिता) जो ससार के कष्टो/दु खो के प्रहार से भयभीत है, (नित्य-उदय-प्रार्थिन) निरन्तर, शाश्वत उदय रूप रहने वाली मोक्ष लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करते है (प्रत्यासन्न विमुक्तय) जो आसन्न भव्य है अर्थात् निकट भविष्य मे मुक्ति को प्राप्त करने वाले है (सुमतय) जिनकी बुद्धि रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग मे आकृष्ट होने से उत्तम है (शान्त ऐनस) जिनके पाप-कर्मो का उदय शान्त हो गया है (ओजस्विन) जो तेजस्वी, महाप्रतापी है ऐसे (प्राणिन) भव्य प्राणी/भव्य जीव (मोक्षस्य एव कृत) मोक्ष के लिये ही किये गये (विशाल) विस्तार को प्राप्त (अतुल) अनुपम (उच्चै) उन्नत (सोपानम्) सीढी स्वरूप (जैनेन्द्र) जिनेन्द्रदेव कथित (इदम्) इस (उत्तमम् चारित्रम्) उत्तम चारित्र पर (आरोहन्तु तराम्) अच्छी तरह आरोहण करे।

भावार्थ—यहाँ स्तुति-कर्ता श्री पूज्यपाद स्वामी भव्यजीवो को सम्बोधन देते हुए प्रेरित कर रहे है कि "हे भव्यात्माओ! यदि तुम ससार के जन्म-मरण आदि दु खो के प्रहार से भयभीत हो शाश्वत सुख की प्राप्ति करना चाहते हो तो जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा प्रतिपादित १३ प्रकार के उत्तम चारित्र को अगीकार करो, यह चारित्र मुक्ति-महल पर पहुँचने के लिये विशाल अनुपम सोपान/सीढ़ी स्वरूप है। इस उत्तम चारित्र सीढ़ी पर चढ़ने

के लिये पाप-कर्मो की शान्ति, मोक्षमार्ग मे बुद्धि का होना आत्मबल की सम्पन्नता और निकट भव्यता अति आवश्यक है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! चारित्त भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्स आलोचउं सम्मणाणजोयस्स सम्मत्ताहिट्ठियस्स, सव्वपहाणस्स, णिव्वाणमग्गस्स, कम्मणिज्जरफलस्स, खमाहारस्स, पञ्चमहव्वयसंपण्णस्स, तिगुत्तिगुत्तस्स, पञ्चसमिदिजुत्तस्स, णाणज्झाण साहणस्स, समया इव पवेसयस्स, सम्म-चारित्तस्स णिच्चकालं, अचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं, समाहि-मरणं जिणगुणसपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—(भते!) हे भगवन्! मैने (चारितभक्ति काउस्सग्गो कओ) चारित्र-भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया। (तस्स आलोचेउ) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (सम्मणाणुज्जोयस्स) जो सम्यक्ज्ञान रूप उद्योत/प्रकाश से सहित है (सम्मत्ताहिट्ठियस्स) सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित है (सव्वपहाणस्स) सबमे प्रधान है (णिव्वाण-मग्गस्स) मोक्षका मार्ग है (कम्म-णिज्जर-फलस्स) कर्मो की निर्जरा ही जिसका फल है (खमाहारस्स) क्षमा जिसका आधार है (पचमहव्वय-सपण्णस्स) पॉच महाव्रतो से सुशोभित है (तिगुत्ति-गुत्तस्स) तीन गुप्तियो से रक्षित है, (पचसमिदि-जुत्तस्स) पॉच समितियो से युक्त है (णाणज्झाण साहणस्स) ज्ञान और ध्यान का मुख्य साधन है (समया इव पवेसयस्स) समता का प्रवेश जिसके अन्तर्गत है, ऐसे (सम्मचारित्तस्स) सम्यक्-चारित्र की मै (सदा) सदा (अचेमि) अर्चा करता हूँ (पूजेमि) पूजा करता हूँ (वदामि) वन्दना करता हूँ (णमस्सामि) नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दुखो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मों का क्षय हो, (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) सुगतिमे गमन हो, (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिणगुणसपत्ति होऊ मज्झ) मुझे जिनेन्द्र देवो के गुणो की सप्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्! चारित्र भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके उसकी

आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो चारित्र सम्यक्ज्ञानरूप प्रकाश युक्त है, सम्यग्दर्शन से अधिष्ठित है, वही मोक्ष का प्रधान कारण व कर्म निर्जरा का मूल नियामक हेतु है। १३ प्रकार का यह चारित्र ज्ञान, ध्यान का प्रमुख साधन है। जो चारित्र, आराधक के हृदय मे समता का प्रवेश कराता है। ऐसे उस सम्यक्चारित्र की मै त्रिकाल, अर्चा, पूजा, वन्दना करता हूँ। मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो। मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति मे गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्रदेव के शाश्वत अनन्त गुणो की प्राप्ति हो।

।। इति श्री चारित्र भक्ति ।।

श्री योगि भक्ति

कैसे साधु वन का आश्रय लेते हैं ?

दुबई छन्द

जातिजरोरुरोग मरणातुर, शोक सहस्रदीपिता·,
दु:सहनरकपतन सन्त्रस्तधिय: प्रतिबुद्धचेतस: ।
जीवितमंबु बिंदुचपलं, तडिदभ्रसमा विभूतय:,
सकलमिदविचिन्त्यमुनय:, प्रशमायवनान्तमाश्रिता: ।।१।।

अन्वयार्थ—मुनिराज (जाति जरोरुरोग-मरण-आतुर-शोक सहस्रदीपिता) जन्म-जरा-मरण विशाल और रोग से दुखी होकर जो हजारो शोको से प्रज्वलित है, (दु सहनरकपतन सत्रस्तधिय) असह्य वेदना युक्त घोर नरकों मे गिरने के दु खो से जिनकी बुद्धि अत्यन्त पीड़ित/ भयभीत है तथा (प्रतिबुद्धचेतस) जिनके हृदय मे हेय-उपादेय का विवेक जागृत हो रहा है (जीवितम् अम्बुबिन्दुचपल) जो जीवन को जल की बिन्दु के समान अत्यन्त चचल तथा (तडित् अभ्र समा विभूतय) ससार की समस्त विभूतियो को बिजली व मेघ के समान क्षणिक है (इद सकल) यह सब (विचिन्त्य) विचार कर (प्रशमाय) आत्मिक, अलौकिक शान्ति के लिये (वनान्तम् आश्रिता) वन के मध्य मे आश्रय लेते है।

भावार्थ—मुनिराज ससार के जन्म-जरा-मरण इष्ट वियोगज-अनिष्ट सयोगज रूप सहस्रो दु खो से नरक की असह्य वेदनओ से भयभीत हो, ससार की बिजली व बादल सम क्षणस्थायी विभूतियो को त्यागकर तथा जीवन को जलबिन्दु सम निर्णय कर अनन्त अलौकिक आत्मिक शान्ति की प्राप्ति के लिये वन का आश्रय लेते है।

वन में जाकर साधु क्या करता है ?

भद्रिका छन्द

व्रतसमिति गुप्ति सयुता:, शमसुखमाधाय मनसि वीतमोहा: ।
ध्यानाध्ययनवशंगता:, विशुद्धये कर्मणां तपश्चरन्ति ।।२।।

अन्वयार्थ—(वीतमोहा) नष्ट हो चुका है मोह् जिनका ऐसे वे मुनिराज (व्रत-समिति-गुप्ति-सयुता) पॉच महाव्रत, पॉच समितियो,

तीन गुप्तियो से सहित हो (ध्यान-अध्ययन वश-गता) ध्यान और स्वाध्याय के वशीभूत हो (मनसि) मन मे (शिव सुखम्-आधाय) मोक्षसुख को धारण कर (कर्मणा विशुद्धये) कर्मो के क्षय के लिये (तपश्चरन्ति) तपश्चरण करते है।

भावार्थ—निर्मोही मुनिराज १३ प्रकार के चारित्र सहित हो, ध्यान-अध्ययन मे लीन होते हुए ससार-भ्रमण से, मुक्ति के सुखो की इच्छा करते हुए कर्मों को क्षय करने के लिये तपश्चरण करते है।

ग्रीष्म ऋतु में मुनिराज क्या करते है ?

दुबई छन्द

दिनकर किरणनिकरसंतप्त, शिलानिचयेषु निष्पृहाः,
मलपटलावलिप्त तनवः, शिथिली कृतकर्म बंधनाः ।
व्यपगतमदनदर्प रतिदोष, कषाय विरक्त मत्सराः,
गिरिशिखरेषुचंडकिरणाभि, मुखस्थितयो दिगम्बराः ।।३।।

अन्वयार्थ—(मल-पटल-अवलिप्त-तनव) जिनका शरीर मैल के समूह से लिप्त हो रहा है, (शिथिलीकृत-कर्मबन्धना) जिन्होने कर्मो के बन्धनो को शिथिल कर दिया है (व्यपगत-मदन-दर्प-रति-दोष-कषाय-विरक्तमत्सरा) जिनके काम, अहकार, रति/राग मोह आदि दोष तथा कषाय नष्ट हो चुके हैं तथा जो मात्सर्य भाव से रहित है ऐसे (दिगम्बरा) दिशारूपी अम्बर को धारण करने वाले निर्ग्रन्थ मुनिराज (निस्पृहा) शरीर से ममत्व रहित व भोगोपभोग की इच्छा से रहित होकर (दिनकर-किरण-निकर-सतप्त शिलानिचयेषु) सूर्य की किरणो के समूह से सतप्त शिलाओ के समूह से युक्त (गिरि-शिखरेषु) पर्वतो के शिखरो पर (चण्ड-किरण-अभिमुख-स्थितय) सूर्य के सन्मुख स्थित हो (तपश्चरन्ति) तपश्चरण करते है।

भावार्थ—अस्नान व्रत के धारक जिन दिगम्बर सन्तो का शरीर घने मैल से लिप्त हो रहा है, तपश्चर्या के फलस्वरूप जिनके कर्मों के जड़ बन्धन भी शिथिल हो चुके है, जिनके कामवेदना, मान, राग, मोह आदि दोष व कषाये नष्ट हो चुकी है तथा जो मात्सर्य/ईर्ष्या-डाह से रहित हैं, ऐसे

दिगम्बर महासाधु शरीर से ममत्वरहित हो, ससार के भोगो की आशका से रहित होकर ग्रीष्म-ऋतु मे जेठ मास मे सूर्य किरणो के समूह से सतप्त शिलाओ के समूह से युक्त, पर्वतो के शिखरो पर सूर्य की प्रचण्ड किरणो के सामने खड़े हो आतापन योग धारण कर घोर तपश्चरण करते है।

मुनिराज भयंकर आतप की वेदना कैसे सहते है ?

भद्रिका छन्द

सज्ज्ञानामृतपायिभिः, क्षान्तिपयः सिञ्च्यमानपुण्यकायैः ।
धृतसंतोषच्छत्रकैः, तापस्तीव्रोऽपि सह्यते मुनीन्द्रैः ।।४।।

अन्वयार्थ—(सत् ज्ञान-अमृत-पायिभि) जो मुनिराज निरन्तर सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत का पान करते हैं (क्षान्तिपय-सिञ्च्यमान-पुण्यकायै) क्षमारूपी जल से जिनका पुण्यमय/पुनीत/पवित्र शरीर सीचा जा रहा है (धृत-सन्तोष-छत्रकै) जिन्होने सन्तोषरूपी छत्र को धारण किया है, ऐसे (मुनीन्द्रै) महासाधुओ के द्वारा (तीव्र अपि ताप) घोर सताप भी (सह्यते) सहन किया जाता है।

भावार्थ—ससार-शरीर-भोगो से विरक्त दिगम्बर महामुनि सतत सम्यक्ज्ञान-रूपी अमृत का पान करते हुए ऊँचे-ऊँचे शिखरो पर ज्येष्ठ मास की गर्मी मे आतापन योग धारण करते है। क्योकि उन्होने अपने बाह्य शरीर को क्षमारूपी जल से सीचा है और अन्तरग मे सन्तोषरूपी छत्र की छाया को प्राप्त किया है। सत्य है ऐसे सन्तो के द्वारा ही उपसर्ग-परीषह आदि को साम्य भाव से सहन किया जा सकता है।

वर्षा ऋतु में मुनिराज क्या करते हैं ?

दुबई

शिखिगलकज्जलालिमलिनै, र्विबुधाधिपचापचित्रितैः,
भीमरवैर्विसृष्टचण्डा शनि, शीतल वायु वृष्टिभिः ।
गगनतलं विलोक्य जलदैः, स्थगितं सहसा तपोधनाः,
पुनरपि तरुतलेषु विषमासु, निशासु विशंकमासते ।।५।।

अन्वयार्थ—(शिखिगल-कज्जल-अलिमलिनै) मयूर के कण्ठ, काजल और भ्रमर के समान काले (विबुध-अधिप-चाप-चित्रितै) जो

इन्द्र-धनुष से चित्रित (भीमखै) भयकर गर्जना करने वाले (विसृष्ट-चण्ड-अशनि-शीतल-वायु-वृष्टिभि) प्रचण्ड वज्र, शीतल हवा व वर्षा को छोडने वाले ऐसे (जलदै) मेघो के द्वारा (स्थगित) आच्छादित (गगनतल विलोक्य) आकाश तल को देखकर (तपोधना) तपस्वी मुनिगण (सहसा) शीघ्र ही (विशङ्कं) भयरहित हो (विषमासु निशासु) विषम याने भयानक रात्रियो मे (पुनरपि) बारबार (तरुत्तलेषु) वृक्षो के नीचे (आसते) विराजते है।

भावार्थ—वर्षाऋतु मे जब बादल घनघोर घटा रूप मे छा जाते है उस समय का वर्णन करते हुए आचार्य देव यहाँ कहते है—वर्षा ऋतु मे जो श्याम वर्ण के बादल आते है वे मयूर के कण्ठ समान या काजल सम अथवा भ्रमर के समान काले होते है, तथा वे बादल अनेक इन्द्र-धनुष से स्थान-स्थान पर सुशोभित रहते है, वे बादल भयकर शब्दो की गर्जना करते है, बिजली गिराते है, वायु को शीतल करते है, घनघोर वर्षा करते है, ऐसे भयानक घनघोर घटायुक्त बादलो से आच्छादित आकाश को देखकर भी वे मुनिराज निर्भय होकर विषम रात्रियो मे वर्षायोग/वृक्षमूल योग धारण कर निर्भय हो विराजते है।

भद्रिका

जलधाराशरताडिता, न चलन्ति चरित्रत: सदा नृसिहा: ।
ससार दु.ख भीरव:, परीषहा-राति-घातिन: प्रवीरा: ।।६।।

अन्वयार्थ—(जलधाराशरताडिता) जो जल की धारारूपी बाणो से ताड़ित हैं, (ससार-दुख-भीरव) ससार के दु खो से भयभीत है तथा (परीषह-आराति-घातिन) परीषहरूपी शत्रुओ का घात करने वाले है, ऐसे (प्रवीरा) धैर्यवान आत्मबली (नृसिहा) श्रेष्ठ मुनिराज (सदा चरित्रत न चलन्ति) सदा चरित्र से विचलित नही होते।

भावार्थ—वर्षा ऋतु मे वृक्षमूल योग धारक वे आत्मबलसम्पन्न महामुनिराज जल-धारारूपी बाणो से ताड़ित, ससार के दु खो से भयभीत परीषहरूपी शत्रुओ का घात करने वाले है, वे धैर्यवान, आत्मबली, श्रेष्ठ मुनिराज कभी भी अपने चारित्र से विचलित नही होते।

शीतकाल में वे मुनिराज क्या करते है ?

दुबई छन्द

अविरतबहल तुहिनकण, वारिभिरंघ्रिपपत्र पातनै-
रनवरतमुक्तसात्काररवैः, परुषैरथानिलैः शोषितगात्रयष्टयः ।
इह श्रमणा धृतिकबलावृताः शिशिरनिशां,
तुषार विषमा गमयन्ति, चतुःपथे स्थिताः ।।७।।

अन्वयार्थ—(अविरत-बहल-तुहिन-कण-वारिभि) निरन्तर अत्यधिक हिमकण मिश्रित जल से सहित है अर्थात् जिस काल मे ओलो की जलवृष्टि हो रही है (अङ्घ्रि-पपत्रपातनै) जिनसे वृक्षो के पत्ते गिर रहे है और (अनवरत-मुक्त-सात्काररवै) उससे निरन्तर "सायँ-सायँ" ऐसा बड़ाभारी शब्द होता रहता है (अथ) तथा (परुषै अनिलै) कठोर वायु के द्वारा (शोषित-गात्र-यष्टय) सूख गयी है शरीर यष्टि दुर्बल है शरीर जिनका ऐसे (श्रमणा) निर्ग्रन्थ महासाधु (इह) इस लोक मे (धृति-कम्बलावृता) धैर्यरूपी कम्बल से ढके हुए (तुषार-विषमा) हिमपात से विषम (शिशिर-निशा) शीतकाल की रात्रि को (चतु पथे) चौराहे मे (स्थिता) स्थित हो (गमयन्ति) व्यतीत करते है।

भावार्थ—शीतकाल मे जो वायु चलती है, वह सदा बरफ, ओलो की बड़ी-बड़ी बूँदो से भरी रहती है, शीतकाल की वायु वृक्षो के सब पत्ते गिरा देती है, उससे सदा "सायँ-सायँ" ऐसे बड़े भारी शब्द होते है, वायु अत्यन्त कठोर चलती है। झझा वायु से जिनकी शरीररूपी लकड़ी सूख गई है, ऐसे वे मुनिराज चौराहे पर चौडे मैदान मे विराजमान होकर और सन्तोषरूपी कम्बल को धारण कर बड़े सुख से शीतकाल की रात्रि को व्यतीत कर देते हैं।

स्तुति फल की याचना

भद्रिका

इति योगत्रयधारिणः, सकलतपशालिनः प्रवृद्धपुण्यकायाः ।
परमानन्दसुखैषिणः, समाधिमग्र्यं दिशंतु नो भदन्ताः ।।८।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (योगत्रय-धारिण) आतापन-वृक्षमूल-अभ्रावकाश योगो को धारण करने वाले (सकल तप शालिन) समस्त

तपो से शोभायमान (प्रवृद्ध-पुण्यकाया) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त पुण्य के समूह से सहित और (परम-आनन्द-सुख-ऐषिण) परमानन्द-अव्याबाध सुख की इच्छा करने वाले (भदन्ता) भगवान् मुनिराज (न) हम सबको (अग्र्य) उत्कृष्ट (समाधि) परम शुक्लध्यान (दिशन्तु) प्रदान करे।

भावार्थ—उष्ण ऋतु मे आतापन योग, वर्षा ऋतु मे वृक्षमूल योग और शीतकाल मे अभ्रावकाश योग को धारण करने वाले, बारह तपो से शोभायमान, पुण्य के कीर्तिस्तभ, निराबाध सुख के इच्छुक सन्त, भगवन्त महामुनि हम सबको उत्कृष्ट परमशुक्ल ध्यान प्रदान करे।

क्षेपकश्लोकानि:

योगीश्वरान् जिनान्सर्वान्योगनिर्धूत कल्मषान्।
योगैस्त्रिभिरह वदे, योगस्कध प्रतिष्ठितान्।।१।।

अन्वयार्थ—(योगनिर्धूत कल्मषान्) धर्म्यध्यान शुक्लध्यानरूप योग से पापरुपी कल्मष को नष्ट करने वाले (योगस्कधप्रतिष्ठितान्) धर्म्यध्यान शुक्लध्यान से प्रतिष्ठित/सुशोभित (सर्वान्) सभी (जिनान्) जिनो को (योगीश्वरान्) योगीश्वरो को (अह) मै (त्रिभि योगै) मन-वचन-काय तीन योगो के द्वारा (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—धर्म-शुक्लध्यान रूप योग से सुशोभित इन्ही योगो से पापरूपी कल्मष को नष्ट करने वाले सभी जिनो को, योगीश्वरो को मैं मन-वचन-काय तीन योगो के द्वारा नमस्कार करता हूँ।

प्रावृट्कालेसविद्युत्प्रपतितसलिले वृक्षमूलाधिवासा:।
हेमंते रात्रिमध्ये, प्रतिविगतभयाकाष्ठवत् त्यक्तदेहा:।।१।।
ग्रीष्मे सूर्यांशुतप्ता, गिरिशिखरगता: स्थानकूटान्तरस्था:।
ते मे धर्म प्रदद्युर्मुनिगणवृषभा मोक्षनि:श्रेणिभूता:।।२।।

अन्वयार्थ—(प्रावृट्काले) वर्षा काल मे (सविद्युत्प्रपतितसलिले) बिजली की कडकड़ाहट के साथ जलवृष्टि होने पर (वृक्षमूलाधिवासा) वृक्ष के नीचे अधिवास किया/योग धारण किया (हेमन्ते रात्रिमध्ये) शीत/ठडी/हेमन्त ऋतु मे रात्रि के समय (प्रतिविगतभया) भय से रहित

हो (काष्ठवत्त्यक्तदेहा) काष्ठ/लकडी समान हो अपने शरीर से मोह को त्यागकर अभ्रावकाश धारण करते हुए (ग्रीष्मे) ग्रीष्म ऋतु मे (सूर्याशुतप्ता) जब सूर्य की किरणे सतप्त हो (गिरिशिखरगता स्थानकूटान्तरस्था) पर्वत के शिखर पर ऊँची टेकरी पर जहाँ गर्मी अधिक हो, खडे रहकर वहाँ योग धारण कर तपश्चरण करते हुए (मोक्षनि श्रेणिभूता) मोक्षरूप मदिर की ऊपरी मजिल पर चढकर (मुनिगणवृषभा) मुनिसमूह मे श्रेष्ठ हुए है (ते) वे मुनिश्रेष्ठ (मे) मुझे / मेरे लिये (धर्म प्रदद्यु) प्रकृष्ट हितकर धर्म देवे।

भावार्थ—वर्षा-काल मे जब बिजली गिर रही है, पानी बरस रहा है जिन्होने वृक्षमूल योग धारण किया है और वृक्ष के नीचे अपना योग स्थापन किया है शीत ऋतु मे निर्भय हो जिन्होने अभ्रावकाश योग धारण कर खुले आकाश मे अपना स्थान बनाया है तथा ग्रीष्म ऋतु मे जब सूर्य सतप्त हो रहा है, आतापन योग धारण कर ऊँचे पर्वतो के शिखर, ऊँची टेकरी आदि स्थानो पर जहाँ अधिक उष्णाता लगती है अपना स्थान बनाया है—मुनिसमूह मे श्रेष्ठ मुनिराज जो मोक्ष मजिल के ऊपर पहुँच चुके है, वे मुनिश्रेष्ठ मुझे/मेरे लिये प्रकृष्ट अहिसामयी जिनधर्म प्रदान करे।

गिम्हे गिरिसिहरत्था, वरिसायाले रुक्खमूलरयणीसु।
सिसिरे वाहिरसयणा, ते साहू वदिमो णिच्च ।।३।।

अन्वयार्थ—(गिह्मे गिरिसिहरत्था) ग्रीष्मकाल मे पर्वत के शिखर पर (वरिसायाले रुक्खमूल) वर्षा-काल मे वृक्ष के नीचे (सिसिरे) ठडी/शीत ऋतु मे (रयणीसु) रात्रि मे (वाहिरसयणा) खुले मैदान मे ध्यान करते है (ते साहू) उन साधुजनो की (णिच्च) नित्य (वदिमो) वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जो निर्ग्रथ वीतरागी साधु ग्रीष्म ऋतु मे पर्वतो के शिखर पर अधिक उष्ण स्थानो पर खड़े होकर ध्यान करते है, वर्षा ऋतु मे वृक्षो के नीचे तपश्चरण करते है तथा शीत ऋतु मे खुले मैदान मे रात्रि मे ध्यान करते है उन साधु श्रेष्ठो/मुनिज्येष्ठो की मै नित्य वन्दना करता हूँ।

गिरिकंदर दुर्गेषु, ये वसंति दिगंबराः।
पाणिपात्रपुटाहारास्ते यांति परमां गतिम् ।।४।।

अन्वयार्थ—(ये) जो (दिगबरा) दिगबर/वीतरागी/निर्ग्रंथ साधु (गिरिकदर दुर्गेषु) गिरि/पर्वतो मे, पर्वतो की कन्दराओ मे और (दुर्गेषु) भीषण जगलो मे (वसति) रहते है (पाणिपात्र पुटाहारा) हाथरूपी पात्र की अञ्जुली मे आहार लेते है (ते) वे (परमा गतिम्) [मरणोत्तर/समाधि कर] उत्तम गति को (याति) जाते है।

भावार्थ—जो दिगम्बर वीतरागी सन्त तीनो ऋतुओ मे योग धारण करते हुए पर्वतो मे, पर्वत की कन्दराओ, गुफा आदि मे तथा भयानक जगलो मे निवास करते है वे समाधि कर उत्तम देवगति या मोक्ष-पद को प्राप्त करते है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते! योगि-भत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु, पण्णारस-कम्मभूमिसु, आदावणरुक्खमूलअब्भो-वासठाणमोण-विरासणेक्कपास कुक्कुडासण चउछपक्ख-खवणादि जोगजुत्ताणं, सव्वसाहूणं, णिच्चकालं, अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झ।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! मैने (योगिभत्ति काउस्सग्गो कओ) योगभक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ। (अड्ढाइज्जदीव-दोसमुद्देसु) अढाई द्वीप और दो समुद्रो मे (पण्णारस-कम्मभूमिसु) पन्द्रह कर्मभूमियो मे (आदावण-रुक्खमूल-अब्भोवास-ठाण-मोण-विरासणेक्कपास-कुक्कुडासण-चउ-छ-पक्ख-खवणादि जोग-जुत्ताण सव्वसाहूण) आतापन-वृक्षमूल-अभ्रावकाश योग, मौन, वीरासन, एकपार्श्व, कुक्कुटासन, पक्षोपवास आदि योगो से युक्त समस्त साधुओ की (णिच्चकाल, अचेमि, पूजेमि) वदामि, णमस्सामि) नित्य सदाकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, उनको नमस्कार करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ कम्मक्खओ) दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति मे गमन हो, (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिणगुण सपत्ति होऊ मज्झ) मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणो की प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्। मैने योगिभक्तिसम्बधी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जम्बूद्वीप-धातकीखड द्वीप और अर्द्ध पुष्कर इस प्रकार अढाई द्वीपो व पॉच भरत, पॉच ऐरावत, पॉच विदेह, १५ कर्मभूमियो मे ग्रीष्मऋतु मे आतापन योग, वर्षाऋतु मे वक्षमूल योग व शीत ऋतु मे अभ्रावकाश योग [खुले आकाश के नीचे बैठना] तीनो योगो को धारण करने वाले, मौन धारण करने वाले, वीरासन, एक पार्श्व [एक कर्वट से सोना] और कुक्कुटासन [मुर्गे के समान आसन] आदि अनेक आसन लगाकर तपश्चरण करने वाले, बेला-बेला २ उपवास तेला-तेला ३ उपवास, पक्षोपवास और इनसे अधिक उपवास करने वाले समस्त मुनिराजो की मै अर्चा, पूजा, वन्दना, आराधना करता हूँ। इनकी आराधना के फलस्वरूप मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और अन्त मे जिनेन्द्रदेव के उत्तम गुणो की मुझे प्राप्ति हो।

।। इति श्रीयोगिभक्ति ।।

आचार्य भक्ति

स्कन्द अथवा आर्यागीति छन्द

सिद्ध-गुण-स्तुति निरता-नुद्धूत-रुषाग्नि-जालबहुलविशेषान् ।
गुप्तिभिरभिसपूर्णान् मुक्ति युत.सत्यवचनलक्षितभावान् ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(सिद्धगुण-स्तुति-निरतान्) जो सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो के गुणो की स्तुति मे सदा लीन रहते है, (उद्धूत-रुषाग्निजाल-बहुल-विशेषान्) जिन्होने क्रोधरूपी अग्नि समूह के अनन्तानुबधी आदि अनेक विशेष भेदो को नष्ट कर दिया है, (गुप्तिभि अभिसम्पूर्णान्) जो गुप्तियो से परिपूर्ण है (मुक्ति युक्त) जो मुक्ति से सम्बद्ध है या मुक्ति लक्ष्मी से सदा सम्बन्ध रखने वाले है (सत्य-वचन-लक्षित-भावान्) सत्य वचनो से जिनके प्रशस्त, निर्मल भावो का परिचय प्राप्त होता है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी भगवन्तो को (अभिनौमि[१]) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य पद मे स्थित हो सदा सिद्ध परमेष्ठी की स्तुति किया करते है, उनके सम्यक्त्व आदि आठ गुण व अनन्त गुणो का स्मरण किया करते है, जिन्होने क्रोध कषायरूपी अग्नि के विभिन्न भेदो—अनन्तानुबधी क्रोध, अप्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान क्रोध आदि अथवा कषायरूपी अग्नि के अनन्तानुबधी क्रोध-मान-माया-लोभ आदि अनेक भेदो को नष्ट कर दिया है, जो मन-वचन-काय गुप्ति के पालन मे पूर्ण दक्ष है, जिनका सम्बन्ध सदा मुक्ति लक्ष्मी से बना हुआ है अर्थात् जो निकट भव्यता को प्राप्त है, सत्य, समीचीन वचनो से शुभ, निर्मल, पुण्य भावो से जिनके कुल-शील व चारित्र का परिचय प्राप्त होता है, ऐसे उत्तम गुणो के स्वामी आचार्य परमेष्ठी को मै (पूज्यपाद) नमस्कार करता हूँ।

मुनिमाहात्म्यविशेषान्, जिनशासनसत्प्रदीपभासुरमूर्तीन् ।
सिद्धिं प्रपित्सुमनसो, बद्धरजोविपुलमूलघातनकुशलान् ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(मुनि-माहात्म्य-विशेषान्) जो मुनियो के माहात्म्य विशेष को प्राप्त है अर्थात् जिन्हे मुनियो का विशिष्ट माहात्म्य प्राप्त है

१-यद्यपि श्लोक मे नमस्कार सूचक कोई वाक्य नही है तथापि यह वाक्य श्लोक ग्यारहवे से लिया गया है, ११वे श्लोक तक यह सम्बन्ध लगाते जाना है।

(जिनशासन-सत् प्रदीप-भासुर-मूर्तीन्) जिनशासनरूपी समीचीन दीपक के प्रकाश से जिनका शरीर देदीप्यमान है अथवा जिनका देदीप्यमान शरीर जिनशासन को प्रकाशित करने के लिये समीचीन दीपकवत् है (सिद्धि प्रपित्सुमनस) जिनका उत्तम, शुभ मन सिद्धि की प्राप्ति को चाहता है तथा जो (बद्ध-रज -विपुल-मूल-घातन-कुशलान्) बँधे हुए कर्मों के विशाल मूल कारणो को घातने मे कुशल है ऐसे उन आचार्य भगवन्तो को (अभिनौमि) मै मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो मुनियो मे विशिष्ट माहात्म्य को प्राप्त है अर्थात् जो मुनिसमूह मे श्रेष्ठ है, जिनका रत्नत्रय से दीप्तिमान शरीर जिनशासन का लोक मे उद्योतन के करने के लिये समीचीन दीपक के समान है। जिनका उत्तम मन सदा मुक्ति की प्राप्ति मे ही लगा रहता है तथा जो अनादिकाल से आत्मा से बद्ध कर्मरज को मूल से क्षय करने मे कुशल है ऐसे आचार्य परमेष्ठी को मेरा नमस्कार है।

गुणमणिविरचितवपुषः, षड्द्रव्यविनिश्चितस्यधातृन्सततम् ।
रहितप्रमादचर्यान्, दर्शनशुद्धान् गणस्य सतुष्टि करान् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(गुणमणि-विरचित-वपुष) जिनका शरीर गुणरूपी मणियो से विरचित है, जो (सततम्) सदाकाल (षट्-द्रव्य-विनिश्चितस्य धातृन्) छह द्रव्यो के निश्चय को धारण करने वाले है (रहित प्रमाद चर्यान्) प्रमाद चर्या से रहित है (दर्शनशुद्धान्) सम्यग्दर्शन से शुद्ध है तथा (गणस्य सतुष्टिकरान्) गण को अर्थात् साधु सघ को सन्तुष्ट करने वाले है (अभिनौमि) उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्त को मेरा नमस्कार है।

भावार्थ—जिन आचार्य परमेष्ठी भगवन्त का शरीर रत्नत्रय गुणरूपी मणियो से रचा गया है, जो सदाकाल छह द्रव्यो के चिन्तन मे लगे हुए, मन मे गाढ़ श्रद्धा को धारण करते है, निष्प्रमाद-प्रमादरहित चर्या से सुशोभित है, अर्थात् जिनकी चर्या मे इन्द्रिय विषय, विकथा आदि प्रमादो की गध भी नही है, जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है तथा जो सदा चतुर्विध सघ को सन्तुष्ट करने वाले है उनको मेरा नमस्कार है।

मोहच्छिदुग्रतपसः, प्रशस्तपरिशुद्धहृदयशोभन व्यवहारान् ।
प्रासुकनिलयाननघानाशा विध्वंसिचेतसो हतकुपथान् ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(मोहच्छित् उग्रतपस) जिनका उग्र तप मोह का अथवा अज्ञान का नाश करने वाला है (प्रशस्त-परिशुद्ध-हृदय-शोभन-व्यवहारान्) प्रशस्त, शुभ और शुद्ध हृदय से जिनका व्यवहार उत्तम है, पर-उपकारक है, (प्रासुक निलयान्) जिनका निवास सम्मूर्च्छन जीवो से रहित प्रासुक रहता है (अनघान्) जो पापो से रहित है (आशा विध्वसि चेतस) जिनका चित्त आशा-तृष्णा, आकाक्षा को नष्ट करने वाला है और (हत-कुपथान्) जिन्होने कुमार्ग को नष्ट कर दिया है, उन आचार्य परमेष्ठी की मै अभिवन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होने बाह्य-अभ्यन्तर उग्र तपो के द्वारा मोह व अज्ञान का नाश कर दिया है। जिनका हृदय सदा शुभोपयोग व शुद्धोपयोग से आर्द्र रहता है, जिनका सदा सुयोग्य व स्व-पर उपकारक व्यवहार सदा रहता है, जो सदा जीवरहित भूमि मे निवास करते है, जो पॉच पापो से रहित है, जिन्होने आशा, तृष्णा आदि को तिलाञ्जलि दे दी है और जो कुमार्ग का खडन करने वाले है या जिनका कुमार्ग/मिथ्यामार्ग नष्ट हो चुका है उन आचार्य भगवन्त की मै स्तुति करता हूँ।

धारितविलसन्मुण्डान्वर्जितबहु दण्डपिण्डमण्डल निकरान्।
सकलपरीषहजयिनः, क्रियाभिरनिशंप्रमादतः परिरहितान्।। ५ ।।

अन्वयार्थ—(धारित-विलसत्-मुण्डान्) जिन्होने शोभायमान दस मुण्डो मन-वचन-काय-पञ्चेन्द्रियॉ-हस्त-पाद को धारण किया है (वर्जित-बहु-दण्ड-पिण्ड-मण्डल-निकरान्) अधिक प्रायश्चित्त लेने वाले या अधिक अपराधी व अधिक प्रायश्चित्त लेने वाले आहार का ग्रहण करने वाले मुनियो के समूह से जो सदा रहित रहते है (सकल-परीषह-जयिन) जो समस्त बाईस परीषहो को जीतने वाले है और (अनिश) निरन्तर (प्रमादत क्रियाभि) प्रमाद से होने वाली क्रियाओ से (परिरहितान्) रहित है, उन आचार्य भगवन्तो को मेरा नमस्कार है।

भावार्थ—जिनके दस मुण्ड-मन-वचन-काय-पञ्चेन्द्रियॉ, हाथ व पैर पाप से रहित होने से सदा शोभा को प्राप्त होते है, अर्थात् जिनका सर्वाग पाप क्रियारहित होने से शोभायमान है, जो उन मुनियो के सम्पर्क से रहित है-जिनका समुदाय अपराधो की बहुलता के कारण बहुदण्ड,

बहुप्रायश्चित्त को ग्रहण करता है अथवा जिन मुनियो का समुदाय सदा दूषित आहार को ग्रहण करता है। जो सदा व्रत, उपवास आदि के द्वारा क्षुधादि परीषहो को जीतने मे ही लगे रहते है।

जो निरन्तर प्रमादरहित हो अपनी क्रियाओ मे गतिशील रहते है, उन सदा निष्प्रमादी आचार्य को मेरा नमस्कार है।

अचलान्व्यपेतनिद्रान्, स्थानयुतान्कष्टदुष्टलेश्या हीनान्।
विधिनानाश्रितवासा-नलिप्तदेहान्विनिर्जितेन्द्रियकरिणः ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जो (अचलान्) उपसर्ग-परीषहो के आने पर भी अपने गृहीत सयम से कभी चलायमान नही होते है (व्यपेतनिद्रान्) जो विशेषकर निद्रारहित होते है अथवा जो विशेष नही मात्र अल्प निद्रा लेते है (स्थान-युतान्) खडे-खडे कायोत्सर्ग करते है (कष्ट-दुष्ट-लेश्या हीनान्) जो अनेक प्रकार के दु खो को देनेवाली कष्टदायी कृष्णादि अशुभ लेश्याओ से रहित है (विधि-नानाश्रित-वासान्) जो चरणानुयोग की विधि के अनुसार पर्वत, मदिर, गुफा, शून्यगृह आदि नाना स्थानो मे निवास करते है (अलिप्त-देहान्) जिनका शरीर केशर-चन्दन-भस्म आदि के लेप से रहित है तथा (विनिर्जित-इन्द्रियकरिण) जिन्होने इन्द्रियरूपी हाथियो को जीत लिया है, उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तो को मै मन-वचन काय से नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो घोर उपसर्ग परीषहो को जीतने मे जो पर्वत समान अचल है, प्रमाद, आलस्य, निद्रारहित है, कायोत्सर्ग सहित है, कष्टकर, दु ख देनेवाली नीच गति मे ले जाने वाली कृष्ण-नील-कापोत ऐसी तीन अशुभ लेश्यारूपी परिणामो से जो रहित है, जिन्होने चरणानुयोग मे कथित विधि अनुसार पर्वत-मदिर-गुफा आदि अनेक स्थानो मे निवास किया है अथवा विधिवत् घर का त्याग कर "अनाश्रितवास" किया है जो घर रहित है, जिनका शरीर केशर-चन्दन-कस्तूरी आदि सुगधित द्रव्यो या भस्म आदि से लिप्त नही है, जो इन्द्रियरूपी हाथियो को वश कर विजेता कहलाते है उन आचार्य परमेष्ठियो को मेरा शतशत नमन स्वीकार हो।

अतुलानुत्कुटिकासान्विविक्त चित्तानखंडितस्वाध्यायान्।
दक्षिणभावसमग्रान्, व्यपगतमदरागलोभशठमात्सर्यान् ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—जो (अतुलान्) उपमारहित (उत्कुटिकासन्) उत्कुटिका आदि आसनो से तपश्चरण करते है (विविक्त-चित्तान्) जिनका हृदय सदा पवित्र है, हेयोपादेय बुद्धि से जागृत है (अखण्डित-स्वाध्यायान्) जो नियमित स्वाध्याय करने से अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी है (दक्षिणभाव-समग्रान्) जो सरल-छल-कपट रहित परिणामो से सहित है (व्यपगत-मद-राग-लोभ-शठ-मात्सर्यान्) जो मान, राग, लोभ, अज्ञान और मात्सर्य/ईर्ष्याभाव से रहित है, उन आचार्यो को मेरा नमस्कार हो।

भावार्थ—अनुपम गुणो के धनी, पद्मासन, खडगासन, गोदूहन, मृतकासन आदि नाना प्रकार के आसनो को लगाते हुए जो तप की आराधना मे लगे रहते है, जिनका हृदय सदा हेय-उपादेय के विवेक से शोभायमान होने से अति पवित्र है जो अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग की ज्ञानधारा मे सतत गोते लगाते रहते है, जिनके परिणाम छल-कपट-मायाचार आदि से रहित सरल है, जो सदा मान, राग, लोभ, अज्ञान व ईर्ष्या आदि कलुषित परिणामो से रहित होते है अथवा इन्हे जिन्होने नष्ट कर दिया है उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तो को मेरा सम्यक् प्रकारेण नमस्कार है।

भिन्नार्तरौद्रपक्षान्सभावित, धर्मशुक्लनिर्मल हृदयान्।
नित्यंपिनद्धकुगतीन्, पुण्यान्गण्योदयान्विलीनगार वचर्यान्।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(भिन्न-आर्त्त-रौद्र-पक्षान्) जिन्होने आर्त्त और रौद्रध्यान के पक्ष को नष्ट कर दिया है, (सम्भावित-धर्म्य-शुक्ल-निर्मल-हृदयान्) जिनका हृदय यथायोग्य धर्म्यध्यान व शुक्लध्यान से निर्मल है, (नित्य-पिनद्ध-कुगतीन्) जिन्होने नरक आदि कुगतियो के द्वार को सदा के लिये बन्द कर दिया है (पुण्यान्) जो पुण्य रूप है, (गण्य-उदयान्) जिनका तप व ऋद्धि आदि का अभ्युदय गणनीय, प्रशसनीय व स्तुत्य है (विलीन-गारव-चर्यान्) जिनके रस-ऋद्धि और सात इन तीन गारवो/अहकारो का विलय हो चुका है, उन आचार्यो को मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो सदा आर्त्त-रौद्र दोनो प्रकार के अशुभ ध्यान का त्याग कर धर्म व शुक्ल ऐसे शुभ व शुद्ध ध्यानो मे लीन रहते है। जिनके लिये नरक-तिर्यञ्च गति रूप अशुभ गतियो के द्वार बन्द हो चुके है, जिनका आत्मा पवित्र है, तप व ऋद्धियो के अभ्युदय को प्राप्त जो सदाकाल

प्रशसनीय है, तीन गारव रूप अहकारो से रहित उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तो को मेरा नमस्कार है।

तरुमूलयोगयुक्ता-नवकाशातापयोगराग सनाथान्।
बहुजन हितकर चर्या- नभयानघान्महानुभाव विधानान् ।।९।।

अन्वयार्थ—जो (तरुमूल-योग-युक्तान्) वर्षा काल मे वृक्ष के नीचे ध्यान कर "तरुमूलयोग" को धारण करते है (अवकाश-आतप-योग-राग-सनाथान्) शीतकाल मे खुले आकाश मे ध्यान कर अभ्रावकाश योग व ग्रीष्मकाल मे सूर्य के सम्मुख खडे हो ध्यान करते हुए आतापन योग सम्बन्धी राग से सहित है (बहुजन-हितकर-चर्यान्) जिनकी चर्या अनेक जनो का हित करने वाली है, जो (अभयान्) सप्त प्रकार के भयो से रहित है (अनघान्) जो पापो से रहित है (महानुभाव-विधानान्) जो बहुत भारी प्रभाव से युक्त है, उन आचार्य परमेष्ठी भगवन्तो को मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी वर्षाकाल मे वृक्षो के नीचे जहाँ पानी की एक-एक बूँद तलवार की तीक्ष्ण धारा सम गिर रही है, ध्यान करते है, शीत ऋतु मे खुले आकाश मे ध्यान कर अभ्रावकाशयोग की साधना करते है, ग्रीष्म ऋतु मे आतापन योग धारण करते हैं, ऐसे त्रियोगो की धारणा मे ही जिनका अनुराग सदा लगा रहता है, जिनकी चर्या बहुत लोगो का उपकार करने वाली है, जो निर्भय हो सदा विचरण करते हैं, जो पाँचो पापो से सर्वथा रहित है, जिनका लोक मे बहुत भारी प्रभाव है, ऐसे आचार्य परमेष्ठी को मेरा नमस्कार हो।

ईदृशगुणसंपन्नान् युष्मान्भक्त्या विशालया स्थिरयोगान्।
विधिनानारतमग्र्यान्- मुकुलीकृतहस्तकमल शोभित शिरसा ।।१०।।
अभिनौमि सकलकलुष, प्रभवोदय जन्म जरामरण बंधन मुक्तान्।
शिवमचल मनघमक्षय- मव्याहत मुक्ति सौख्यमस्त्विति सततम् ।।११।।

अन्वयार्थ—(ईदृशगुण-सम्पन्नान्) इस प्रकार ऊपर कहे गुणो से युक्त (स्थिर-योगान्) जो स्थिर योगी है अथवा मन-वचन-काय तीनो योग जिनके स्थिर है अथवा जो स्थिर ध्यान के धारक है, (अनारतम्) जो निरन्तर (अग्र्यान्) लोकोत्तर है तथा (सकल-कलुष-प्रभव-उदय-

जन्म-जरा-मरण-बन्धन-मुक्तान्) जो समस्त पापो या कलुषित परिणामो के कारण उत्पन्न होने वाले जन्म-जरा-मरण के बन्धन से मुक्त होने वाले है ऐसे (युष्मान्) आप आचार्य परमेष्ठी को (विशालया भक्त्या) बडी भारी भक्ति से (विधिना) विधिपूर्वक (मुकुलीकृत-हस्त-कमल-शोभित-शिरसा) अञ्जलिबद्ध हस्त-कमलो से सुशोभित शिर से (अभिनौमि) नमस्कार करता हूँ, मुझे (शिवम्) कल्याणरूप (अचल) अविनाशी (अनघ) पापरहित (अक्षय) क्षय रहित (अव्याहत-मुक्ति-सौख्यम् अस्तु इति) कभी नाश नही होने वाला मुक्ति सुख प्राप्त हो, इस प्रकार भावना करता हूँ।

भावार्थ—इस प्रकार ऊपर कहे गये महान् गुणो से युक्त, गुणो की प्रधानता से शोभायमान, घोर उपसर्ग परीषह मे भी स्थिरयोगी, गुणो के धारक होने से लोक मे प्रभाव है जो सदा गण मे प्रधान नायक पद पर आसीन रहते है, जो अलौकिक है अर्थात् जिनकी अलौकिक चर्या है, जो पूर्वसचित कर्मो के विपाक से प्राप्त जन्म-जरा-मरण आदि दोषो से अप्रभावित है, ऐसे आचार्य भगवन्तो को मै विधिपूर्वक दोनो हाथो की अञ्जलि बॉधकर हस्तकमलो से शिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ। हे आचार्य भगवन्त। आपकी स्तुति के प्रसाद से मुझे अक्षय-अविनाशी-निर्दोष मुक्ति सुख प्राप्त हो।

क्षेपकश्लोकानि

श्रुतजलधिपारगेभ्यः, स्वपरमतविभावनापटुमतिभ्यः।
सुचरित तपोनिधिभ्यो, नमो गुरुभ्यो गुणगुरुभ्यः ।। १ ।।

अन्वयार्थ—जो (श्रुतजलधिपारगेभ्य) श्रुतरूपी समुद्र के तीर को प्राप्त है (स्वपरमतिविभावनापटुमतिभ्य) स्वमत-परमत के विचार करने मे जिनकी बुद्धि अत्यत प्रखर है (सुचरिततपोनिधिभ्यो) सम्यक्चारित्र तप, जिनकी निधियॉ है (गुणगुरुभ्य) जिनके पास पुष्कल/बहुत मात्रा मे गुण है (गुरुभ्यो नम) ऐसे गुरुओ को, आचार्यो को नमस्कार है।

भावार्थ—जो श्रुतरूपी समुद्र मे पारगत है, स्याद्वादमत जैनमत व एकान्तरूप परमत के विचार मे, ज्ञान मे जिनकी बुद्धि चतुर है, अति प्रखर

है, सम्यक्चारित्र और तप निधियाँ है तथा जिनके पास अतिमात्र मे गुण है, ऐसे आचार्यो, गुरुओ को मेरा नमस्कार हो।

छत्तीसगुणसमग्गे, पंचविहाचारकरण सदरिसे।
सिस्साणुग्गहकुसले, धम्माइरिये सदा वंदे ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जो (छत्तीसगुणसमग्गे) छत्तीस मूलगुणो से पूर्ण है (पचविहारचारकरण सदरिसे) पचप्रकार के आचार का स्वय आचरण करते है तथा शिष्यो से कराते है (सिस्साणुग्गहकुसले) शिष्यो पर अनुग्रह करने मे जो निपुण है ऐसे (धम्माइरिये) धर्माचार्य की (सदा वदे) मै सदा वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी १२ तप १० धर्म ६ आवश्यक ३ गुप्ति और ५ आचार रूप ३६ मूलगुणो से पूर्ण है, पचाचार-दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार का स्वय आचरण करते है शिष्यो से भी आचरण करवाते है, शिष्यो पर अनुग्रह करने मे निपुण है, ऐसे धर्माचार्य की मै सदा वन्दना करता हूँ।

गुरुभत्ति सजमेण य, तरति ससारसायर घोरं।
छिण्णंति अट्ठकम्मं, जम्मणमरणं ण पावेंति ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(गुरुभत्ति सजमेण य) गुरुभक्ति और सयम से [जीव] (घोर ससारसायर) घोर/भीषण ससार-सागर को (तरति) पार करते है (अट्ठकम्म छिण्णति) अष्टकर्मो का क्षय करते है (जम्मणमरण ण पावेति) जन्म-मरण को नही पाते है।

भावार्थ—हे भव्यात्माओ ! गुरुभक्ति व सयम की आराधना से जीव ससाररूपी भीषण समुद्र को पार करते है, व अष्टकर्मो का क्षय कर जन्म-मरण के दु खो से छूट जाते है।

ये नित्यं व्रतमंत्रहोमनिरता, ध्यानाग्नि होत्राकुला: ।
षट्कर्माभिरतास्तपोधन धना:, साधुक्रिया: साधव: ।।
शीलप्रावरणा गुणप्रहरणाश्चंद्रार्क तेजोऽधिका: ।
मोक्षद्वार कपाट पाटनभटा: प्रीणंतु मां साधव: ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(ये) जो आचार्य परमेष्ठी (नित्य) नियम से (व्रतमत्र

होमनिरता) व्रतरूपी मत्रो से कर्मो का होम करने मे निरत/लगे हुए है। (ध्यानाग्नि होत्राकुला) ध्यानरूपी अग्नि के कर्मरूपी हवी/ ईंधन को देते है। (षट्कर्माभिता तपोधनधना) जो तपोधन, छह आवश्यक कर्मो मे सदा लगे रहते है तथा तपरूपी धन जिनके पास है (साधुक्रिया साधव) पुण्य कर्मो के करने मे सदैव तत्पर रहते है (शीलप्रावरणा) अठारह हजार शील ही जिनके ओढने को वस्त्र है (गुणप्रहरणा) छत्तीस मूलगुण व चौरासी लाख उत्तरगुण ही जिनके पास शस्त्र है (चन्द्र-अर्क तेज अधिका) जिनका तेज सूर्य और चन्द्रमा से भी अधिक है (मोक्षद्वार कपाट पाटनभटा) मोक्ष के द्वारको उघाडने/खोलने मे जो शूर है ऐसे (साधव) आचार्य परमेष्ठी/साधुजनो (मा) मुझ पर (प्रीणतु) प्रसन्न होवे।

भावार्थ—जो आचार्य परमेष्ठी व्रतरूपी मत्रो से कर्मो का होम करते है, ध्यानरूपी अग्नि मे कर्मरूपी ईधन को देते है, षट् आवश्यक क्रियाओ मे सदा तत्पर रहते है, तपरूपो धन जिनका मच्चा धन है, पुण्य कर्मों मे कुशल है, अठारह हजार शीलो की चुनरिया जिनका वस्त्र है, मूल व उत्तर-गुण जिनके पास शस्त्र है, सूर्य और चन्द्र का तेज भी जिनके सामने लज्जित हो रहा है, मोक्षमदिर के द्वार को खोलने मे शूर है, ऐसे वे तपोधन मुझ पर प्रसन्न होवे।

गुरवः पान्तु नो नित्य ज्ञानदर्शन नायकाः।
चारित्रार्णव गंभीरा, मोक्षमार्गोपदेशकाः ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—जो (ज्ञानदर्शन नायका) सम्यक्ज्ञान व सम्यग्दर्शन के स्वामी है, (चारित्र) सम्यक्चारित्र के पालने मे (आर्णवगभीरा) समुद्र के समान गभीर है (मोक्षमार्गोपदेशका) भव्यो को मुक्तिमार्ग का उपदेश देने वाले हैं वे (गुरव) आचार्यदेव/गुरुदेव (वो) हमारी (पान्तु) रक्षा करे।

भावार्थ—सम्यक्ज्ञान व दर्शन के स्वामी, चारित्र पालन मे समुद्रवत् गभीर, मोक्षमार्गोपदेशक आचार्यगुरुदेव हमारी रक्षा करे।

क्षेपक श्लोक

प्राज्ञः प्राप्तसमस्त शास्त्र हृदय, प्रव्यक्तलोकस्थितिः ।
प्रास्ताशः प्रतिभापर प्रशमवान् प्रागेव दृष्टोत्तरः ।।

प्राय: प्रश्नसह: प्रभु: परमनो हारी परानिन्दया।
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधि:, प्रस्पष्ट मिष्टाक्षर: ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—जो (प्राज्ञ) बुद्धिमान है (प्राप्तसमस्तशास्त्रहृदय) समस्त शास्त्रो के रहस्य के ज्ञाता है (प्रव्यक्तलोकस्थिति) लोकव्यवहार के उत्तमरीति से जानने वाले अथवा लोक स्थिति के प्रकट ज्ञाता है (प्रास्ताश) ससार मे निस्पृह है (प्रतिभापर) समयानुसार द्रव्य-क्षेत्र-काल के परख/ आगे-आगे होने वाले शुभाशुभ को जानने मे प्रतिभासम्पन्न (प्रशमवान्) राग-द्वेष रहित (प्रागेव दृष्टोत्तर) प्रश्नो के उत्तर पहले ही जिनके मन मे तैयार रहते है (प्राय प्रश्नसह) किसी के द्वारा बहुत प्रश्नो के पूछे जाने पर भी जिन्हे कभी क्रोध नही आता (प्रभु) सब लोगो पर जिनका प्रभाव है (परमनोहारी) दूसरो के मन को जो हरने वाले हैं (पर अनिन्दया) दूसरो मे निन्दा से रहित है (धर्मकथा ब्रूयाद्) धर्मकथा को कहने वाले है (गुणनिधि) गुणो के खानि है (प्रस्पष्ट मिष्टाक्षर) अच्छी तरह स्पष्ट व मधुर वाणी जिनकी है ऐसे गुणो से युक्त (गणी) आचार्य परमेष्ठी होते है।

भावार्थ—विद्वान्, समस्त शास्त्रो के मर्मज्ञ, लोकज्ञ, निस्पृह, प्रतिभावान/ समय सूचकतामे पारगत, समभावी, प्रश्नो के पूर्व उत्तर ज्ञाता, बहु प्रश्नो को सहने मे समर्थ, दूसरो के मन को हरने वाले/मनोज्ञ, पर-निन्दा से रहित, मधुर व स्पष्ट वक्ता,गुण निधि ऐसे आचार्य परमेष्ठी होते हैं।

श्रुतमविकलं शुद्धा वृत्ति: परप्रतिबोधने।
परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ।।
बुधनुतिरनुत्सेको, लोकज्ञता मृदुताऽस्पृहा।
यतिपतिगुणा यस्मिन्नन्ये च सोऽस्तु गुरु: सताम्।। ७ ।।

अन्वयार्थ—(श्रुत अविकल) पूर्ण ज्ञान (शुद्धा वृत्ति) शुद्ध आचरण (पर प्रतिबोधने वृत्ति) दूसरो को उपदेश देने मे प्रवृत्ति (परिणतिरुरुद्योगो मार्ग प्रवर्तन सद्विधौ) भव्यजीवो को समीचीन मार्ग मे लगाने मे विशेष पुरुषार्थ करना (बुधनुति) विद्वानो से पूज्य (अनुत्सेक) मार्दव भावी (लोकज्ञता) लोकव्यवहार के ज्ञाता (मृदुता) कोमलता (अस्पृहा) निस्पृहता (गुणा) गुण (यस्मिन्) जिनमे हैं (यतिपति स) वह मुनियो

का स्वामी (सताम् गुरु) सज्जनो का गुरु है (न अन्ये च) और अन्य नही।

भावार्थ—पूर्णज्ञान, शुद्ध आचरण, परोपदेशक, भव्यो को समीचीन पथ मे लगाना, विद्वन्मन्य, विनयवान, मार्दवता, लोकज्ञता, निस्पृहता गुण जिनमे है वे मुनियो के स्वामी ही सज्जनो के गुरु आचार्य हो सकते है, दूसरे अन्य कोई नही।

विशुद्धवशः परमाभिरूपो जितेन्द्रियोधर्मकथाप्रसक्तः।
सुखर्द्धिलाभेष्वविसक्तचित्तो बुधैः सदाचार्य इति प्रशस्तः ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—जो (विशुद्धवश) विशुद्ध वश मे उत्पन्न हुए है (परमाभिरुप) सुन्दर, सुडौल रूप के धारक है (जितेन्द्रिय) इन्द्रिय-विजेता है (धर्मकथाप्रसक्त) धर्मकथाओ के उपदेश मे रत है (सुख-ऋद्धि-लाभेषु-विसक्त-चित्त) सुख, ऋद्धि/ऐश्वर्य आदि के लाभो मे जिनके मन मे आसक्ति/इच्छा उत्पन्न नही होती है ऐसे यति (सदाचार्य) सच्चे आचार्य है (इति) इस प्रकार (बुधै) बुद्धिमानो के द्वारा (प्रशस्त) कहा गया है।

भावार्थ—जो शुद्ध वश मे उत्पन्न हुए है, सुन्दर, सुडौल, रूपवान् हैं, इन्द्रियविजेता है, धर्म-कथाओ के उपदेशक है, सुख, ऋद्धि आदि लाभ मे आसक्त रहित है ऐसे यति आचार्य है ऐसा बुद्धिमानो ने कहा है।

विजितमदनकेतुं निर्मल निर्विकार,
रहितसकलसग संयमासक्त चित्तं।
सुनयनिपुणभाव ज्ञाततत्त्वप्रपञ्चम्,
जननमरणभीत सद्‌गुरु नौमि नित्यम् ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—जिनने (विजितमदनकेतु) कामदेव की ध्वजा को जीत लिया है (निर्मल) शुद्ध है (निर्विकार) विकाररहित है (रहितसकल सग) समस्त परिग्रह से रहित है (सयमासक्त चित्तम्) सयम मे जिसका चित्त आसक्त है (सुनयनिपुणभाव) समीचीन नयो के वर्णन करने मे जो चतुर है (ज्ञाततत्त्वप्रपचम्) जान लिया है तत्त्वो के विस्तार को जिसने (जननमरणभीत) जन्म-मरण से जो भयभीत है उन (सद्‌गुरु) सच्चे गुरु को (नित्यम्) सदाकाल (नौमि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—कामदेव के विजेता, शुद्ध, विकाररहित, समस्त परिग्रह के त्यागी, द्रव्य-भाव सयम या इन्द्रिय-प्राणी सयम मे मन को लगाने वाले, समीचीन नयो के वर्णन मे निपुण, पूर्ण तत्त्वज्ञ, जन्म-मृत्यु से भयभीत सच्चे निर्ग्रंथ गुरुओ को मै सदा नमस्कार करता हूँ।

सम्यग्दर्शन मूल, ज्ञानस्कध चरित्रशाखाढ्यम्।
मुनिगणविहगाकीर्ण-माचार्य महाद्रुमम् वन्दे ।।१०।।

अन्वयार्थ—(सम्यग्दर्शनमूल) सम्यग्दर्शन जिसकी जड है (ज्ञान स्कध) ज्ञान जिसका स्कन्ध है (चारित्रशाखाढ्यम्) चारित्ररूपी शाखा से जो युक्त है (मुनिगण-विहगाकीर्ण) मुनिसमूहरूपी पक्षियो से जो युक्त है उन (आचार्यमहाद्रुमम्) आचार्यरूप महावृक्ष को (वन्दे) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—आचार्य परमेष्ठी को एक विशाल वृक्ष की उपमा दी गई है। वह आचार्यरूपी वृक्ष कैसा है—सम्यग्दर्शन उसकी जड़, ज्ञान उसका स्कन्ध है, चारित्र–विविध प्रकार के सामायिक आदि चारित्र इसकी शाखाएँ है, मुनिरूपी पक्षीगण इसमे सदा धर्म्यध्यान मे लीन रहकर चहकते रहते है ऐसे इस आचार्य रूपी महावृक्ष को मै नमस्कार करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भते! आइरियभत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं सम्मणाण, सम्मदसण सम्मचरित्तजुत्ताणं पंचविहाचाराण आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाण, उवज्झायाणं, तिरयणगुणपालणरयाणं, सव्वसाहूणं, णिच्चकालं अचेमि, पूजेमि, , वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ-मज्झ।

अर्थ—(भते!) हे भगवन्! मैने (आयरिय-भत्ति-काउस्सग्गो कओ) आचार्य भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ) उसकी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ। (सम्मणाण-सम्मदसण-सम्मचरित्त जुत्ताण) सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र से युक्त (पचविहाचाराण आयरियाण) पञ्चाचार के पालक आचार्य परमेष्ठी की (आयारादि

सुदणाणोवदेसयाण उवज्झायाण) आचाराङ्ग द्वादशाग श्रुतज्ञान का उपदेश देने वाले उपाध्याय परमेष्ठी की (तिरयणगुणपालणरयाण) रत्नत्रयरूपी गुणो के पालन करने मे सदा तत्पर ऐसे (सव्वसाहूण) सभी साधु परमेष्ठी की मै (णिच्चकाल) सदाकाल (अंचेमि, पुजेमि, वदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे (दुक्खक्खओ-कम्मक्खओ) दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो, तथा (जिणगुणसपत्ति होऊ मज्झ) मेरे लिये जिनेन्द्रदेव के गुणो की प्राप्ति हो।

भावार्थ—मै आचार्यभक्ति सम्बधी कायोत्सर्ग के बाद उसकी आलोचना करता हूँ। रत्नत्रयधारक, पञ्चाचारपालक आचार्य परमेष्ठी, द्वादशाग श्रुत के उपदेशक उपाध्याय परमेष्ठी तथा रत्नत्रयरूप गुणो से मण्डित साधु परमेष्ठी को मै सदा काल अर्चा, पूजा, वन्दना, आराधना करता हूँ, इनके फलस्वरूप मेरे दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तमगति की प्राप्ति हो, समाधिपूर्वक मरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुणो की प्राप्ति हो।

।। इत्याचार्यभक्ति ।।

पञ्चमहागुरुभक्तिः

आर्याछन्दः

श्रीमदमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित- मणि-किरण-वारि-धाराभिः ।
प्रक्षालित-पद-युगलान्, प्रणमामि जिनेश्वरान् भक्त्या ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(श्रीमत्-अमरेन्द्र-मुकुट-प्रघटित-मणि-किरण-वारि-धाराभि) श्रीमान्-अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग लक्ष्मी से शोभायमान, इन्द्रो के मुकुटो मे जडे हुए मणियो की किरणरूप जल धाराओ से (प्रक्षालित-पद-युगलान्) प्रक्षालित हुए है चरण-युगल जिनके ऐसे (जिनेश्वरान्) अरहन्त देव को (भक्त्या) भक्ति से (प्रणमामि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—अन्तरङ्ग मे अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी व बाह्य समवसरण विभूति से शोभा को प्राप्त भवनवासियो के ४०, व्यन्तर देवो के ३२, कल्पवासियो के २४, ज्योतिषियो के २, मनुष्यो का चक्रवर्ती व तिर्यञ्चो का सिह इस प्रकार १०० इन्द्रो से वन्दित है चरण-कमल जिनके ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी अरहन्त परमात्मा को मै भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

अष्टगुणैः समुपेतान्, प्रणष्ट-दुष्टाष्ट-कर्मरिपु-समितीन् ।
सिद्धान् सतत-मनन्तान्- नमस्करो-मीष्ट तुष्टि संसिद्ध्यै ।। २ ।।

अन्वयार्थ—जिनके (प्रणष्ट-दुष्ट-अष्ट-कर्मरिपु-समितीन्) दुष्ट आठ कर्मरूपी शत्रुओ का समूह पूर्ण क्षय को प्राप्त हो गया है जो (अष्टगुणै समुपेतान्) आठ गुणो से युक्त है ऐसे (अनन्तान् सिद्धान्) अनन्त सिद्धो को (सततम्) सदा /निरन्तर, (ईष्ट-तुष्टि-ससिद्ध्यै) इच्छित, सन्तोष की समीचीन सिद्धि के लिये (नमस्करोमि) मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जिन्होने ज्ञानावरण आदि आठ दुष्ट कर्मो के समूह का पूर्ण क्षय कर दिया जो आठ कर्मो के अभाव मे सम्यक्त्व आदि आठ महागुणो से शोभायमान है ऐसे अनन्त सिद्धो को मै इच्छित, तुष्टिकारक, समीचीन सिद्धि की प्राप्ति के लिये सदा नमस्कार करता हूँ।

साचार-श्रुत-जलधीन्- प्रतीर्य शुद्धोरुचरण-निरतानाम् ।
आचार्याणां पदयुग- कमलानि दधे शिरसि मेऽहम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(साचार-श्रुत-जलधीन्) आचारवान होकर श्रुतरूपी समुद्र को (प्रतीर्य) उत्कृष्टपने तैरकर जो (शुद्ध-उरु-चरण-निरताना) शुद्ध, निर्दोष, आचरण/चारित्र के पालन करने सदा निरत/लगे हुए है। ऐसे (आचार्याणाम्) आचार्यो के (पद-कमल-युगलानि) चरण कमलो को (अह) मै (मे शिरसि) अपने शिर पर (दधे) धारण करता हूँ। अर्थात् उनके चरणो मे सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो आचाराङ्ग सहित पूर्ण द्वादशाग श्रुतरूपी समुद्र मे पारगत हो, निर्दोष, शुद्ध पचाचार के पालन करने मे सदा तत्पर रहते है, ऐसे आचार्य भगवन्तो के पुनीत चरण-युगल को मै अपने सिर पर धारण करता हूँ। उन्हे भक्ति से सिर झुकाकर नमस्कार करता हूँ।

मिथ्या-वादि-मद्रोग्र-ध्वान्त-प्रध्वन्सि-वचन-संदर्भान्।
उपदेशकान् प्रपद्ये मम दुरितारि-प्रणाशाय ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(मिथ्यावादी-मद-उग्र-ध्वान्त-प्रध्वसि-वचन-सन्दर्भान्) जिनके वचनो के सन्दर्भ, प्रकरण मिथ्यावादियो के बढते हुए अहकार व अज्ञानरूपी अधकार को नष्ट करने वाले है, ऐसे (उपदेशकान्) उपाध्याय परमेष्ठियो को "मै" (मम दुरित-अरिप्रणाशाय) अपने पापरूपी शत्रुओ का नाश करने के लिये (प्रपद्ये) प्राप्त होता हूँ। अर्थात् मै अपने पापो की शान्ति के लिये उनकी शरण मे जाता हूँ।

भावार्थ—उपाध्याय परमेष्ठी स्वसमय-पर समय के ज्ञाता, नित्य धर्मोपदेश मे निरत रहते है उनके हित-मित-प्रिय प्रवचनो के प्रकरण को सुनते ही मिथ्यावादियो का मान गलित हो जाता है, अज्ञान, अधकार विलीन हो जाता है। ऐसे उपाध्याय परमेष्ठी की शरण मे मै भी जाता हूँ। आपके चरण-कमलो के सम्पर्क से, शरणार्थी के पापो का क्षय हो।

सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका-मेय-बोध-सम्भूताः ।
भूरि-चरित्र-पताकास्ते साधु-गणास्तु मा पान्तु ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—जो (सम्यग्दर्शन-दीप-प्रकाशका) सम्यग्दर्शनरूपी दीपक को प्रकाशित करने वाले है, (मेय बोध-सभूता) जो जीवादि ज्ञेय पदार्थो के समीचीन ज्ञान से सम्पन्न है (भूरि-चरित्र-पताका) उत्कृष्ट चारित्ररूपी

पताका से सहित है (ते) वे (साधुगणा) साधु समूह (मा पान्तु) मेरी रक्षा करे।

भावार्थ—"दिगम्बर साधुओ का शरीर चैत्यगृह है"। जो सम्यग्दर्शन-रूपी दीपक को प्रकाशित कर भव्य जीवो के अनादि-कालीन मिथ्यात्व के अन्धकार को नष्ट करने वाले हैं। जो साधुगण जीवादि नौ पदार्थो के ज्ञान से सम्पन्न है, जिनकी उत्कृष्ट चारित्र-रूपी ध्वजा लोक मे फहरा रही है, उन साधुगण/ महासाधुओ की शरण मे मै जाता हूँ, ये साधुसमूह मेरी रक्षा करे।

जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधु-वरानमल गुण गणोपेतान्।
पञ्चनमस्कार-पदै-स्त्रि-सन्ध्य-मभिनौमि मोक्ष-लाभाय।। ६।।

अन्वयार्थ—(अमल-गुणगण-उपेतान्) निर्मल अनन्त गुणो से युक्त (जिन-सिद्ध-सूरि-देशक-साधुवरान्) अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय तथा उत्तम साधु पञ्च परमेष्ठियो को (मोक्ष-लाभाय) मोक्ष की प्राप्ति के लिये (पञ्च-नमस्कार-पदै) पञ्च नमस्कार पदो के द्वारा (त्रिसन्ध्यम्) तीनो सध्याओ मे (अभिनौमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो अनन्त निर्मल गुणो से शोभायमान है ऐसे अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय तथा उत्तम साधु इन पञ्च परमेष्ठियो को मैं मोक्ष की प्राप्ति के लिये णमोकार मन्त्र रूप पॉच पदो के द्वारा तीनो सन्ध्याओ मे नमस्कार करता हूँ। अर्थात् अनन्त गुणो के समुद्र पञ्चपरमेष्ठी की आराधना मुक्ति की प्राप्ति के लिये एकमात्र अमोघ कारण है।

अनुष्टुप

एष: पञ्चनमस्कार:, सर्वपापप्रणाशन:।
मंगलानां च सर्वेषां, प्रथमं मंगलं भवेत्।। ७।।

अन्वयार्थ—(एष पञ्चनमस्कार) यह पञ्चनमस्कार मन्त्र (सर्व-पाप प्रणाशन) सब पापो का नाश करने वाला है (च) और (सर्वेषा मङ्गलाना) सब मगलो मे (प्रथम मङ्गल) पहला मङ्गल माना गया है।

भावार्थ—परमेष्ठी वाचक, अनादि निधन यह पञ्च नमस्कार मन्त्र सब पापो को नाश करने वाला, लोक मे सब मगलो मे श्रेष्ठ प्रथम मगल है।

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्याया· सर्वसाधवः ।
कुर्वन्तु मगला. सर्वे, निर्वाण परमश्रियम् ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय) अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय (सर्वसाधव) समस्त साधु (सर्वे) ये सभी (मङ्गला) मङ्गल रूप है अत ये पापो के नाशक है, ये मेरे लिये (निर्वाण परमश्रिय) मोक्षरूपी उत्कृष्ट लक्ष्मी को (कुर्वन्तु) करे। मुझे मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करे।

भावार्थ—तीनो लोको मे मङ्गलरूप-पापो के नाशक, सुख के प्रदायक, अर्हन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधु ये पञ्चपरमेष्ठी मेरे लिये उत्कृष्ट मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करे।

आर्याछन्द

सर्वान् जिनेन्द्र चद्रान्, सिद्धानाचार्य पाठकान् साधून् ।
रत्नत्रय च वदे, रत्नत्रयसिद्धये भक्त्या ।। ९ ।।

अन्वयार्थ—मै (रत्नत्रयसिद्धये) रत्नत्रय की सिद्धि के लिये (सर्वान् जिनेन्द्र चन्द्रान्) सभी अरहन्त भगवन्तो को (सिद्धान्-आचार्य-पाठकान्) सब सिद्धो को, सब आचार्यो, उपाध्यायो को (साधून्) सब साधुओ को (च) और (रत्नत्रय) रत्नत्रय को (भक्त्या) भक्ति से (वन्दे) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मै भक्तिपूर्वक समस्त अरहन्त-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय व साधुओ की तथा रत्नत्रय की वन्दना करता हूँ, मुझे रत्नत्रय की सिद्धि हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो।

पातु श्रीपादपद्मानि, पञ्चाना परमेष्ठिना ।
लालितानि सुराधीश, चूडामणि मरीचिभिः ।। १० ।।

अन्वयार्थ—(पञ्चाना परमेष्ठिना) पाँचो परमेष्ठियो के (सुर-अधीश चूडामणि मरीचिभि) देवो के स्वामी इन्द्र के चूडामणि की किरणो से (लालितानि) सेवित या सुशोभित (श्रीपादपद्मानि) श्री चरण-कमल (पान्तु) मेरी रक्षा करे।

भावार्थ—देवो का अधिपति इन्द्र भी जिनके चरण-कमलो की सेवा

मे नतमस्तक रहता है, ऐसे पञ्चपरमेष्ठी भगवान् के पावन चरण-कमल मेरी रक्षा करे।

प्रातिहार्यैर्जिनान् सिद्धान्, गुणैः सूरीन् स्वमातृभिः ।
पाठकान् विनयैः साधून्, योगाङ्गैरष्टभिः स्तुवे ।।११।।

अन्वयार्थ—(प्रातिहार्यै) आठ प्रातिहार्यो से (जिनान्) अरहन्तो की (गुणै) अष्टगुणो से (सिद्धान्) सिद्धो की (स्वमातृभि) अष्ट प्रवचन मातृकाओ से (सूरीन्) आचार्यो की (विनयै) चार प्रकार के विनयो के द्वारा (पाठकान्) उपाध्यायो की और (अष्टभि योग अङ्गै) आठ प्रकार के योग के अङ्गो से (साधून्) साधुओ की (स्तुवे) स्तुति करता हूँ।

भावार्थ—जो अरहन्त भगवान् अशोक वृक्ष, सिहासन, तीन छत्र, भामण्डल, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौसठ चॅवर और दुदुभिनाद इन आठ प्रातिहार्यो से शोभायमान है, जो सिद्ध भगवान् सम्यक्त्व, दर्शन, क्षायिक ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना, सूक्ष्मत्व, वीर्य और निराबाधत्व इन आठ गुणो से शोभायमान है, जो आचार्य परमेष्ठी ५ समिति व तीन गुप्तियो इन आठ प्रवचन मातृकाओ से शोभित है, जो उपाध्याय परमेष्ठी दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की आराधना रूप ४ प्रकार के विनयो से शोभायमान है तथा जो साधु परमेष्ठी यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-ध्यान-धारणा व समाधि से शोभित है उन साधु परमेष्ठी की मै स्तुति, वन्दना करता हूँ।

अञ्चलिका

इच्छामि भते ! पंचमहागुरु-भत्ति-काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं, अरहंताण, अट्ठ-गुण-सम्पण्णाणं, उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं, सिद्धाणं, अट्ठ-पवय-णमउ संजुत्ताणं आइरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण पालणरदाणं सव्वसाहूणं, सया णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहि-मरण, जिण-गुण-सम्पत्ति होउ मज्झं ।

अन्वयार्थ—(भते।) हे भगवन् ! मैने (पचमहागुरुभति काउस्सग्गो

कओ) पञ्चमहागुरु भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउ) उनकी आलोचना करने की (इच्छामि) मै इच्छा करता हूँ । (अट्ठ-पाडिहेर सजुत्ताण अरहताण) आठ प्रातिहार्यो से युक्त अरहन्तो को (अट्ठ-गुण सपण्णाण) आठ गुणो से सम्पन्न (उड्ढलोय-मत्थयम्मि पइट्ठियाण सिद्धाण) उर्ध्वलोक के मस्तक पर स्थित सिद्धो को (अट्ठ पवयण-मउ-सजुत्ताण) अष्ट प्रवचन मातृकाओ से युक्त (आयरियाण) आचार्यो को (आयारादि-सुदणाणोवदेसयाण उवज्झायाण) आचाराङ्ग आदि श्रुतज्ञान के उपदेशक उपाध्यायो को (तिरयणगुणपालणरदाण सव्वसाहूण) रत्नत्रय गुणो के पालन करने मे सदा रत रहने वाले सब साधुओ को (णिच्चकाल) नित्यकाल (अच्चेमि, पुज्जेमि, वदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, मेरे (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण, समाहिमरण) दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो (जिनगुणसपत्ति होऊ मज्झ) मुझे जिनेन्द्रदेव के अनुपम अनन्त गुणो की प्राप्ति हो ।

भावार्थ–" मै गुणो से मडित पञ्चपरमेष्ठी भगवन्तो की पूजा, अर्चा, वन्दना करता हूँ ।" मेरे दुखो का, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति, उत्तम गति की प्राप्ति हो, समाधि की प्राप्ति हो तथा जिनेन्द्र देव के गुणो की प्राप्ति हो ।

।। इति पञ्च गुरु भक्ति ।।

शान्ति भक्ति

"शान्त्यष्टकम्"

शार्दूलविक्रीडितम्

न स्नेहाच्छरण प्रयान्ति भगवन्। पादद्वय ते प्रजा:,
हेतुस्तत्र विचित्र दु:ख निचय: ससार घोरार्णव:।
अत्यन्त स्फुरदुग्र रश्मि निकर व्याकीर्ण भूमण्डलो,
ग्रैष्म: कारयतीन्दु पाद सलिल-च्छायानुराग रवि: ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(भगवन्!) हे भगवन्! (प्रजा) ससारी भव्य जीव (ते पादद्वय) आपके दोनो चरणो की (शरण) शरण को (स्नेहात्) स्नेह से (न प्रयान्ति) प्राप्त नही होते है। (तत्र) उसमे (विचित्र दु ख निचय) विचित्र प्रकार का कर्मो का समूह ऐसा (ससार घोर आर्णव हेतु) ससाररूपी घोर/भयानक समुद्र ही एकमात्र कारण है। उचित ही है (अत्यन्त स्फुरत्-उग्ररश्मि-निकर-व्याकीर्ण-भूमण्डल) अत्यन्त देदीप्यमान प्रचण्ड किरणो के समूह से पृथ्वी मण्डल को व्याप्त करने वाला (ग्रैष्म रवि) ग्रीष्म ऋतु का सूर्य (इन्दु-पाद-सलिल-च्छाया-अनुराग) चन्द्रमा की किरण, जल व छाया से अनुराग को (कारयति) करा देता है।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो! ससारी भव्यजीव आपके चरण-कमलो की शरण मे मात्र स्नेह से नही आते है किन्तु जिस प्रकार ज्येष्ठ मास मे सूर्य की तप्तायमान प्रचण्ड किरणो से जहाँ भूमण्डल तपित हुआ है वहाँ उस स्थिति मे मानव चन्द्रमा की शीतल चाँदनी/किरणो, शीतल जल व वृक्षो की सघन छाया से स्वय ही स्वाभाविक रूप से अनुराग करने लगता है, ठीक उसी प्रकार ससाररूपी भयानक समुद्र मे निधत्ति, निकाचित आदि विविध कर्मो से पीडित, सतप्त ऐसे भव्य जीव शान्ति की प्राप्ति के लिये स्वय ही आपके पुनीत शान्तिप्रदायक दोनो चरण-कमलो की शरण को प्राप्त होते है। अर्थात् जैसे ससारी जीवो का गर्मी का सताप शीतल चन्द्र किरण, जल आदि के द्वारा शान्त होता है वैसे ही भव्यजीवो का कर्मो का भयानक दुख आपके चरण-शरण मे आने से दूर होता है।

प्रणाम करने का ऐहिक फल

कुद्धाशीर्विष दष्ट दुर्जय विषय ज्वालावली विक्रमो,
विद्या भेषज मन्त्र तोय हवनै र्याति प्रशान्ति यथा ।
तद्वत्ते चरणारुणाम्बुज युग स्तोत्रोन्मुखाना नृणाम्,
विघ्ना:कायविनायकाश्च सहसा शाम्यन्त्यहो विस्मय· ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(यथा) जिस प्रकार (क्रुद्ध-आशीर्विष-दष्ट-दुर्जयविषय-ज्वालावली-विक्रम) अत्यन्त क्रोध को प्राप्त सॉप के द्वारा डसे मनुष्य के दुर्जेय विष, ज्वालाओ के समूह का प्रभाव, महाशक्ति (विद्या-भेषज-मन्त्र-तोय-हवनै) विद्या, औषधि, मन्त्र, जल और हवन के द्वारा (प्रशान्ति याति) पूर्ण शान्ति को प्राप्त हो जाता है—नाश को प्राप्त हो जाता है (तद्वत्) उसी प्रकार (ते) आपके (चरणारुणाम्बुज-युग) दोनो चरणकमलो की (स्तोत्र-उन्मुखाना) स्तुति के सन्मुख जीवो के (विघ्ना) समस्त/ नाना प्रकार के विघ्न (च) और (काय विनायका) शरीरिक बाधाएँ पीड़ाएँ या शरीर सम्बन्धी रोग आदि (सहसा) शीघ्र ही (शाम्यन्ति) शान्त हो जाते है (अहो ! विस्मय) यह अत्यधिक आश्चर्य की बात है।

भावार्थ—लोक मे जिस प्रकार प्रचण्ड क्रोध को प्राप्त ऐसे सर्प से डसे गये मनुष्य का असह्य, भयानक विष भी गारुडी विद्या या गारुड़ी मुद्रा के दिखाने से, विषनाशक नागदमनी आदि औषधियो के सेवन से, मन्त्रित किये गये जल या जिनाभिषेक के जल को लगाने से व हवन आदि उचित अनुष्ठानो के करने से दूर हो जाता है, उसी प्रकार वीतराग प्रभो ! आपके चरण-कमलो की स्तुति, भक्ति, आराधना करने से जीवो के समस्त विघ्न, बाधाएँ, शरीरिक कष्ट-वेदनाएँ शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है, इसमे कोई आश्चर्य नही है। अर्थात् वीतराग जिनेन्द्रदेव की स्तुति करने से समस्त शारीरिक-मानसिक बाधाएँ क्षणमात्र मे दूर हो जाती है।

प्रणाम करने का फल

सन्तप्तोत्तम काञ्चन क्षितिधर श्री स्पर्द्धि गौरद्युते,
पुसा त्वच्चरणप्रणाम करणात्पीडा: प्रयान्तिक्षयं ।
उद्यद्भास्कर विस्फुरत्कर शतव्याघात निष्कासिता,
नाना देहि विलोचन-द्युतिहरा शीघ्र यथा शर्वरी ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(सतप्त उत्तम-काञ्चन-क्षितिधर श्री-स्पर्द्धि-गौरद्युते !) तपाये हुए उत्तम स्वर्ण के पर्वत की शोभा के साथ ईर्ष्या करने वाली पीत कान्ति से युक्त हे शान्ति जिनेन्द्र ! (त्वत् चरण प्रणाम करणात्) आपके चरणो मे प्रणाम करने से (पुसा) जीवो की (पीड़ा) पीडा उसी तरह (क्षय प्रयान्ति) क्षय को प्राप्त होती है (यथा) जिस प्रकार (उद्यद् भास्कर-विस्फुरत् कर शत व्याघात-निष्कासिता) उदय को प्राप्त सूर्य देदीप्यमान सैकड़ो किरणो के आघात से निकली हुई (नाना-देहि-विलोचन-द्युतिहरा) अनेक प्राणियो के नेत्रो की कान्ति को हरने वाली (शर्वरी) रात्रि (शीघ्र क्षय प्रयाति) शीघ्र ही क्षय को प्राप्त हो जाती है।

भावार्थ—तपाये हुए उत्तम स्वर्ण की कान्ति के सम दीप्तिमान तेज के धारक जिनके शरीर की पीत कान्ति सुमेरु पर्वत की कान्ति को भी फीका कर रही है ऐसे हे शान्तिनाथ जिनेन्द्र ! जिस प्रकार उगते हुए सूर्य की तेजोमयी किरणो के आघात से भयानक रात्रि शीघ्र नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार आपके श्रीचरणो मे प्रणाम, वन्दन, नमन, स्तवन करने वाले मनुष्यो की समस्त पीड़ाएँ क्षणमात्र मे क्षय को प्राप्त हो जाती हैं।

मुक्ति का कारण जिन-स्तुति

त्रैलोक्येश्वर भंग लब्ध विजयादत्यन्त रौद्रात्मकान्,
नाना जन्म शतान्तरेषु पुरतो जीवस्य संसारिणः ।
को वा प्रस्खलतीह केन विधिना कालोग्र दावानलान्,
न स्याच्चेत्तव पाद पद्म युगल स्तुत्यापगा वारणम् ।। ४ ।।

अन्वयार्थ—(त्रैलोक्य-ईश्वर-भङ्ग-लब्ध-विजयात्) अधोलोक, मध्यलोक व ऊर्ध्वलोक के अधिपतियो के नाश से प्राप्त हुई विजय से जो (अत्यन्त-रौद्रात्मकात्) अत्यधिक क्रूरता को प्राप्त हुआ है, ऐसे (काल-उग्र-दावानलात्) मृत्युरूपी प्रचण्ड दावाग्नि से (नाना-जन्म-शत-अन्तरेषु) अनेक प्रकार के सैकड़ो जन्मो के बीच (इह) इस जगत् मे (क) कौन (केन विधिना) किस विधि से (प्रस्खलति) बच सकता है ? अर्थात् कोई नही। (चेत्) यदि (ससारिण जीवस्य) ससारी जीवो के (पुरत) आगे (तव) आपके (पादपद्म-युगल-स्तुति-आपगा) दोनो चरणकमल की स्तुतिरूपी नदी (वारण) निवारण करने वाली (न स्यात्) नही होती।

भावार्थ—हे भगवन्! अधोलोक के स्वामी धरणेन्द्र, मध्यलोक के स्वामी चक्रवर्ती व ऊर्ध्वलोक के स्वामी इन्द्र इनके विनाश से प्राप्त विजय से जो अत्यन्त भयानक रूप को प्राप्त कर चुका है, ऐसे मृत्युरूपी विकराल काल से कौन कैसे बच सकता है ? यदि आपके पावन चरण-कमल युगल की स्तुतिरूपी नदी ससारी जीवो के आगे उसकी रक्षक न हो। अर्थात् भयानक दावानल की गति नदी सामने आने पर रुक जाती है या दावानल नदी का सम्पर्क पा बुझ जाता है उसी प्रकार मृत्युरूपी दावानल भी आपकी स्तुति करने से मन्दगति वाला हो, शान्त हो जाता है। भावार्थ यह है कि जो भव्य जीव आपकी स्तुति करते है, वे काल याने मृत्यु को सदा-सदा के लिये जीतकर मुक्ति को प्राप्त करते है।

स्तुति से असाध्य रोगों का नाश

लोकालोक निरन्तर प्रवितत् ज्ञानैक मूर्ते विभो!
नाना रत्न पिनद्ध दण्ड रुचिर श्वेतातपत्रत्रय।
त्वत्पाद द्वय पूत गीत रवत. शीघ्र द्रवन्त्यामया,
दर्पाध्मातमृगेन्द्रभीम निनदाद् वन्या यथा कुञ्जराः ।। ५ ।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-निरन्तर-प्रवितत्-ज्ञान-एक-मूर्ते) लोक और अलोक मे निरन्तर विस्तृत ज्ञान ही जिनकी एक अद्वितीय मूर्ति है। (नानारत्न-पिनद्ध-दण्ड-रुचिर-श्वेत-आतपत्र-त्रय) जिनके सफेद छत्रत्रय नाना प्रकार के रत्नो से जडित सुन्दर दण्ड वाले है, ऐसे (विभो!) हे अलौकिक विभूति के स्वामी शान्ति जिनेन्द्र! (त्वत्-पाद-द्वय-पूत-गीत-रवत) आपके चरण युगल के पावन स्तुति के शब्दो से (आमया) रोग (शीघ्र) शीघ्र (द्रवन्ति) भाग जाते है। (यथा) जिस प्रकार (दर्पाध्मात-मृगेन्द्र-भीम-निनदात्) अहकारी सिह की भयानक गर्जना से (वन्या कुञ्जरा) जगली हाथी।

भावार्थ—हे लोकालोक के ज्ञाता, केवलज्ञानमयी अनुपम मूर्ते! हे रत्नो जडित तीन छत्रो से शोभायमान शान्ति जिनेन्द्र! आपके पावन चरण-युगल की स्तुति के पावन निर्मल शब्दो की आवाज मात्र से भव्यजीवो के असाध्य रोग भी तत्काल उसी प्रकार भाग जाते है, जिस प्रकार भयानक जगल मे मदमस्त सिह की भयकर गर्जना सुनकर वन के जगली हाथी तितर-बितर हो जाते है।

स्तुति से अनन्त सुख

दिव्य स्त्री नयनाभिराम विपुल श्री मेरु चूडामणे,
भास्वद् बाल दिवाकर-द्युतिहर प्राणीष्ट भामण्डल ।
अव्याबाध मचिन्त्यसार मतुल त्यक्तोपम शाश्वतम्,
सौख्यं त्वच्चरणारविन्द युगल स्तुत्यैव सम्प्राप्यते ।। ६ ।।

अन्वयार्थ—(दिव्यस्त्री-नयन-अभिराम) हे देवाङ्गनाओ के नयनो के प्रिय लगनेवाले उनके नयनवल्लभ ! (विपुलश्रीमेरुचूडामणे !) हे विशाल अन्तरग-बहिरग लक्ष्मी के श्रेष्ठ चूडामणि ! (भास्वत्-बाल दिवाकर-द्युतिहर-प्राणी-इष्ट-भामण्डल) हे शोभायमान बाल सूर्य की कान्ति के हरने वाले, भव्य प्राणियो के इष्ट भामण्डल से सहित भगवन् ! (अव्याबाधम्-अचिन्त्य-सारम्-अतुलम्) बाधाओ से रहित, अचिन्तनीय, सारभूत, अतुल्य/तुलना रहित (त्यक्त-उपमम्) उपमातीत (शाश्वत) अक्षय, अनन्त, अविनाशी (सौख्य) सुख (त्वत् चरण-अरविन्द-युगल) आपके श्री-चरण कमल युगल की (स्तुति-एव सम्प्राप्यते) स्तुति से ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे शान्ति जिनेन्द्र ! आपका नयनाभिराम, सौम्य, जगत्, प्रिय रूप देवाङ्नाओ को भी प्रिय लगने वाला है अत हे देवाङ्गनाओ के नयनवल्लभ ! हे अन्तरङ्ग अनन्त चतुष्टय रूप लक्ष्मी के स्वामी तथा बहिरग समवसरण प्रातिहार्य आदि श्रेष्ठ लक्ष्मी के चूडामणि !, उगते हुए, प्रात कालीन, बाल सूर्य के समान कान्तियुक्त ऐसे भामण्डल से युक्त हे भगवन् ! आपकी स्तुति की महिमा अपरम्पार है। निर्बाध, अचिन्तनीय, सारभूत, तुलनारहित, उपमाओ से रहित अक्षय, अविनश्वर, अतीन्द्रिय सुख आपके पावन परम वन्दनीय श्रीचरण-कमलो की स्तुति से ही प्राप्त हो सकता है। अर्थात् आत्मा का सच्चा सुख वीतराग जिनेन्द्रदेव की आराधना से ही प्राप्त होता है।

भगवान् के चरण-कमल प्रसाद से पापों का नाश

यावन्नोदयते प्रभा परिकरः श्रीभास्करो भासयंस्,
तावद् धारयतीह पंकज वनं निद्रातिभार श्रमम् ।
यावत्त्वच्चरणद्वयस्य भगवन्! नस्यात् प्रसादोदय-
स्तावज्जीव निकाय एष वहति प्रायेण पापं महत् ।। ७ ।।

अन्वयार्थ—(प्रभापरिकर) किरणो के तेज समूह से युक्त (भासयन्) दिशा-विदिशाओ को प्रकाशमान करने वाला (श्रीभास्कर) शोभायमान सूर्य (यावत्) जब तक (न उदयते) उदित न होता (तावत्) तब तक (इह) इस लोक मे (पङ्कजवन) कमल वन (निद्रा-अतिभार-श्रमम्) निद्रा की अधिकता से उत्पन्न खेद को अर्थात् मुकुलित अवस्था को (धारयति) धारण करता है, इसी प्रकार (भगवन्) हे भगवन् (यावत्) जब तक (त्वत चरण-द्वयस्य) आपके दोनो चरण-कमलो के (प्रसाद-उदय) प्रसाद का उदय (न स्यात्) नही होता (तावत्) तब तक (एष जीवनिकाय) यह जीवो का समूह (प्रायेण) प्राय (महत् पाप) बहुत भारी पाप को (वहति) धारण करता है ।

भावार्थ—जिस प्रकार इस लोक मे सर्व दिशाओ को प्रकाशित करने वाला शोभायमान ऐसा सूर्य जब तक उदय को प्राप्त नहीं होता है तब तक ही कमलो का समूह "मुकुलित, अविकसित" अवस्था के भार को वहन कर खेद को प्राप्त होता है, ठीक उसी प्रकार, हे भगवन् ! आपके चरण-कमलो का कृपा प्रसाद जब तक इस जीव समूह को प्राप्त नही होता तब तक ही वह मिथ्यात्व, कषाय, अज्ञान आदि पापो के महाभार को धारण करता है । अर्थात् जैसे सूर्य की किरणो का सम्पर्क पाते ही कमल विकसित हो जाता है, वैसे ही जिनसूर्य के चरण-कमलरूपी किरणो का सम्पर्क पाते ही भव्यप्राणियो का समूह मिथ्यात्व का वमन कर सम्यक्त्व को प्राप्त कर अनन्त ससार के कारण महापापो से बचकर मुक्ति को प्राप्त करता है ।

स्तुति का फल याचना

शान्ति शान्ति जिनेन्द्र शान्त, मनसस्त्वत्पाद पद्माश्रयात् ।
सप्राप्ताः पृथिवी तलेषु बहवः, शान्त्यर्थिनः प्राणिनः ।।
कारुण्यान् मम भाक्तिकस्य च विभो ! दृष्टि प्रसन्ना कुरु ।
त्वत्पादद्वय दैवतस्य गदतः, शान्त्यष्टकं भक्तितः ।। ८ ।।

अन्वयार्थ—(शान्ति जिनेन्द्र) हे शान्तिनाथ भगवन् ! (पृथिवी-तलेषु) पृथ्वी तल पर (शान्त मनस) शान्त मन के धारी ऐसे (शान्त्यर्थिन) शान्ति के इच्छुक (बहव प्राणिन) अनेको प्राणी (त्वत्-पाद-पद्म-आश्रयात्) आपके चरण-कमलो के आश्रय से (शान्ति सम्प्राप्ता) शान्ति

को सम्यक् प्रकार से प्राप्त होते है, हुए है। (विभो !) हे भगवन् ! (त्वत् पादद्वय-दैवतस्य) आपका चरण युगल ही जिसका आराध्य देवता है, (भाक्तिकस्य) आपका भक्त और (भक्तित) भक्ति से जो (शान्ति अष्टक) शान्ति अष्टक का स्पष्ट उच्चारण कर रहा है, ऐसे (मम) मेरे (दृष्टि) सम्यक्त्व को (कारुण्यात्) दयाभाव से (प्रसन्ना कुरु) निर्मल करो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन् ! इस पृथ्वी तल पर शान्ति के इच्छुक, समता भावी अनेको प्राणी आपके चरण-कमलो के स्मरण, स्तवन, वन्दन से ही पूर्ण शान्ति, मुक्ति-सुख को प्राप्त हुए है। हे भगवन् ! मै आपका भक्त, आप ही मेरे एकमात्र आराध्य देवता है। मै भक्तिपूर्वक इस "शान्त्यष्टक" शान्तिभक्ति के माध्यम से आपके महागुणो का स्पष्ट उच्चारण कर रहा हूँ। आप करुणा करके मेरे सम्यक्त्व को निर्मल कीजिये। आप अनुकम्पा कर मेरी दृष्टि को पवित्र कीजिये।

शान्ति भक्तिः

दोधकवृत्तम्

शान्ति जिनं शशि निर्मल वक्त्र, शीलगुण व्रत संयम पात्रम्।
अष्टशतार्चित लक्षण गात्रं, नौमि जिनोत्तम-मम्बुज नेत्रम्।। १।।

अन्वयार्थ—(शशिनिर्मलवक्त्र) चन्द्रमा के समान निर्मल मुख के धारक (शीलगुण-व्रत-सयम-पात्रम्) जो १८००० शील के स्वामी, गुणो के, व्रतो के व सयम पालक होने से पात्र है (अष्ट-शत-अर्चित-लक्षण-गात्र) जिनका शरीर १०८ लक्षणो से शोभा को प्राप्त है (जिनोत्तम) जिनो मे श्रेष्ठ होने से जो तीर्थंकर है अथवा तीर्थंकर, चक्रवर्ती व कामदेव त्रिपदधारी होने से जो जिनोत्तम है (अम्बुज नेत्रम्) कमलसम सुन्दर, विशाल विकसित नेत्र से जो शोभित हो रहे है ऐसे (शान्तिजिन) शान्तिनाथ भगवान को (नौमि) मै नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो शान्तिनाथ भगवान् चन्द्रमा समान निर्मल मुख वाले है जो १८ हजार शील, ८४ लाख गुण, व्रत, सयम के अधिनायक हैं, जिनका शरीर १०८ लक्षणो से शोभायमान है, जो जिनो मे श्रेष्ठ तीर्थंकर

होने से जिनोत्तम है [४थे गुणस्थान से १३ गुणस्थान तक सब जीव जिन सज्ञा के धारक कहे गये है अत उनमे आप श्रेष्ठ है, अथवा १३वे गुणस्थान मे सामान्य जिन अनेक है उनमे तीर्थकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन पदो के धारक होने से भी आप जिनोत्तम है] । कमल के पुष्प सम विकसित, सुन्दर विशाल जिनके नेत्र है, ऐसे शान्तिनाथ भगवान को मै नमस्कार करता हूँ।

पञ्चम-मीप्सित-चक्रधराणा, पूजित-मिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च ।
शान्तिकर गण-शान्ति-मभीप्सुः, षोडश-तीर्थकर-प्रणमामि ।।१०।।

अन्वयार्थ—(पञ्चमम्-ईप्सित-चक्रधराणा) जो अभिलषित बारह चक्रवर्तियो मे पञ्चम चक्रवर्ती थे (इन्द्र-नरेन्द्र-गणै च) जो इन्द्र और नरेन्द्रो के समूहो से (पूजितम्) पूजित है (शान्तिकर) जो शान्ति को करने वाले है (गणशान्ति अभीप्सु) महाशान्ति का इच्छुक (षोडश-तीर्थकर-प्रणमामि) मै उन शान्तिनाथ भगवान को नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो गृहस्थावस्था मे इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्तियो मे पञ्चम चक्रवर्ती थे। दीक्षित हो सयमी बनकर वे इन नरेन्द्रो के परिवारो, समूहो से पूजा का प्राप्त हुए जो प्राणीमात्र मे शान्ति को करने वाले है, उन शान्तिनाथ भगवान को मै पूर्ण शान्ति, महाशान्ति का इच्छुक नमस्कार करता हूँ।

दिव्यतरुः सुर-पुष्प-सुवृष्टि- दुन्दुभिरासन-योजन घोषौ ।
आतप-वारण-चामर-युग्मे, यस्य विभाति च मण्डलतेजः ।।११।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिन शान्तिनाथ भगवान के (दिव्यतरु) अशोक वृक्ष (सुरपुष्पसुवृष्टि) देवो द्वारा उत्तम सुगन्धित पुष्पो की वर्षा, (दुन्दुभि) दुन्दुभिनाद (आसन-योजन घोषौ) सिहासन तथा एक योजन तक सुनाई देने वाली दिव्यध्वनि (आतपवारण-चामर युग्मे) छत्रत्रय, दोनो ओर चॅवर ढुरना (च) और (मण्डलतेज) भामण्डल का तेज ये आठ प्रातिहार्य (विभाति) सुशोभित है।

भावार्थ—जो तीर्थकर शान्तिनाथ भगवान समवशरण सभा मे अशोक वृक्ष, देवो द्वारा उत्तम सुगन्धित फूलो की वर्षा, दुन्दुभि बाजो का बजना,

सिहासन, एक योजन तक सुनाई देने वाली भव्यो के कल्याणदायिनी दिव्यध्वनि, तीन छत्र, दोनो ओर ३२-३२ ऐसे ६४ चँवर और भामण्डल के अप्रतिम तेजयुक्त अष्टप्रातिहार्यो से सदा सुशोभित रहते है, उनके भी चरणो मे मेरा नमस्कार है।

शंका–तीन छत्र किस विशेषता के परिचायक है, उन्हे अरहत प्रतिमा के ऊपर किस प्रकार लगाना चाहिये ? समाधान—भगवान के सिर पर तीन छत्र तीन लोक के स्वामीपने को सूचित करते है (सबसे नीचे अधोलोक के स्वामीपने का परिचायक सबसे बडा छत्र, मध्य मे मध्यलोक के स्वामीपने का परिचायक उससे छोटा और ऊर्ध्वलोक के स्वामित्व का परिचायक अन्त मे सबसे छोटा छत्र लगाना चाहिये।

तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्र, शान्तिकर शिरसा प्रणमामि।
सर्व गणाय तु यच्छतु शान्ति, मह्यमर पठते परमां च ।।१२।।

अन्वयार्थ—(शान्तिकर) शान्ति को करनेवाले (त) उन (जगत् अर्चित) तीनो लोको के जीवो से पूज्य (शान्तिजिनेन्द्र) शान्तिनाथ भगवान को (शिरसा प्रणमामि) मै मस्तक झुकाकर प्रणाम करता हूँ। (सर्वगणाय) समस्त समूह को (शान्ति यच्छतु) शान्ति दीजिये (तु) और (पठते मह्य) स्तुति पढने वाले मुझे (अर परमा च) शीघ्र तथा उत्कृष्ट शान्ति दीजिये।

भावार्थ—तीन जगत् के वन्दनीय, सर्वजीवो के लिये शान्ति को देने वाले शान्तिनाथ भगवान को मै सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। हे शान्तिनाथ भगवन्! समस्त समूह को शान्ति प्रदान कीजिये तथा स्तुति पाठक मुझ पर विशेष कृपा दृष्टिकर शीघ्र ही उत्कृष्ट शान्ति प्रदान कीजिये।

वसन्ततिलका

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः,
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पादपद्माः।
ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपाः,
तीर्थंकराः सतत शान्तिकरा भवन्तु ।।१३।।

अन्वयार्थ—(सुरगणै स्तुत पादपद्मा) जिनके चरण-कमल देवो के समूहो से स्तुत है तथा (ये) जो जन्मादि कल्याणको के समय (शक्रादिभि मुकुट कुण्डलहार-रत्नै) इन्द्रो के द्वारा मुकुट-कुण्डल-कर्णाभरण, हार और रत्नो से (अभ्यर्चिता) पूजित हुए थे (ते) वे (प्रवरवशजगत् प्रदीपा) वे उत्कृष्ट वश तथा जगत् को प्रकाशित करने वाले (तीर्थकरा जिना) तीर्थकर जिनेन्द्र (मे) मेरे लिये (सतत शान्तिकरा भवन्तु) निरन्तर शान्ति करने वाले होवे।

भावार्थ—जिनके चरण-कमल सौ इन्द्रो से वन्दनीय है, पञ्चकल्याणक की मगल बेला मे जो विविध आभूषणो के धारक देवो, इन्द्रो आदि के द्वारा पूजित हुए है, वे उत्तम वश मे उत्पन्न त्रिजगत् को प्रकाशित करने वाले ऐसे तीर्थकर शान्तिनाथ भगवान मेरे लिये निरन्तर शान्ति प्रदान करे।

उपजाति

सम्पूजकाना प्रतिपालकाना, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्ति भगवन्-जिनेन्द्र.॥१४॥

अन्वयार्थ—(भगवन् जिनेन्द्र) जिनेन्द्र भगवान् (सम्पूजकाना) सम्यक् प्रकार से पूजा करने वालो को (प्रतिपालकाना) धर्मायतनो की रक्षा करने वालो को (यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम्) मुनीन्द्र, आचार्य तथा तपस्वियो को (देशस्य, राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञ) देश, राष्ट्र, नगर और राजा को (शान्ति करोतु) शान्ति करे।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव! श्रद्धा से आपकी आराधना करने वाले आराधको को, धर्म के आयतन-देव, शास्त्र, गुरु और तीर्थो की रक्षा करने वालो को, आचार्यो, सामान्य तपस्वियो, मुनियो आदि सर्व सयमियो को, देश, राष्ट्र, नगर, प्रजा सभी को शान्ति प्रदान कीजिये।

स्रग्धरा

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु, बलवान् धार्मिको भूमिपालः।
काले काले च सम्यग वितरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्॥
दुर्भिक्ष चौरमारिः क्षणमपि जगता, मास्मभूज्जीव - लोके।
जैनेन्द्र धर्मचक्रं प्रभवतु सततं, सर्व - सौख्य - प्रदायि॥१५॥

अन्वयार्थ—(सर्वप्रजाना क्षेम) समस्त प्रजा का कल्याण हो (भूमिपाल बलवान् धार्मिक प्रभवतु) राजा बलवान व धार्मिक हो (मघवा काले-काले च सम्यग वितरतु) बादल समय-समय पर जल की वृष्टि करे (व्याधय नाशम् यान्तु) बीमारियॉ क्षय को प्राप्त हो (जीवलोके) जगत् मे (दुर्भिक्ष चौरमारि) दुष्काल, चोरी, मारी, हैजा आदि रोग (जगता क्षणम् अपि मास्मभूत्) जगत् के जीवो को क्षण भर के लिये भी न हो और (सर्वसौख्य प्रदायि जैनेन्द्र धर्मचक्र सतत प्रभवतु) समस्त सुखो को देने वाला जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र निरन्तर प्रवाहशाली बना रहे–सदा प्रवर्तमान, शक्तिशाली बना रहे।

भावार्थ—हे प्रभो ! लोक मे समस्त प्रजा का कल्याण हो, राजा बलवान् और धार्मिक हो, सर्व दिग्दिगन्त मे समय-समय पर मेघ यथायोग्य जलवृष्टि करते रहे, कही भी, कभी भी अतिवृष्टि रूप प्रकोप न हो, मानसिक-शारीरिक बीमारियो का नाश हो, तथा लोक मे जीवो को कभी भी क्षण-मात्र के लिये भी दुष्काल, चोरी, मारी रोग, हैजा, मिरगी आदि न हो। वीतराग जिनेन्द्रदेव का धर्मचक्र जो प्राणीमात्र के लिये सुखप्रदायक है, सदा प्रभावशाली बना रहे। हे विभो ! आपका जिनशासन सर्वलोक मे विस्तृत हो , लोकव्यापी जिनधर्म कल्याणकारी हो।

तद् द्रव्यमव्ययमुदेतु शुभः स देशः,
संतन्यता प्रतपता सतत सकालः ।
भावः स नन्दतु सदा यदनुग्रहेण,
रत्नत्रयं प्रतपतीह मुमुक्षवर्गे ।।१६।।

अन्वयार्थ—(यत् अनुग्रहेण) जिनके अनुग्रह से (इह) यहाँ (मुमुक्षुवर्गे) मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनिजनो मे (रत्नत्रय) रत्नत्रय (अव्ययम्) अस्खलित (प्रसपति) प्रकाशित रहे ऐसा (तद् द्रव्यम्) वह द्रव्य (उदेतु) उत्पन्न होओ (स शुभ देश) वह शुभ देश/शुभ स्थान [मुनियो को मिले] (सतत) सदा उन मुनियो के रत्नत्रय (सन्तन्यता प्रतपता) समीचीन तप की वृद्धि हो (स काल) वह उत्तमकाल [मुनियो को प्राप्त हो] तथा (सदा नन्दतु) सदा आत्मा के निर्मल परिणामो से प्रसन्न हो (स भाव) वह भाव मुनियो को प्राप्त हो।

भावार्थ—जिनके अनुग्रह से मोक्ष के इच्छुक मुनिजनो का निर्दोष रत्नत्रय प्रकाशमान हो वह द्रव्य उत्पन्न हो। अर्थात् निर्दोष आहार, औषध आदि व सयम के उपकरण पिच्छी-कमडलु आदि ऐसा वह शुभ द्रव्य है तथा मुनियो को यह निर्दोष रत्नत्रय की वृद्धि करने वाला द्रव्य जिस क्षेत्र मे प्राप्त हो वह शुभ देश/क्षेत्र है। दिगम्बर मुनियो के सदा उत्तम रत्नत्रय की वृद्धि जिस काल मे हो वह शुभ काल है तथा उन मुनियो के सदा आत्मानन्द की प्राप्ति से प्राप्त निर्मल परिणाम का होना शुभ भाव है। अर्थात् जिनके योग से मुनियो का रत्नत्रय उन्नतिशील बने वही शुभद्रव्य, शुभक्षेत्र, शुभकाल व शुभभाव है ऐसा जानना चाहिये।

अनुष्टुप

प्रध्वस्त घाति कर्माणः, केवलज्ञान भास्करा· ।
कुर्वन्तु जगता शान्ति, वृषभाद्या जिनेश्वराः ।।१७।।

अन्वयार्थ—(प्रध्वस्त-घाति-कर्माण) जिन्होने घातिया कर्मो का क्षय कर दिया है जो (केवलज्ञान-भास्करा) केवलज्ञानरूपी सूर्य से शोभायमान है ऐसे (वृषभाद्या जिनेश्वरा) वृषभ आदि तीर्थकर (जगता शान्ति कुर्वन्तु) ससार के समस्त जीवो को शान्ति प्रदान करे।

भावार्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय इन चार घातिया कर्मो का जिन्होने समूल क्षय कर दिया है तथा जो केवलज्ञान-रूपी सूर्य से सर्वजगत् को प्रकाशित करते हुए शोभा को प्राप्त है ऐसे वृषभनाथ को आदि लेकर तीर्थकर महावीर पर्यन्त चतुर्विंशति तीर्थकर जगत् के समस्त प्राणियो को शान्ति, सुख, क्षेम, कुशल प्रदान करे।

क्षेपक श्लोकानि

शाति शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भाविताना ।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभवानां,
शान्तिः स्वभाव महिमानमुपागतानाम् ।। १ ।।

अन्वयार्थ—(जिनेश्वर शासनानाम्) जिनेन्द्रदेव की आज्ञा को (शिरोधृत) मस्तक पर धारण करने वालो को (शान्ति) शान्ति प्राप्त

हो। (निरन्तर तपोभवभावितानाम्) अखडतपश्चरण कर मोक्ष की आराधना करने वालो को (शान्ति) शान्ति प्राप्त हो/कल्याण हो। (कषायजयजृंभि-तवैभवानाम्) कषायो को जीतकर आत्मिक वैभव से शोभायमान मुनियो को (शान्ति) समता रस की प्राप्ति हो (स्वभावमहिमानमुपागतानाम्) आत्मा के स्वभाव की महिमा को प्राप्त ऐसे यतियो को (शान्ति) सिद्ध अवस्था प्राप्त हो/उनका कल्याण हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवान् ! जिनशासन की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले भव्यजीवो को शान्ति/सुख की प्राप्ति हो। अखडरूप से तप मे लीन मोक्ष के इच्छुक मुनियो को शान्तरस रूप शुक्लध्यान की प्राप्ति हो। कषायो को जीतकर आत्मानन्द को प्राप्त करने वालो को समतारस-रूप शान्ति प्राप्त हो तथा जो आत्मस्वभाव की महिमा को प्राप्त कर चुके है ऐसे यतियोको शाश्वतशान्तिरूप सिद्धपद की प्राप्ति हो।

जीवन्तु संयम सुधारस पान तृप्ता,
नदतु शुद्ध सहसोदय सुप्रसन्नाः।
सिद्ध्यंतु सिद्धि सुख सगकृताभियोगाः,
तीव्र तपन्तु जगतां त्रितयेऽर्हदाज्ञा ।। २ ।।

अन्वयार्थ—(सयम सुधारस पानतृप्ता) सयमरूपी अमृत को पीकर तृप्त हुए मुनिवर्ग (जीवतु) सदा जीवन्त रहे। (शुद्ध सहसोदय सुप्रसन्ना) शुद्ध आत्मतत्त्व की जागृति से प्रसन्नता को प्राप्त मुनिजन (नन्दन्तु) आनन्द को प्राप्त हो। (सिद्धि सुख-सगकृताभियोगा) सिद्धि लक्ष्मी के सुख के लिये किया है पुरुषार्थ/उद्योग जिनने वे उसके माहात्म्य से (सिद्धयन्तु) सिद्धि को प्राप्त हो। (त्रितये) तीन लोक मे (अर्हत् आज्ञा) अर्हन्त-देव की आज्ञा उनका शासन (जगता) सर्वत्र/पृथ्वीतल पर (तीव्र तपन्तु) विशेष प्रभाव प्रकट हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन् ! सयमरूपी अमृत का पान करने से पूर्ण तृप्त ऐसा मुनिसमूह सदा जीवन्त रहे अर्थात् पृथ्वी पर सदा मुनिजनो का विचरण होता रहे। आत्मानन्द के उदय से सदा प्रसन्न रहने वाले यतिगण शाश्वत आनन्द को प्राप्त हो। मुक्ति लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये उपसर्ग, परिषहो को सहनकर घोर तपश्चरण का उद्योग करने मे तत्पर

मुनिराज सिद्धिसुख को प्राप्त हो, तथा अर्हन्त देव का शासन तीन लोक मे सम्पूर्ण पृथ्वीमडल पर विशेष प्रभावना को प्राप्त हो।

शान्तिः शं तनुतां समस्त जगत·, संगच्छता धार्मिकै ।
श्रेयः श्री परिवर्धता नयधरा, धुर्यो धरित्रीपति· ।।
सद्विद्यारसमुद्गिरन्तु कवयो, नामाप्यघस्यास्तु मा ।
प्रार्थ्य वा कियदेक एव, शिवकृद्धर्मो जयत्वर्हताम् ।। ३ ।।

अन्वयार्थ—(शाति) शान्तिनाथ तीर्थकर (समस्त जगत तनुता) सम्पूर्ण जगत् के प्राणियो को (श सगच्छता) सुखी करो (धार्मिकै) धर्मात्मा जीवो को (श्रेय श्री परिवर्धता) कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्ति लक्ष्मी प्रदान करो (नयधरा) नीति की जगत् मे बाढ हो (धरित्रीपति धुर्यो) राजा पराक्रमी-शूर-वीर हो (सद्वियारसम् उद्गिरन्तु कवयो) विद्वद्जनो मे समीचीन/उत्तम विद्या का [लोक मे] प्रसार करो (नाम अपि अघस्य आस्तु मा) पाप का नाम भी देखने का न रहे/पाप का समूल नाश हो। (वा) और (प्रार्थ्य कियत्) माँगने के लिये क्या (एक एव) एक ही हो (अर्हताम्) जिनेश्वर का (शिवकृत् धर्म) मोक्षदायक धर्म (जयतु) जयवन्त हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ प्रभो। तीन लोक के समस्त प्राणी सुखी हो, धर्मात्मा जीवो को कल्याणकारी स्वर्ग-मुक्त लक्ष्मी प्राप्त हो, नीति न्याय का घर-घर मे प्रचार हो, पृथ्वी का राजा शूर-वीर हो। विद्वान् लोग उत्तम शिक्षा का प्रसार करे जिससे कोष मे पाप का नाम भी न रहे/पृथ्वी पर पाप का नाम भी न रहे और अन्त मे क्या माँगू, बस एक ही माँगता हूँ, वह यह कि "वीतराग जिनदेव/अर्हन्त भगवन्त का मोक्षदायक "जिनधर्म" सदा पृथ्वी-मडल पर जयवन्त रहे।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! संतिभत्ति-काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, पञ्च-महा-कल्लाण-सपण्णाणं, अट्ठमहापाडिहेर-सहियाणं, चउतीसातिसय-विसेस-संजुत्ताणं, बत्तीस-देवेंद-मणिमय मउड मत्थय महियाणं बलदेव वासुदेव चक्कहर रिसि-मुणि-जदि-अणगारोव गूढाण, थुइ-सय-सहस्स-णिलयाणं, उसहाइ-वीर-पच्छिम-मगल-महापुरिसाण णिच्चकालं, अंचेमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाओ,

सुगइगमण, समाहि-मरण जिण-गुण सम्पत्ति होदु मज्झ ।

अर्थ—(भते) हे भगवन् ! मैने (सतिभत्ति काउस्सग्गो कओ) शान्तिभक्ति सबधी कायोत्सर्ग किया (तस्सालोचेउ इच्छामि) तत्सबधी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो (पचमहाकल्लाण-सपण्णाण) पाँच महाकल्याणको से सम्पन्न हे (अट्ठमहा-पाडिहेरसहियाण) आठ महाप्रातिहार्यो से सहित है, (चउतीसातिसय-विसेस-सजुत्ताण) ३४ अतिशय विशेषो से सयुक्त है (बत्तीस-देवेद-मणिमय-मउड-मत्थय महियाण) बत्तीस इन्द्रो के मणिमय मुकुटो से युक्त मस्तक से पूजित (बलदेव-वासुदेव-चक्कहर-रिसि-मुणि-जदि-अणगारोव गूढाणं) बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, मुनि, यति, और अनगारो से परिवृत है और (थुइसयसहस्स-णिलयाण) लाखो स्तुतियो के घर है, ऐसे (उसहाइ-वीर-पच्छिम-मगल-महापुरिसाण) वृषभदेव को आदि ले महावीरपर्यन्त मङ्गलमय महापुरुषो की मै (णिच्चकाल) नित्यकाल (अचेमि, पूजेमि, वदामि, णमस्सामि) अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु खो का क्षय हो, (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो (जिणगुणसपत्ति) जिनेन्द्रदेव के गुण रूप सम्पत्ति (होऊ मज्झ) मुझे प्राप्त हो।

भावार्थ—हे शान्तिनाथ भगवन् ! मैने शान्तिभक्ति का कायोत्सर्ग पूर्ण किया अब मै उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। जो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणक के स्वामी है, आठ प्रातिहार्यो व चौतीस अतिशयो से शोभायमान है, भवनवासी के १०, व्यन्तरो के ८, वैमानिक देवो के १२, ज्योतिषी देवो के सूर्य-चन्द्र २, इन ३२ देवो से वन्दनीय है, बलदेव, नारायण, चक्रवर्ती, ऋषि, यति, मुनि और अनगारो से परिवृत है और लाखो स्तुतियो से स्तुत्य है, एक वृषभदेव से महावीर-पर्यन्त २४ तीर्थकरो की जो मगलरूप है, मै सदा उनकी अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। मेरे दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, उत्तम गति प्राप्त हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव क गुण रूप अनन्त गुणा की सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।

श्री समाधि भक्ति

प्रिय भक्तिः

स्वात्माभिमुख-संवित्ति, लक्षण श्रुत-चक्षुषा,
पश्यन्पश्यामि देव त्वा केवलज्ञान-चक्षुषा ।।१।।

अन्वयार्थ—(देव !) हे वीतराग देव (स्व-आत्मा-अभिमुख-सवित्ति-लक्षण) अपनी आत्मा के सवेदन रूप लक्षण से युक्त (त्वा) आपको (श्रुत-चक्षुषा) श्रुतज्ञानरूपी चक्षु से (पश्यन्) देखते हुए (केवलज्ञान चक्षुषा पश्यामि) अब आपको केवलज्ञान चक्षु से मण्डित देख रहा हूँ।

भावार्थ—हे वीतराग जिनेन्द्र देव स्वकीय आत्मा के सवेदन रूप लक्षण से युक्त अथवा स्वसवेदन लक्षण युक्त आपको श्रुतज्ञान के माध्यम से देखते हुए, आपके सामान्य स्वरूप का चिन्तन करता हुआ, मै आज आपकी साक्षात् केवलज्ञान मण्डित अवस्था का ही दर्शन कर रहा हूँ। ऐसा मुझे अनुभव मे आ रहा है। अथवा

जो भव्य जीव श्रुतज्ञान रूप चक्षु से आगम के अनुसार आपकी आराधना करता है, वह केवलज्ञानरूपी नेत्र से सर्वलोक का अवलोकन करता है अर्थात् केवलज्ञान को अवश्य प्राप्त करता है।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः, सगति सर्वदार्यैः,
सद्वृत्ताना गुणगण-कथा, दोषवादे च मौनम्।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे,
सपद्यन्ता मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ।।२।।

अन्वयार्थ—(शास्त्र-अभ्यास) शास्त्रो का अभ्यास (जिनपतिनुति) जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति/ नमस्कार (सर्वदा) हमेशा (आर्यैं सगति) सज्जन, श्रेष्ठ आर्य पुरुषो के साथ समागम (सद्वृत्ताना गुण-गणकथा) सदाचारी/सयमियो/सम्यक्चारित्रधारियो के गुणो की चर्चा (दोषवादे च मौन) और उन चारित्रधारियो के दोष वर्णन करने मे मौन (सर्वस्यापि प्रिय-हित-वच) समस्त जीवो मे प्रिय-हितकर वचन (च) और (आत्म-तत्त्वे भावना) आत्मतत्त्व की भावना (एते) ये सब बाते (यावत् अपवर्ग) जब तक मुक्ति/मोक्ष प्राप्त होता है तब तक (मम) मुझे (भवभवे) प्रत्येक भव मे (सम्पद्यन्ताम्) प्राप्त होती रहे।

भावार्थ—हे जिनेन्द्रदेव । मै जब तक मुक्त अवस्था को प्राप्त न हो जाऊँ तब तक प्रत्येक भव मे मै जिनेन्द्रकथित सच्चे आगम का अभ्यास करता रहूँ। तब तक आपके चरणो मे नतमस्तक हुआ, आपकी स्तुति करता रहूँ, हमेशा साधु मनुष्यो की, आर्य पुरुषो की सगति करता रहूँ। आपके चरणो की आराधना का एकमात्र फल यही हो कि रत्नत्रयधारियो, सदाचारियो के दोषो के कथन मे मै मौन रहूँ। प्राणीमात्र मे हितकर-प्रिय वचनो से वार्तालाप करूँ और अन्त मे यही प्रार्थना है कि मै अपने आत्मतत्त्व की भावना मुक्ति-पर्यन्त भाता रहूँ।

जैनमार्गरुचिरन्यमार्ग निर्वेगता, जिनगुणस्तुतौ मतिः ।
निष्कलंक विमलोक्ति भावनाः, संभवन्तु मम जन्म-जन्मनि ।।३।।

अन्वयार्थ—(जैन-मार्ग-रुचि) जिनेन्द्रकथित मुक्तिमार्ग मे श्रद्धा, (अन्य-मार्ग-निर्वेगता) अन्य एकान्त मिथ्यामार्ग मे विरक्ति, अश्रद्धा, (जिनगुण-स्तुतौ-मति) जिनेन्द्रदेव गुणो की स्तुति करने मे बुद्धि (निष्कलङ्क-विमल-उक्ति-भावना) निर्दोष, निर्मल, जिनेन्द्रकथित वाणी–जिनवाणी मे भावना (मम) मुझे (जन्म-जन्मनि) जन्म-जन्मो-प्रत्येक भव मे (सम्भवन्तु) प्राप्त होती रहे।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो । मुक्तिपर्यन्त प्रत्येक भव मे मुझ मे जिनेन्द्रकथित रत्नत्रय-रूप मुक्ति मार्ग के प्रति अविचल श्रद्धा बनी रहे। एकान्त, मिथ्यामतो मे या ससार-मार्ग मे मेरी रुचि अत्यन्त दूर रहे। मेरी बुद्धि सदा जिनेन्द्रदेव के अनुपम अतुल गुणो के स्तवन मे लगी रहे तथा निर्दोष, निष्कलक, निर्मल ऐसी जिनेन्द्रवाणी—जिनवाणी मुझे जन्म-जन्म मे प्राप्त होती रहे। यह प्रार्थना करता हूँ।

गुरुमूले यति-निचिते-चैत्यसिद्धान्त वार्धिसद्घोषे ।
मम भवतु जन्म जन्मनि, सन्यसन समन्वितं मरणम् ।।४।।

अन्वयार्थ—हे भगवन् । (जन्म-जन्मनि) प्रत्येक जन्म मे (मम) मेरा (सन्यसन-समन्वित मरणम्) सन्याससहित मरण (यति निचिते) यतियो के समूह मे (गुरुमूले) गुरु के पादमूल मे और (चैत्य-सिद्धान्त-वार्धि -सद्घोषे) जिनप्रतिमा तथा जैन सिद्धान्त रूप समुद्र के जयघोष मे हो।

भावार्थ—हे वीतराग जिनदेव । मेरी एकमात्र यही प्रार्थना है कि जब तक मुक्ति की प्राप्ति न हो तब तक मेरा भव-भव मे ऐसे समागम मे समाधिपूर्वक मरण हो जहाँ वीतरागी दिगम्बर साधुओ का समूह विराजमान हो, गुरु का पादमूल हो, व जिनप्रतिमा मेरे सामने हो तथा जिनेन्द्रकथित जैन सिद्धान्तरूपी समुद्र का जयघोष हो रहा हो ।

जन्मजन्मकृत पाप, जन्मकोटि समार्जितम्,
जन्ममृत्युजरामूलं, हन्यते जिनवंदनात् ।।५।।

अन्वयार्थ—(जिन-वन्दनात्) जिनेन्द्रदेव की वन्दना करने से (जन्म कोटि समार्जितम्) करोडो जन्मो मे सचित किया गया तथा (जन्म-मृत्यु-जरामूल) जन्म-मृत्यु और वृद्धावस्था का मूल कारण ऐसा (जन्म-जन्म-कृत पाप) अनेक जन्मो मे किया हुआ पाप (हन्यते) नष्ट हो जाता है ।

भावार्थ—हे प्रभो । आपके वन्दन, दर्शन की महिमा अपार है । आपके चरण-कमलो की वन्दना करने से भव्यजीवो के अनेको जन्मो से सचित पाप, जो जन्म-जरा-मृत्युरूपी तापत्रय के मूल हेतु है, एक क्षण मात्र मे क्षय को प्राप्त हो जाते है ।

आबाल्याज्जिनदेवदेव । भवतः, श्री पादयोः सेवया,
सेवासक्तविनेयकल्पलतया, कालोऽद्ययावद्गतः ।
त्वा तस्याः फलमर्थये तदधुना, प्राणप्रयाणक्षणे,
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने, कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम ।।६।।

अन्वयार्थ—(देव,देव जिन ।) हे देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान् । (मम) मेरा (आबाल्यात्) बाल्य-अवस्था से लेकर (अद्य यावत्काल) आज तक का काल (सेवा-आसक्त-विनेय-कल्पलतया) सेवा मे समर्पित भक्तजनो के लिये कल्पबेल समान (भवत) आपके (श्रीपदयो) श्री चरणो की (सेवया) सेवा-आराधना पूर्वक (गत) बीता है (अधुना) इस समय (त्वा) आप श्री से (तस्या फल अर्थये) उस सेवा-आराधना के फल की याचना करता हूँ । (तद्) वह यह कि (प्राण-प्रयाण-क्षणे) प्राणो के विसर्जन काल—मृत्यु समय मे (मम कण्ठ) मेरा कण्ठ (त्वन्नाम-प्रतिबद्ध-वर्ण-पठने) आपके नाम से सम्बद्ध वर्णो के पढ़ने मे (अकुण्ठ अस्तु) अवरुद्ध न हो—सामर्थ्यवान बना रहे ।

भावार्थ—हे वीतराग, देवाधिदेव, जिनेन्द्र प्रभो! मैने बाल्यकाल से लेकर आजतक का समय आप वीतराग प्रभु की आराधना, अर्चना, वन्दना मे व्यतीत किया। आपकी आराधना, श्रद्धावनत भक्तो को इच्छित फल देने वाली कल्पलता है। आपकी आराधना आराधक को इष्ट का सयोग कराती है। हे प्रभो! आज मै आपके श्रीचरणो मे उस भक्ति और आराधना का अनुपम फल माँगने आया हूँ। वह मेरी याचना यह है कि "हे प्रभो! प्राणो के विसर्जन काल मे, मृत्यु की अन्तिम बेला मे मेरा कण्ठ आपके गुणो का स्मरण करता रहे। अर्थात् अन्तिम क्षण मे मै आपके नाम का उच्चारण करते हुए प्राणो का त्याग करूँ। मेरा कण्ठ एक क्षण के लिये भी अवरुद्ध न हो। "हो सिद्ध-सिद्ध मुख मे जब प्राण तन से निकले"। बस यही भावना है।

तवपादौ मम हृदये, मम हृदयं तव पदद्वये लीनम्।
तिष्ठतु जिनेन्द्र! तावद्यावन्निर्वाण संप्राप्तिः ।।७।।

अन्वयार्थ—(जिनेन्द्र!) हे जिनेन्द्र (यावत्) जबतक (निर्वाणसम्प्राप्ति) निर्वाण की प्राप्ति हो (तावत्) तबतक (तव पादौ) आपके दोनो चरण-कमल (मम हृदये) मेरे हृदय मे व (मम हृदय) मेरा हृदय (तव-पद-द्वये) आपके दोनो चरण-कमलो मे (लीनम्) लीन हो (तिष्ठतु) स्थित रहे।

भावार्थ—हे देवाधिदेव जिनेन्द्र! मुझे जबतक निर्वाणपद की प्राप्ति हो तबतक आपके दोनो चरण-कमल मेरे हृदय स्थित हो तथा मेरा हृदय भी आपके चरण-कमलो मे समर्पित रहे। मेरा हृदय आपके चरणो मे ही स्थित रहे। अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति पर्यन्त मै आपका ही ध्यान करता रहूँ, बस यही प्रार्थना है।

एकापि समर्थेयं, जिनभक्ति-दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्तिश्रियं कृतिनः ।।८।।

अन्वयार्थ—(कृतिन) कर्तव्यपरायण, जिनभक्त की (इयम्) यह (एक अपि जिनभक्ति) एकमात्र, एक ही जिनभक्ति (दुर्गति निवारयितुम्) नरकादि दुर्गतियो का निवारण करने के लिये (पुण्यानि पूरयितु) पुण्यो को पूर्ण करने के लिये (च) और (मुक्ति श्रिय दातु) मुक्ति लक्ष्मी को देने के लिये (समर्था) समर्थ है, पर्याप्त है।

भावार्थ—जिस कर्तव्यशील मानव ने देव-शास्त्र-गुरु के चरणो मे समर्पण दिया है जो षट् आवश्यको को पालन करने वाला है उसकी एकमात्र जिनेन्द्रभक्ति ही उसको नरक-तिर्यञ्च रूप अशुभ गतियो से बचाने के लिये, तीर्थकर, चक्रवर्ती, देवेन्द्र जैसे महापुण्यो को पूर्ण करने तथा मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कराने मे पर्याप्त है। अर्थात् एक ही जिनभक्ति समस्त स्वर्ग-मोक्ष सुखो को देने मे समर्थ है।

पञ्चअरिंजयणामे पञ्च, य मदि-सायरे जिणे वन्दे ।
पञ्च जसोयरणामे, पञ्चय सीमदरे वन्दे ।।९।।

अन्वयार्थ—मैं पञ्चमेरु सम्बन्धी (पच अरिंजयणामे) अरिंजय नाम के पाँच (य) और (मदिसायरे पच) मतिसागर नाम के पाँच (जिणे वदे) जिनेन्द्र की वन्दना करता हूँ (य) और (पच जसोयरणामे) यशोधर नामके पाँच तथा (पच सीमदरे) सीमदर नाम के पाँच (जिणे वदे) तीर्थकरो की वन्दना करता हूँ।

भावार्थ—पाँच मेरु सबधी अरिंजय नाम के पाँच, मतिसागर नाम के पाँच, यशोधर नाम के पाँच तथा सीमदर नाम के पाँच ऐसे बीस तीर्थकरो की वन्दना करता हूँ।

रयणत्तय च वदे, चउवीस जिणे च सव्वदा वदे ।
पञ्चगुरूणा वदे, चारणचरण सदा वदे ।।१०।।

अन्वयार्थ—(च) और मै (रयणत्तय वदे) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय को नमस्कार करता हूँ (च) और (चउवीसजिणे सव्वदा वदे) वृषभ आदि वीरान्त चौबीस तीर्थकरो की सदा वन्दना करता हूँ (पच गुरूणा वदे) पञ्च-परमेष्ठी रूप पञ्च महागुरुओ का सदा वन्दन करता हूँ तथा (चारण-चरण सदा वदे) चारण ऋद्धि धारक मुनियो के चरणो की सदा आराधना करता हूँ।

भावार्थ—हे वीतराग देव! मै सदा रत्नत्रय की आराधना/वन्दना करता हूँ, प्रथम वृषभ तीर्थकर से अन्तिम महावीरपर्यन्त चौबीसो तीर्थकरो को नमस्कार करता हूँ, अर्हत्-सिद्ध आचार्य-उपाध्याय व सर्वसाधु पञ्चपरमेष्ठी रूप पञ्च महागुरुओ की सदा वन्दना करता हूँ तथा चारण ऋद्धि के धारक युगल मुनियो के चरणो की सदा आराधना, वन्दना-नमन, करता हूँ।

अर्हमित्यक्षर ब्रह्म, वाचक परमेष्ठिन: ।
सिद्धचक्रस्य सद्बीज, सर्वत. प्रणिदध्महे ।।११।।

अन्वयार्थ—हम (ब्रह्म-वाचक) शुद्ध आत्म स्वरूप का कथन करने वाले (सिद्ध-चक्रस्य परमेष्ठिन) सिद्ध परमेष्ठी के समूह के अथवा सिद्ध परमेष्ठी के (सद्बीज) समीचीन उत्तम बीजाक्षर (अर्हम्) अर्हम् (इति अक्षर) इस अक्षर का (सर्वत) पूर्ण रूप से (प्रणिदध्महे) ध्यान करते है ।

भावार्थ—हम सिद्ध परमेष्ठी के ब्रह्मवाचक अर्हम् बीजाक्षर का सदा ध्यान करते है । तात्पर्य "अर्हम्" एक बीजाक्षर है । यह बीजाक्षर आत्मा के शुद्ध स्वरूप का वाचक है तथा शुद्ध आत्मतत्त्व की प्राप्ति करने वाले अनन्त सिद्धो का वाचक है । ऐसे इस बीजाक्षर का हम ध्यान करते है । [समस्त भव्यात्माओ को भी इसका ध्यान अवश्य करना चाहिये ।]

कर्माष्टकविनिर्मुक्त, मोक्षलक्ष्मीनिकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि गुणोपेत, सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ।।१२।।

अन्वयार्थ—(कर्माष्टक-विनिर्मुक्त) अष्टकर्मो से पूर्ण रहित (मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम्) मुक्ति लक्ष्मी के घर तथा (सम्यक्त्व-आदि गुण-उपेत) सम्यग्दर्शन आदि गुणो से युक्त (सिद्धचक्र) सिद्ध परमेष्ठियो के समूह को (नमामि) मै नमस्कार करता हूँ ।

भावार्थ—जिन्होने ज्ञानावरण कर्म के क्षय से अनन्तज्ञान, दर्शनावरण के क्षय से अनन्तदर्शन, वेदनीय कर्म के क्षय से अव्याबाधत्व, मोहनीय के क्षय से अनन्तसुख, आयु के क्षय से अवगाहनत्व, नामकर्म के क्षय से सूक्ष्मत्व, गोत्रकर्म के क्षय से अगुरुलघुत्व तथा अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त वीर्य इस प्रकार आठ कर्मो के क्षय से आठ महागुणो को प्रकट कर लिया है, जो मोक्ष लक्ष्मी के घर, आलय, स्थान है ऐसे सिद्ध समूह, अनन्त सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तो को मै नमस्कार करता हूँ ।

आकृष्टि सुरसंपदां विदधते, मुक्तिश्रियो वश्यताम्,
उच्चाट विपदा चतुर्गतिभुवा, विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो, मोहस्य सम्मोहनम्,
पायात्पञ्च नमस्क्रियाक्षरमयी, साराधना देवता ।।१३।।

अन्वयार्थ—(या) जो (सुरसम्पदा आकृष्टि) देवो की विभूति का आकर्षण (मुक्तिश्रिय वश्यता) मुक्ति लक्ष्मी का वशीकरण (चतुर्गति भुवा विपदाम् उच्चाट) चारो गतियो मे होने वाली विपत्तियो का उच्चाटन-नाश (आत्मा-ऐनसा-विद्वेष) आत्मा सबधी पापो का विद्वेष-अभाव (दुर्गमन-प्रति प्रयतत स्तम्भ) दुर्गतियो मे जाने वालो का स्तभन--रोकथाम और (मोहस्य समोहन) मोह का समोहन (विदधते) करती है (सा पञ्चनमस्क्रिया-अक्षरमयी) वह पञ्चपरमेष्ठी नमस्कार मन्त्र के अक्षर रूप (आराधना देवता) आराधना देवी (पायात्) मेरी रक्षा करे ।

भावार्थ—पञ्चपरमेष्ठी वाचक अक्षरो से बना हुआ णमोकार मन्त्र महा-आराध्य मत्र है । इस महामन्त्र की अपूर्व महिमा है । यह एक ही मत्र आकर्षण, वशीकरण, उच्चाटन, विद्वेषण, स्तम्भन व सम्मोहन मत्र है । इस महामत्र की आराधना से देवो की विभूति का आकर्षण होता है अत यह आकर्षण मत्र है । आराधक के लिये मोक्ष लक्ष्मी वश हो जाती है अत यह वशीकरण मन्त्र है । इसकी आराधना से आराधक के चतुर्गति सबधी विपत्तियो का नाश होता है अत यह उच्चाटन मन्त्र है । इस मन्त्र का आराधक आत्मा के द्वारा होवे राग-द्वेष-मोह आदि पापो को करने से भयभीत हो, उनमे अरति भाव को प्राप्त होता है अत यह विद्वेषण मन्त्र है । इस मत्र की आराधना करने वालो का नरक-तिर्यञ्च दुर्गतियो को जाने का द्वार बन्द हो जाता है, अत यह स्तम्भन मन्त्र है । इस मत्र के आराधक पुरुष का मोह स्वय मूर्च्छित हो जाता है अत समोहन मन्त्र है । ऐसा महामन्त्र हमारी रक्षा करे ।

अनन्तानन्त ससार, सततिच्छेद कारणम् ।
जिनराजपदाम्भोज, स्मरण शरण मम ।।१४।।

अन्वयार्थ—(अनन्तानन्त ससार-सन्ततिच्छेदकारणम्) अनन्तानन्त ससार की परम्परा को छेदने का कारण (जिनराज-पदाम्भोज-स्मरण) जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलो का स्मरण ही (मम) मेरा (शरण) शरण है ।

भावार्थ—वीतराग जिनेन्द्रदेव के चरण-कमलो का स्मरण, स्तवन, वन्दन, प्रणमन ही पञ्चपरावर्तन रूप अनन्त ससार की अनादि-कालीन

परम्परा का विच्छेद करने म समर्थ है। हे प्रभो ! आप के चरण-कमल ही मेरे लिये एकमात्र शरण है। ये ही मेरे रक्षक है। मेरी भव-बाधा को हरने वाले भी ये ही है।

अन्यथा शरण नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष-रक्ष जिनेश्वर ! ।।१५।।

अन्वयार्थ—(जिनेश्वर !) हे जिनदेव ! (मम) मेरे (अन्यथा) अन्य प्रकार से (शरण न अस्ति) शरण-रक्षा नही है (त्वम् एव शरण) आप ही मेरे लिये शरण है। (तस्मात्) इसलिये (कारुण्यभावेन) करुणा भाव से (रक्ष-रक्ष) मेरी रक्षा कीजिये।

भावार्थ—हे वीतराग स्वामिन् ! इस दु खद ससार मे आप ही मेरे शरण है, आप ही मेरे रक्षक है। आपको छोड़कर मेरा कोई अन्य शरण नही, रक्षक नही। प्रभो ! अत मुझ पर करुणा कीजिये। कारुण्य भाव से मुझे शरण दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।

नहित्राता नहित्राता, नहित्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति ।।१६।।

अन्वयार्थ—(जगत्त्रये) तीनो लोको मे (नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता) आपके सिवाय अन्य कोई रक्षक नही है, रक्षक नही है, रक्षक नही है (वीतरागात् पर देव) वीतराग से भिन्न अन्य कोई देव (न भूतो) भूतकाल मे नही हुआ (न भविष्यति) न भविष्य मे होगा।

भावार्थ—हे वीतराग प्रभो ! तीनो लोको मे आपको छोड़कर अन्य कोई भी मेरा रक्षक नही है, नही है, नही है। वीतराग देव ही महादेव/ देवाधिदेव है। इनसे बढकर अन्य कोई देव न भूतकाल मे हुआ, न वर्तमान मे कोई है और न ही भाविकाल मे कोई होगा।

जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे ।।१७।।

अन्वयार्थ—(भवे भवे) भव-भव मे (दिने-दिने) प्रतिदिन (मे) मेरी (जिनेभक्ति जिनेभक्ति जिनेभक्ति) जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो, जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो, जिनेन्द्रदेव मे भक्ति हो। (सदा मे अस्तु, सदा मे अस्तु, सदा मे अस्तु) मेरी भक्ति जिनदेव मे सदा हो, सदा हो, सदा हो।

भावार्थ—हे प्रभो ! मेरी वीतराग देव, देवाधिदेव मे भक्ति प्रतिदिन हो, भव-भव मे हो, सदा काल हो। मै सदाकाल आपकी भक्ति मे भावना करता रहूँ।

याचेऽह याचेऽह, जिन ! तव चरणारविंदयोर्भक्तिम् ।
याचेऽह याचेऽह, पुनरपि तामेव तामेव ।।१८।।

अन्वयार्थ—(जिन !) हे जिनदेव ! (अहम्) मै (तव) आपके (चरण-अरविन्दयो भक्तिम्) चरण-कमलो की भक्ति की (याचेऽह) याचना करता हूँ (याचेऽह याचेऽहम्) याचना करता हूँ। याचना करता हूँ। (पुनर् अपि) बारबार (ताम् एव ताम् एव) उस ही आपके चरणो की भक्ति की (याचेऽहम्) याचना करता हूँ (याचेऽहम्) याचना करता हूँ।

भावार्थ—हे प्रभो ! मै बारम्बार आपके चरण-कमलो की भक्ति की याचना करता हूँ, उसीकी प्राप्ति की बार-बार इच्छा करता हूँ। बस आपके चरण-कमलो मे लगन लगी रहे यही याचना करता हूँ।

विघ्नौघाः प्रलय यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगा· ।
[1]विषो निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ।।१९।।

अन्वयार्थ—(स्तूयमाने जिनश्वरे) जिनेश्वर की स्तुति करने पर (विघ्नौघा) विघ्नो का समूह तथा (शाकिनी-भूत-पन्नगा) शाकिनी, भूत, सर्प (प्रलय यान्ति) नष्ट हो जाते है, इसी तरह (विष निर्विषता याति) विष निर्विषता को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—जिनेश्वरदेव की स्तुति करने से विघ्नो का जाल समाप्त हो जाता है, शाकिनी, भूत, सर्प आदि की बाधाएँ क्षण भर मे क्षय को प्राप्त हो जाती है तथा भयानक विष भी दूर हो जाता है।

अञ्चलिका

इच्छामि भंते ! समाहिभत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं [2]रयणत्तयसरूवपरमप्पज्झाणलक्खणं समाहिभत्तीये णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुणसंपत्ति होउ, मज्झं ।

१ विष पाठ भी है, २ रयणत्तयपरूव पाठ भी है।

अन्वयार्थ—(भते !) हे भगवन् ! मैने (समाहिभत्ति-काउस्सग्गो कओ) समाधिभक्ति सम्बधी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ) उस सम्बन्धी आलोचना करने की (इच्छामि) इच्छा करता हूँ (रयणत्तयपरूव-परमप्पज्झाणलक्खण-समाहिभत्तीए) इस समाधिभक्ति मे रत्नत्रय को निरूपण करने वाले शुद्ध परमात्मा के ध्यान रूप शुद्ध आत्मा की मै (णिच्चकाल अचेमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि) नित्यकाल, सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वदना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ (दुक्खक्खओ) मेरे दु खो का क्षय हो (कम्मक्खओ) कर्मो का क्षय हो (बोहिलाहो) रत्नत्रय की प्राप्ति हो (सुगइगमण) उत्तम गति मे गमन हो (समाहिमरण) समाधिमरण हो तथा (जिणगुणसपत्ति होऊ मज्झ) जिनेन्द्रदेव के गुणो-रूपी सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! मैने समाधिभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। समाधिभक्ति मे रत्नत्रय के प्ररूपक शुद्ध परमात्मा के ध्यानरूप विशुद्ध आत्मा की मै सदा अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन व समाधिमरण हो तथा वीतराग जिनदेव के महागुणरूपी सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

।। इति- समाधिभक्ति ।।

निर्वाणभक्ति

आर्या

विबुधपति-खगपतिनरपतिधनदोरगभूतयक्ष पतिमहितम् ।
अतुलसुखविमलनिरुपमशिवमचलमनामय हि सप्राप्तम् ।।१।।
कल्याणै:-सस्तोष्ये पञ्चभिरनघ त्रिलोक परमगुरुम् ।
भव्यजनतुष्टिजननैर्दुरवापै. सन्मति भक्त्या ।।२।।

अन्वयार्थ—जो (विबुधपति-खगपति-नरपति-धनद-उरग-भूत-यक्षपति-महितम्) देवेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत व यक्षो के स्वामियो से पूजे जाते है (अचलम्) अविनाशी (अनामय) निरोगता (अतुल सुख) अतुल्य सुख रूप (विमल-निरुपमशिवम्) निर्मल, उपमातीत, जो मोक्ष है उसको (सम्प्राप्तम्) सम्यक् प्रकार से प्राप्त है (अनघ) जो निर्दोष है (त्रिलोक परमगुरुम्) तीन लोको के श्रेष्ठ गुरु है ऐसे (सन्मति नत्वा) भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार करके (भव्यजन-तुष्टि-जननै) भव्यजनो को सन्तोष उत्पन्न करने वाले (दुरवापै) अत्यन्त दुर्लभ (पञ्चभि कल्याणै) गर्भादि पॉच कल्याणको के द्वारा (सस्तोष्ये) उन वीरप्रभु की अच्छी तरह से स्तुति करूँगा ।

भावार्थ—जो महावीर भगवान् इन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती, कुबेर, धरणेन्द्र, भूत व यक्षो के स्वामियो से पूज्य है। मुक्ति पद से लौटकर ससार मे नही आयेंगे अत अचल है, जो शारीरिक, मानसिक समस्त रोगो से रहित होने से अनामय है, जिनका अतीन्द्रिय सुख तुलनातीत है, अत जो अतुल्य है, जिनके सुख की ससार मे कोई उपमा न होने से जो उपमातीत है, जो मुक्ति पद प्राप्त हो चुके है, जो कलक रहित है, वीतरागी होने से जो तीनो लोको के उत्तम गुरु है, ऐसे वीरप्रभु को नमस्कार करके भव्य जीवो के सतोष के प्रदायक ऐसे अत्यन्त दुर्लभ गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान व मोक्ष कल्याणको के द्वारा मै उन वीरप्रभु की अच्छी तरह से स्तुति करूँगा ।

आषाढसुसितषष्ठ्या हस्तोत्तरमध्यमाश्रितेशशिनि ।
आयात: स्वर्गसुखं भुक्त्वापुष्पोत्तराधीश: ।।३।।

सिद्धार्थनृपतितनयो भारतवास्ये विदेहकुण्डपुरे ।
देव्यां प्रियकारिण्यां सुस्वप्नान् सप्रदर्श्य विभुः ।।४।।

अन्वयार्थ—(पुष्पोत्तर-अधीश) पुष्पोत्तर विमान का स्वामी (विभु) भगवान महावीर का जीव (आषाढ-सुसित-षष्ठ्या) आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन (शशिनि) चन्द्रमॉ के (हस्तोत्तर-मध्यम-आश्रिते) हस्तोत्तरा नक्षत्र के मध्य स्थित होने पर (स्वर्गसुख-भुक्त्वा) स्वर्ग के सुखो को भोगकर (भारतवास्ये) भारतवर्ष मे (विदेहकुण्डपुरे) विदेह क्षेत्र के कुण्डपुर नगर मे (सु-स्वप्नान् सप्रदर्श्य) उत्तम स्वप्नो को दिखाकर (प्रियकारिण्या) प्रियकारिणी (देव्या) देवी (सिद्धार्थ-नृपति-तनय) सिद्धार्थ राजा का पुत्र होता हुआ (आयात) आया था।

भावार्थ—वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर स्वामी का जीव पूर्व भव मे १६वें अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान का स्वामी था। वहॉ २२ सागर की आयुपर्यन्त स्वर्ग के सुखो को भोगकर इसी भरत क्षेत्र बिहार प्रान्त मे विदेह देश मे कुण्डपुर नामक नगर मे राजा सिद्धार्थ की महादेवी प्रियकारिणी, दूसरा प्रसिद्ध नाम त्रिशला देवी के गर्भ मे आया। वह शुभ दिन आषाढ शुक्ला षष्ठी का था। ¹इस समय चन्द्रमा हस्त तथा उत्तरा नक्षत्र के मध्यमे स्थित था।

गर्भ मे आने के पहले पिछली रात्रि मे प्रियकारिणी माता ने शुभफलदायक ऐसे १६ स्वप्न देखे थे—१ सफेद हाथी, २ सुन्दर सफेद बैल, ३ सिह, ४ कलश करती हुई लक्ष्मी, ५ दो मालाएँ, ६ सूर्य मण्डल, ७ चन्द्र मण्डल ८ मीनयुगल, ९ कनक कलश १० कमलयुक्त सरोवर, ११ लहरोयुक्त सागर, १२ सिहासन, १३ देवविमान, १४ धरणेन्द्र विमान, १५ रत्नो की राशि और १६ निर्धूम अग्नि।

चैत्रसितपक्षफाल्गुनि शशाकयोगे दिने त्रयोदश्याम् ।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ।।५।।
हस्ताश्रिते शशांके चैत्र ज्योत्स्ने चतुर्दशीदिवसे ।
पूर्वाह्णे रत्नघटैर्विबुधेन्द्राश्चक्रुरभिषेकम् ।।६।।

---

¹—महापुराण ग्रन्थ के अनुसार गर्भकल्याणक काल मे चन्द्रमा उत्तराषाढा नक्षत्र पर स्थित था।

अन्वयार्थ—(चैत्र-सित-पक्ष-फाल्गुनि-शशाकयोगे-त्रयोदश्याम् दिने) चैत्रमास शुक्लपक्ष तेरस के दिन जब उत्तरा-फाल्गुनी नामक चन्द्र योग था (सौम्येषु ग्रहेषु स्व-उच्चस्थेषु-जझे) शुभग्रह अपने-अपने उच्चस्थान पर स्थित थे, (शुभलग्ने) शुभलग्न था (शशाङ्के हस्ताश्रिते)[1] चन्द्रमा हस्त नक्षत्र पर स्थित था तथा (चैत्र ज्योत्स्ने) चैत्रकी चादनी छिटकी हुई थी—तभी शुभ बेला मे महावीर भगवान् का जन्म हुआ था (चतुर्दशी दिवसे) चतुर्दशी के दिन (पूर्वाह्णे) प्रात काल मे (विबुधेन्द्रा) देवोके इन्द्र-देवेन्द्रो ने (रत्नघटै अभिषेक चक्रु) इन्द्रो ने रत्नमय कलशो से उन वीर जिन का अभिषेक किया था।

भावार्थ—चैत्र मास शुक्ल पक्ष त्रयोदशी/तेरस, उत्तराफाल्गुनी चन्द्रयोग मे, जब शुभ व उच्च ग्रह अपने-अपने उच्च स्थान पर स्थित थे, लग्न भी शुभ, चन्द्रमा हस्तनक्षत्र पर स्थित था कुबेर के द्वारा रची गई सुन्दर कुण्डपुर नगरीमे जब चैत्र माह की चाँदनी बिखर रही थी, शुभ बेला मे वर्तमान चौबोसी के अन्तिम तीर्थकर भगवान वर्धमान का जन्म हुआ था। चतुर्दशी के दिन प्रात काल की मगल बेला मे देवेन्द्रो ने १००८ विशाल रत्नमयी मगल कलशो से सुमेरुपर्वत की पाण्डुक-शिला पर उन वर्धमान जिनेन्द्र का जन्म-अभिषेक कर उस जन्माभिषेक के द्वारा जन्मकल्याणक का अनुष्ठान किया।

भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनंत गुणराशि: ।
अमरोपनीतभोगान्सहसाभिनिबोधितोऽन्येद्यु: ।।७।।
नानाविधरूपचितां विचित्रकूटोच्छ्रितां मणिविभूषाम् ।
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामारुह्य पुराद्विनि: क्रान्त: ।।८।।
मार्गशिरकृष्णदशमी हस्तोत्तर मध्यमाश्रिते सोमे ।
षष्ठेन त्वपराह्णे भक्तेन जिन: प्रवव्राज ।।९।।

अन्वयार्थ—जो वर्धमान स्वामी (अनन्त-गुण-राशि) अनन्त गुणो के राशि स्वरूप अर्थात् अनन्त गुणो के स्वामी थे वे वीर प्रभु (कुमारकाले)

---

१ तिलोयपण्णसि—४/५२६-५४९
हरिवशपुराण—६०/१८२-२०५ के अनुसार चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र पर स्थित था तब भगवान वीर का जन्म हुआ।

कुमार अवस्था मे (त्रिशत् वर्षाणि) तीस वर्षो तक (अमर-उपनीत-भोगान् - भुक्त्वा) देवो के द्वारा लाये गये भोगो को भोगकर (सहसा-अभिनिबोधित) अचानक प्रतिबोध/वैराग्य को प्राप्त हो गये तथा (अन्येद्यु) दूसरे दिन (नानाविध रूपचिता) विविध प्रकार के चित्रो से चित्रित (विचित्र-कूटोच्छ्रिता) विचित्र ऊँचे-ऊँचे शिखरो से ऊँची/विशाल (मणि-विभूषाम्) मणियो से विभूषित, सुशोभित ऐसी (चन्द्रप्रभाख्य-शिविकाम्-आरुह्य) चन्द्रप्रभा नामक पालकी पर आरोहण करके/चढकर के (पुरात् विनिष्क्रान्त) कुण्डपुर नगर से बाहर निकल गये।

(मार्ग-शिर-कृष्ण-दशमी-हस्तोत्तर-मध्यमाश्रिते सोमे) मक्सर/मगसिर/अगहन/मार्गशिर माह मे कृष्ण पक्ष की दशमी के शुभ दिन जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर था, उन्होने (षष्ठेन भक्तेन तु अपराह्णे जिन प्रवव्राज) दो उपवास का नियम ले अपराह्ण काल मे जैनेश्वरी निर्ग्रंथ दीक्षा को धारण किया।

भावार्थ—जन्म से दस अतिशय के धारक १००८ लक्षणो से सुशोभित तीर्थकर महावीर पृथ्वीतल पर अनन्तगुणो की राशि से सम्पन्न थे। उनके पुण्य की महिमा वर्णनातीत है। कुमार अवस्था के ३० वर्षो पर्यन्त उन्होने देवो द्वारा लाये गये दिव्य वस्त्र, दिव्य आभूषण, दिव्यभोजन आदि रूप भोगो का उपभोग किया था। तथापि उन भोगो मे अरुचि को प्राप्त वे निमित्त पाते ही वैराग्य को प्राप्त हो गये। लौकान्तिक देवो द्वारा उनके वैराग्य की प्रशसा की गई। तभी दूसरे दिन विविधप्रकार के सुन्दर-सुन्दर चित्रो से मण्डित, शिखरो से सुशोभित, रत्न, मणियो से विभूषित चन्द्रप्रभा नाम की शिविका-पालकी पर बैठकर वीर प्रभु वैरागी बन नगर से बाहर, वन की ओर निकल पडे तथा अगहन/मगसिर/मार्गशिर माह की कृष्णपक्ष की दसमी तिथि के दिन अपराह्ण काल की मगल बेला मे, जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर स्थित था, दो दिन के उपवास की प्रतिज्ञा कर निर्ग्रन्थ, जैनेश्वरी दीक्षा को प्राप्त हुए।

ग्रामपुर खेटकर्वटमटंब घोषाकरान्प्रविजहार।
उग्रैस्तपोविधानैर्द्वादशवर्षाण्यमर पूज्यः ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अमर पूज्य) देवो से पूज्य भगवान् वर्धमान ने (उग्रै तपोविधानै) उग्र तपो के विधान से (द्वादश-वर्षाणि) बारह वर्ष तक (ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषा-करान्) ग्राम, पुर, खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष और आकर आदि मे (प्रविजहार) अच्छी तरह/ प्रकृष्ट विहार किया।

भावार्थ—देव-इन्द्र आदि जीवो से पूजित वीर भगवान् ने उग्र-उग्र तपश्चरण करते हुए ग्राम, पुर, खेट आदि विभिन्न स्थानो पर बारह वर्षो तक निर्विघ्न विहार किया।

ग्राम—जो स्थान कॅटीली बाड़ी से वेष्टित होता है, उसे ग्राम कहते है।

पुर—चार गोपुरो से शोभा को प्राप्त तथा कोट से वेष्गित हो उसे पुर कहते है।

खेट—जो स्थान नदी व पर्वत से युक्त हो उसे खेट कहते है।

कर्वट—जो पर्वत से युक्त हो उसे कर्वट कहते है।

मटंब—जो पॉच सौ ग्रामो से सम्बद्ध हो उसे मटम्ब कहते है।

घोष—अहीरो की बस्ती को घोष कहते है।

आकर—सोना-चॉदी-रत्न आदि की खानि को आकर कहते है। (यहॉ उपलक्षण से द्रोण-पत्तन-सवाहन आदि का भी ग्रहण होता है)

द्रोण—दो पर्वतो के बीच मे बसा नगर द्रोण कहलाता है।

पत्तन—समुद्र-तट पर बसा नगर पत्तन कहलाता है।

संवाहन—पर्वत पर बसा नगर सवाहन कहलाता है।

ऋजुकूलायास्तीरे शाल्मद्रुम संश्रिते शिलापट्टे ।
अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ।।११।।

अन्वयार्थ—(ऋजुकूलाया तीरे) ऋजुकूला नदी के किनारे पर (खलु जृम्भिकाग्रामे) जृम्भिका नामक ग्राम्य मे (शाल्मद्रुम संश्रिते शिलापट्टे) शालवृक्ष के नीचे स्थित शिलापट्ट पर (अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य) अपराह्न काल मे दो दिन का उपवास ग्रहण कर विराजमान हो गए।

भावार्थ—छद्मस्थ अवस्था मे निर्ग्रन्थ मुनि लिग के धारक वीरप्रभु १२ वर्ष तक विहार करते हुए ऋजुकूला नदी के समीप जृम्भिका ग्राम पहुँचे। यहाँ आप शालवृक्ष के नीचे शिलापट्ट पर अपराह्न काल मे दो दिन का उपवास लेकर विराजमान हो गये। पश्चात्

वैशाखसितदशम्या हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्न केवलज्ञानम्।।१२।।

अन्वयार्थ—(वैशाखसितदशम्या) वैशाख शुक्ल दसमी (हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चन्द्रे) जब चन्द्रमा हस्तोतर नक्षत्र पर स्थित था (क्षपक श्रेण्यारूढस्य उत्पन्न केवलज्ञानम्) क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ उन वीर भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ।

भावार्थ—साधना-रत वीर भगवान् ने क्षपकश्रेणी पर आरूढ हो, शुक्लध्यान के बल पर, वैशाख शुक्ल दसमी के शुभ दिन, जब चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्र पर स्थित था, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय व अन्तराय चार घातिया कर्मो का क्षय करके केवलज्ञान को प्राप्त किया।

अथ भगवान सप्रापद्-दिव्य वैभारपर्वत रम्यम्।
चातुर्वर्ण्य सुसंघस्तत्राभूद् गौतमप्रभृति।।१३।।

अन्वयार्थ—(अथ) केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् (भगवान) ज्ञान से सम्पन्न वीर प्रभु (दिव्य रम्य वैभारपर्वतम् सम्प्रापत्) विशाल, सुन्दर, मनोज्ञ ऐसे वैभार-विपुलाचल पर्वत पर पधारे (तत्र) वहाँ (गौतमप्रभृति) गौतम स्वामी को आदि लेकर (चातुर्वर्ण्य सघ अभूत्) चातुर्वर्ण्य मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका अथवा ऋषि, यति, मुनि व अनगार रूप चार प्रकार का सघ एकत्रित हुआ।

भावार्थ—पूर्ण ज्ञान-कैवल्य विभूति को प्राप्त वीरप्रभु विहार करते हुए विशाल चट्टानो से रम्य, सुन्दर, मनोहर ऐसे वैभार-विपुलाचल पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ गौतम गणधर सहित ऋषि-यति-मुनि-अनगार अथवा मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविका के रूप चार प्रकार के विशाल सघ के साथ समवशरण सभा मे आप शोभा को प्राप्त हो रहे थे।

छत्राशोकौ घोष सिहासन दुदुभि कुसुमवृष्टिम् ।
वरचामर भामण्डलदिव्यान्यन्यानि चावापत् ।।१४।।

अन्वयार्थ—वहाँ (छत्र-अशोकौ) दिव्य, सुन्दर छत्र, अशोक वृक्ष (घोष) दिव्यध्वनि (सिहासन-दुन्दुभी) सिहासन और दुन्दुभि बाजे (कुसुमवृष्टि) सुगन्धित सुमनो की वर्षा (वर-चामर-भामण्डल-दिव्यानि-अन्यानि च) उत्तम चॅवर, भामण्डल और अन्य अनेक दिव्य वस्तुओ को आपने (अवापत्) प्राप्त किया ।

भावार्थ—१ योजन के विशाल समवशरण मे आप सुन्दर, देवोपनीत तीन मणिमय छत्रो, अशोक वृक्ष, सप्तभगमयी दिव्यध्वनि, रतनजड़ित सिंहासन, दुन्दभि बाजे, सुगन्धित विविध पुष्पो की वर्षा, उत्तम चवर, प्रभामण्डल इन आठ प्रातिहार्यो तथा अन्य अनेक दिव्य, रम्य वस्तुएँ की शोभा को प्राप्त हुए थे । अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त होते ही भगवान् १४ देवकृत अतिशय व दस केवलज्ञान के अतिशयो से मण्डित हो समवशरण सभा मे शोभायमान हो रहे थे ।

दसविधमनगाराणामेकादशधोत्तर तथा धर्मम् ।
देशयमानो व्यवहरस्त्रिशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ।।१५।।

अन्वयार्थ—(अथ) वैभार पर्वत पर, प्रथम दिव्य देशना के पश्चात् (जिनेन्द्र) भगवान् महावीर स्वामी ने (दशविधम् अनगारणाम्) दस प्रकार के मुनि धर्म का (तथा) और (एकादशधा उत्तर धर्म) ग्यारह प्रकार—ग्यारह प्रतिमा के बारह व्रत आदि रूप श्रावक धर्म का (देशयमान) उपदेश देते हुए (त्रिशद् वर्षाणि) तीस वर्षो पर्यन्त (व्यवहरत्) विशेष-रीत्या विहार किया ।

भावार्थ—भगवान् महावीर की प्रथम दिव्य देशना विपुलाचल पर्वत पर खिरी । पश्चात् वहाँ से विभित्र ग्राम, नगर, खेट, कर्वट, मटम्ब, घोष, आकर, द्रोण, पत्तन, सवाहन आदि मे चतुर्विध सघ सहित तीस वर्षो तक विहार करते हुए आपने भव्य जीवो को मुनियो के उत्तमक्षमादि दस धर्मो का तथा प्रथम दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, प्रोषध प्रतिमा आदि श्रावक धर्म की ११ प्रतिमाओ व बारह व्रतो, पाँच अणुव्रत,

तीन गुणव्रत व चार शिक्षाव्रतो का मगल-पापनाशक उपदेश दिया। इस प्रकार महती धर्मप्रभावना आपके मगल-विहार से स्थान-स्थान पर हुई।

पद्मवनदीर्घिकाकुल विविध द्रुमखण्ड मण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थित स मुनि: ।।१६।।

अन्वयार्थ—(स मुनि) वे केवलज्ञानी, स्नातक मुनि, सकल परमात्मा भगवान महावीर (पद्मवन-दीर्घिकाकुल-विविध-द्रुम-खड-मण्डिते) कमलवन समूह, वापिका/बावड़ी समूह और अनेक प्रकारो के वृक्ष समूह से शोभायमान (पावानगरे उद्याने) पावानगर के उद्यान मे (व्युत्सर्गेण स्थित) कायोत्सर्ग से स्थित हो गये।

भावार्थ—यहाँ पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच प्रकार के मुनि उमास्वामी आचार्य ने तत्त्वार्थसूत्र मे कहे उनमे केवलज्ञानी अरहत देव स्नातक मुनि कहलाते हैं। ऐसे स्नातक सकल परमात्मा मुनि भगवान महावीर ने कमलवन समूह से युक्त विशाल बावड़ी और अनेक प्रकार के वृक्षो के समूह सुशोभित पावानगर के उद्यान मे कायोत्सर्ग धारण किया।

कार्तिककृष्ण स्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्यकर्मरज: ।
अवशेष सप्रापद्व्यजरामरमक्षय सौख्यम् ।।१७।।

अन्वयार्थ—वे सकलपरमात्मा महावीर (कार्तिक-कृष्णास्य-अन्ते) कार्तिक मास मे कृष्ण पक्ष के अन्त मे (स्वातौ ऋक्षे) स्वाति नक्षत्र के काल मे (अवशेष कर्मरज निहत्य) सम्पूर्ण अघातिया कर्मो की प्रकृतियो का क्षय करके (वि-अजरम् अमरम् अक्षयम् सौख्यम्) जरा-मरण से रहित अक्षय, अविनाशी, शाश्वत सुख को (सप्रापद्) प्राप्त किया।

भावार्थ—महावीर भगवान ने [१]कार्तिक माह मे कृष्ण पक्ष की अमावस्या के दिन जब चन्द्रमा स्वाति नक्षत्र पर स्थित था, नाम-गोत्र-आयु और वेदनीय इन अघातिया कर्मो का पूर्ण क्षय करके जन्म-जरा-मरण से रहित शाश्वत सुख रूप मुक्ति-पद को प्राप्त किया।

---

१ किन्ही आचार्यो के मत से कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के अन्तिम काल/मुहूर्त मे महावीर भगवान ने सिद्धपद प्राप्त किया व उनका मोक्षकल्याण उत्सव अमावस्या को मनाया गया।

परिनिर्वृत्त जिनेन्द्र ज्ञात्वा विबुधाह्यथासु चागम्य ।
देवतरु रक्तचन्दन कालागरु सुरभिगोशीर्षे. ।।१८।।
अग्नीन्द्राज्जिनदेह मुकुटानलसुरभि धूपवरमाल्यैः ।
अभ्यर्च्य गणधरानपि गतादिव ख च वनभवने ।।१९।।

अन्वयार्थ—(अथ हि) तत्पश्चात् (जिनेन्द्र परिनिर्वृत्त ज्ञात्वा) वीर जिनेन्द्र को मुक्त हुए जानकर (विबुधा) चारो निकाय के देवो ने (आशु आगम्य) शीघ्र आकर के (देवतरु-रक्त चन्दन-कालागुरु-सुरभिगोशीर्षै) देवदारु, लाल चन्दन, कालागुरु और सुगन्धित गोशीर्ष-चन्दनो से (अग्नीन्द्रात्) अग्निकुमार देवो के स्वामी "अग्नीन्द्र" के (मुकुट-अनल-सुरभि-धूप वार-माल्यै) मुकुट से प्राप्त अग्नि, सुगन्धित धूप व उत्कृष्ट मालाओ के द्वारा (जिनदेह) जिनेन्द्र देव के शरीर की (अभ्यर्च्य) पूजा की, उनका अग्नि सस्कार या अन्तिम सस्कार किया। तथा (गणधरान् अपि अभ्यर्च्य) गणधरो की भी पूजा की इसके बाद (दिव ख च-वनभवने) सभी देव स्वर्ग को, आकाश को, वन और भवनो को चले गये ।

भावार्थ—अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर के मुक्ति-प्राप्ति का सुसमाचार जानकर चारो निकायो-भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी व कल्पवासी देवो ने शीघ्र ही पावानगर के उद्यान मे पधारकर, जिनेन्द्रदेव की पूजा की तथा देवदारु, लालचन्दन, कालागुरु और सुगन्धित गोशीर्ष चन्दनो से, अग्निकुमार देवो के इन्द्र के मुकुट से निकली अग्नि से तथा सुगधित धूप और उत्तम मालाओ से भगवान के शरीर का अन्तिम सस्कार किया। पश्चात् उन देवो ने गणधरो की दिव्य पूजा की। उसके बाद कल्पवासी देव स्वर्ग को, ज्योतिषी देव आकाश को, व्यन्तर देव भूतारण्यवन को, भवनवासी देव अपने-अपने भवनो को चले गये।

प्रहर्षिणी छन्द

इत्येव भगवति वर्धमान चन्द्रे,
यः स्तोत्र पठति सुसंध्ययोर्द्वयोर्हि ।
सोऽनन्तं परमसुखं नृदेवलोके,
भुक्त्वान्ते शिवपदमक्षयं प्रयाति ।।२०।।

अन्वयार्थ—(इति एव) इस प्रकार (भगवति वर्धमान चन्द्रे) भगवान् महावीर से सम्बन्धित (स्तोत्र) स्तोत्र को (य) जो (द्वयो हि) दोनो ही (सुसन्ध्ययो पठति) सन्ध्याओ से पढ़ता है (स) वह (नृ-देव-लोके) मनुष्य और देवलोक मे (परमसुख भुक्त्वा) उत्तम सुखो को भोगकर (अन्ते) अन्त मे (अक्षय-अनन्त-शिवपद) अविनाशी, शाश्वत ऐसे मोक्ष पद को (प्रयाति) प्राप्त करता है।

भावार्थ—वर्धमान प्रभु के इस मगल स्तोत्र को जो भव्यात्मा दोनो ही सन्ध्याकालो मे पढता है वह मनुष्य और देवलोक के उत्तम सुखो को भोगकर अन्त मे अविनाशी, अक्षय अनन्त मोक्ष पद के अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करता है।

बसन्त-तिलका

यत्रार्हता गणभृता श्रुतपारगाणां,
निर्वाणभूमिरिह भारतवर्षजानाम्।
तामद्य शुद्धमनसा क्रियया वचोभिः,
सस्तोतुमुद्यतमतिः परिणौमि भक्त्या ।। २१ ।।

अन्वयार्थ—(इह) यहाँ जम्बूद्वीप मे (यत्र) जहाँ (भारतवर्षजानाम्) भारत देश मे उत्पन्न (अर्हता, गणभृता, श्रुतपारगाणा निर्वाणभूमि) अर्हन्तो, तीर्थकरो की गणधरो और श्रुत के पारगामी-श्रुतकेवली की निर्वाणभूमि है (सस्तोतुम् उद्यत-मति) उन भूमियो की सम्यक् प्रकार स्तुति करने के लिये तत्पर बुद्धि वाला हुआ मै (भक्त्या) भक्तिपूर्वक (ताम्) उनको (अद्य) आज अभी (शुद्ध-मनसा-क्रियया-वचोभि) शुद्ध मन, वचन, क्रिया-काय से (परिणौमि) अच्छी तरह नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ— इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र आर्यखण्ड मे होने वाले २४ तीर्थंकरो की निर्वाणभूमियो, सामान्य केवलियो की निर्वाणभूमियो, गणधरो की निर्वाणभूमियो तथा श्रुतकेवलियो की निर्वाणभूमियो एव अन्य सर्व मुनियो की जो-जो निर्वाणभूमियाँ है, उन सब मगलमय, भूमियो की स्तुति करने का इच्छुक मैं आज भक्तिपूर्वक निर्मल मन-वचन-काय से नमस्कार करता हूँ।

कैलाश शैलशिखरे परिनिर्वृतोऽसौ,
शैलेशिभावमुपपद्य वृषो महात्मा ।
चम्पापुरे च वसुपूज्यसुतः सुधीमान्,
सिद्धि परामुपगतो गतरागबन्धः ।।२२।।

अन्वयार्थ—(शैलेशिभावम् उपपद्य) अठारह हजार शीलो के स्वामीपने को प्राप्त करके (असौ महात्मा वृष) ये महान आत्मा वृषभदेव (कैलास-शैल-शिखरे) कैलाश पर्वत के शिखर पर (परिनिर्वृत) निर्वाण को प्राप्त हुए (गत-रागबन्ध सुधीमान्) राग के बन्ध से रहित अतिशय-ज्ञानी–केवलज्ञानी (वसुपूज्यसुत) राजा वसुपूज्य के सुपुत्र-भगवान् वासुपूज्य ने चम्पापुर मे (परा सिद्धि उपगत) उत्कृष्ट सिद्धि को प्राप्त किया।

भावार्थ—अठारह हजार शीलो की पूर्णता होते ही ये "शैलेशि भाव" से सम्पन्न इस युग के आदि तीर्थकर श्री वृषभदेव कैलाश-पर्वत से मुक्ति-पद को प्राप्त हुए तथा वीतरागी, केवलज्ञानी भगवान वासुपूज्य ने सिद्धक्षेत्र चम्पापुर मे उत्कृष्ट मोक्षस्थल को, सिद्ध अवस्था को प्राप्त किया।

यत्प्रार्थ्यते शिवमय विबुधेश्वराद्यै ,
पाखण्डिभिश्च परमार्थगवेष शीलैः ।
नष्टाष्ट कर्म समये तदरिष्टनेमि·,
सप्राप्तवान् क्षितिधरे वृहदूर्जयन्ते ।।२३।।

अन्वयार्थ—(विबुधेश्वराद्यै) इन्द्र आदि देवो के द्वारा (च) और (परमार्थ-गवेषशीलै -पाखण्डिभि) आत्मा की खोज करने वाले/मुक्ति की खोज करने वाले अन्य लिगधारियो के द्वारा भी (यत् शिवम् प्रार्थ्यते) जिस मोक्ष की इच्छा/प्रार्थना की जाती है (तत्) उस मोक्ष को (अय अरिष्टनेमि) इन अरिष्टनेमि-नेमिनाथ भगवान ने (नष्ट-अष्ट-कर्म समये) अष्ट कर्मो का क्षय करते ही, अयोगी गुणस्थान के अन्त समय मे (वृहत्-उर्जयन्ते क्षितिधरे) गिरनार/उर्जयन्त नामक विशाल पर्वतराज पर (सप्राप्तवान्) समीचीन रूप से प्राप्त किया।

भावार्थ—शाश्वत सुख के स्थान जिस मोक्ष को प्राप्त करने के लिये इन्द्रादिक देव भी सदा प्रार्थना/भावना करते रहते है। जिस मोक्ष की प्राप्ति की इच्छा परमार्थ के खोजी अन्य लिगियो द्वारा भी की जाती उस परम

स्थान को १८ हजार शीलो की पूर्णता को प्राप्त अरिष्टनेमि/नेमिनाथ भगवान् ने अष्टकर्मो का क्षय कर १४वे गुणस्थान मे गिरनार पर्वत से प्राप्त किया। अर्थात् नेमिनाथ भगवान् गिरनार पर्वत से मुक्त हुए।

पावापुरस्य बहिरुन्नत भूमिदेशे,
पद्मोत्पलाकुलवता सरसां हि मध्ये।
श्री वर्द्धमान जिनदेव इति प्रतीतो,
निर्वाणमाप भगवान्प्रविधूतपाप्मा ।।२४।।

अन्वयार्थ—(पावापुरस्य बहि) पावापुर के बाहर (पद्म-उत्पला-कुलवता) कमल व कुमुदो से व्याप्त/भरे हुए (सरसा हि मध्ये) तालाब के बीच मे ही (उन्नतभूमिदेशे) ऊँचे भूमि प्रदेश पर (श्रीवर्धमान-जिनदेव इति प्रतीतो भगवान्) श्री वर्धमान इस नाम से प्रसिद्ध भगवान् ने (प्रविधूतपाप्मा निर्वाणमाप) समस्त पापो का क्षय करके मुक्त अवस्था की प्राप्ति की।

भावार्थ—बिहार प्रान्त के पावापुर नगर के बाहर सूर्य की किरणो को प्राप्तकर विकसित होने वाले कमल और चन्द्रमा की शीतल किरणो को पाकर विकसित होने वाले कुमुदो से युक्त विशाल मनोहर तालाब के ठीक मध्य मे ऊँचे टीले पर स्थित, केवलज्ञान से शोभा को प्राप्त सर्वाधिक प्रसिद्ध महावीर वर्धमान भगवान् समस्त कर्मो/समस्त पापो का नाश करके मुक्ति को पधारे।

शेषास्तु ते जिनवरा जितमोहमल्ला,
ज्ञानार्क भूरि किरणैरवभास्य लोकान्।
स्थान पर निरवधारित सौख्यनिष्ठ,
सम्मेद पर्वततले समवापुरीशाः ।।२५।।

अन्वयार्थ—(जितमोहमल्ला) जीत लिया है मोहरूपी मल्ल को जिनने ऐसे (शेषास्तु ते जिनवरा ईशा) जो शेष तीर्थंकर है, भगवान् है वे (ज्ञान-अर्क-भूरि-किरणै लोकान् अवभास्य) ज्ञानरूपी सूर्य की अनेकानेक किरणो से लोको को प्रकाशमान करके (सम्मेद-पर्वत-तले) सम्मेदाचल पर्वत पर (निरवधारित-सौख्यनिष्ठ पर स्थान) अनन्त सुख से व्याप्त उत्कृष्ट स्थान मोक्ष को (सम् अवापु) अच्छी तरह से प्राप्त हुए।

भावार्थ—शेष अजितनाथ आदि बीस तीर्थकर मोह शत्रु को पछाड़कर, केवलज्ञानरूपी किरणो से तीनो लोको को प्रकाशित कर तीर्थराज सम्मेद-शिखर से अनन्त सुख के उत्तम स्थान मुक्ति अवस्था को प्राप्त हुए।

आद्यश्चतुर्दशदिनैर्विनिवृत्त योग.,
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिन वर्द्धमानः ।
शेषाविधूत घनकर्म निबद्धपाशाः,
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगाः ।।२६।।

अन्वयार्थ—(आद्य) प्रथम तीर्थकर वृषभदेव ने (चतुर्दशदिनै विनिवृत्त योग) चौदह दिनो द्वारा योग निरोध किया (जिन वर्द्धमान) वर्द्धमान जिनेन्द्र ने (षष्ठेन-निष्ठित कृति) षष्ठोपवासी, बेला-२ उपवास द्वारा योगो का निरोध किया (शेषा ते यतिवरा तु मासेन) शेष २२ तीर्थकर एक माह के द्वारा योग निरोध कर (विधूत-घन-कर्म-निबद्ध-पाशा) अत्यन्त दृढ कर्मबद्ध रूप जाल को नाश कर मुक्त (अभवन्) हुए।

भावार्थ—आदि तीर्थकर वृषभदेव ने आयु पूर्ण होने के चौदह दिनो पूर्व योगो का निरोध किया, अन्तिम तीर्थकर वर्द्धमान स्वामी ने आयु पूर्ण होने के दो दिनो पूर्व योग निरोध किया तथा शेष २२ तीर्थकरो ने आयु पूर्ण होने के एक माह पूर्व योगो का निरोध किया और सभी तीर्थकर कर्मो के दृढ बन्धन को काटकर मोक्ष अवस्था को प्राप्त हुए।

यहाँ योग निरोध से तात्पर्य समवशरण का विघटन होना, विहार व दिव्यध्वनि का बन्द कर एक स्थान पर स्थित हो योग धारण करना लेना चाहिये क्योकि मन-वचन-काय रूप योगो का निरोध तो १४वे अयोगी गुणस्थान मे ही होती है।

माल्यानि वाक्स्तुतिमयैः कुसुमैः सुदृब्धा-
न्यादाय मानसकरैरभितः किरन्तः ।
पर्येम आदृतियुता भगवन्निषद्याः,
संप्रार्थिता वयमिमे परमां गतिं ताः ।।२७।।

अन्वयार्थ—(वाक् स्तुतिमयै कुसुमै) वचनो के स्तुतिमय पुष्पो

के द्वारा (सुदृब्धानि माल्यानि) गूँथी हुई सुन्दर मालाओ को (मानसकरै आदाय) मनरूपी हाथो के द्वारा ग्रहण करके (अभित) चारो ओर (किरन्त) बिखरते हुए (इमे) ये (वयम्) हम (भगवन् निषद्या आदृतियुता पर्येम) भगवन्तो की निर्वाणभूमियो की आदरसहित परिक्रमा/प्रदक्षिणा करते है तथा (ता परमा गति सम्प्रार्थिता) उनसे उत्तम सिद्धभूमि, सिद्धगति की प्राप्ति की प्रार्थना करते है।

भावार्थ—वचनो के स्तुतिमयी पुष्पो से गूँथी हुई सुन्दर आपके गुणरूपी मालाओ को मनरूपी हाथो से ग्रहण करके, चारो ओर बिखरते हुए, हम २४ भगवान् की समस्त निर्वाणभूमियो की आदरसहित परिक्रमा करते है तथा उनसे (भगवन्तो से) शाश्वत सुख का स्थान सिद्धभूमि की प्राप्त करने की प्रार्थना करते है। हे प्रभो ! सिद्ध भगवन्तो की निर्वाणभूमियो की भक्ति- पूर्वक वन्दना करने वाले हमे सिद्धपद की प्राप्ति हो।

शत्रुञ्जये नगवरे दमितारिपक्षाः,
पण्डोः सुताः परमनिर्वृतिमभ्युपेताः ।
तुग्या तु सगरहितो बलभद्रनामा,
नद्यास्तटे जिनरिपुश्च सुवर्णभद्रः ।।२८।।
द्रोणीमति प्रबलकुण्डल मेढ्रके च,
वैभारपर्वततले वरसिद्धकूटे ।
ऋष्यद्रिके च विपुलाद्रिबलाहके च,
विन्ध्ये च पोदनपुरे वृषदीपके च ।।२९।।
सह्याचले च हिमवत्यपि सुप्रतिष्ठे,
दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ ।
ये साधवो हतमलाः सुगति प्रयाताः,
स्थानानि तानि जगति प्रथितान्य भूवन् ।।३०।।

अन्वयार्थ—(दमित अरिपक्षा पण्डो सुता) शत्रु पक्ष को नष्ट करने वाले पाण्डुपुत्र पाण्डव (शत्रुञ्जये नगवरे परमनिर्वृत्तिम्-अभ्युपेता) शत्रुञ्जय नामक श्रेष्ठ पर्वत पर निर्वाण को प्राप्त हुए (संग रहित बलभद्र-नामा तु तुग्यां) समस्त परिग्रह से रहित बलभद्रनामा मुनि तुङ्गीगिरि से तथा (जितरिपु सुवर्णभद्र) कर्मशत्रुओ को जीतने वाले मुनि सुवर्णभद्र (नद्या तटे) नदी के किनारे से मुक्ति को प्राप्त हुए।

(द्रोणीमति) द्रोणगिरि (प्रवस्-कुण्डल-मेढ्रके च) प्रकृष्ट कुण्डलगिरि और मेढ्रगिरि दूसरा नाम मुक्तागिरि (वैभार-पर्वततले) वैभारपर्वत के तलभाग मे (वर-सिद्धकूटे) उत्कृष्ट सिद्धकूट-सिद्धवरकूट मे (ऋषि-अद्रिके) ऋषि याने श्रमणो का पर्वत श्रमणगिरि-सोनागिरि (विपुलाद्रि-बलाहके च) विपुलाचल व बलाहक पर्वत (विन्ध्ये) विन्ध्याचल मे (वृषदीपके पौदनपुरे च) और धर्म को प्रकाशित करने वाले पोदनपुर मे।

(सह्याचले) सह्य पर्वत (सुप्रतिष्ठे हिमवति अपि) अतिप्रसिद्ध हिमालय पर्वत (दण्डात्मके गजपथे पृथुसारयष्टौ। दण्डाकार गजपथा और वशस्थ पर्वत पर (ये साधव) जो साधु (हतमला) कर्मो का क्षय कर (सुगति प्रयाता) उत्तम सिद्धगति को प्राप्त हुए है (जगति) ससार मे (तानि स्थानानि) वे सभी स्थान (प्रथितानि अभूवन्) प्रसिद्ध हुए।

भावार्थ—घातिया-अघातिया कर्मो को क्षय करने वाले युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तीनो भाई विशाल शत्रुञ्जय पर्वत से मुक्त हुए। बाह्य-अभ्यन्तर २४ परिग्रहो से रहित बलदेव, तुगीगिरि सिद्धक्षेत्र से मुक्त हुए। द्रव्य-भाव कर्मरूपी शत्रुओ का नाश करने वाले सुवर्णभद्र मुनिराज नदी के किनारे से (पावागिरि पर्वत के समीप चेलना नदी के किनारे से) मुक्त हुए, द्रोणगिरि पर्वत, कुण्डलाकार कुण्डलगिरि, मेढ्रागिरि (मुक्तागिरि) पचम पहाड़ी, राजगृही वैभार पर्वत, उत्तम सिद्धवर कूट, श्रमणगिरि, विपुलाचल, बलाहक पर्वत, विन्ध्याचल, धर्म प्रकाशक पोदनपुर, सह्यपर्वत, अत्यधिक प्रसिद्ध हिमालय पर्वत, दण्डाकार गजपथा और वशस्थ पर्वत पर जो-जो दिगम्बर सन्त शुभाशुभ कर्मो का क्षयकर मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए है, लोक मे ये सभी सिद्धक्षेत्र प्रसिद्धि को प्राप्त हुए, पूज्यता को प्राप्त हुए है।

इक्षोर्विकार रसपृक्त गुणेन लोके,
पिष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत्।
तद्वच्च पुण्यपुरुषै-रुषितानि नित्यं,
स्थानानि तानि जगतामिह पावनानि ।।३१।।

अन्वयार्थ—(यद्वत्) जिसप्रकार (लोके) लोक मे (इक्षो विकार रसपृक्त गुणेन) ईख के/गन्ना के रस से निर्मित मिष्ट शक्कर या गुड़ से मिश्रित (पिष्ट) आटा (अधिक मधुरताम्) अधिक मधुरता को (उपयाति)

प्राप्त हो जाता है (तद्वत् च) उसी प्रकार (पुण्यपुरुषै उषितानि) पुण्य पुरुषो/महापुरुषो से आश्रित (तानि स्थानानि) वे स्थान (इह जगता नित्य पावनानि) इस पृथ्वीतल को, इस ससार को सदैव पवित्र करने वाले होते है।

भावार्थ—जिस प्रकार आटा स्वभाव से मीठा है, किन्तु वही आटा ईख/गन्ना के रस से बने गुड या शक्कर का सम्पर्क पाकर अधिक मिठास को, अधिक स्वादिष्टपने को प्राप्त होता है ठीक उसी प्रकार तीर्थंकर, गणधर, केवलीभगवान व सामान्य मुनियो ने जहाँ-जहाँ विहार किया है, जहाँ-जहाँ निवास किया है, जहाँ तीर्थंकर व केवली भगवन्तो की दिव्यध्वनि खिरी है, समवशरण पधारा है, सामान्य मुनियो, गणधरो ने प्रवचन दिये है, वे सभी स्थान इन महान आत्माओ के सम्पर्क से नित्य ही अधिक पवित्रता को प्राप्त हो, प्राणी मात्र का कल्याण करने वाले, पवित्र हो जाते है।

इत्यर्हतां शमवतां च महामुनीनां,
प्रोक्ता मयात्र परिनिर्वृति भूमि देशाः।
तेमे जिना जितभया मुनयश्च शाताः,
दिश्यासुराशु सुगतिं निरवद्यसौख्याम् ।।३२।।

अन्वयार्थ—(इति) इस प्रकार (मया) मेरे द्वारा (अत्र) यहाँ— इस निर्वाणभक्ति स्तोत्र मे (अर्हता शमवता च महामुनीना) तीर्थकर जिन, और साम्यभाव को प्राप्त महामुनियो के (परिनिर्वृत्ति भूमिदेशा प्रोक्ता) निर्वाण-स्थलो को कहा गया (ते जितभया जिना शान्ता मुनय च) वे सप्तभयो को जीतने वाले तीर्थंकर जिन और शान्त अवस्था प्राप्त मुनिराज (मे) मेरे लिये (आशु) शीघ्र (निरवद्यसौख्यम् सुगति दिश्यासु) निर्दोष सुख से युक्त, उत्तम मोक्षगति को प्रदान करने वाले हो।

भावार्थ—यहाँ स्तुति कर्ता पूज्यपाद स्वामी स्तुति के फल की इच्छा करते हुए कहते है—

इस प्रकार मैंने घातिया कर्मो के नाशक, तीर्थप्रवर्तक तीर्थंकर जिन और पूर्ण शान्त भाव, पूर्ण साम्यभाव को प्राप्त महामुनियो, निर्वाण स्थलियो

का स्मरण किया है। वे मेरी भक्ति के आधार भयमुक्त जिनेन्द्रदेव और शान्तरस मे लीन मुनिवृन्द मुझे शीघ्र ही दोषरहित, विशुद्ध, बाधारहित सुख से सहित ऐसी उत्तम गति—मोक्ष गति को प्रदान करे।

क्षेपक श्लोकानि

कैलाशाद्रौ मुनीन्द्रः पुरुरपदुरितो मुक्तिमाप प्रणूत. ।
चपाया वासुपूज्यस्त्रिदशपतिनुतो नेमिरप्यूर्जयते ।।१।।
पावाया वर्धमानस्त्रिभुवनगुरवो विशतिस्तीर्थनाथाः ।
सम्मेदाग्रे प्रजग्मुर्ददतु विनमता निवृत्ति नो जिनेन्द्राः ।।२।।

अन्वयार्थ—(अपदुरित) पापो से मुक्त (प्रणूत) नमस्कार को प्राप्त (मुनीन्द्र पुरु) मुनियो के स्वामी पुरुदेव-ऋषभनाथ स्वामी (कैलाशाद्रौ) कैलाश पर्वत पर (मुक्तिम् आप) मुक्ति को पधारे। (त्रिदशपतिनुत वासुपूज्य चपाया) इन्द्रो के द्वारा नमस्कृत वासुपूज्य भगवान् चम्पापुर से मोक्ष पधारे (नेमि अपि ऊर्जयन्ते) श्री नेमिनाथ भगवान् ऊर्जयन्त-गिरनार पर्वत से मोक्ष पधारे (पावाया वर्धमान) श्री वर्धमान स्वामी पावापुरी से मुक्त हुए तथा (त्रिभुवनगुरव विशति तीर्थनाथा) तीन लोको के गुरु शेष २० तीर्थकर (सम्मेदाग्रे प्रजग्मु) सम्मेदचल-सम्मेदशिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए (जिनेन्द्रा) ये सभी २४ तीर्थकर भगवान् (विनमता न) नमस्कार करने वाले हम सबको (निवृत्ति ददतु) निर्वाण पद देवे।

भावार्थ—युग के आदितीर्थकर जो पॉच पापो से, अष्ट कर्मो से रहित है, मुनियो, गणधरो के भी स्वामी है, उनके वन्दनीय है, श्री ऋषभदेव कैलाश पर्वत से मुक्त हुए। सौ इन्द्रो से वन्दनीय प्रथम बालयति श्री वासुपूज्य तीर्थकर चम्पापुर पुर-मन्दारगिरि से निर्वाण को प्राप्त हुए। अरिष्ट नेमिप्रभु गिरनार क्षेत्र से मोक्ष पधारे। अन्तिम तीर्थंकर, वर्तमान शासनाधिपति श्री महावीर भगवान पावापुरी से अचल पद को प्राप्त हुए तथा तीनो लोको मे प्रधान, तीन लोको के गुरु अजितनाथजी, सभवनाथजी, अभिनन्दनजी, सुमतिनाथजी, पद्मप्रभजी, सुपार्श्वनाथजी, चन्द्रप्रभजी, पुष्पदन्तजी, शीतलजी, श्रेयासजी, विमलजी, अनन्तजी, धर्मनाथजी, शान्तिनाथजी, कुन्थुनाथजी, अरनाथजी, मल्लिनाथजी, मुनिसुव्रतजी, नमिनाथजी व पार्श्वनाथजी सम्मेदाचल के शिखर से मुक्ति धाम को प्राप्त हुए। इन २४ तीर्थंकरो की हम वन्दना

करते है। वन्दना के फलस्वरूप ये भगवान् हम सबको निर्वाण पद प्रदान करे।

गोर्गजोश्वः कपिः कोकः सरोजः स्वस्तिकः शशी।
मकरः श्रीयुतो वृक्षो गंडो महिष सूकरौ।।३।।
सेधा वज्रमृगच्छागाः पाठीनः कलशस्तथा।
कच्छपश्चोत्पल शंखो नागराजश्च केसरी।।४।।

अन्वयार्थ—(गो गज अश्व) बैल, हाथी, घोडा (कपि कोक सरोज स्वस्तिक शशी) बन्दर, चकवा, कमल, साथिया, चन्द्रमा (मकर) मगर (श्रीयुत वृक्ष) कल्पवृक्ष (गण्ड महिष-शूकरौ) गेडा, भैसा, सुअर (सेधा-वज्र-मृगच्छागा) सेही, वज्र, हिरण, बकरा (पाठीन कलश तथा) मीन तथा कलश (कच्छप च उत्पल) कछुआ और लाल कमल (शख नागराज च केसरी) शख, सर्प और सिह ये क्रमश चौबीस तीर्थंकरो के चिह्न है।

भावार्थ—१ आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का बैल, २ अजितनाथजी का हाथी, ३ सभवनाथजी का घोड़ा, ४ अभिनन्दननाथजी का बन्दर, ५ सुमतिनाथजी का चकवा, ६, पद्मप्रभजी का कमल, ७ सुपार्श्वनाथजी का साथिया, ८ चन्द्रप्रभजी का चन्द्रमा, ९ पुष्पदन्तजी का मगर, १० शीतलनाथजी का कल्पवृक्ष, ११ श्रेयासनाथजी का गेडा, १२ वासुपूज्यजी का भैसा, १३ विमलनाथजी का सूकर, १४ अनन्तनाथजी का सेही, १५ धर्मनाथजी का वज्रदण्ड, १६ शान्तिनाथजी का हिरण, १७ कुन्थुनाथजी का बकरा १८ अरनाथजी की मछली, १९ मल्लिनाथ जी का कलश २० मुनिसुव्रतजी का कछुआ, २१ नमिनाथजी का लाल कमल, २२ नेमिनाथजी का शख, २३ पार्श्वनाथजी का सर्प और २४ वर्धमान स्वामी का सिह। इस प्रकार ये चौबीस तीर्थंकरो के चिह्न है, इनसे तीर्थंकरो की पहचान होती है।

शान्ति कुन्थ्वर कौरव्या यादवौ नेमिसुव्रतौ।
उग्रनाथौ पार्श्ववीरौ शेषा इक्ष्वाकुवंशजाः।।५।।

अन्वयार्थ—(शान्ति-कुन्थु-अर-कौरव्या) शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थङ्कर कुरुवंश मे उत्पन्न हुए हैं (नेमि सुव्रतौ) नेमिनाथ

और मुनिसुव्रत ये दो तीर्थंकर (यादवौ) यदुवश मे उत्पन्न हुए है (पार्श्ववीरौ उग्रनाथौ) पार्श्वनाथजी उग्र वश मे तथा भगवान महावीर नाथवश मे पैदा हुए है (शेषा इक्ष्वाकु वशजा) तथा शेष सत्रह तीर्थंकर इक्ष्वाकु वश मे पैदा हुए है।

भावार्थ—वर्तमान चौबीसी मे शान्तिनाथ-कुन्थुनाथ व अरनाथ स्वामी ने कुरुवश को पवित्र किया। नेमिनाथ व मुनिसुव्रत तीर्थंकरो ने यदुकुल/यदुवश को उज्ज्वल किया। पार्श्वनाथजी ने उग्र वश को प्रसिद्ध किया तथा भगवान महावीर ने नाथवश का यश फैलाया। शेष सत्रह तीर्थंकर पावन इक्ष्वाकु वश के कीर्तिस्तभ हुए।

अञ्चलिका

इच्छामि भते ! परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, इमम्मि, अवसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए, आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि, पावाए णयरीए कत्तिय मासस्स किण्ह चउदसिए रत्तीए सादीए, णक्खत्ते, पच्चूसे, भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धि गदो। तिसुवि लोएसु, भवणवासिय-वाणवितर जोयिसिय कप्पवासियत्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण, णिच्चकाल अंचति, पूजंति, वदति, णमसति परिणिव्वाण महाकल्लाण पुज्ज करति। अहमवि इह सतो तत्थ सताइयं णिच्चकाल, अंचेमि, पूजेमि, वदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण, समाहि-मरण जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झ।

अर्थ—(भते !) हे भगवन् ! मैने (परिणिव्वाणभत्ति काउस्सग्गो कओ) परिनिर्वाणभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ इच्छामि) उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। (इमम्मि अवसप्पिणीए चउत्थ समयस्स पच्छिमे भाए) इस अवसर्पिणी सम्बन्धी चतुर्थकाल के पिछले भाग मे (आउट्ठमासहीणे वासचउक्कम्मि सेसकालम्मि) साढे तीन माह कम चार वर्ष काल शेष रहने पर (पावाए णयरीए कत्तियमासस्स किण्हचउद्दसिए रत्तीए सादीए णक्खत्ते पच्चूसे भयवदो महदि महावीरो वड्ढमाणो सिद्धि

गदो) पावानगरी मे कार्तिक मास की कृष्ण चतुर्दशी की रात्रि मे स्वाति नक्षत्र रहते हुए प्रभात काल मे भगवान् महति महावीर वर्धमान निर्वाण को प्राप्त हुए। (तिसुवि लोएसु भवणवासिय वाणवितर जोयसियकप्पवासिय-ति चउव्विहा देवा सपरिवार दिव्वेण ण्हाणेण, दिव्वेण गधेण, दिव्वेण अक्खेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण दीवेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण वासेण) तीनो लोको मे जो भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इस प्रकार चार प्रकार के देव दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फलो के द्वारा (णिच्चकाल अचेति, पुज्जति, णमसति, परिणिव्वाण-महाकल्लाण पुज्ज करेति) नित्यकाल अर्चा करते है, पूजा करते है, नमस्कार करते है, परिनिर्वाण महाकल्याण पूजा करते है। (अहमवि इह सतो तत्थ सताइय। णिच्चकाल अचमि पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि) मै भी यहाँ रहते हुए वहाँ स्थित निर्वाण क्षेत्रो की नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। (दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइगमण, समाहिमरण) मेरे दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो (जिणगुण-सपत्ति होउ मज्झ) मुझे जिनेन्द्रदेव के गुणरूपी सम्पत्ति की प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन्! मैने निर्वाणभक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग किया अब उसकी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। इस अवसर्पिणी काल के दुषमा-सुषमा काल अर्थात् जब चतुर्थ काल मे तीन वर्ष साढे आठ माह शेष रहे थे तब पावापुर नगर से कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के पिछले भाग मे प्रात काल की शुभ बेला मे स्वाति नक्षत्र मे भगवान् महावीर मुक्ति को पधारे। उस मगलमय बेला मे तीनो लोको मे निवास करने वाले भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और कल्पवासी इन चार प्रकार के देव अपने सपरिवार आकर दिव्य जल, दिव्य गन्ध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप, दिव्य फल आदि से नित्यकाल अर्चा करते हैं, पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं और निर्वाण कल्याणक की पूजा करते हैं, मैं भी यहाँ रहकर अष्टद्रव्यो का थाल चढ़ाकर सदाकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वन्दना करता हूँ, नमस्कार करता हूँ, मेरे

समस्त दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, मुझे रत्नत्रय की प्राप्ति हो, मेरा उत्तम मोक्षगति मे गमन हो, समाधिमरण हो। मुझे वीतराग जिनदेव के समस्त गुणो की प्राप्ति हो।

।। इति निर्वाण भक्ति ।।

नन्दीश्वर भक्ति

आर्यागीति

त्रिदशपतिमुकुट तट गतमणि,
गणकर निकर सलिलधाराधौत ।
क्रमकमलयुगलजिनपति रुचिर,
प्रतिबिम्बविलय विरहितनिलयान् ।।१।।
निलयानहमिह महसा सहसा,
प्रणिपतन पूर्वमवनौम्यवनौ ।
त्रय्या त्रय्या शुद्धया निसर्ग,
शुद्धान्विशुद्धये घनरजसाम् ।।२।।

अन्वयार्थ—(इह) यहाँ (त्रय्यॉ) तीनो लोको मे (महसा निलयान्) जो तेज के गृह है (निसर्ग शुद्धान्) स्वभाव से शुद्ध है (त्रिदशपति-मुकुट-तटगत-मणिगण-कर-निकर-सलिल धारा धौतक्रम-कमल-युगल-जिनपति-रुचिर-प्रतिबिम्ब-विलय-विरहित-निलयान्) इन्द्रो के मुकुटो के किनारे पर लगी मणिसमूह के किरण कलापरूपी जल की धारा से प्रक्षालित चरण-कमल युगल वाले जिनेन्द्र की मनोज्ञ सुन्दर प्रतिमाओ के विनाश रहित, अविनाशी जिनमन्दिरो को (सहसा) शीघ्र (अवनौ) पृथ्वी पर (प्रणिपतनपूर्वम्) गिरकर (त्रय्याशुद्धया) मन-वचन-काय की शुद्धि से (घनरजसाम् विशुद्धये) सुदृढ कर्म पटल/कर्मरज की विशुद्धि के लिये अर्थात् कर्मक्षयार्थ (अवनौमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—इन्द्रो के मुकुटो के तट पर लगी हुई मणियो के किरणो के समूहरूपी जलधारा से प्रक्षालित है चरण-युगल ऐसी समस्त-तीन लोक सम्बन्धी अकृत्रिम, अविनाशी मनहर सुन्दर जिनप्रतिमाओ, जिनमन्दिरो को मै मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक, ज्ञानावरण आदि कर्मो की रज को दूर करने के लिये, पृथ्वी से मस्तक का स्पर्श करते हुए नमस्कार करता हूँ। अर्थात् जिन चरण-युगलो मे सौ इन्द्र सदैव मस्तक रखकर नमस्कार करते है, उन अविनाशी वीतराग जिनबिम्बो व जिनालयो को मेरा मस्तक झुकाकर नमस्कार है।

भवनवासियों के विमानों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

भावनसुर-भवनेषु, द्वासप्तति-शत-सहस्र-सख्याभ्यधिका. ।
कोट्य सप्त प्रोक्ता, भवनाना भूरि-तेजसा भुवनानाम् ।।३।।

अन्वयार्थ—(भावनसुर-भवनेषु) भवनवासी देवो के भवनो मे (भूरितेजसा भवनानाम्) अत्यधिक तेज मे/दीप्ति से युक्त भवनो मे (भुवनानाम्) चैत्यालय की सख्या (द्वासप्तति-शतसहस्र-सख्याभ्यधिका सप्तकोट्य) बहत्तर लाख सख्या मे अधिक सात करोड (प्रोक्ता) कही गई है।

भावार्थ—अधोलोक मे भवनवासी देव निवास करते है। वहाँ प्रत्येक देव के भवनो मे जिन चैत्यालय है। अत वहाँ देवो के भवनो मे कुल चैत्यालय सात करोड़ बहत्तर लाख है। ये सभी चैत्यालय विशेष तेज व दीप्ति से युक्त है। चैत्यालयो की विस्तृत भिन्न-भिन्न सख्या पृ० २९६ पर देखिये।

व्यन्तर देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

त्रिभुवन - भूत - विभूना, संख्यातीतान्यसख्य-गुण-युक्तानि ।
त्रिभुवन-जन-नयन-मनः, प्रियाणिभवनानि भौम-विबुध-नुतानि ।।४।।

अन्वयार्थ—(असख्य गुण-युक्तानि) असख्यात गुणो से युक्त (त्रिभुवन-जन-नयन-मन प्रियाणि) तीन लोक सम्बन्धी जीवो के नेत्र व मन को प्रिय (भौम-विबुध-नुतानि) व्यन्तर देवो के द्वारा नमस्कृत (त्रिभुवन-भूत-विभूनाम्) तीन लोक के समस्त प्राणियो के नाथ/स्वामी/विभु श्री जिनेन्द्र देव के (भवनानि) अकृत्रिम चैत्यालय (सख्या-अतीतानि) सख्यातीत-असख्यात है।

भावार्थ—वीतरागता आदि असख्यात गुणो से प्राणीमात्र के नेत्र व मन को प्रिय लगने वाले, व्यन्तर देवो के द्वारा सदा स्तुति, वन्दना, आराधना किये जाने वाले, ऐसे तीन लोकोके समस्त जीवो के ईश्वर, अरहन्त भगवान के असख्यात चैत्यालय व्यन्तर देवो के भवनो मे है।

ज्योतिष्क तथा वैमानिक देवों के अकृत्रिम चैत्यालयों का वर्णन

यावन्ति सन्ति कान्त-ज्योति-र्लोकाधिदेवताभिनुतानि ।
कल्पेऽनेक-विकल्पे, कल्पातीतेऽहमिन्द्र-कल्पानल्पे ।।५।।

विशतिरथ त्रिसहिता, सहस्र-गुणिता च सप्तनवति· प्रोक्ता ।
चतुरधिकाशीतिरत., पञ्चक-शून्येन विनिहतान्यनघानि ।।६।।

अन्वयार्थ—(यावन्ति सन्ति) ज्योतिषी देवो के जितने विमान है, उतने ही उनके विमानो मे अकृत्रिम चैत्यालय है, ओर वे सब चैत्यालय (कान्तज्योतिर्लोक-अधिदेवता-अभिनुतानि) ज्योतिर्लोक के सुन्दर अधिदेवताओ के द्वाग नमस्कार को, स्तुति को प्राप्त है।

(अनेक-विकल्पे-कल्पे) अनेक भेद वाले कल्पो-कल्पवासी देवो के सोलह स्वर्गो मे (अहमिन्द्र कल्पे) अहमिन्द्रो की कल्पना वालो मे व (अनल्पे) विस्तार को प्राप्त (कल्पातीते) कल्पातीत देवो—नौ ग्रैवेयको, नौ अनुदिशो और पॉच अनुत्तर विमानो मे (अनघानि) पापो से मुक्त जिनालयो की सख्या (चतुरधिकाशीति अत पचकशून्येन च सप्तनवति सहस्र गुणिता विनिहतानि अथ त्रिसहिता विशति प्रोक्ता) पॉच शून्य से गुणा किये गये चौरासी अर्थात् ८४ लाख एक हजार से गुणा किये गये सतानवे अर्थात् ९७ हजार और तीन सहित बीस अर्थात् २३ अर्थात् कल्पवासी और कल्पातीत देवो के अकृत्रिम चैत्यालयो की संख्या ८४ लाख ९७ हजार २३ है। देवो के विमानो मे चैत्यालयो की भिन्न सख्या पृ०२९५-२९६ पर देखिये ।

भावार्थ—ज्योतिषी देवो के असख्यात विमानो मे असख्यात अकृत्रिम चैत्यालय है तथा वे सब चैत्यालय ज्योतिर्लोक के सुन्दर देवताओ के द्वारा प्रतिदिन पूजे जाते हैं, नमस्कार किये जाते है। अर्थात् ज्योतिषी देव प्रतिदिन चैत्यालयो की आराधना करते है।

इन्द्र-सामानिक आदि अनेक भेदो वाले कल्पवासी देवो के सोलह-सौधर्म आदि स्वर्गो मे तथा कल्पातीत देवो के नौ ग्रैवेयको, नौ अनुदिशो, पॉच अनुत्तर विमानो मे पापनाशक कुल ८४ लाख ९७ हजार २३ अकृत्रिम, मनोहर वीतराग जिनबिम्बो से शोभायमान जिनालय हैं। उनमे चौरासी लाख छ्यानवे हजार सात सौ चैत्यालय कल्पवासियो के है तथा मात्र तीन सौ तेईस चैत्यालय कल्पातीत देवो के विमानो मे है। ये सभी जिनालय भव्यजीवो के पापो का क्षय करने वाले है।

मनुष्य क्षेत्र के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

अष्टापञ्चाशदतश्-चतुःशतानीह मानुषे च क्षेत्रे ।
लोकालोक-विभाग-प्रलोकनाऽऽलोक-सयुजा जय-भाजाम् ।।७।।

अन्वयार्थ—(लोक-अलोक-विभाग-प्रलोकनालोक-सयुजा) लोक और अलोक के विभाग को देखने वाले प्रकाशपुञ्ज—केवलज्ञान-दर्शन से सहित (जयभाजा) घातिया कर्मरूपी शत्रु का नाश कर सर्वत्र विजय को प्राप्त ऐसे भगवान् अरहन्त देव के अकृत्रिम जिनालय (इह मानुषे च क्षेत्रे) इस मनुष्य लोक मे (अष्टापञ्चाशदत चतु शतानि) चार सौ अठावन हैं ।

भावार्थ—मनुष्य लोक मे अढाई द्वीप मे ३९८, नन्दीश्वर द्वीप मे ५२, कुण्डलगिरि पर ४ और रुचकगिरि पर ४ कुल मिलाकर तिर्यक्लोक के ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय है ।

सुदर्शन मेरु सम्बन्धी ७८ जिनालय है—सुदर्शन मेरु के चार वनो मे १६, विजयार्ध पर्वतो पर ३४, वक्षार पर्वतो पर १६, गजदन्तो पर ४, कुलाचलो पर ६, जम्बू और शाल्मलि वृक्षो पर २ इस प्रकार एक मेरु सम्बन्धी ७८ जिनालय है। पॉच मेरु सम्बन्धी ७८×५=३९० अकृत्रिम चैत्यालय है ।

इनमे इष्वाकार पर्वतो के ४, मानुषोत्तर पर्वत के ४, नन्दीश्वरद्वीप के ५२, कुण्डलगिरि के ४ और रुचकगिरि के ४ जिनालय मिलाने पर ३९०+४+४+५२+४+४=४५८ चैत्यालय है ।

इन चैत्यालयो मे भी ढाई द्वीप मानुषोत्तर पर्वत तक के जिनालयो के दर्शन देव, विद्याधर तथा चारणऋद्धिधारक मुनियो को ही हो सकते हैं तथा इसके आगे के अकृत्रिम चैत्यालयो के दर्शन देवो को ही हो सकते हैं, मनुष्यो को कभी नही ।

तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों की संख्या

नव-नव-चतुःशतानि च, सप्त च नवतिः सहस्र-गुणिताः षट् च ।
पञ्चाशत्पञ्च - वियत्, प्रहताः पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्रोक्ताः ।।८।।
एतावन्त्येव सता-मकृत्रि-माण्यथ जिनेशिनां भवनानि ।
भुवन-त्रितये-त्रिभुवन-सुर-समिति - समर्च्यमान - सत्प्रतिमानि ।।९।।

अन्वयार्थ—तीनो लोको मे (त्रिभुवन-सुर समिति-समर्च्यमान-सत्प्रतिमानि) तीनो लोको के देवो के द्वारा पूजा की जाने वाली वीतराग प्रतिमाएँ (सता जिनेशिना) वीतराग जिनेन्द्र के (अकृत्रिमाणि अथ भवनानि) अकृत्रिम जिनालय (नव नव) नौ से गुणित नौ अर्थात् ९×९=८१ (चतु शतानि च) और चार सौ अर्थात् ४८१ (सहस्रगुणिता सप्तनवति च) और हजार से गुणित सतानवे अर्थात् सतानवे हजार (पञ्चवियत् प्रहता षट् च पञ्चाशत्) और पॉच शून्यो से गुणित छप्पन अर्थात् ५६००००० छप्पन लाख (पुन अत्र अष्टो कोट्य) पुन आठ करोड़ अर्थात् ८ करोड़ ५६ लाख ९७ हजार ४८१ (एतावन्ति एव प्रोक्ता) इतने ही कहे गये है।

भावार्थ—तीनो लोको मे चतुर्णिकाय के समस्त देवो से पूज्य जिनेन्द्र देव के अधोलोक सम्बन्धी ७७२०००००, मध्यलोक सम्बन्धी ४५८ व ऊर्ध्वलोक सम्बन्धी ८४९७०२३ अकृत्रिम चैत्यालय है अत इस प्रकार कुल मिलाकर ८५६९७४८१ अकृत्रिम चैत्यालय हैं तथा व्यन्तर व ज्योतिषी देवो के विमानो मे असख्यातासख्यात चैत्यालय हैं। इन सभी जिनालयो मे वीतराग मनहर जिनप्रतिमाएँ विराजमान है।

इन तीन लोक सबधी ८५६९७४८१ चैत्यालयो मे जिनप्रतिमाओ की सख्या—

नवकोडिसया पणवीसा लक्खा, तेवण्ण सहस्स सगवीसा।
नवसय तह अडयाला जिणपडिमाकिट्टिमा वदे।।

९२५५३२७९४८ नौ सौ पच्चीस करोड़, त्रेपन लाख, सत्ताईस हजार नौ सौ अड़तालीस है। इन समस्त अकृत्रिम प्रतिमाओ की मै वन्दना करता हूँ।

मध्यलोक के ४५८ चैत्यालय

वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्य-नगोत्तर-कुलेषुकारनगेषु।
कुरुषु च जिनभवनानि, त्रिशतान्यधिकानि तानि षड्विंशत्या।।१०।।

अन्वयार्थ—(वक्षार-रुचक-कुण्डल-रौप्यनग-उत्तर-कुल-इषुकार-नगेषु) वक्षारगिरि, रुचकगिरि, कुण्डलगिरि, रजताचल/विजयार्ध, मानुषोत्तर,

कुलाचल और इष्वाकार पर्वतो पर (च) तथा (कुरुषु) देवकुरु-उत्तरकुरु मे (षडविशत्या अधिकानि त्रिशतानि तानि जिनभवनानि) वे अकृत्रिम चैत्यालय छब्बीस अधिक तीन सौ—३२६ है।

भावार्थ—पाँच मेरु सम्बन्धी अस्सी वक्षार पर्वतो पर ८०, बीस गजदन्तो पर २०, रुचकगिरि पर ४, कुण्डलगिरि पर ४, एक सौ सत्तर रजताचलो पर १७०, मानुषोत्तर पर ४, तीस कुलाचलो पर ३०, इष्वाकार पर्वतो पर ४, तथा पाँच विदेह सम्बन्धी, पाँच उत्तर कुरु, पाँच देवकुरु के १० इस प्रकार सब मिलाकर ३२६ अकृत्रिम चैत्यालय है। [इनमे पाँच मेरु सम्बन्धी ८० तथा नन्दीश्वर सबधी ५२ चैत्यालय मिलाने कुल ४५८ अकृत्रिम चैत्यालय है]

विशेष—एक-एक विदेह मे क्षेत्र मे १६-१६ वक्षारगिरि तथा ४-४ गजदत है अत सौ पर्वतो पर १०० अकृत्रिम जिनालय है। ढाई द्वीप मे १७० कर्मभूमियाँ है उनमे १७० ही विजयार्ध पर्वत है अत उन पर १७० अकृत्रिम चैत्यालय है। जम्बूद्वीप मे ६ कुलाचल, धातकीखड मे १२ और पुष्करार्द्ध मे १२ कुलाचल है सब मिलाकर ३० कुलाचल है, इन पर ३० अकृत्रिम चैत्यालय है। देवकुरु मे ५ व उत्तर कुरु मे ५ कुल १० उत्तम भोगभूमियो मे १० अकृत्रिम चैत्यालय है।

वक्षारगिरि के	८०
गजदन्त के	२०
कुण्डलगिरि के	४
रुचकगिरि	४
विजयार्द्ध के	१७०
मानुषोत्तर के	४
कुलाचल के	३०
इष्वाकार के	४
उत्तरकुरु देवकुरु के	१०

३२६+५२ नदीश्वर के+८० पाँचमेरु के=४५८

मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालय है।

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालय

नन्दीश्वर - सद्द्वीपे, नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते धृत-शोभे ।
चन्द्र-कर-निकर-सन्निभ-रुन्द्र-यशो वितत-दिङ्-मही-मण्डलके ।।११।।
तत्रत्याञ्जन-दधिमुख-रतिकर-पुरु-नग-वराख्य-पर्वत-मुख्या· ।
प्रतिदिश - मेषा - मुपरि, त्रयो-दशेन्द्रार्चितानि जिनभवनानि ।।१२।।

अन्वयार्थ—(चन्द्रकर-निकर-सनिभ-रुन्द्र-यशो-वितत-दिड-महीमडलके) चन्द्रमा की किरणो के समूह के समान सघन यश से जिसने समस्त दिशाओ का समूह और समस्त् पृथ्वीमडल व्याप्त कर दिया है अर्थात् जिसकी कीर्ति पृथ्वी पर फैल रही है (नन्दीश्वर-जलधि-परिवृते) नन्दीश्वर नामक सागर से घिरा हुआ (धृतशोभे) जो शोभा को धारण करने वाला है, ऐसे (नन्दीश्वर सद्द्वीपे) नन्दीश्वर नामक शुभ द्वीप मे (प्रतिदिश) प्रत्येक दिशा मे (तत्रत्या-अञ्जन-दधिमुख-रतिकर पुरु नग-वराख्य) वहाँ के अञ्जनगिरि, दधिमुख, रतिकर इन श्रेष्ठ नाम वाले (त्रयोदश पर्वत मुख्या) तेरह मुख्य पर्वत है (एषाम् उपरि) इनके ऊपर (इन्द्र अर्चितानि) इन्द्रो से पूजित (त्रयोदश-जिनभवनानि) तेरह जिनभवन है ।

भावार्थ—जिस नन्दीश्वर द्वीप की अवर्णनीय शोभा समस्त पृथ्वी-मडल मे व्याप्त है, जिसकी कीर्ति समस्त दिशाओ मे फैल रही है, नदीश्वर नामक सागर से जो चारो ओर से घिरा हुआ है, जो अवर्णनीय शोभा से युक्त है। ऐसे नन्दीश्वर द्वीप की प्रत्येक दिशा मे एक अञ्जनगिरि उसके चारो ओर चारो दिशाओ मे वापिकाओ के मध्य दधिमुख और वापिकाओ के बाह्य कोणो पर आठ रतिकर सब मिलकर तेरह प्रमुख पर्वत है। एक दिशा मे १३ पर्वत है अत चारो दिशाओ मे ५२ पर्वत है। इन ५२ पर्वतो पर इन्द्रो से पूजित ५२ अकृत्रिम चैत्यालय है। इन चैत्यालयो से यह द्वीप अत्यधिक शोभा को प्राप्त हो रहा है तथा इस द्वीप की अकृत्रिम मनहर प्रतिमाओ और विशाल चैत्यालयो का मधुर सरस यशोगान समस्त दिग्-दिगन्त मे व्याप्त हो रहा है।

आषाढ-कार्तिकाख्ये, फाल्गुनमासे च शुक्लपक्षेऽष्टम्याः ।
आरभ्याष्ट-दिनेषु च, सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतयो भक्त्या ।।१३।।

तेषु महामह-मुचित प्रचुराक्षत-गन्ध-पुष्प-धूपै-र्दिव्यै ।
सर्वज्ञ - प्रतिमाना-मप्रतिमाना प्रकुर्वते सर्व-हितम् ।।१४।।

अन्वयार्थ—(आषाढ-कार्तिकाख्ये फाल्गुन मासे च) आषाढ, कार्तिक और फाल्गुन माह मे (शुक्ल पक्षे अष्टम्या आरभ्य) शुक्लपक्ष मे अष्टमी से प्रारम्भ होकर के (अष्टदिनेषु च) और आठ दिनो मे (सौधर्म-प्रमुख-विबुधपतय) सौधर्म इन्द्र को आदि लेकर समस्त इन्द्र (भक्त्या) भक्ति से (तेषु) उन ५२ अकृत्रिम चैत्यालयो मे (दिव्यै प्रचुर अक्षत गन्ध पुष्प धूपै) अत्यधिक मात्रा मे दिव्य अक्षत, चन्दन, पुष्प और धूप से (अप्रतिमानाम्) उपमातीत (प्रतिमाना) प्रतिमाओ की (सर्वहितम्) सब जन हितकारी (उचित) योग्य (महामह प्रकुर्वते) महामह नामक जिनेन्द्र पूजा को रचाते है।

भावार्थ—एक वर्ष मे अष्टाह्निका पर्व तीन बार आता है-आषाढ, कार्तिक व फाल्गुन मास मे। तीनो अष्टाह्निका शुक्लपक्ष अष्टमी से प्रारम्भ होकर पूर्णिमा पर्यन्त होती है। यह पर्व सब पर्वो से बडा पर्व है। इन दिनो मे चतुर्निकाय के देव वहाँ जाकर दिव्य अक्षत-गन्ध-पुष्प और धूप आदि से उन अनुपम उपमातीत वीतरागमयी सुन्दर प्रतिमाओ की निरन्तर पूजा करते है। इनमे इतना विशेष है कि नन्दीश्वर द्वीप के चारो दिशा सम्बन्धी चैत्यालयो मे चारो निकायो के इन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ सर्वप्राणियो के लिये हितकर ऐसी विशाल महापूजा दो दो पहर तक करते है। तीनो अष्टाह्निका पर्व मे नदीश्वर मे निरन्तर पूजा होती रहती है।

भेदेन वर्णना का, सौधर्म· स्नपन-कर्तृता-मापन्नः ।
परिचारक-भावमिताः, शेषेन्द्रा-रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल-यशसः ।।१५।।
मंगल-पात्राणि पुनस्तद्-देव्यो बिभ्रतिस्म शुभ्र-गुणाढ्याः ।
अप्सरसो नर्तक्य·, शेष-सुरास्तत्र लोकनाव्यग्रधियः ।।१६।।

अन्वयार्थ—(भेदेन वर्णना का) विशेष रूप से अलग-अलग वर्णन क्या कहे ? (सौधर्म) सौधर्म इन्द्र (स्नपनकर्तृताम्-आपन्न) अभिषेक के कर्तृत्व को प्राप्त करता है (रुन्द्र-चन्द्र-निर्मल यशस शेष-इन्द्रा) पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान जिनका निर्मल यश फैला है ऐसे अन्य इन्द्र (परिचारक भावम् इता) सहयोग भाव को प्राप्त होते है, (शुभ्र-गुणाढ्या

तद्देव्य) उज्ज्वल गुणो से युक्त उनकी देवियाँ (मङ्गल पात्राणि बिभ्रति स्म) अष्ट मंगल द्रव्यो को धारण करती है, (अप्सरस नर्तक्य) अप्सराएँ नृत्य करती है तथा (शेषसुरा) अन्य देवगण (तत्र) वहाँ (लोकन व्यग्रधिय) उस अभिषेक के दृश्य को देखने मे दत्तचित्त रहते है।

भावार्थ—उस अवर्णनीय शोभासम्पन्न अष्टम नन्दीश्वर द्वीप का अलग-अलग विशेष वर्णन कहाँ तक करे जहाँ सौधर्म इन्द्र प्रमुख रहता है तथा वही स्वय समस्त जिनप्रतिमाओ का दिव्य जल आदि सुगन्धित द्रव्यो से अभिषेक करता है तथा चन्द्रमा सम निर्मल यश के धारक शेष इन्द्रो का समूह परिचारक के रूप मे सौधर्म इन्द्र की अभिषेक मे सहायता करता है। गुणो से युक्त उनकी देवियाँ अष्ट मगल द्रव्यो को हाथो मे लेकर खडी रहती है, अप्सराएँ नृत्य करती रहती है तथा शेष देवो का समूह अभिषेक के इस महा उत्सव को देखने मे एकाग्र हो जाता है।

अष्टमङ्गल द्रव्य—

छत्र ध्वज कलश चामर सुप्रतीक, भृगार-ताल मतिनिर्मल दर्पण च।
शसति मङ्गलमिद निपुणस्वभावा , द्रव्य स्वरूपमिह तीर्थकृतोऽष्टधैव।।

१ छत्र २ ध्वजा ३ कलश ४ चवर ५ स्वस्तिक ६ झारी ७ घटा और ८ स्वच्छ दर्पण।

वाचस्पति-वाचामपि, गोचरतां सव्यतीत्य यत्-क्रममाणम्।
विबुधपति-विहित-विभवं, मानुष-मात्रस्य कस्य शक्तिः स्तोतुम्।।१७।।

अन्वयार्थ—(यत्) जो महामह पूजन (विबुधपति-विहित-विभव) इन्द्रो के द्वारा विशेष वैभव से सम्पन्न होता है (वाचस्पति-वाचाम्-अपि) वृहस्पति के वचनो की भी (गोचरता) विषयता को (सव्यतीत्य) उल्लघन कर (क्रममाण) प्रवर्तमान है (स्तोतु) उस महामह पूजन की स्तुति करने के लिये (कस्य मानुष मात्रस्य शक्ति) किस मनुष्य मात्र की शक्ति/सामर्थ्य हो सकती है ?

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप मे सौधर्म आदि इन्द्रो के द्वारा अष्टह्निका पर्व के आठ दिनो मे जो महामह-पूजा निरन्तर महावैभव के साथ, विशेष भक्ति, नृत्य, गान आदि के साथ की जाती है, उस पूजन की शोभा और

भक्ति का वर्णन बृहस्पति भी अपनी वाणी से नही कर सकता, फिर उन चैत्यालयो की स्तुति करने के लिये सामान्य मनुष्य मे सक्षमता कैसे आ सकती है अर्थात् उनकी स्तुति करना मानव मात्र की समर्थता/शक्ति के बाहर है।

निष्ठापित - जिनपूजाश्-चूर्ण-स्नपनेन दृष्टविकृतविशेषा.।
सुरपतयो नन्दीश्वर-जिनभवनानि प्रदक्षिणीकृत्य पुन· ।।१८।।
पञ्चसु मंदरगिरिषु, श्रीभद्रशालनन्दन-सौमनसम्।
पाण्डुकवनमिति तेषु, प्रत्येक जिनगृहाणि चत्वार्येव ।।१९।।
तान्यथ परीत्य तानि च, नमसित्वा कृतसुपूजनास्तत्रापि।
स्वास्पदमीयुः सर्वे, स्वास्पदमूल्य स्वचेष्टया संगृह्य ।।२०।।

अन्वयार्थ—(चूर्णस्नपनेन) सुगन्धित चूर्ण से जिन्होने अभिषेक पूर्वक (निष्ठापित जिनपूजा) जिनेन्द्र पूजा पूर्ण की है—पूजा मे हर्ष से भाव-विभोर होने से महा आनन्द आ रहा है उस आनद से (दृष्ट-विकृत विशेषा) जिनकी आकृति कुछ विकृत हो गई है, ऐसे (सुरपतय) इन्द्र (पुन) पूजा के बाद फिर (नन्दीश्वर जिनभवनानि) नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालयो की (प्रदक्षिणी कृत्य) प्रदक्षिणा करके पश्चात् वे इन्द्र—"१८"

(पचसु-मन्दरगिरिसु श्रीभद्रशाल नदन सौमनसम् पाण्डुकवन इति) पाँचो मेरु सम्बन्धी श्री भद्रसालवन, नन्दनवन, सौमनस वन और पाण्डुक वन इस प्रकार (तेषु चत्वारि एव प्रत्येक जिनगृहाणि) उन चारो ही वनो मे प्रत्येक मे चार-चार जिन चैत्यालयो की (अथ तानि परीत्य) प्रथम प्रदक्षिणा देकर (च) और (तानि नमसित्वा) उनको नमस्कार करके (तत्र अपि) वहाँ भी (कृत सुपूजना) अभिषेक, पूजा आदि उत्तम रीति से करते है तथा (सर्वे) सभी देव (स्वास्पदमूल्य सगृह्य) अपने-अपने योग्य पुण्य का सचय करके (स्वास्पद ईयु) अपने-अपने स्थान को चले जाते है।

भावार्थ—सुगन्धित चूर्ण से जिनेन्द्रदेव का महाअभिषेक व पूजा मे भावविभोर हो नृत्य, गान रूप भक्ति के रग मे रग जाने से महाआनन्द आ रहा है उस आनन्द से जिनकी आकृति कुछ विकृत हो रही है ऐसे इन्द्र नन्दीश्वरद्वीप के समस्त चैत्यालयो की प्रदक्षिणा करते है उसके पश्चात् पाँच

मेरु सम्बन्धी भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुकवन इस प्रकार चारो वनो के चार-चार कुल ८० जिनालयो की प्रदक्षिणा देकर उनकी दिव्य जलादि द्रव्यो से उत्तम रीत्या पूजा करते है। पूजा अभिषेक से महापुण्य का सञ्चय कर वे देवगण अपने-अपने स्थान को चले जाते है।

एक-एक मेरु पर्वत पर चार-चार वन है। भ्रदशाल, नन्दन, सौमनस और पाडुक। मेरु पर्वतो के सबसे नीचे चारो ओर भद्रशाल वन है, इनके ऊपर मेरु पर्वत के चारो ओर नन्दन वन है उसके ऊपर तीसरी कटनी पर चारो ओर सौमनस वन है और उनके ऊपर चारो ओर पाडुक वन है। इस प्रकार पॉचो मेरु सम्बन्धी बीस वन है। इन वनो की चारो दिशाओ मे एक-एक अकृत्रिम चैत्यालय है। इस प्रकार पॉच मेरु पर्वतो पर अस्सी चैत्यालय है।

नन्दीश्वर द्वीप के चैत्यालयों की विभूति

सहतोरणसद्वेदी - परीतवनयाग - वृक्ष - मानस्तम्भः।
ध्वजपक्तिदशकगोपुर, चतुष्टयत्रितय-शाल-मण्डप-वर्यै. ।।२१।।
अभिषेकप्रेक्षणिका, क्रीडनसगीतनाटकालोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पित-कल्पन-सकल्पातीत-कल्पनै. समुपेतैः ।।२२।।
वापी सत्पुष्करिणी, सुदीर्घिकाद्यम्बुसंसृतैः समुपेतैः।
विकसितजलरुहकुसुमै-र्नभस्यमानैः शशिग्रहर्क्षैः शरदि ।।२३।।
भृगाराब्दक-कलशा, ह्युपकरणैरष्टशतक-परिसंख्यानैः।
प्रत्येकं चित्रगुणैः, कृतझणझणनिनद-वितत-घटाजालैः ।।२४।।
प्रविभाजते नित्य, हिरणमयानीश्वरेशिना भवनानि।
गधकुटीगतमृगपति, विष्टर-रुचिराणि-विविध-विभव-युतानि ।।२५।।

अन्वयार्थ—वे अकृत्रिम चैत्यालय (सहतोरण-सद्वेदी-परीतवन-यागवृक्ष-मानस्तम्भ-ध्वजपक्ति-दशक-गोपुर-चतुष्टय-त्रितयशाल मण्डपवर्यै) अकृत्रिम तोरणो से, चारो ओर रहने वाले वनो से, यागवृक्षो से, मानस्तम्भो से, दस-दस प्रकार की ध्वजाओ की पक्तियो से, चार-चार गोपुरो से, तीन परिधियो वाले श्रेष्ठ मण्डपो से (शिल्पिविकल्पित-कल्पन-सकल्पातीत-कल्पनै) चतुर शिल्पियो से कल्पित सकल्पातीत रचनाओ से (समुपेतै) सहित (अभिषेक-प्रेक्षणिका-क्रीडन-सगीत-नाटक-आलोकगृहै) अभिषेक-

दर्शन, क्रीडा, सगीत और नाटक देखने के गृहो से (विकसित-जलरुह-कुसुमै शरदि) खिले हुए कमल पुष्पो के कारण शरद ऋतु मे (शशि-ग्रह-ऋक्षै) चन्द्रमा, गृह तथा ताराओ से (नभस्यमानै) आकाश के समान दिखने वाले (वापीसत्पुष्करिणी-सुदीर्घिका-आदि-अम्बुसश्रयै) वापिका, पुष्पकारिणी तथा सुन्दर दीर्घिका आदि जलाशयो से (समुपेतै) प्राप्त (प्रत्येक अष्टशत परिसख्यानै) प्रन्येक एक सौ साठ, एक सौ आठ सख्या वाले (भृङ्गाराब्दक-कलशादि-उपकरणै) झारी, दर्पण तथा कलश आदि उपकरणों से और (चित्रगुणै) आश्चर्यकारी गुणो से युक्त (कृत झणझणनिनद-वितत-घण्टाजालै) झण-झण शब्द करते हुए घटाओ के समूहो से (गन्धकुटीगत मृगपति विष्टर रुचिराणि) गन्धकुटी-गर्भगृह मे स्थित सिहासनो से सुन्दर तथा (विविध-विभव-युतानि) नाना प्रकार के वैभव से सहित (ईश्वरेशिना) जिनेन्द्रदेव के (हिरण्यमयानि तानि भवनानि) स्वर्णमय वे जिन भवन/अकृत्रिम चैत्यालय (नित्यँ प्रविभाजन्ते) नित्य ही प्रकृष्ट शोभा को प्राप्त होते है ।

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप के सभी अकृत्रिम चैत्यालय स्वर्णमयी है वे सभी चैत्यालय तोरणो, वेदी, वन, उपवन, चैत्यवृक्ष, मानस्तम्भ, ध्वजाओ की दस-दस पक्तियो, गोपुरो तीन-तीन कोटो, तीन-तीन शालाओ से उत्तम-उत्तम मडपो से सुशोभित है । जिन मडपो मे बैठकर अभिषेक देखते है ऐसे अभिषेक मण्डप, क्रीडा स्थान, सगीतभूमि, नाटकशालाओ से सुशोभित है । प्रफुल्ल/खिले हुए कमलो से युक्त, जलाशयो से सहित है, झारी आदि अष्टमगल द्रव्यो से सहित है । दूर-दूर तक झन-झन की आवाज करने वाले घण्टाओ के समूह से सुशोभित है तथा गन्धकुटी के भीतर रत्नमयी सिहासन, छत्रचमर आदि अनेक प्रकार की विभूतियो ये युक्त जिनेन्द्रदेव के अकृत्रिम चैत्यालय सदैव ही दैदीप्यमान रहते है, शोभायमान होते हैं ।

नन्दीश्वर के चैत्यालयों में स्थित प्रतिमाओं का वर्णन

येषु-जिनानां प्रतिमाः, पञ्चशत-शरासनोच्छ्रिताः सत्प्रतिमाः ।
मणिकनक-रजतविकृता, दिनकरकोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहाः ।।२६।।

तानि सदा वदेऽहं, भानुप्रतिमानि यानि कानि च तानि।
यशसा महसां प्रतिदिश-मतिशय-शोभा-विभाञ्जि पापविभाञ्जि ।।२७।।

अन्वयार्थ—(येषु) जिन अकृत्रिम जिनालयो मे (जिनाना प्रतिमा) जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाँएँ (पञ्चशतशरासन-उच्छ्रिता) ५०० धनुष ऊँची है (सत्प्रतिमा) सुन्दर, समीचीन आकार वाली, अत्यन्त मनोहर (मणिकनक-रजत-विकृता) मणि-स्वर्ण-चाँदी से बनी हुई है तथा (दिनकर-कोटि-प्रभाधिक-प्रभदेहा) करोडो सूर्यो की प्रभा से भी अधिक प्रभावाले शरीर से युक्त है (तानि) उन जिनेन्द्र भवनो, जिनालयो को (अह सदा वन्दे) मै सदा नमस्कार करता हूँ। इसके साथ ही (प्रतिदिश) प्रत्येक दिशा मे (यशसा महसा) यश और तेज की (अतिशय-शोभा-विभाञ्जि) अत्यधिक शोभा को प्राप्त तथा (पाप-विभाञ्जि) पाप को नष्ट करने वाले (भानु प्रतिमानि) सूर्य के समान (यानि कानि च) जितने भी अन्य मन्दिर है (तानि) उन सबको (अह) मै (सदा वन्दे) हमेशा नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—नन्दीश्वर द्वीप के ५२ अकृत्रिम जिनालयो मे जिनेन्द्रदेव के समस्त वीतराग जिनबिम्ब ५०० धनुष ऊँचे, सुन्दर आकार वाले व मनोज्ञ है। सभी जिनबिम्ब अपनी तेज कान्ति से करोडो सूर्यो की प्रभा से भी अधिक दीप्ति से देदीप्यमान कान्ति के धारक है तथा मणि-स्वर्ण व चाँदी के बने हुए है, इनके अलावा प्रत्येक दिशाओ मे भी यश और कान्ति को विस्तृत करने वाले, पापनाशक, सूर्यसम तेजके धारक समस्त जिनमन्दिरो को मैं नित्य, सदाकाल वन्दन करता हूँ, नमस्कार करता हूँ। इन सब चैत्यालयो की वन्दना से मेरे समस्त पापो का क्षय हो।

तीर्थङ्करों की स्तुति

सप्तत्यधिक-शतप्रिय, धर्मक्षेत्रगत-तीर्थकर-वर-वृषभान्।
भूतभविष्यत्संप्रति- काल-भवान् भवविहानये विनतोऽस्मि ।।२८।।

अन्वयार्थ—(भूत-भविष्यत्-सम्प्रतिकाल-भवान्) अतीतकाल, भावीकाल और वर्तमान काल मे होने वाले (सप्तति-अधिक-शत-प्रियधर्म-क्षेत्र-गत-तीर्थकर-वर-वृषभान्) जिन क्षेत्रो मे धर्म अत्यन्त प्रिय है ऐसे १७० प्रिय धर्मक्षेत्रो–आर्यखण्डो मे स्थित अतिशय श्रेष्ठ तीर्थंकरो को मैं

(भव-विहानये) ससार-भ्रमण का छेद करने के लिये (विनत अस्मि) विनयपूर्वक, विधिवत् नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—मनुष्य लोक मे ५ भरत, ५ ऐरावत व ५ विदेह क्षेत्रो मे १५ कर्मभूमियाँ है। इन पन्द्रह भूमिया मे भरत-ऐरावत के चतुर्थ काल म व विदेह क्षेत्र मे सदाकाल तीर्थकरो के द्वारा तीर्थ की प्रवर्तना होती रहती है। एक विदेह मे ३२ आर्यखण्ड है, अत एक विदेह मे ३२ तीर्थकर होते है अत पॉच विदेह सम्बन्धी १६० आर्यखण्ड भूमियो के १६० तीर्थकर हुए तथा ५ भरत सबधी, ५ ऐरावत सम्बन्धी १०, आर्यखण्डक्षेत्रो के १० तीर्थकर हुए। इस प्रकार सब मिलाकर १७० आर्यखण्डो के १७० तीर्थकर हुए। ऐसे भूत-भावी वर्तमान के १७० तीर्थकरो को मै नमस्कार करता हूँ। यदि एकसाथ अधिक से अधिक तीर्थकर अढाई द्वीप मे हो तो १७० हो सकते है अधिक नही।

भगवान् वृषभदेव की स्तुति

अस्यामवसर्पिण्या, वृषभजिन· प्रथमतीर्थकर्ता भर्ता।
अष्टापदगिरिमस्तक, गतस्थितो मुक्तिमाप पापान्मुक्त.।।२९।।

अन्वयार्थ—(अस्याम् अवसर्पिण्याम्) इस अवसर्पिणी काल मे (प्रथम तीर्थकर्ता) तीर्थ के आदि कर्ता प्रथम तीर्थकर (वृषभजिन स्वामी) वृषभनाथ स्वामी (कर्ता-भर्ता) असि-मसि-कृषि-शिल्प-वाणिज्य और कला इन छ कर्मो के उपदेशकर्ता व जनता के पोषक थे। (अष्टापद-गिरिमस्तक गत-स्थित पापात् मुक्त) कैलाश पर्वत के शिखर पर पद्मासन से स्थित हो पापो से छूटकर (मुक्तिम् आप) मोक्ष को प्राप्त हुए।

भावार्थ—इस हुण्डावसर्पिणी काल मे जब तृतीय काल के तीन वर्ष साढे आठ माह शेष थे, तब युग के आदि तीर्थकर वृषभदेव घातिया व अघातिया दोनो ही दुष्कर्मो का क्षय करके कैलाश पर्वत के शिखर से पद्मासन मे मुक्त हुए। वृषभदेव ने राज्यावस्था मे प्रजा को असि-मसि-कृषि-वाणिज्य-शिल्प और कला इन षट्कर्मो को करने का उपदेश दिया था अत वे "प्रजापति" कहलाते थे।

भगवान वासुपूज्य की स्तुति

श्रीवासुपूज्यभगवान्, शिवासु पूजासु पूजितस्त्रिदशानाम् ।
चम्पाया दुरित-हरः, परमपद प्रापदापदा-मन्तगत· ।।३०।।

अन्वयार्थ—(शिवासु पूजासु) शोभा को प्राप्त, कल्याणकारी पञ्चकल्याणक रूप पूजाओ मे (त्रिदशाना पूजित) इन्द्रो व देवो से पूजा को प्राप्त (श्रीवासुपूज्य भगवान्) अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मी के स्वामी वासुपूज्य भगवान् (आपदाम् अन्तगत) विपत्तियो के अन्त को प्राप्त हो, (दुरितहर) पापो का क्षय करते हुए (चम्पायाम्) चम्पापुरी मे मन्दारगिरि पर्वत से (परमपद प्रापत्) परम पद/मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए ।

भावार्थ—अतिशय शोभासम्पन्न सर्व कल्याणकारी गर्भआदि पञ्चकल्याणकपूजाओ मे देवो के परिवार के द्वारा पूजित, १०० इन्द्रो से वन्दित, श्री प्रथम बालयति वासुपूज्य भगवान् ससार के समस्त दुखो का अन्त करते हुए, अष्टकर्मो का अतिशय क्षय करके चम्पापुर मे मन्दारगिरि पर्वत से परमोत्कृष्ट सिद्ध पद को प्राप्त हुए ।

नेमिनाथ स्वामी की स्तुति

मुदितमतिबलमुरारि-प्रपूजितो जित कषायरिपुरथ जातः ।
वृहदूर्जयन्त-शिखरे, शिखामणिस्त्रिभुवनस्य-नेमिर्भगवान् ।।३१।।

अन्वयार्थ—(मुदित-मति-बल-मुरारि-प्रपूजित) बलदेव और श्रीकृष्ण ने जिनकी प्रसन्नचित्त हो पूजा की है (च) और (जित कषाय रिपु) कषायरूपी शत्रुओ को जिन्होने जीत लिया है ऐसे (नेमि भगवान्) नेमिनाथ भगवान् (वृहत्-उर्जयन्त-शिखरे) विशाल गिरनार पर्वत के शिखर पर (त्रिभुवनस्य शिखामणि जात) तीन लोक के शिखामणि हुए अर्थात् उत्तम मुक्तिपद को प्राप्त हुए ।

भावार्थ—राजा समुद्र विजय के पुत्र नेमिनाथ भगवान् थे तथा उनके छोटे भाई वसुदेव के पुत्र बलराम और श्रीकृष्ण थे। बलराम और श्रीकृष्ण, बलभद्र व नारायण पद के धारी थे। नेमिनाथजी के ये चचेरे भाई थे। आयु मे भी नेमिनाथ जी से बड़े थे तथापि बलराम और श्रीकृष्ण अपने कुल मे तीर्थकर का जन्म हुआ है यह विचार कर सदा नेमिनाथ जी

को देख प्रसन्नचित्त रहते थे। तथा केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भी सदा उनकी पूजा-वन्दना किया करते थे।

अर्थात् जो नेमिनाथ भगवान श्रीकृष्ण व बलराम से पूज्य थे। जिन्होने कषायो को जीत लिया था ऐसे श्री नेमिनाथ भगवान् ऊर्जयन्त/गिरनार/ रैवतक पर्वत के शिखर से मुक्ति को प्राप्त हुए।

श्री महावीर स्वामी की स्तुति

पावापुरवरसरसां, मध्यगतः सिद्धिवृद्धितपसां महसाम्।
वीरो नीरदनादो, भूरि-गुणश्चारु शोभमास्पद-मगमत्।।३२।।

अन्वयार्थ—(सिद्धि-वृद्धि-तपसा महसा मध्यगत) सिद्धि-वृद्धि-तप और तेज के मध्य मे स्थित (नीरदनाद) मेघ की गर्जनासम जिनकी दिव्यध्वनि का शब्द है (भूरिगुण) अनन्त गुणो से युक्त (वीर) अन्तिम तीर्थकर भगवान महावीर ने (पावापुर वर सरसा मध्यगत) पावापुर के उत्कृष्ट सरोवर के मध्य मे स्थित हो (चारुशोभ) उत्कृष्ट शोभा से युक्त (आस्पदम्) मुक्तिस्थल को (अगमत्) प्राप्त किया।

भावार्थ—जो इच्छित कार्यो को पूर्ण करने मे, उत्तमक्षमादि गुणो का उत्कर्ष करने मे तथा अनशन आदि बारह महातपश्चरण करने मे महान् होने से सिद्धि, वृद्धि और तेजपुञ्ज है जिनकी दिव्यध्वनि मेघो की गर्जना के समान है। जो अनन्त गुणो से युक्त है ऐसे वर्तमान शासन कालीन तीर्थकर महावीर पावापुरी उत्कृष्ट सरोवर मे स्थित को उत्तम श्री शोभा सम्पन्न मुक्तिस्थल को प्राप्त हुए।

अवशेष बीस तीर्थङ्करों की स्तुति

सम्मदकरिवन-परिवृत-सम्मेदगिरीन्द्रमस्तके विस्तीर्णे।
शेषा ये तीर्थंकराः, कीर्तिभृतः प्रार्थितार्थसिद्धिमवापन्।।३३।।

अन्वयार्थ—(कीर्तिभृत) कीर्ति को धारण करने वाले (शेषा ये तीर्थकरा) शेष जो बीस तीर्थकर है वे (विस्तीर्णे) विशाल फैले हुए (सम्मद-करि वन परिवृत-सम्मेद-गिरीन्द्र मस्तके) मदोन्मत्त हाथियो से युक्त वन से घिरे हुए सम्मेद गिरिगज के शिखर पर (प्रार्थितार्थ-सिद्धि) अभिलषित मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि को (अवापन्) प्राप्त हुए।

भावार्थ—जिनका यश सर्वत्र फैल रहा है, ऐसे अनन्तकीर्ति के स्वामी वृषभनाथ, वासुपूज्यजी, नेमिनाथ व महावीर स्वामी को छोडकर शेष बीस तीर्थकर विशाल, विस्तार को प्राप्त बड़े-बडे हाथियो से घिरे हुए गिरिराज सम्मेद-शिखर से मोक्ष पुरुषार्थ की उत्तम सिद्धि को प्राप्त हुए।

अन्य सिद्ध स्थानो से मगल प्रार्थना

शेषाणा केवलिना-मशेषमतवेदिगणभृता साधूना।
गिरितलविवरदरीसरि-दुरुवनतरु-विटपिजलधि-दहनशिखासु ।।३४।।
मोक्षगतिहेतु-भूत-स्थानानि सुरेन्द्ररुन्द्र-भक्तिनुतानि।
मगलभूतान्येता - न्यगीकृत - धर्मकर्मणामस्माकम् ।।३५।।

अन्वयार्थ—(शेषाणाम् केवलिनाम्) तीर्थकर केवलियो के सिवाय अन्य सामान्य केवली आदि के (अशेषमतवेदि-गणभृताम्) सम्पूर्ण मतो के ज्ञाता गणधरो (साधूनाम्) मुनियो के (गिरितल-विवर-दरीसरि-दुरुवन-तरुविवर-विटपि-दहन-शिखासु) पर्वतो के तल/उपरितन प्रदेश, अधस्तन प्रदेश, बिल, गुफा, नदी, विशाल वन, वृक्षो की शाखा, समुद्र तथा अग्नि की ज्वालाओ मे (सुरेन्द्र-रुद्र-भक्ति-नुतानि) इन्द्रो के द्वारा अत्यधिक भक्ति मे स्तुति, नमस्कार को प्राप्त (मोक्षगति-हेतुभूत-स्थानानि) मोक्षगति के कारणभूत स्थान है (एतानि) ये सब (अङ्गीकृत-धर्मकर्मणा अस्माकम्) धर्म-कर्म को स्वीकृत करने वाले हमारे (मङ्गलभूतानि) मङ्गलस्वरूप है।

भावार्थ—तीर्थकर केवलियो के अलावा अन्य उपसर्ग केवली, सामान्य केवली अन्तकृत केवली, मूककेवली आदि सर्वकेवलियो, समस्त ३६३ अन्य मतो के ज्ञाता गणधर, मुनिवृन्दो के निर्वाण-स्थलो–पर्वतो के शिखर, बिल गुफा, नदी, वन, वृक्षो की शाखा, समुद्र, अग्नि की ज्वालाओ मे इन्द्रो के द्वारा स्तुति, नमस्कार को प्राप्त ऐसे समस्त मुक्तिस्थल, जिनकी स्तुति, नमस्कार करने वालो को मुक्ति प्राप्त करने वाली है, धर्म पुरुषार्थ मे तत्पर रहने वाले हम भक्तजनो के पापो का क्षय करने मे सहायक हो। अर्थात् तीर्थंकर मुनियो की निर्वाण-भूमियो की वन्दना-नमस्कार करने से भव्यो के पापो का प्रक्षालन होता है तथा शीघ्र मुक्ति की प्राप्ति होती है।

जिनपतययस्तत्-प्रतिमा- स्तदालयास्तन्निषद्यका स्थानानि।
ते ताश्च ते च तानि च, भवन्तु भव-घात-हेतवो भव्यानाम् ।।३६।।

अन्वयार्थ—(जिनपतय) जिनेन्द्रदेव (तत्प्रतिमा) जिन प्रतिमाएँ (तत् आलया) उनके मन्दिर और (तत निषद्यका-स्थानानि) उनके निर्वाण स्थान है। (ते ता च तानि च) वे जिनेन्द्रदेव, उनकी प्रतिमाएँ, जिनमन्दिर और उनके निर्वाण-स्थल (भव्यानाम) भव्यजीवो के (भवघातहेतव) ससार क्षय के कारण होवे।

भावार्थ—जो भव्यात्मा जिनेन्द्रदेव, जिन-प्रतिमाओ, जिन-मन्दिर व जिनेन्द्रदेव के निर्वाणस्थलो की पूजा, आराधना, स्तुति-वन्दना आदि करते है वे ससार सतति का शीघ्र क्षयकर मुक्ति को प्राप्त करते है। अत मुमुक्ष भव्य बन्धुओ को इनकी स्तुति, वन्दना, आराधना यथाशक्ति अवश्य करना चाहिये।

तीनों समय नन्दीश्वर भक्ति करने का फल

सन्ध्यासु तिसृषु नित्य, पठेद्यदि स्तोत्र-मेतदुत्तम-यशसाम्।
सर्वज्ञाना सार्व, लघु लभते श्रुतधरेडित पद-ममितम्।।३७।।

अन्वयार्थ—(य) जो (उत्तम यशसाम्) उत्कृष्ट यश के पुञ्ज (सर्वज्ञाना) सर्वज्ञ देवो के (एतत् सार्व स्तोत्र) इस सर्व हितकर स्तोत्र को (यदि) यदि (नित्य तिसृषु सन्ध्यासु) प्रतिदिन तीनो सन्ध्याओ मे (पठेत्) पढता है वह (लघु) शीघ्र ही (श्रुतधर-इडित) श्रुतके धारक शास्त्रज्ञ गणधरादि मुनियो के द्वारा पूज्यता, स्तुति को प्राप्त होकर (अमितम् पदम्) शाश्वत अनन्त, स्थान मोक्ष को (लभते) प्राप्त होता है।

भावार्थ—इस जिन स्तुति के पुण्य पाठ को जो भव्यजीव श्रद्धा-भक्ति से प्रतिदिन तीनो सध्याकालो मे पढते है वे निकट काल मे मुक्ति के भाजन, भव्यात्मा शीघ्र ही मुक्ति लक्ष्मी के अनन्त सुखो को प्राप्त करते है।

अरहंतों के शरीर सम्बन्धी दश अतिशय

आर्याछन्द

नित्यं निःस्वेदत्व, निर्मलता क्षीर-गौर-रुधिरत्व च।
स्वाद्याकृति-सहनने, सौरूप्य सौरभ च सौलक्ष्यम्।।३८।।
अप्रमित-वीर्यता च, प्रिय-हित वादित्व-मन्यदमित-गुणस्य।
प्रथिता दश-विख्याता, स्वतिशय-धर्मा स्वयं-भुवो देहस्य।।३९।।

अन्वयार्थ—(नित्य नि स्वेदत्व) कभी पसीना न आना (निर्मलता) कभी मल-मूत्र नही होना (च क्षीरगौररुधिरत्व) दूध के समान सफेद खून का होना (स्वाद्याकृति सहनने) समचतुरस्रसस्थान व वज्रवृषभनाराच सहनन का होना (सौरुप्य) सुन्दर रूप का होना (सौरभ च) सुगन्धमय शरीर का होना (सौलक्ष्यम्) उत्तम लक्षणो से युक्त होना (अप्रमितवीर्यता च) और अतुल्य बल (प्रियहितवादित्व) प्रिय व हितकारी मधुर वचनो का बोलना (दस विख्याता स्वतिशय धर्मा) ये १० प्रसिद्ध अतिशय व (अन्यनत् आमित गुणस्य) अन्य अपरिमित, अनन्त गुण (स्वयभुव देहस्य) तीर्थकर के शरीर के मे (प्रथिता) कहे गये है।

भावार्थ—तीर्थकर भगवान् जन्म से दस अतिशय के धारक होते है—१ शरीर मे कभी भी पसीना नही आना २ मल-मूत्र नही होना ३ दूध के समान सफेद खून का होना ४ समचतुरस्रसस्थान ५ वज्रवृषभ-नाराचसहनन ६ सुन्दर रूप ७ सुगन्धित शरीर ८ शरीर मे १००८ लक्षणो का होना ९ अतुल्यबल और १० हित-मित-प्रिय वचनो का बोलना। इनके अलावा भी वे अन्य अनन्त गुणो के स्वामी होते ।

जो विशेषता दूसरो मे नही पायी जावे, वह अतिशय कहलाता है। तीर्थकरो के दश अतिशय जन्म काल से ही होते है अत इन्हे जन्मातिशय कहते है।

केवलज्ञान के दश अतिशय

गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता-गगन-गमन-मप्राणिवधः ।
भुक्त्युपसर्गाभाव -श्चतुरास्यत्व च सर्व-विद्येश्वरता ।।४०।।
अच्छायत्व-मपक्ष्म-स्पन्दश्च सम-प्रसिद्ध-नख-केशत्वम् ।
स्वतिशय-गुणा भगवतो, घाति-क्षयजा भवन्ति तेऽपि दशैव ।।४१।।

अन्वयार्थ—(गव्यूति-शत-चतुष्टय-सुभिक्षता) चार सौ कोश तक सुभिक्ष का होना (गगन गमनम्) आकाश मे गमन होना (अप्राणिवध) किसी जीव का वध न होना/हिसा का अभाव (भुक्ति-उपसर्ग अभाव) कवलाहार का नही होना, उपसर्ग का नही होना (चतु आस्यत्व) चार मुख दिखना (सर्व-विद्या-ईश्वरता) मब विद्याओ का स्वामी होना

(अच्छायत्वम्) छाया का नही पडना (अपक्ष्म-स्पन्द) नेत्रो के पलक नही झपकना (समप्रसिद्ध-नख-केशत्व) नख और केशो को नही बढना (घातिक्षयजा) घातिया कर्मो के क्षय से होने वाले (स्वतिशय गुणा भगवत) भगवान् के ये स्वाभाविक गुण उत्तम अतिशय है (ते अपि दश एव) वे भी दश ही होते है।

भावार्थ—घातिया कर्मो के क्षय से केवलज्ञान की प्राप्ति होते ही तीर्थकर भगवान् पॉच हजार धनुष ऊपर जाकर शोभा को प्राप्त होते है। वही इतना ऊँचाई पर सुन्दर विशाल समवशरण की रचना होती है। समवशरण मे भगवान् का एक मुख चारो दिशाओ मे दिखाई देता है। केवलज्ञान होते ही १० अतिशय उनमे प्रकट होते है—

१ तीर्थकर का जहॉ विहार होता है–वहॉ से ४०० योजन [चारो दिशाओ मे १००-१०० योजन] तक सुभिक्ष होता २ आकाश मे गमन होना ३ किसी जीव का वध नही होना ४ कवलाहार का अभाव ५ उपसर्ग का अभाव ६ चारो दिशाओ मे मुख दिखना ७ सब विद्याओ का स्वामित्व होना ८ शरीर की छाया नही पडना ९ नेत्रो की पलक नही झपकना १० नख व केशो का नही बढना।

केवली भगवान् के औदारिक शरीर से समस्त निगोदिया जीवो का निर्गमन हो जाता है अत उनका शरीर परमौदारिक, स्फटिक के समान शुद्ध हो जाता है। कवलाहार के अभाव मे भी उनका शरीर ८ वर्ष अन्तर्मुहूर्त कम एक कोटि पूर्व तक स्थिर रह सकता है।

देवकृत चौदह अतिशय

सार्वार्ध-मागधीया, भाषा मैत्री च सर्व-जनता-विषया।
सर्वर्तु-फल-स्तबक-प्रवाल-कुसुमोपशोभित-तरु-परिणामा: ।।४२।।
आदर्शतल - प्रतिमा, रत्नमयी जायते मही च मनोज्ञा।
विहरण-मन्वेत्यनिल., परमानन्दश्च भवति सर्व-जनस्य ।।४३।।

अन्वयार्थ—(सार्वार्धमागधीया भाषा) समस्त प्राणियो का हित करने वाली अर्धमागधी भाषा, (सर्वजनताविषया मैत्री च) समस्त जन समूह मे मैत्री भाव (सर्व ऋतु फल-स्तबक प्रवाल कुसुमोपशोभित-तरु-

परिणामा) छहो ऋतुओ के फलो के गुच्छे, पत्ते और फूलो से सुशोभित वृक्षो से युक्त होना (च मही रत्नमयी मनोज्ञा आदर्श तल प्रतिमा जायते) और पृथ्वी का रत्नमयी, सुन्दर, दर्पण के समान निर्मल होना (अनिल विहरणम् अन्वेति) वायु का विहार के अनुकूल चलना (च सर्वजनस्य परम-आनन्द भवति) और समस्त जीवो का परम आनन्दित होना।

भावार्थ—केवलज्ञान के पश्चात् समवशरण सभा मे विराजमान जिनेन्द्र-देव की सभी प्राणियो के लिये हितकारी ऐसी दिव्यध्वनि अर्द्धमागधी भाषा मे खिरती है, जहॉं भी समवशरण का/केवली भगवान् का विहार होता है समवशरण मे समस्त जाति विरोधी जीव भी बैर-भाव को छोड़कर मित्रता से रहते है, शरद, शीत, हेमन्त, वर्षा, उष्ण व बसन्त इन छहो ऋतुओ के फल-फूल जहॉं भी तीर्थकरो, केवली भगवन्तो का विहार होता है एक-साथ आते है, जिस ओर तीर्थकर देव का विहार होता है समस्त पृथ्वी सुन्दर, रत्नमयी, दर्पणवत् स्वच्छ हो जाती है, वायु जिस ओर भगवान् का विहार होता है उन्ही का अनुकरण करती हुए मन्द-मन्द बहती है तथा चारो ओर सभी जीव परम आनन्द का अनुभव करते है।

मरुतोऽपि सुरभि-गन्ध-व्यामिश्रा योजनान्तरं भूभागम्।
व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करोपलं प्रकुर्वन्ति ।।४४।।
तदनु स्तनितकुमारा,विद्युन्माला-विलास -हास-विभूषाः ।
प्रकिरन्ति सुरभि-गन्धि, गन्धोदक-वृष्टि-माज्ञया त्रिदशपतेः ।।४५।।

अन्वयार्थ—(सुरभिगन्ध व्यामिश्रा मरुत अपि) सुगधित वायु भी (योजनान्तर भूभाग) एक योजन के अन्तर्गत पृथ्वी के भाग को (व्युपशमित-धूलि-कण्टक-तृण-कीटक-शर्करा-उपल) धूलि, कण्टक, तृण, कीट, रेत, पाषाणरहित (प्रकुर्वन्ति) करते है (तदनु) उसके बाद (त्रिदशपते) इन्द्र की (आज्ञया) आज्ञा से (विद्युत्-माला-विलास-हास-विभूषा) बिजलियो के समूह की चमकरूपी हास्य-विनोद रूप वेषभूषा से युक्त (स्तनितकुमारा) स्तनितकुमार जाति के देव अर्थात् बादलो की गर्जना ही जिनके आभूषण है ऐसे स्तनितकुमार जाति के देव मेघ का रूप धारणकर (सुरभिगन्धि) मनोहर गन्ध से युक्त (गन्धोदक वृष्टि) सुगन्धित जल की वर्षा (प्रकिरन्ति) करते है।

भावार्थ—तीर्थंकर का विहार आकाश मे होता है और भक्तजन/भव्य जनसमूह पृथ्वी पर गमन करता है। इन्द्र की आज्ञा से विहार की भूमि को वायुकुमार देव धूलि, कण्टक आदि रहित करते है तथा स्तनितकुमार-देव सुगन्धित जल से पृथ्वी को सीचता है।

वर-पद्मराग-केसर-मतुल-सुख-स्पर्श-हेम-मय-दल-निचयम्।
पादन्यासे पद्म सप्त, पुरः पृष्ठतश्च सप्त भवन्ति।।४६।।

अन्वयार्थ—विहार के समय (पादन्यासे) चरण रखने के स्थान मे (वरपद्मराग केसर) उत्कृष्ट पद्मराग मणि जिसमे केशर है (अतुलसुख-स्पर्श-हेममय-दलनिचय) जिनका स्पर्श अत्यन्त सुखकर है सुवर्णमय पत्तो के समूह युक्त (पद्म) एक कमल रहता है तथा ऐसे ही (सप्तपुर) सात कमल आगे (च) और (सप्तपृष्ठत) सात कमल पीछे (भवन्ति) होते है।

भावार्थ—तीर्थंकर भगवान् जब विहार करते है तब देव उन चरण-कमलो के नीचे स्वर्णमय पत्तो से युक्त तथा पद्मरागमणिमय केसरयुक्त सुन्दर कमलो की रचना करते है। इनमे एक कमल चरण के नीचे रहता है तथा सात कमल आगे और सात कमल पीछे रहते है। इस प्रकार १५ कमलो की पंक्तियाँ होती है। इस प्रकार सब मिलाकर २२५ कमलो की रचना देवगण करते है। उनकी यह शोभा अवर्णनीय होती है।

फलभार-नम्र-शालि-ब्रीह्यादि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा।
परिहृषितेव च भूमि-स्त्रिभुवननाथस्य वैभवं पश्यन्ती।।४७।।

अन्वयार्थ—(त्रिभुवननाथस्य वैभव पश्यन्ती) तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव के वैभव को देखती हुई (भूमि) पृथ्वी (परिहृषित इव) हर्ष-विभोर होती हुई के समान (फलभार नम्रशालि-ब्रीहि-आदि-समस्त-सस्य-धृत-रोमाञ्चा) विविध प्रकार के फलो के भार से झुकी हुई, शालि, ब्रीहि आदि समस्त धान्यो को धारण करती हुई रोमाञ्च को प्राप्त हो उठी थी।

भावार्थ—विहार के समय जिस ओर तीन लोक के स्वामी जिनेन्द्र-देव का विहार होता था वहाँ की पृथ्वी तीन लोक के नाथ की अनुपम सम्पदा को देखकर अत्यधिक हर्ष को प्राप्त होती हुई षट्ऋतुओ के फलो

के भार से झुकी हुई, नाना प्रकार के शालि, ब्रीहि आदि धान्यो से व्याप्त ऐसे मालूम होती जैसे रोमाञ्च को प्राप्त हो उठी हो।

शरदुदय - विमल - सलिलं, सर इव गगनं विराजते विगतमलम्।
जहति च दिशस्तिमिरिकां, विगतरजः प्रभृति जिह्मताभावं सद्यः ।।४८।।

अन्वयार्थ—(शरदुदय-विमल-सलिल सर इव विगत मल गगन) शरद ऋतु के काल मे निर्मल सरोवर के समान धूलि आदि मल से रहित आकाश (विराजते) सुशोभित होता है (च) और (दिश) दिशाएँ (सद्य) शीघ्र ही (तिमिरिका जहति) अधकार को छोड देती है तथा (विगतरज प्रभृति जिह्मताभाव) धूलि आदि की मलिनता के अभाव को प्रकट करती हुई शीघ्र निर्मल हो जाती है।

भावार्थ—तीर्थकर परमदेव के विहार काल मे जिसका कीच नीचे बैठ गया है ऐसे शरद ऋतु के तालाब के समान आकाश बादलो रहित स्वच्छ व निर्मल हो जाता है तथा दशो दिशाएँ भी अधकार व मलिनता से रहित स्वच्छ हो जाती है। कहा भी है "निर्मलदिश-आकाश"।

एतेतेति त्वरित ज्योति-र्व्यन्तर-दिवौकसा-ममृतभुजः ।
कुलिशभृदाज्ञापनया, कुर्वन्त्यन्ये समन्ततो व्याह्वानम् ।।४९।।

अन्वयार्थ—(कुलिशभृदाज्ञापनया) इन्द्र की आज्ञा से (अन्ये अमृतभुज) अन्य देव (त्वरित एत-एत इति) शीघ्र आओ, शीघ्र आओ इस प्रकार (ज्योति व्यन्तर-दिवौकसा) ज्योतिष्क, व्यन्तर और वैमानिक देवो का (समन्तत) सब ओर (व्याह्वानम्) बुलाना (कुर्वन्ति) करते है।

भावार्थ—तीर्थकर प्रभु के विहार काल मे इन्द्र की आज्ञा से भवनवासी देव अन्य समस्त देवो को जल्दी आओ, जल्दी आओ कहकर चारो ओर से बुलाते है।

स्फुर-दरसहस्र-रुचिरं, विमल-महारत्न-किरण-निकर-परीतम्।
प्रहसित-किरण-सहस्र-द्युति-मण्डल-मग्रगामि-धर्म-सुचक्रम् ।।५०।।

अन्वयार्थ—(स्फुरत्-अर-सहस्र-रुचिर) दैदीप्यमान एक हजार आरो से शोभायमान (विमल-महारत्न किरण-निकर-परीतम्) निर्मल महारत्नो के किरण समूह से व्याप्त और (प्रहसित-सहस्र-किरण-द्युति-मण्डलम्)

सहस्र रश्मि सूर्य की कान्ति को तिरस्कृत करता हुआ (धर्म-सुचक्रम्) उत्तम धर्म-चक्र (अग्रगामि) आगे-आगे चलता है।

भावार्थ—जिस समय तीर्थकर भगवान् का विहार होता है उस समय कान्तिमान एक हजार आरो से सुशोभित, निर्मल महारत्नो की किरणो के समूह से व्याप्त, अपनी कान्ति से सूर्य की तेज दीप्ति को भी तिरस्कृत करने वाला ऐसा उत्तम धर्मचक्र भगवान के आगे-आगे चलता है।

इत्यष्ट-मंगल च, स्वादर्श-प्रभृति-भक्ति-राग-परीतैः।
उपकल्प्यन्ते त्रिदशै-रेतेऽपि-निरुपमातिशया: ।।५१।।

अन्वयार्थ—विहार काल मे (इति) इसी प्रकार (स्वादर्शप्रभृति अष्टमङ्गल च) दर्पण को आदि ले आठ मगल द्रव्य भी साथ मे रहते है (एते अपि) ये आठ मङ्गल द्रव्य भी आगे-आगे रहते है (निरुपम अतिशया) उपमातीत विशेष अतिशय भी (भक्तिराग परीतै) भक्ति के राग मे रँगे हुए (त्रिदशै) देवो के द्वारा (उपकल्प्यन्ते) किये जाते है।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के विहारकाल मे एक सहस्र आरो वाले दैदीप्यमान धर्मचक्र के समान ही, अनुपम शोभा से युक्त दर्पण आदि आठ मङ्गल द्रव्य भी आगे चलते है। इस प्रकार उपमातीत ये १४ अतिशय जिनभक्ति के राग मे रजित देवो के द्वारा किये जाते है।

इस प्रकार अरहन्त भगवान् के जन्म के दश अतिशय, केवलज्ञान के दस अतिशय और देवकृत चौदह अतिशय ऐसे कुल ३४ अतिशय होते है। इनमे १ अर्धमागधीभाषा २ आपस मे मित्रता ३ षट्ऋतु के फल-फूल एक काल मे फलना ४ दर्पण सम पृथ्वी का होना ५ मन्द सुगन्ध हवा चलना ६ भूमि कण्टक रहित होना ७ सृष्टि मे हर्ष होना ८ सुगन्धित जल की वृष्टि होना ९ चरण-कमलो के नीचे स्वर्ण कमलो की रचना होना १० आकाश का निर्मल होना ११ दिशाओ का निर्मल होना १२ आकाश मे जयघोष रूप दुन्दुभिनाद होना १३ धर्मचक्र का आगे-आगे चलना और १४ अष्टमगल द्रव्यो का आगे-आगे चलना ये १४ अतिशय भक्ति के राग मे रजित देवो के द्वारा प्रीतियुक्त हो किये जाते है।

आठ प्रातिहार्यो का वर्णन

अशोक वृक्ष

वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदु-पल्लवोपशोभित-शाखः ।
श्रीमानशोक-वृक्षो वर-मरकत-पत्र-गहन-बहलच्छायः ।।५२।।

अन्वयार्थ—(वैडूर्य-रुचिर-विटप-प्रवाल-मृदुपल्लव-उपशोभित शाख) सुन्दर वैडूर्यमणियो से बनी शाखाओ, पत्तो और कोमल कोपलो से शोभित उपशाखाओ से सहित और (वरमरकतपत्रगहन-बहल-च्छाय) श्रेष्ठ हरित मणियो से निर्मित पत्तो की सघन छाया से युक्त (श्रीमान् अशोकवृक्ष) श्री शोभायुक्त ऐसा अशोकवृक्ष था।

भावार्थ—अरहन्तदेव के आठ प्रातिहार्य होते है उनमे प्रथम अशोक वृक्ष है। जिस वृक्ष के नीचे भगवान् को केवलज्ञान होता है वह समवशरण मे अशोक वृक्ष होता है। यह अशोक वृक्ष अनेक प्रकार की मणियो से बना होता है, इसकी शाखाएँ वैडूर्यमणि की होती है, पत्ते हरित मणियो से बने होते है तथा यह कोमल कोपल व उपशाखाओ से युक्त होता है। ऐसा शोभासम्पन्न अशोक वृक्ष भक्तजनो के चित्त को आकर्षित करता हुआ रहता है।

पुष्पवृष्टि

मन्दार-कुन्द-कुवलय-नीलोत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यैः ।
समद-भ्रमर-परीतै-र्व्यामिश्रा पतति कुसुम-वृष्टि-र्नभसः ।।५३।।

अन्वयार्थ—(समद-भ्रमर-परीतै) मदोन्मत्त भ्रमरो के गुजार से युक्त (मन्दार-कुन्द-कुवलय-नील-उत्पल-कमल-मालती-बकुलाद्यै) मन्दार-कुन्द, कुमुद [रात्रि मे विकसित होने वाले कमल] नील कमल, श्वेत कमल, मालती, बकुल आदि (व्यामिश्रा) मिले हुए पुष्पो के द्वारा (नभस) आकाश से (कुसुमवृष्टि पतति) पुष्प वृष्टि होती रहती है।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के ऊपर जिनकी सुगन्ध से आकर्षित हो मदोन्मत्त भँवरे जिन पर गुजार कर रहे है ऐसे मन्दार, कुन्द, रात्रि विकासी कमल-कुमुद, नीलकमल, सफेद कमल, मालती, बकुल आदि से मिले सुन्दर सुगन्धित पुष्पो की वर्षा सदा होती रहती है।

चामर

कटक-कटि-सूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषितागौ स्वंगौ ।
यक्षौ कमल-दलाक्षौ, परि-निक्षिपत सलील-चामर-युगलम् ।।५४।।

अन्वयार्थ—(कटक-कटिसूत्र-कुण्डल-केयूर-प्रभृति-भूषिताङ्गौ) स्वर्णमय कडा-मेखला, करधनी–कदोरा, कुण्डल–कर्णाभरण और बाजूबन्द आदि आभूषणो से सुशोभित अग/ शरीर वाले (स्वङ्गौ) सुन्दर शरीर सम्पन्न तथा (कमल-दल-अक्षौ) कमल के दल समान नेत्रो वाले (यक्षौ सलील चामर-युगलम्) दो यक्ष लीलापूर्वक चामर युगल को (परिनिक्षिपत) ढोरते है ।

भावार्थ—स्वर्णमय कड़ा, मेखला, करधनी, कर्णकुण्डल, बाजूबन्द आदि अनेक प्रकार के आभूषणो से जिनके शरीर की शोभा बढ रही है, जिनके नेत्र कमल कलिका के समान विशाल व सुन्दर है ऐसे सुन्दर आकृति के धारक दो यक्ष जिनेन्द्रदेव के दोनो ओर खडे होकर निरन्तर चामर ढोरते है ।

भामण्डल

आकस्मिक-मिव युगपद्-दिवसकर-सहस्र-मपगत-व्यवधानम् ।
भामण्डल-मविभावित-रात्रिञ्दिव-भेद-मतितरामाभाति ।।५५।।

अन्वयार्थ—(अपगतव्यवधान) आवरणरहित (आकस्मिक) सहसा/ अकस्मात् (युगपत्) एकसाथ उदित हुए (दिवसकर-सहस्रम् इव) हजारो सूर्यो के समान (अविभावित-रात्रि-दिवभेद) रात-दिन के भेद को विलुप्त/ अस्त करने वाला (भामण्डल अतितराम् आभाति) भामण्डल अत्यधिक शोभा को प्राप्त होता है ।

भावार्थ—समवशरण मे तीर्थकर प्रभु के पीछे एक सहस्रो सूर्यो के तेज को भी तिरस्कृत करने वाला दैदीप्यमान भामण्डल होता है । इस भामण्डल की आभा/कान्ति के सामने रात-दिन का भेद भी समाप्त हो जाता है ऐसा यह जिनेन्द्रदेव का भामण्डल नामक प्रातिहार्य है । इस भामण्डल मे जीवो के सात भव दिखाई देते है ।

दुन्दुभिवाद्य

प्रबल-पवनाभिघात-प्रक्षुभित-समुद्र-घोष-मन्द्र-ध्वानम् ।
दन्ध्वन्यते सुवीणा-वशादि-सुवाद्य-दुन्दुभिस्तालसमम् ।।५६।।

अन्वयार्थ—(प्रबल-पवन-अभिघात-प्रक्षुभित-समुद्र-घोष-मन्द्र ध्वानम्) कठोर वायु के आघात से क्षुभित समुद्र के शब्द के समान गम्भीर स्वर वाला (सुवीणा-वशादि-सुवाद्य-दुन्दुभि) प्रशस्त वीणा और बॉसुरी आदि उत्तम वाद्यो से सहित दुन्दुभि (ताल सम) ताल के अनुसार (दध्वन्यते) बार-बार गम्भीर शब्द करता है।

भावार्थ—समवशरण मे अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वीणा, बॉसुरी आदि वाद्यो का कर्णप्रिय दुदुभिनाद ताल के अनुसार व गभीर आवाज मे होता रहता है। यह जिनदेव का दुन्दुभिनाद नामक प्रातिहार्य है।

तीन छत्र

त्रिभुवन-पतिता-लाञ्छन-मिन्दुत्रय-तुल्य-मतुल-मुक्ता-जालम् ।
छत्रत्रय च सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त-दण्ड-मधिक-मनोज्ञम् ।।५७।।

अन्वयार्थ—(त्रिभुवन-पतितालाञ्छन) तीनो लोको के चिह्नरूप (इन्द्रत्रयतुल्य) तीन चन्द्रमाओ के समान (अतुल मुक्ताजालम्) अनुपम मोतियो के जाल से सहित (सुबृहद्-वैडूर्य-विक्लृप्त दण्ड) बहुत विशाल नीलमणि निर्मित दण्ड से युक्त तथा (अधिक मनोज्ञ) अत्यन्त सुन्दर (छत्रत्रय) तीन छत्र शोभायमान होते है।

भावार्थ—समवशरण मे तीन लोको के स्वामीपने को सूचित करने वाले तीन पूर्ण चन्द्रमाओ के समान सुन्दर मोतियो की लटकती मालाओ से युक्त, नीलमणि से निर्मित दण्ड से शोभित अत्यन्त सुन्दर तीन छत्र भगवान् के सिर पर सदा शोभायमान होते है।

दिव्यध्वनि

ध्वनिरपि योजनमेक, प्रजायते श्रोतृ-हृदयहारि-गम्भीरः ।
ससलिल-जलधर-पटल-ध्वनितमिव प्रविततान्त-राशावलयम् ।।५८।।

अन्वयार्थ—(श्रोतृहृदय हारिगभीर) कर्ण और हृदय को हरने वाली गम्भीर (ध्वनि अपि) दिव्यध्वनि भी (एक योजन) एक योजन तक

(प्रजायते) होती है (ससलिल-जलधर पटल ध्वनितम् इव) सजल मेघ पटल की गर्जना के समान (प्रवितत-अन्तर-आशावलय) दिशाओ के अन्तराल को व्याप्त करने वाली होती है।

भावार्थ—समवशरण मे जिनेन्द्र की दिव्यध्वनि पानी से भरे बादलो की गर्जना के समान, दशो-दिशाओ के समूह मे व्याप्त व कर्णप्रिय, हृदयहारी/मनको सुख देने वाली एक-एक योजन तक गूँजती है।

सिंहासन

स्फुरिताशु-रत्न-दीधिति-परिविच्छुरिताऽमरेन्द्र-चापच्छायम्।
ध्रियते मृगेन्द्रवर्यै-स्फटिक-शिला-घटित-सिह-विष्टर-मतुलम्।।५९।।

अन्वयार्थ—(स्फुरित-अशुरत्न-दीधिति-परिविच्छुरित-अमरेन्द्र-चापच्छाय) देदीप्यमान किरणो वाले रत्नो की किरणो से इन्द्रधनुष की कान्ति को धारण करने वाला (अतुलम्) अनुपम (स्फटिक शिला घटित सिह विष्टरम्) स्फटिक की शिला से निर्मित सिहासन (मृगेन्द्रवर्यै) श्रेष्ठ सिहो के प्रतीको से (ध्रियते) धारण किया जाता है।

भावार्थ—समवशरण मे रग-बिरगे विविध मणियो से जडित स्फटिक मणि से निर्मित सिहासन होता है, उस सिहासन मे पाये सिह के आकार होते है, यह सिहासन प्रातिहार्य है। समवशरण मे तीर्थकर भगवान् सिहासन से चार अगुल ऊपर अधर विराजमान होते है।

यस्येह चतुस्त्रिशत्-प्रवर-गुणा प्रातिहार्य-लक्ष्यम्यश्चाष्टौ।
तस्मै नमो भगवते, त्रिभुवन-परमेश्वरार्हते गुण-महते।।६०।।

अन्वयार्थ—(इह) इस जगत् मे (यस्य) जिसके (चतुस्त्रिशत् प्रवर गुणा) ३४ अतिशय श्रेष्ठ गुण (च) और (अष्टौ प्रातिहार्य लक्ष्म्य) आठ प्रतिहार्य लक्ष्मियाँ है (तस्मै) उन (गुण महते) गुणो से महान् देवाधिदेव (भगवते) भगवान् (त्रिभुवन परमेश्वर अर्हते) तीन लोक के नाथ अर्हन्त परमेष्ठी को (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—चौतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य और चार अनन्त चतुष्टय ४६ गुणो से अर्हत् परमेष्ठीपद मे शोभायमान, तीन लोक के स्वामी अर्हन्त परमेष्ठी को नमस्कार हो। अर्हन्त परमेष्ठी के ४२ गुण बाह्य,

पुण्याश्रित हे तथा ४ अनन्त चतुष्टय—अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्त-सुख व अनन्तवीर्य ये आत्माश्रित गुण है।

क्षेपक-श्लोका:

अर्हन्तदेव की महिमा

गत्वा क्षितेर्वियति पचसहस्रदण्डान्,
सोपान-विशतिसहस्र-विराजमाना।
रेजे सभा धनद यक्षकृता यदीया,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।१।।

अन्वयार्थ—(वियति) आकाश मे (क्षिते) पृथ्वी से (पचसहस्रदण्डान्) पॉच हजार धनुष [ऊपर] (गत्वा) जाकर (सोपान-विशति सहस्र विराजमाना) बीस हजार सीढियॉ सुन्दर है ऐसी (यदीया) जिनकी (सभा) समवशरण सभा (धनद यक्षकृता) कुबेर रचित है उस सभा मे (रेजे) शोभायमान (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेश्वर के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—आकाश मे पृथ्वी से ५००० धनुष ऊपर जाकर सुन्दर २० हजार सीढियो पर तीन लोक के नाथ जिनदेव की कुबेररचित समवशरण सभा है। उस समवशरण सभा मे जो विराजमान है उन तीर्थकर प्रभु के लिये नमस्कार हो।

समवशरण मंडप की रचना

सालोऽथ वेदिरथ वेदिरथोऽपि सालो,
वेदिश्च साल इह वेदिरथोऽपि साल:।
वेदिश्च भाति सदसि क्रमतो यदीये,
तस्मै नमस्त्रिभुवनप्रभवे जिनाय।।२।।

अन्वयार्थ—(यदीये) जिनके समवशरण मे (साल) कोट पश्चात् (वेदि) वेदी (अथ) पश्चात् (वेदिरत अपि शाल) पुन वेदी और फिर शाल/कोट (च) और (वेदि) वेदी (शाल) कोट (इह) इस प्रकार (वेदिरथोऽपि शाल) पुन वेदी फिर शाल (च) और (वेदि) वेदी (क्रमत) क्रम से (भाति सदसि) सभा म शोभायमान हे (तस्मे)

उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव की समवशरण सभा की रचना इस प्रकार है कि उसमे सबसे पहले धूलिसाल नामका कोट-तट है, उसके बाद एक वेदी है। उसके बाद पुन एक वेदी है। इस वेदी के बाद दूसरा सुवर्ण का एक कोट/तट है, उस तट के आगे पुन वेदी है तथा इस वेदी के बाद तृतीय रूपा का तट है। उसके आगे पुन वेदी है, उसके बाद पुन स्फटिकमणि का तट है और उसके आगे पुन वेदी है। इस प्रकार की रचना से जिनका समवशरण सुशोभित है उन जिनेश्वर के लिये नमस्कार हो।

प्रासाद-चैत्य-निलया: परिखात-वल्ली,
प्रोद्यानकेतुसुरवृक्षगृहाङ् गणाश्च।
पीठत्रय सदसि यस्य सदा विभाति,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय।।३।।

अन्वयार्थ—(प्रासाद) महल (चैत्यनिलया) चैत्यालय (परिखा) खातिका (अथ) पश्चात् (वल्लि) लता (प्रोद्यान) उद्यान (केतु) ध्वजा (सुरवृक्ष) कल्पवृक्ष (च) और (गृहाङ्गणा) गृहसमूह (पीठत्रय) तीन पीठ (यस्य) जिनकी (सदसि) सभा मे (सदा) हमेशा (विभाति) शोभायमान है (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन भुवन के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नम) नमस्कार है।

भावार्थ—उस समवशरण सभा मे प्रथम धूलिशाल कोट और वेदि के मध्य मे सुन्दर महल व चैत्यालय है अत इसे चैत्यप्रासाद भूमि कहते है। प्रथम व द्वितीय वेदी के आगे खातिका भूमि है। पश्चात् दूसरी वेदी और स्वर्ण के कोट के मध्य मे मल्लिका आदि लताओ के वन है अत इसे लता भूमि कहते है। स्वर्ण के कोट और तीसरी वेदी दोनें के मध्य मे सुन्दर बगीचे है अत उस भूमि को उद्यानभूमि कहते है। पुन वेदि और चादी के कोट के मध्य मे ध्वजाओ की पक्ति सुशोभित है अत इस भूमि को ध्वजा भूमि कहते है। उसके आगे वेदी के मध्य भाग मे कल्पवृक्ष व चैत्यवृक्ष है अत इस भूमि को कल्पवृक्ष भूमि कहते है। चौथी वेदी और स्फटिक मणि क काट के मध्य मे "महल" हे अत इस भूमि को गृहाग भूमि कहते है।

इस प्रकार १ चैत्य प्रसाद भूमि २ खातिका भूमि ३ लताभूमि ४ उद्यानभूमि ५ ध्वजा भूमि ६ कल्पवृक्ष भूमि और ७ गृहाग भूमि के बाद स्फटिक मणि के कोट के आगे बारह सभाएँ है। उसके बाद ३ मेखला व कमलयुक्त सिहासन है उस सिहासन पर चार अगुल अधर बैठकर तीर्थकर भगवान् उपदेश देते है। इस प्रकार की शोभा से सुशोभित जिन अरहत देव की सभा है उन तीन लोक के स्वामी जिनदेव के लिये नमस्कार हो।

समवशरणसभा में १० प्रकार की ध्वजाएँ

माला-मृगेन्द्र-कमलाम्बर वैनतेय-
मातगगोपतिरथांगमयूरहंसा: ।
यस्य ध्वजा विजयिनो भुवने विभान्ति,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।६।।

अन्वयार्थ—(यस्य विजयिन) जिन जितेन्द्रिय अरहत देव का समवशरण (मालामृगेन्द्रकमलाम्बर वैनयतेय मातग गोपतिरथाग मयूर-हसा) माला, मृगेन्द्र, कमल, वस्त्र, गरुड, हस्ति, बैल, चक्रवाल/चकवा पक्षी, मोर व हस इन चिह्नो युक्त १० प्रकार की (ध्वजा) ध्वजाओ से (भुवने) लोक मे (विभान्ति) सुशोभित है (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण सभा मे माला, मृगेन्द्र, कमल, वस्त्र, गरुड़, हस्ति, बैल, चकवा, मोर और हस ये दस प्रकार की ध्वजाएँ सुशोभित होती है।

समवशरण की १२ सभा

निर्ग्रथ-कल्प-वनिता-व्रतिका भ-भौम,
नागस्त्रियो भवन-भौम-भ-कल्पदेवा ।
कोष्ठस्थिता नृ-पशवोऽपिनमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।५।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनके चरण-कमलो मे (कोष्ठस्थिता) बारह सभाओ मे स्थित (निर्ग्रथकल्पवनिताव्रतिका भभौम नागस्त्रियो भवन भौम-भ-कल्पदेवा नृ-पशव अपि) १ मुनि २ कल्पवासिनी देवियाँ ३ आर्यिका ४ ज्योतिषी देवियाँ ५ व्यन्तर देवियाँ ६ भवनवासी देवियाँ ७ भवनवासी

देव ८ व्यन्तर देव ९ ज्योतिषी देव १० कल्पवासी देव ११ मनुष्य और १२ तिर्यञ्च भी (नमान्त) नमस्कार करते है (तस्मै) उन (त्रिभुवन-प्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण मे १ मुनि २ कल्वपवासिनी देवियाँ ३ आर्यिका ४ ज्योतिषी देवियाँ ५ व्यन्तर देवियाँ ६ भवनवासी देवियाँ ७ भवनवासी देव ८ व्यन्तर देव ९ ज्योतिषी देव १० कल्पवासी देव ११ मनुष्य १२ तिर्यञ्च ये १२ सभाएँ होती है।

समवशरण में आठ प्रातिहार्य

भाषा-प्रभा-वलयविष्टर-पुष्पवृष्टिः,
पिण्डिद्रुमस्त्रिदशदुन्दुभि-चामराणि।
छत्रत्रयेण सहितानि लसन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।४।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जो जिनेन्द्रदेव (भाषा-प्रभावलय-विष्टर-पुष्पवृष्टि पिण्डिद्रुम त्रिदशदुदुभि चामराणि-छत्रत्रयेण) दिव्यध्वनि, भामडल, सिहासन, पुष्पवृष्टि, अशोकवृक्ष, देवदुदुभि, ६४ चँवर, तीन छत्र रूप आठ प्रातिहार्योसे (सहितानि) सहित हो (लसति) शोभा को प्राप्त हो रहे है (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण मे १ मुनि २ कल्पवासिनी देवियाँ ३ ३ सिहासन ४ पुष्पवृष्टि ५ अशोकवृक्ष ६ देव-दुदुभि ७ चामर और ८ तीन छत्र ये आठ प्रातिहार्य शोभायमान होते है।

समवसरण में अष्टमंगलद्रव्य

भृगार-ताल-कलश-ध्वजसुप्रतीक-
श्वेतातपत्र-वरदर्पण-चामराणि।
प्रत्येक-मष्टशतकानि विभान्ति यस्य,
तस्मैनम-स्त्रिभुवन-प्रभवेजिनाय ।।७।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जो त्रिलोकीनाथ (भृगार-ताल-कलश-ध्वज-

सुप्रतीक-श्वेत-आतपत्र-वरदर्पण-चामराणि) झारी, पखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, सफेद तीन छत्र, श्रेष्ठ दर्पण, ६४ चँवर इन (प्रत्येकम् अष्टशतकानि) प्रत्येक मगल द्रव्य १०८-१०८ से (विभाति) शोभा को प्राप्त है (तस्मै) उन (त्रिभुवन प्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण मे जिनदेव झारी, पखा, कलश, ध्वजा, स्वस्तिक, सफेद तीन छत्र, निर्मल दर्पण और ६४ चँवर ये ८ मगलद्रव्य सुशोभित रहते है।

समवसरण में अन्य मंगलसमाग्री

स्तभ-प्रतोलि-निधि-मार्ग-तडाग-वापी-
क्रीडाद्रि-धूप-घट-तोरण-नाट्य-शाला.।
स्तूपाश्च चैत्य-तरवो विलसन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।८।।

अन्वयार्थ—(यस्य) जिनकी समवशरण सभा मे (स्तभ-प्रतोलि-निधि-मार्ग-तडाग-वापी-क्रीडाद्रि-धूपघट-तोरण-नाट्यशाला स्तूपा च चैत्यतरव) मानस्तभ, गोपुर, नवनिधि, मार्ग/रास्ते, तालाब, वापिका, क्रीड़ापर्वत, धूपघट, तोरण, नाट्यशालाएँ और अनेक प्रकार के स्तूप तथा चैत्यवृक्ष (विलसति) शोभा को प्राप्त हो रहे है (तस्मै) उन (त्रिभुवन-प्रभवे) तीनलोक के स्वामी (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—समवशरण सभा मे मानस्तम्भ, गोपुर, नवनिधि, मार्ग, तालाब, वापिकाएँ, क्रीडापर्वत, धूपघट, तोरण, नाट्यशालाएँ और अनेक स्तूप चैत्यवृक्ष सुशोभित रहते है।

१४ रत्नों के स्वामी से वन्दनीय

सेनापति स्थपति-हर्म्यपति-द्विपाश्व,
स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणिका-पुरोधा:।
छत्रासि-दडपतय· प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय ।।९।।

अन्वयार्थ—(सेनापति-स्थपति-हर्म्यपति-द्विप-अश्व-स्त्री-चक्र-चर्म-मणि-काकिणिका-पुरोघा-छत्र-असि-दड-पतय) सेनापति, स्थपति/उत्तम कारीगर, हर्म्य पति/ घर का सभी हिसाब आदि रखने वाला, हाथी, घोडा, स्त्रीरत्न/चक्रवर्ती की पट्टरानी, सुदर्शनचक्र, चर्मरत्न, चूडामणिरत्न, काकिणीरत्न, पुरोहितरत्न, छत्र, तलवार और दड इन १४ रत्नो के स्वामी चक्रवर्ती भी (यस्य प्रणमन्ति) जिनको नमस्कार करते है (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के स्वामी (जिनाय) जिनदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

भावार्थ—जिनेन्द्रदेव के समवशरण मे सेनापति, स्थपति, हर्म्यपति, हाथी, घोडा, स्त्रीरत्न, सुदर्शनचक्र, चर्मरत्न, चूडामणिरत्न, काकिणी-रत्न, पुरोहित रत्न, छत्र, तलवार एव दड रत्न के स्वामी चक्रवर्ती भी आकर नमस्कार करते है फिर साधारण लोगो को तो नमस्कार करना ही चाहिये।

९ निधि के स्वामी से वन्दित

पद्म· कालो महाकाल: सर्वरत्नश्च पाडुक:,
नैसर्पो माणव: शख: पिंगलो निधयो नव।
एतेषा पतय: प्रणमन्ति यस्य,
तस्मै नम-स्त्रिभुवन-प्रभवे जिनाय॥१०॥

अन्वयार्थ—(पद्म काल महाकाल सर्वरत्न च पाडुक: नैसर्प माणव शख पिगला) पद्म, महापद्म, काल, महाकाल, सर्वरत्न, पाडुक, नैसर्प, माणव, शख, पिगला ये (नवनिधय) नव निधियाँ है (एतेषा पतय) इन निधियो के स्वामी चक्रवर्ती (यस्य) जिनके चरणो मे (प्रणमन्ति) नमस्कार करते है (तस्मै) उन (त्रिभुवनप्रभवे) तीन लोक के नाथ (जिनाय) जिनेन्द्रदेव के लिये (नम) नमस्कार हो।

अर्हन्त का स्वरूप

खविय-घण-घाइ-कम्मा,
चउतीसातिसयविसेसपचकल्लाणा।
अट्ठवरपाडिहेरा
अरिहंता मंगला मज्झं॥११॥

अन्वयार्थ—(खवियघणघाइकम्मा) क्षय कर दिया है अत्यत दुष्ट ऐसे घातिया कर्मो का समूह जिसने जो (चउतीसा अतिसयविसेसपचकल्लाणा) ३४ अतिशय विशेष व गर्भादि पचकल्याणक से युक्त है (अट्ठवर पाडिहेरा) उत्कृष्ट आठ प्रातिहार्यो को प्राप्त हुए है ऐसे (अरिहता) अर्हन्त परमेष्ठी (मज्झ) मेरे लिये (मगला) मगल करो।

भावार्थ—जिन्होने दुष्कर चार घातिया कर्मो का क्षय कर दिया है। जो जन्म के १०व केवलज्ञान के १० तथा देवकृत १४ अतिशय इस प्रकार ३४ अतिशयो को प्राप्त हुए है, देवो ने जिनके गर्भादि पॉच कल्याणक किये है, जो आठ प्रातिहार्य से सहित है ऐसे अरहत परमेष्ठी मेरे लिए मगल करे। मेरे लिये मगलस्वरूप हो।

अञ्चलिका

इच्छामि भते! णदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं। णदीसरदीवम्मि, चउदिस विदिसासु अजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसुवि लोएसु भवणवासिय-वाणविंतर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेहिं ण्हाणेहिं, दिव्वेहि गधेहि, दिव्वेहि अक्खेहिं, दिव्वेहि पुप्फेहिं, दिव्वेहिं चुण्णेहिं, दिव्वेहिं दीवेहिं, दिव्वेहिं धूवेहि, दिव्वेहिं वासेहिं, आसाढ-कात्तियफागुण-मासाण अट्ठमिमाइ, काऊण जाव पुण्णिमंति णिच्चकालं अच्चति, पुज्जंति, वदति, णमसति। णदीसरमहाकल्लाणपुज्ज करंति अहमवि इह संतो तत्थासताइयं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वदामि, णमस्सामि दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो सुगइ-गमणं, समाहिमरण, जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

अर्थ—(भते!) हे भगवन्! (णदीसरभत्ति काउस्सग्गो कओ) मैने नन्दीश्वर भक्ति का कायोत्सर्ग किया (तस्स आलोचेउ इच्छामि) तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ (णदीसरदीवम्मि) नन्दीश्वरद्वीप मे (चउदिस विदिसासु) चारो दिशाओ, विदिशाओ मे (अजण-दधिमुह-रदिकर-पुरुणगवरेसु) अञ्जनगिरि, दधिमुख व रतिकर नामक श्रेष्ठ पर्वतो मे (जाणि जिणचेइयाणि) जितनी जिन प्रतिमाएँ है (ताणि सव्वाणि) उन सबको (तिसुवि लोएसु) त्रिलोकवर्ती (भवणवासिय-वाणवितर-जोइसिय-कप्पवासिय-त्ति चउविहा देवा सपरिवारा) भवनवासी, व्यन्तर,

ज्योतिषी और कल्पवासी ये चार प्रकार के देव परिवार सहित (दिव्वेहि ण्हाणेहि, दिव्वेहि गधेहि, दिव्वेहि अक्खेहि, दिव्वेहि पुप्फेहि, दिव्वेहि चुण्णेहि, दिव्वेहि दीवेहि, दिव्वेहि धूवेहि, दिव्वेहि वासेहि) दिव्य सुगन्धित जल, दिव्य गध, दिव्य अक्षत, दिव्य पुष्प, दिव्य नैवेद्य, दिव्य दीप, दिव्य धूप और दिव्य फलो (आसाढ-कत्तिय-फागुण-मासाण अट्ठमिमाइ काऊण जाव पुण्णिमति) आषाढ, कार्तिक व फागुन मास की अष्टमी से लेकर पूर्णिमा पर्यन्त (णिच्चकाल अच्चति, पुज्जति, वदति, णमस्सति णदीसर-महाकल्लाण-पुज्ज करति) नित्यकाल अर्चना करते है, पूजा करते है, वन्दना करते है, नमस्कार करते है, नन्दीश्वर महापर्व का महाउत्सव करते है, (अहम् अवि) मै भी (इह सतो) यहाँ रहता हुआ (तत्थासताइय) वहाँ /स्थित जिन चैत्यालय प्रतिमाओ की (णिच्चकाल अचेमि, पूजेमि, वदामि णमस्सामि) नित्यकाल अर्चा करता हूँ, पूजा करता हूँ, वदना करता हूँ। नमस्कार करता हूँ मेरे (दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमण, समाहिमरण जिनगुण सपत्ति होउ मज्झ) दु खो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो, जिनेन्द्र देव के गुणरूप सम्पत्ति की मुझे प्राप्ति हो।

भावार्थ—हे भगवन् ! नन्दीश्वर भक्ति का कायोत्सर्ग करके तत्सम्बन्धी आलोचना करने की इच्छा करता हूँ। नन्दीश्वर द्वीप के अजनगिरि, दधिमुख व रतिकर पर्वतो पर एक-एक दिशा सम्बन्धी १३-१३ कुल ५२ जिनालयो मे ५००-५०० धनुष ऊँची रत्नमयी जिनप्रतिमाएँ है। एक-एक मन्दिर मे १०८-१०८ प्रतिमाएँ हैं। इन जिनप्रतिमाओ के साक्षात् दर्शन मनुष्य नही कर सकता है। चार प्रकार के देव ही कार्तिक, आषाढ और फाल्गुन मास मे अष्टमी से पूर्णिमापर्यन्त आठ दिनो तक वहाँ जाकर निरन्तर जिनप्रतिमाओ की दिव्य जल, गध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप व फलो से अर्चन, पूजन, वन्दन, नमन करते है। यहाँ भरत क्षेत्र मे स्थित मै भक्ति-पूर्वक सर्व जिनबिम्ब व जिनालयो की नित्यकाल अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार करता हूँ। जिनेन्द्रदेव की मगल आराधना से मेरे समस्त दुखो का क्षय हो, कर्मो का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति मे गमन हो, समाधिमरण हो तथा जिनेन्द्रदेव के गुणो रूपी सम्पत्ति मुझे प्राप्त हो।